कला व काल के बीच एक ऐसा अज्ञात परस्पर संबंध है कि अन्ततोगत्वा कला काल को प्रभावित किये बिना नही रहती, जिसका आधुनिक कला स्पष्ट उदाहरण है। आधुनिक कला ने समकालीन जीवन के वैचारिक एवं बाह्य रूप को हर तरह से प्रभावित किया है। आधुनिक कला के जन्म, इतिहास व विकास एवं प्रमुख कलाकारो की संक्षिप्त जीवनियां व उनके सघर्ष, विविध कलाशैलियों के बीच की भिन्नताएं, अंकन पद्धतियों के नवीन तरीके, कला के मूलभूत सिद्धान्त, कला व समाज के पारस्परिक अनिवार्य सम्बन्ध आदि का यथा-सम्भव विस्तृत विवरण इस पुस्तक द्वारा जिज्ञासुओं, कलाप्रेमियों व छात्रो के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

मूल्य 30.00

आधुनिक चित्रकला का इतिहास

लेखक
र० वि० साखलकर
बी.एससी., एल एल.बी., एम.एड., जी.डी., ए.एम.



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित

द्वितीय संस्करण : 1985
AADHUNIK CHITRAKALA KA ITIHAS

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर
उपलब्ध कराये गये कागज से निर्मित।

मूल्य : 30=00

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-302 004

मुद्रक :
राष्ट्र उद्योग प्रिण्टर्स
दीनानाथजी का रास्ता,
चांदपोल बाजार, जयपुर फोन : 62820

प्राक्कथन

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपनी स्थापना के 16 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1985 को 17वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि में विश्व साहित्य के विभिन्न विषयों के उत्कृष्ट ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्रन्थों को हिन्दी में प्रकाशित कर अकादमी ने हिन्दी जगत् के शिक्षकों, छात्रों एवं अन्य पाठकों की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी में शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अनुकूल हों। विश्वविद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड़ में अपना समुचित स्थान नहीं पा सकते हों और ऐसे ग्रन्थ भी जो अंग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नहीं पाते हों अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय में उन दुर्लभ मानक ग्रंथों को प्रकाशित करती रही है और करेगी जिनको पाकर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नहीं गौरवान्वित भी हो सकें। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 325 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया है जिनमें से एकाधिक केन्द्र, राज्यों के बोर्डों एवं अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनुशासित।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना-काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके पल्लवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अतः अकादमी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में उक्त सरकारों की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

'आधुनिक चित्रकला का इतिहास' पुस्तक के द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। पुस्तक मूलतः चित्रकला के छात्रों और कलाप्रेमियों को कथित विषय की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी

गई थी। स्पष्ट है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति हो रही है। चित्रकला विषयक अनेक वादों और सम्बद्ध चित्रकारों का प्रामाणिक विवरण पुस्तक का विशेष आकर्षण है।

हम इसके लेखक श्री र० वि० साखलकर के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभार प्रकट करते है।

रामपाल उपाध्याय	डॉ० राघव प्रकाश
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी	निदेशक
एवं	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार, जयपुर	जयपुर

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारतीय कला विद्यालयों व विश्वविद्यालयों मे चित्रकला के अध्ययन में कला का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने के विचार से आधुनिक चित्रकला के इतिहास का महत्त्व बढ गया है। आधुनिक चित्रकला के प्रसार के साथ ही उसकी दुर्बोधता के आवरण को हटा कर उसके गूढ़ सौन्दर्य का रस ग्रहण करने की कला-प्रेमियों की पिपासा बढ़ गई है। इस विषय पर हिन्दी में अब तक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है जो इसकी पूर्ति कर कला के विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं का कुछ मार्ग-दर्शन कर सके। अतः उस दिशा में किया यह अल्प सा प्रयत्न पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है जो, आशा है, विद्यार्थियों को इस विषय के अध्ययन में पर्याप्त मात्रा मे सहायक होगा।

आधुनिक कला ने पाश्चात्य कला-क्षेत्रों, निर्माण-क्षेत्रो व सामाजिक जीवन में निश्चित स्थान प्राप्त कर के सिद्ध किया है कि आधुनिक काल की कला का रूप आधुनिक ही हो सकता है। सर्वसाधारण भारतीय दर्शक आधुनिक चित्र को दुर्बोध व गूढ़ मानता है। किन्तु यदि हम उसके द्वारा किये दैनदिन उपयोग की वस्तुओं—वस्त्र, बरतन, मकान आदि—के चयन का अवलोकन करेंगे तो स्पष्ट होगा कि वह इन वस्तुओं का अधिकतर आधुनिक रूप मे ही पसन्द करता है। अतः आधुनिक कला के सामाजिक महत्त्व के बारे मे कोई सदेह नही किया जा सकता। प्रश्न केवल आधुनिक चित्रकला के अन्तर्गत चित्रकार द्वारा किये गये विशुद्ध प्रयोगों को समाज सम्मुख रखने के औचित्य के बारे मे है। जब ऐसे प्रयोगो द्वारा निर्मित विशुद्ध कलाकृति अनभिज्ञ दर्शकों के सम्मुख रखी जाती है तो स्वाभाविकतया उनमे जिज्ञासा पैदा होती है। इस जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के विचार से भी लेखक को कुछ प्रेरणा मिली। आधुनिक कला का मूल्यांकन भारतीय जीवन-दर्शन व परिस्थिति के विचार को दृष्टि में रखकर, करने की आवश्यकता पर लेखक ने बल दिया है।

आधुनिक कला के इतिहास के मुख्य रूप से चार कालखण्ड होते हैं; प्रथम, कालखण्ड है उन्नीसवी सदी का उत्तरार्ध; दूसरा, बीसवी सदी के प्रारम्भ से प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक का, तीसरा, दोनो विश्वयुद्धो के बीच का और चौथा, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का। प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक की आधुनिक कला के कलाक्षेत्रीय एवं सामाजिक महत्त्व का एवं उस काल के प्रमुख कलाकारों की श्रेष्ठता का मूल्यांकन

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का पाठकों द्वारा जो स्वागत हुआ उसने मुझे इसके द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के लिये प्रोत्साहित किया है।

भवननिर्माण, वस्त्रालंकरण, विज्ञापन, उद्योग आदि जीवन के हर क्षेत्र को आधुनिक-कला-निर्मित रूपों ने इतना प्रभावित किया है कि आधुनिक कला केवल कलाकार की व्यक्तिगत व अनूठी काल्पनिक सृष्टि नही रही है। आधुनिक कला अब एक ऐतिहासिक व समाज से स्वीकृत तथ्य बन चुकी है। सप्रति पाश्चात्य कलाकार समाजोन्मुख होकर आधुनिक कला में हुए आविष्कारों को प्रयुक्त कर सामाजिक वातावरण को कलात्मक व भावपूर्ण बनाने की दिशा में अग्रसर हो रहे है। अब वहाँ की समसामयिक कला 'उत्तर-आधुनिक कला' नाम से जानी जा रही है। दुर्भाग्य से भारत में अभी बहुसंख्य कलाकार अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरुक नही है व वे कला को केवल अर्थार्जन के साधन के रूप में अपनाते है, और यह स्थिति कला व समाज दोनो के लिये हानिकारक है। द्वितीय संस्करण में सम्मिलित नयी सामग्री पाश्चात्य कलाकारों में हो रहे विचार-परिवर्तन पर प्रकाश डालती है। वास्तव मे कला व जीवन तथा ललित-कला व दस्तकारी इनके बीच हमने जो अभेद्य दीवार खड़ी कर रखी है वही वर्तमान भारतीय कलाक्षेत्र के स्वाभाविक विकास मे बाधा डाल रही है। इस काल्पनिक व भ्रांतिपूर्ण दीवार के निर्माण के पीछे व्यावसायिक स्पर्धा व कलाकारो की ओछी प्रतिष्ठा के अतिरिक्त कोई कारण नही है। इस सम्बन्ध में डॉ. आनन्द के. कुमारस्वामी के विचार अविवाद्य व मननीय है। आशा है कि इस संस्करण में समसामयिक यानी उत्तर-आधुनिक कला पर लिखी गयी सामग्री कलाकारों व कलाप्रेमियों को कला के सामाजिक महत्त्व पर विचार करने को प्रेरित करेगी।

कला के सामाजिक महत्त्व को देखते हुए इस संस्करण में मेक्सिकन कला पर एक अध्याय लिखा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई उथल-पुथल के कारण पॅरिस की जगह न्यूयार्क विश्व का प्रमुख कलाकेन्द्र बन गया है व समसामयिक कला में अमेरिकी कला कला को काफी महत्त्व दिया जाता है। अतः अमेरिकी कला की पृष्ठभूमि से परिचित कराने के हेतु अमेरिकी कला पर भी एक नया अध्याय जोड़ दिया है। योरप की विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञों से समुचित परामर्श न होने के कारण एवं कलाकारो के मूल देश की सही जानकारी के अभाव से प्रथम संस्करण

में कुछ कलाकारों के नाम उनके मातृभाषीय उच्चारण के अनुसार नहीं लिखे गये थे उनको अब यथासम्भव ठीक किया है।

अब द्वितीय संस्करण की कुछ त्रुटियों के बारे में नम्र निवेदन है। दोषपूर्ण मुद्रण के कारण जो अशुद्धियाँ पुस्तक में रह गयी हैं उनमें से प्रमुख अशुद्धियों में सुधार के हेतु शुद्धिपत्र संलग्न किया है। प्रथम संस्करण के पश्चात् मैं उम्मीद कर रहा था कि द्वितीय संस्करण में कम से कम 50–60 विशेष प्रसिद्ध व उदाहरणात्मक चित्रों का संग्रह प्रकाशित किया जा सकेगा। किंतु अकादमी द्वारा आर्थिक असमर्थता व्यक्त की जाने से किताब के इस महत्त्वपूर्ण अंग से लिये कुछ नहीं किया जा सका। इसमें संदेह नहीं है कि चित्रों की प्रतिकृतियाँ देखे बिना कलांतर्गत तत्त्वों का ज्ञान या कलाकृति का महत्त्व मापन असम्भव है। अतः पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे सम्बन्धित चित्रों की प्रतिकृतियों को सामने रख के ही इस पुस्तक का अध्ययन करें जिससे विषयवस्तु को सरलता से समझा जा सके। उत्कृष्ट रूप में विदेशों में छपे हुए सस्ते चित्रसंग्रह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं जो इस अध्ययन में सहायक हो सकते हैं।

इस संस्करण में परिवर्धन व संशोधन में मेरे परम स्नेही उदयपुर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. ओमदत्त उपाध्याय ने जो बहुमूल्य सहायता की उसके लिये मैं उनका हार्दिक आभारी हूं। इसके अतिरिक्त मेरे जिन अन्य मित्रों ने उपयुक्त सुझाव दिये उनको भी मैं धन्यवाद देता हूं।

आशा है कि यह द्वितीय संस्करण कला के जिज्ञासुओं, कलाप्रेमियों व छात्रों को उपयुक्त सिद्ध होगा।

र. वि. साखलंकर

परम पूजनीय दिवंगत पिता की
पावन स्मृति में
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका एवं विषय-सूची

अध्याय	शीर्षक		पृष्ठ
	प्रस्तावना		6
1.	आधुनिक चित्रकला की पूर्वपीठिका		7–42
	नवशास्त्रीयतावाद	8	
	दावि॰	9	
	रोमांसवाद	10	
	जेरिको	11	
	देलाक्रा	13	
	अंग्र	16	
	गोया	18	
	एलग्रेको	22	
	यथार्थवाद व दोमीय	24	
	कुर्बे	28	
	बार्बिजां चित्रकार	32	
	रूसो तै मोदार	35	
	दोबिन्यी	35	
	मिले	36	
	कोरो	38	
2.	प्रभाववाद		43–86
	माने व प्रभाववाद	44	
	प्रभाववादियों का भ्रातृमंडल	53	
	प्रभाववाद के सिद्धान्त	57	
	मोने	62	
	पिसारो व सिसली	67	
	देगा	70	
	रेन्वार्	75	
	तुलुज लोत्रेक	79	
	विसलर, सिकर्ट	85	

लिबरमन, स्लेवोट, कोरिंट
प्रेन्डरगास्ट 85
3. नवप्रभाववाद 86
सोरा 87–93
सिन्याक 87
4. उत्तरप्रभाववादी चित्रकार 92
सेजान 94–128
वान गो 96
गोग्वें 105
5. प्रतीकवाद व नावि चित्रकार 116
रेदो 123–137
देनी 129
बोन्नार 131
वुइलार 133
6. फाववाद 136
मातिस 138–162
व्लामिक 146
देरें 150
द्यु फि 154
स्प्रोल 155
मार्क्वे, वान डोंजेन 157
7. घनवाद 162
ग्वां ग्री 163–183
लेजे 174
ब्राक 176
पिकासो 177
8. अभिव्यंजनावाद 182
होडलर 188–
मुंख 189
एन्सोर 190
मोडरसोन बकर 192
नोल्ड 200
रोल्फ्स 201
किर्शनर ब्र्यूके 203
हेकेल, श्मिट रोटलुफ, पेश्टाइन 203
म्युलर 205
ब्लो राइटेर 206
207

मार्क 209
माक 210
यालेन्स्की 211
क्ली 211
डेर स्टुर्म व कोकोश्का 217
कान्डिन्स्की 219
अभिव्यंजनावाद का उत्तरकाल 221
गोरस, दिक्स 222
बेकमन 222
होफर 224
बोहोस 224
श्लेमर 225
फैनिंगर 226
9. कुछ अप्रमुखवाद 227–245
भविष्यवाद 227
भँवरवाद 230
सेक्सिओं दोर 231
सुरीलवाद व देलोने 232
किरणवाद 234
सर्वोच्चवाद 235
विशुद्धवाद 237
रचनावाद 238
नवल चील वाद, डि स्टाइल 239
मोंद्रियाँ 239
आत्मतत्वीय चित्रण 241
शिरिको 244
मोरांदी 245
10. दादावाद व अतियथार्थवाद 246–263
पिकाबिया घुशा 247
अतियथार्थवाद 252
डाली 257
माक्स एर्न्स्ट 258
ताग्वी ईवे 259
मस्सो 260
मायरो 261
11. कुछ शापित चित्रकार 264–272
शागाल 265

मोदिल्यानी 266
सुटिन 268
पार्सें 270
उत्रियो 271
12. सहजसिद्ध चित्रकार 273–277
रुसो आंरी (दुनिय) 274
13. अमेरिकी कला 278–285
14. मेक्सिकन कला 286–290
15. वस्तुनिरपेक्ष कला 291–300
16. आधुनिक कला–1945 के पश्चात् 301–327
वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद 302
पोलार्क 303
हाफमन 304
डि कुनिंग, रोश्को, क्लाइन 305
टोबी, स्टिल 305
द्यूब्युफे 306
वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद 307
अनियन्त्रित कला 308
हार्टुंग 308
श्लाइडेर, सुलाज 308
इटालियन नवचित्रकार 309
स्पेन के नवचित्रकार 310
कोब्रा मंडल 311
प्रत्यक्ष कला, आल्बेर्स 312
माक्स बिल 313
मॅग्नेलि 313
संकलन 314
घटनाएं, वातावरण 315
पॉप कला 315
नवयथार्थवाद 318
नेत्रीय कला व वासारेली 320
रंगक्षेत्रीय चित्रण 321
कोठार-किनार-चित्रण 322
क्रमबद्ध चित्रण 323
आकारित पट 323
मनोवर्धक कला 324

	अक्षरवाद	324
	कॉम्प्युटर कला	325
17.	आधुनिक कला–1965 के पश्चात्	328–339
	स्थल-विशिष्ट-शिल्प	331
	वाह्य लेखाचित्र	332
	कला व यंत्र	333
	प्रत्ययवाद एक दर्शन	336
18.	भारत व आधुनिक कला	340–358
	पुनरुत्थान शैली	341
	अवनीद्रनाथ टैगोर	342
	रवीन्द्रनाथ टैगोर	244
	अमृता शेरगिल	346
	यामिनी राय	348
	उपसंहार	359–366
	चित्र संग्रह	
	टिप्पणियां,	1–13
	पारिभाषिक शब्दावली	14–23
	विशेष नामावली	24–52
	अभ्यसनीय ग्रन्थ	53–55



प्रस्तावना

आधुनिक कला का इतिहास मुख्य रूप से आधुनिक कलाकारों के कलासंबन्धी दृष्टिकोणों में हुए परिवर्तनों का इतिहास है। जीवन के दार्शनिक मूल्यों में परिवर्तन होते ही उसका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था व कलाक्षेत्र इसमें अपवाद नहीं हो सकता था। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से परम्परागत सामाजिक व धार्मिक निष्ठाएँ टूट रही थी, व आधुनिक दर्शन की स्वीकृतियों में मानव का स्वतन्त्र, स्वयंपूर्ण व बहुरङ्गी व्यक्तित्व, उसकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा एवं ऐंद्रिक अनुभूतियों के पीछे छिपे हुए रहस्य की खोज ये तत्व बाह्य उद्देश्यों के बन्धनों से मुक्त होकर कार्यान्वित हो रहे थे। जबतक आधुनिक सर्जनात्मक कलाकृति का दर्शक स्वयं को इन तत्वों के प्रति जागृत नहीं पायेगा तबतक वह उस कलाकृति का भावोत्कट रसग्रहण करने में सफल नहीं होगा।

कलाकार का व्यक्तित्व स्वतन्त्र होते ही सर्जनक्षेत्र में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति व विशुद्ध सौन्दर्य की खोज के बीच द्वंद्व शुरू हुआ; ऐसी द्वंद्वात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गयी व उसके विभिन्न पहलू रूपायित हुए।

आधुनिक कला के विरोधियों के साधारणतः दो वर्ग पाये जाते है, एक वर्ग आधुनिक कला को तांत्रिक व दुर्बोध समझ कर उसके बारे में विचार ही नहीं करता तो दूसरा वर्ग ऐसे दर्शकों का है जो उसको पाखंड या विकृतिजनित मान कर उसकी निन्दा करने को उद्यत होता है।

सामान्य दर्शक चित्रकला को वास्तव सृष्टि को प्रतिरूपायित करने का साधन-मात्र समझता है व जब वह इस दृष्टिकोण को लेकर आधुनिक कलाकृति का रसग्रहण करना चाहता है तब उसमें असफल होता है। सामान्य दर्शक के इस दृष्टिकोण को सुदृढ़ बनाने का कार्य मुख्य रूप से योरपीय पुनर्जागरण-काल से अपनाये गये वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने किया। जब पुनर्जागरणकाल से कलाकार ने वैज्ञानिक ढंग से अपनी अंकनपद्धतियों में संशोधन शुरू किया तब कला की धार्मिक अभिव्यक्ति कमजोर होकर उसको भौतिक रूप प्राप्त हुआ। भौतिक सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट दर्शक के लिए कलाकृति में वास्तव सृष्टि की सच्ची प्रतिकृति होना कलाकृति की श्रेष्ठता का मापदण्ड बन गया। आधुनिक कलाकृति के रसग्रहण के लिए यह अनिवार्य है कि दर्शक इस पूर्वग्रहदूषित दृष्टिकोण को त्यागें।

आधुनिक कला का अध्ययन करते समय 'आधुनिक' शब्द को केवल काल-निर्देशक मानना भ्रममूल होगा। वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य, आत्मिक अनुभूति, अतियथार्थ कल्पना आदि कलातर्गत सर्जनशील तत्वों का स्पष्ट व विशुद्ध रूप आधुनिक काल

की जिन कलाशैलियों में दृष्टिगोचर हो गया है उन सभी कलाशैलियों को आधुनिक कला मे सम्मिलित करते है, अर्थात् ये सभी तत्त्व सर्जनप्रवृत्ति के अविभाज्य अंग होने के कारण न्यून-अधिक मात्रा मे प्राचीन, मध्ययुगीन एव समकालीन सभी कलाशैलियों मे विद्यमान होते है।-20 से 30 सहस्र वर्ष पूर्व की वन्य मानव की कला मे ये तत्त्व इतने स्पष्ट रूप से प्रकट है कि देखने मे यह कला आधुनिक कला के काफी समरूप बन गयी है व इसी कारण प्रसिद्ध कलासमीक्षक हर्बर्ट रीड ने लिखा है कि "आधुनिक कला तीस सहस्र वर्ष प्राचीन है।"[1] लोककला एव बालचित्रकला में भी मूल सर्जनशील तत्त्वो का बहुत ही स्वाभाविक विकास होता है। आधुनिक कला का अध्ययन करते समय हम देखेंगे कि उपर्युक्त कलाओं से आधुनिक कलाकारो को अपरिमित प्रेरणा मिली है। वन्य मानव की कला, लोककला व बालचित्रकला से आधुनिक कला इस विचार से भिन्न है कि, आधुनिक कला रूपातर्गत तत्त्वो के शास्त्रीय अध्ययन का परिणाम है, या कलाकार की व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति है या उसमें कलाकार द्वारा की गयी आतरिक सत्य की खोज है; किन्तु इन कलाओ मे जो आधुनिक कला के समान गुण दृष्टिगोचर है वे पूर्णतया सर्जनक्रिया की स्वाभाविकता से सिद्ध हुए हैं। आधुनिक कला का बाह्य उद्देश्य नही होता जबकि ये कलाएँ बाह्य उद्देश्य से प्रेरित होती हैं।

समकालीन नैसर्गिकतावादी कला कालमान की दृष्टि से आधुनिक होते हुए भी उसको आधुनिक कला मे समाविष्ट नही किया जा सकता क्योकि वह बाह्य उद्देश्य से सीमित है। बिजाटाइन कला, अजन्ता की कला, राजपूत कला व जैन पुस्तकचित्रण कला आधुनिक चित्रकला के अन्तर्गत नही होते हुए भी उन प्राचीन धार्मिक कलाओ में कला के मूलाधार सर्जनतत्त्व इतनी प्रकृष्ट मात्रा में प्रकट हुए हैं कि दर्शक आश्चर्य करता है। ये कलाशैलियाँ आधुनिक कला के तत्त्वनिकषों के अनुसार उत्कृष्ट मानी जाती हैं यद्यपि उनकी निर्मिति के लिए प्राचीन कलाकारो ने किस प्रकार शास्त्रीय अध्ययन किया इसके कोई प्रमाण नही मिलते। किन्तु एक सत्य अवश्य चिंतनीय है कि जिन कलातत्त्वो व सर्जनात्मक सहज प्रवृत्तियों को प्राचीन कलाकारो ने साधन के रूप मे अपनाया वे आधुनिक कलाकार के साध्य बन गये है। किसी भी बाह्य ध्येय पर श्रद्धा न होने के कारण आतरिक व्यक्तित्व की स्वयंपूर्ण अनुभूति व जड सौन्दर्य के मृगजल की प्राप्ति के लिये अथक प्रयत्न आधुनिक कलाकार को कलानिर्मिति के कार्यकारण हो बैठे है। अनुभूति की अपरिपक्वता के कारण हो या काल-परिवर्तनजनित किसी कारण से हो, आधुनिक कलाकार के विचारों में इतनी आत्यंतिकता आ गयी है कि कलाकार का व्यक्तित्व व चिरन्तन तत्त्व—जिसमें शायद ही कोई आधुनिक कलाकार विश्वास करता होगा—का सम्बन्ध पूर्ण रूप से टूट गया है। इसके कारण है आत्मिक अनुभूति पर अश्रद्धा व उसके परिणामस्वरूप उस दिशा में प्रयत्नशीलता का अभाव। हो सकता है कि इसके लिये बदली हुई परिस्थिति मूलभूत कारण हो जिसमें आधुनिक भौतिक सुखसाधनो के

पीछे भागते हुए मानव को आत्मिक शांति के बारे में विचार तक करने को न समय है, न इच्छा, न उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने की सामर्थ्य। आधुनिक मानव का पुनश्च, धर्म व शाश्वत मूल्यों के प्रति श्रद्धायुक्त होना अशक्यप्राय है। मूलभूत प्रश्न यह है कि क्या आधुनिक कलाकार एव मानव, अपने भिन्न मार्ग से चाहे क्यो न हो, जीवन के अन्तिम सत्य का साक्षात्कार कर पायेगा ? क्योकि मानव कितना भी अधार्मिक हुआ हो उसकी जीवन के आंतरिक रहस्यो के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा किंचिदपि कम नही हुई है व जब तक वह पशु स्तर तक नही पहुँचता तब तक उसकी यह तड़प नष्ट नही हो सकती। विश्वास है कि सत्य का दर्शन उन्ही कलाकारो को हो सकता है जो कि स्वय दार्शनिक होकर अपनी आत्मिक अनुभूति द्वारा जीवन के छिपे हुए रहस्य की खोज में सर्जन-कार्य करते रहते है व जिनकी कला उपासना रूप होती है केवल व्यवसाय रूप नहीं।

कला मानवनिर्मित है, और मानव की निर्मिति को मानव के सम्पूर्ण जीवन से कैसे पृथक् किया जा सकता है। वृक्ष की जड, तना, शाखा, पत्ता, फूल या फल के जन्म, विकास व कार्य का वृक्ष की कल्पना के बिना पृथक् ज्ञान असम्भव है। मानव की कला, विज्ञान, व्यवहार व कृति को मानव के जीवन से ही अर्थ प्राप्त होता है। सभी एक विशाल पुरुष के अग है। अर्थात् आधुनिक कला के अध्ययन के लिये प्रथम यह समझ कर चलना आवश्यक है कि आधुनिक कला आधुनिक मानव की कला है। आधुनिक जीवन जितना जटिल है उतनी ही आधुनिक कला जटिल है। अतः उसमे भिन्न व परस्पर विरोधी प्रवाह होने के कारण उसकी सरल व निर्णायक परिभाषा करना असम्भव है। उसके अन्तर्गत सभी प्रवाह अन्तिम सत्य की ओर गतिमान है।

प्रारम्भ में ही आधुनिक कला की सारासार-चिकित्सा या तत्त्व-विवेक करने मे कोई फल प्राप्ति नही होगी, किन्तु उसकी प्रमुख विशेषताओं से यदि पूर्व-परिचय कराया जाय तो वह अध्ययन मे अवश्य सहायक होगा।

19वीं सदी के करीब धर्म, राजा एव धनिक वर्ग का आश्रय नष्ट होने से कलाकार बाह्य बधनो से अधिकाशतः मुक्त होकर स्वतन्त्र विचार से कलानिर्मिति करने लगा। 'कला के लिए कला'[2] उसका ध्येयवाक्य बन गया व अपनी कलाकृतियों मे सौन्दर्यात्मक गुणों का अधिक से अधिक विकास करने मे या कला को आत्मिक अभिव्यक्ति का साधन मात्र समझने मे वह सफलता मानने लगा। चित्रविषय का महत्त्व कम होता गया। कलाकार ने अनुभव किया कि कलातर्गत गुणो के विकास का या कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति का विषय के परिणामकारक चित्रण से समन्वय दुष्कर है; विषय का होना उसमे बाधा डालता है। धीरे-धीरे उसने विषय को कला से पूर्णतया हटा कर वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियो का निर्माण आरम्भ किया।

इस प्रकार दृष्टिकोण मे आमूल परिवर्तन होते ही अपने नये उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु कलाकारो ने सशोधन वृत्ति से कला की चिकित्सा शुरू की। कलाकार

के स्वतन्त्र विचारों एवं अनुभूतियों का दर्शन आधुनिक कला का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। कला के आंतरिक स्वरूप के सत्यान्वेषण में दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, पदार्थ-विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन अनिवार्य हो गया। धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा अन्य सीमित विचारों को गौण स्थान प्राप्त हुआ व कला में मूलगामी दृष्टिकोण अपनाने से भिन्न देशों के कलाकार एक-दूसरे के अधिक निकट आ गये। आधुनिक कला का इतिहास पढ़ते समय हम स्पष्ट रूप से देखेंगे कि आधुनिक कला को जापानी, चीनी, अफ्रीकी व भारतीय कलाओं से बहुत प्रेरणा मिली है। इसके विपरीत समकालीन एशियाई कलाकार योरपीय व अमरीकी आधुनिक कला के सिद्धान्तों व अनुसन्धानों का अध्ययन करके कलानिर्मिति करने में सफलता मानते हैं। यातायात के सुलभ व वेगवान साधनों ने इस आदान-प्रदान में अपूर्व योगदान किया है।

प्रकृति के विरोधाभास के तत्त्व को हम आधुनिक कला के संदर्भ में भी अनुभव करते हैं। कलासम्बन्धी सिद्धान्त व वैचारिक चर्चाएँ बढ़ने से कला को सरल व शास्त्रशुद्ध रूप प्राप्त होने के बजाय वह अत्यधिक दुर्बोध व गूढ़ बनती गयी व उसमें कल्पनातीत विविधता आ गयी। प्रत्येक आधुनिक कलाकार अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कलानिर्मिति करने लगा व कला में वैचित्र्य आ गया। बीसवीं सदी के मध्य तक कला को हस्ताक्षर का महत्त्व प्राप्त होकर कलाकृतियाँ व्यक्तित्व-निर्देशक बन गयी। धीरे-धीरे कला का प्रतीकात्मक महत्त्व नष्ट हो गया। इस सम्बन्ध में पिकासो का कथन "आजकल कोई कलाशैलियाँ नहीं है, केवल कलाकार ही कलाकार हैं" समकालीन कला पर प्रकाश डालता है। ऐसी परिस्थिति में आधुनिक कला की कोई परिभाषा असम्भव है। इससे तो उसकी अङ्गीकार-सूचक एवं निषेधात्मक विशेषताओं को ध्यान में रख कर उसके इतिहास का परिशीलन करना अधिक उपयुक्त है।

सुविधा के विचार से आधुनिक कला को तीन प्रमुख प्रवाहों में विभाजित किया जा सकता है। पहले कलाप्रवाह में कलाकृति के वस्तुनिरपेक्ष रूप का विचार प्रधान है, दूसरे में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है, और तीसरे में कलाकार के कल्पनाविलास को साकार किया जा सकता है। किन्तु इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रत्येक कलाकृति में ये कलाप्रवाह न्यूनाधिक मात्रा में, सम्मिश्रण अवस्था में कार्यान्वित रहते हैं व कलाकृति का वर्गीकरण करते समय केवल इस बात का विचार किया जाता है कि उसमें कौनसा प्रवाह अधिक बलवत्तर है।

आधुनिक कलाकारों की तीन प्रमुख विचारधाराएँ है। पहली विचारधारा के अनुसार कलाकार वस्तु के बाह्य रूप के सादृश्य से प्रतीकात्मक दर्शन को अधिक पसन्द करता है, दूसरी के अनुसार वह अपनी कलाकृति को सामाजिक महत्त्व की निर्मिति मानने के बजाय आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति मानता है, और तीसरी के

अनुसार वह कलाकृति का मूल्यांकन या रसग्रहण करते समय उसके सौन्दर्यात्मक गुणों का विचार करता है व उसको सदेशात्मक महत्त्व नहीं देता।

आधुनिक कला मे जड़वाद को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हो गया है। जडवादी दृष्टिकोण के कलाकार जड़ सौन्दर्य को ही सत्य की अनुभूति का मूलाधार मानते है, किन्तु इस अर्थ में निसर्ग के दृश्य सौन्दर्य का कलाकृति म प्रतिरूप दर्शन वे अपर्याप्त एव तुच्छ मानते है। इसके विपरीत कुछ आधुनिक कलाकार आतरिक या अतर्मन की अनुभूति को ही सत्य के साक्षात्कार का एकमेव साधन मानते है किन्तु ये कलाकार ईश्वर, धर्म, मानवता, राष्ट्र, नीति वगैरह मानवनिर्मित मूल्यो को काल्पनिक—अतः असत्य मानते है व उनके प्रति अश्रद्ध है। कलाकार की सभी बन्धनो से पूर्ण रूप से मुक्त वैयक्तिक अनुभूतिमात्र उनकी आत्मिक अभिव्यक्ति का साधन है। रग, रेखा, सतह आदि दृश्य कला के मूल तत्त्वो को तादात्म्यभाव से सचेत करके भावपूर्ण चित्रसृष्टि का निर्माण इन कलाकारो की साधना है।

आधुनिक कला की सभी विचारधाराओं के अन्तर्गत कलाकार का विशुद्धतावादी दृष्टिकोण प्रेरणाभूत है। कलाकार की आत्मिक अनुभूति के अतिरिक्त विशुद्धता का कोई मापदण्ड नही होने के कारण आधुनिक कला मे व्यक्तिवाद को आत्यतिक स्वरूप प्राप्त हो गया है, अर्थात् बहुरगी आधुनिक कला-सृष्टि मे 'यो यच्छ्रद्धः स एव स.' की उक्ति चरितार्थ हो रही है।

उपरिनिर्दिष्ट विशेषताओं को ध्यान मे रखकर यदि आधुनिक कला का अध्ययन किया जाये तो उसकी जटिलता कम होगी।

आधुनिक कला को किस कालखड से प्रारम्भ करना उचित है इस सम्बन्ध मे विद्वानो में मतभेद है व प्रत्येक इतिहासकार ने निजी धारणा के अनुसार प्रारम्भ किया है। इस सन्दर्भ मे एक महत्त्वपूर्ण विचार की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा। कला मे कोई आकस्मिक परिवर्तन नही होता। उसके लिये पोषक वातावरण का होना आवश्यक है, और जिसको हम क्रांतिकारी परिवर्तन समझते हैं उसका पूर्वगामी शैलियो से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अर्थात् किसी भी कलाशैली का समुचित अध्ययन उसके पूर्व की कलाशैली के इतिहास का तुलनात्मक विचार किये बिना नही हो सकता।

कला के इतिहास का अर्थ होता है कला के रूपो व अभिव्यक्ति की मूलभूत प्रेरणाओ मे हुए परिवर्तनो का इतिहास। इन परिवर्तनो मे प्रचलित कला एव नवीन विचार ये दोनो सघर्ष मे समान महत्त्व के पक्ष है। प्राचीन कलाशैलियों व विदेशी कलाओं का प्रभाव उसमें पर्याप्त सहायता करता है। कला का जन्म सौंदर्यानुभूति व भावनाओ मे होता है, अतः प्रगति की कल्पना कला के इतिहास को लागू नही की जा सकती। कलासमीक्षक एरिक न्यूटन के अनुसार कला वास्तव के नैसर्गिक दृश्य रूप व काल्पनिक प्रतीकात्मक रूप के बीच घड़ी के लगर के समान झूलती रहती है। योरपीय कला का इतिहास इस विधान की सत्यता का उद्बोधक

उदाहरण है। ग्रीक कला में ईसा के पूर्व की चौथी शताब्दी तक दृश्य रूप का पर्याप्त विकास हुआ। उसके पश्चात् छठी शताब्दी से बिजान्टाइन कला में काल्पनिक आकारों द्वारा चित्रण प्रारम्भ हुआ जो पुनर्जागरण काल तक अविरत चलता रहा। पुनर्जागरण काल में ज्योतो, राफेल, माईकेल एन्जेलो, लिग्रोनार्दो आदि कलाकारों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया व अपने बौद्धिक आविष्कारों से कला को नैसर्गिक दृश्य रूप प्रदान किया। 19वीं सदी तक उनके निर्दिष्ट मार्ग से कलाकारों ने निर्मिति की। 19वीं सदी के अन्त में सेजान, गोगँ व वान गो ने कलाकारों के वैज्ञानिक नैसर्गिकवादी दृष्टिकोण को धक्का पहुँचाया व आधुनिक कला में फिर से काल्पनिक आकारों व प्रतीकात्मक रंग-संगति पर बल देकर चित्रण शुरू हुआ। अतः प्राचीन धार्मिक कलाशैलियों में व आधुनिक कला में यदि घनिष्ठ समानताएँ प्रतीत होती है तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आधुनिक कलाकारों ने इन कलाशैलियों से काफी प्रेरणा पायी है।

आधुनिक कला के जन्मदाता सेजान की कला से स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित प्रभाववादी कला का गहरा अध्ययन करके, पूर्वगामी पुसें की शास्त्रशुद्ध कला से प्रेरणा लेकर अपनी आधुनिक शैली को जन्म दिया। कला के रूप में परिवर्तन होते रहना कला को सचेत व प्रभावी रखने के विचार से वाञ्छनीय है। कला के इतिहास में समान रूप-कल्पनाएँ पुनरुज्जीवित होती हैं व कार्यकाल समाप्त होते ही नष्ट भी हो जाती है। पुसें की कला राफेल से प्रभावित है तो आधुनिक कलाकार मोदिल्यानी की कलाशैली इटालियन कलाकार बोतिचेलि की कलाशैली से मिलती जुलती है। महान् कलाकारों में स्वतन्त्र प्रतिभा अवश्य होती है जो उनको बाह्य प्रभावों के ऊपर उठा कर स्वतन्त्र कलात्मक व्यक्तित्व प्रदान करती है। उसी के कारण उनका नाम कला के इतिहास में अमर होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे बाह्य प्रभावों के परे है।

उपरिनिर्दिष्ट कारणों का विचार करके इस पुस्तक में आधुनिक चित्रकला के इतिहास को प्रभाववाद व उसकी पृष्ठभूमि से प्रारम्भ किया गया है।

□□□

1.

आधुनिक चित्रकला की पूर्वपीठिका

आधुनिक चित्रकला के इतिहास को प्रभाववाद से आरम्भ करने का प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक चित्रकला की कुछ विशेषताएँ इतने स्पष्ट रूप से सर्व प्रथम प्रभाववाद में ही प्रतीत होती है। कला के क्षेत्र मे पुरातनविरोधी शक्तियो से प्रकट रूप से सामना करने का क्रातिकारी साहस प्रथम प्रभाववादी कलाकारो ने ही किया। प्रभाववाद के साथ कलाकारों की कला के प्रति धारणाओ मे स्पष्ट परिवर्तन हो गया व उन्होने स्वतन्त्र रूप से विचार करके निजी कला की दिशा को निर्धारित करने के कलाकार के अधिकार को प्रस्थापित किया। वे कला को केवल समाज-सेवा या अर्थार्जन का साधन मानने के बजाय आत्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम मानने लगे व उनके लिये वैयक्तिक अनुभूति कलाकृति के कलात्मक गुणो की श्रेष्ठता का निर्णय करने का मापदण्ड बन गयी। कला के सबन्ध मे कलाकारो मे आपसी वाद-विवाद होने लगे। समाजविमुख होकर कलाकारो ने अपनी निराली दुनियाँ बसायी जिसका 'कला के लिए कला' ध्येय बन गया।

प्रभाववाद के अध्ययन से पहले यदि हम उसके पूर्व की शताब्दी की कला का परिशीलन करेंगे तो प्रभाववाद का जन्म किस वातावरण में हुआ व उसके जन्म का श्रेय कहाँ तक उस परिस्थिति को है, इसका ज्ञान होगा। पूर्वगामी कलाओ के परिशीलन से अध्ययन के लिए आवश्यक तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनायेंगे जिससे प्रभाववादी कला मे कौन से नवीन, क्रातिकारी तत्व थे, यह समझना सरल होगा।

अट्ठारहवी शताब्दी के मध्य तक फ्रान्स मे किसी राष्ट्रीय महत्व की कला का निर्माण नही हुआ। ई० 1516 मे फ्रान्सिस प्रथम ने लिओनार्दो दा विंची नाम के एक विख्यात इटालियन कलाकार को अपने दरबार मे स्थान दिया। फ्रान्स में इटालियन, डच व फ्लेमिश चित्रो की बहुत माग थी। जार्ज द ला तुर, लोरें, पुसँ व लुई ल नें को छोड़ फ्रान्स मे कोई विश्वविख्यात चित्रकार नही हुए व इनमे से लोरें, व पुसँ ने इटली को अपना निवासस्थान बना लिया। जार्ज द ला तुर ने ईसा के जीवन की घटनाओ को, कृत्रिम छाया-प्रकाश का प्रभाव दिखाते हुए बड़ी कुशलता से चित्रित किया है जो मानवशरीरचित्रण एव नैसर्गिकतावादी चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरण है। ल नें भाइयो ने किसान के जीवन को परिणामकारक यथार्थवादी शैली मे चित्रित किया है। पुसँ की कला पर राफेल का स्पष्ट प्रभाव है। पुसँ को हम मौलिक प्रतिभा के कलाकार नहीं मान सकते, किंतु उन्होने पुनर्जागरण-कालीन

उनको नवशास्त्रीयतावाद के अनुयायी बनना पड़ा। राजनैतिक उथलपुथल के साथ दाविद् को पदभ्रष्ट भी होना पड़ा। 1804 में नेपोलियन के राजा बनते ही राजप्रमुख दाविद् चित्रकार नियुक्त किये गये। अब चित्रकला, वास्तुकला, अंत.सज्जा, पोशाक, प्रचलन आदि सभी कलाओं मे दाविद् के विचारानुसार परिवर्तन हुए। नवीन वातावरण पर प्राचीन रोमन कल्पनाओं की छाप स्पष्टतया दिखाई देने लगी। 'मादाम रेकामिय'[4] जैसे व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि से इस बात का प्रमाण मिलता है। नेपोलियन की अंतिम पराजय होते ही दाविद् फ्रान्स को छोड़ बेल्जियम गये जहा उनकी 1825 मे ब्रुसेल्स मे मृत्यु हुई। विषय के अनुसार दाविद् के चित्रो को दो वर्गों मे बांटा जा सकता है। पहले वर्ग मे उनके 'साक्रेटिस की मृत्यु',[5] 'सेबाइन्स पर बलात्कार',[6] 'ब्रूटस के पुत्रो के शवो का दहन' जैसे प्रसिद्ध चित्र आते है, जिनके विषय रोमन व ग्रीक है, ये चित्र निश्चित ही कुशलतापूर्ण है किन्तु विषय-चयन के कारण कुछ अनोखे बन गये है। दूसरे वर्ग में 'मारा की मृत्यु,' 'गॅत की महिलाएँ'[7] आदि चित्र आते है जिनके विषय समकालीन है व जो दर्शन मे अधिक वास्तविक बन गये हैं।

दाविद् के पश्चात् चित्रकार ग्वेर ने दाविद् का अंधानुकरण करके नवशास्त्रीयतावाद को जीवित रखा। आन्त्वान ग्रो (1771–1835) दाविद् के शिष्य थे। उनके प्रारम्भ के चित्रो मे दाविद् का अनुकरण है किंतु कुछ समय तक उन्होने रुबेन्स के प्रभाव मे आकर ऐसे चित्र बनाये जो नवशास्त्रीयतावाद के अन्तर्गत नही आते। ग्रो ने अपनी आयु के अन्तिम 15 वर्ष तक दाविद् के सिद्धान्तो का कट्टरता से पालन किया व वे अपने शिष्यो को भी उसी तरह चित्रण करने का उपदेश करते थे। वे कहा करते "यह मेरा कहना नही है बल्कि दाविद् का आदेश है"। नवशास्त्रीयतावादी चित्रकारो मे रेग्नो, जेरार, प्रूदा व अँग्र प्रमुख थे जिन मे से अँग्र सब से विख्यात हुए। इन चित्रकारो की भी नवशास्त्रीयतावाद पर वह विशुद्ध निष्ठा नही थी जो दाविद् चाहते थे। वैसे 1808 से ही दाविद् कहने लगे थे "मैंने चित्रकारों के लिये जो मार्ग निश्चित किया है वह बड़ा कष्टप्रद है व फ्रेंच चित्रकार उस दिशा में अधिक समय तक मार्गक्रमण नही कर पायेंगे।

रोमांसवाद

नवशास्त्रीयतावाद का प्रमुख दोष था तर्ककठोरता; उसमें मानवता व समाज के यथार्थ रूप को कोई स्थान नही था। समाज में वैचारिक जागृति बढ़ती जा रही थी व कलाकारो के लिये आवश्यक था कि वह बदलते हुए सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण के अनुकूल दृष्टिकोण अपनाए। दाविद् कहते थे "कला का आधार तर्क होना चाहिये" किंतु शायद वे इस फ्रेंच कहावत को भूल गये थे कि 'दिल के भी कुछ अपने तर्क होते है जिनका तर्कशास्त्र द्वारा ज्ञान नही हो सकता'। इसमे कोई संदेह नहीं है कि कलाकृति को सामर्थ्यवान् रूप व अभिव्यक्ति प्रदान करने का एक साधन तर्क है किंतु कलाकृति का जन्म भावना मे होता है व भावनाओं

से ही कलाकृति मे चैतन्य आता है। महान् कलाकृति के सर्जन में भावना व बुद्धि दोनों का सहयोग आवश्यक है। अतः दाविद् के शिष्यों की नवशास्त्रीयतावाद पर विशेष निष्ठा नही रही, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। 18वी सदी के फ्रेंच समाज में नव-शास्त्रीयतावाद लोकप्रिय होने का मुख्य कारण था समकालीन फ्रेंच समाज का सामाजिक, राजनैतिक एव वैयक्तिक जीवन के प्रति परंपरागत तार्किक दृष्टि-कोण। किन्तु 18वी सदी के मध्य मे एक महान् दार्शनिक ने फ्रान्स में अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार आरभ किया जिससे परपरागत दृष्टिकोण को धक्का पहुँचा। ये दार्शनिक थे ज्या जाक रूसो (1712–1778)। इनके विचार से मानव में जन्मतः कोई बुराइयाँ नही होती व संसार मे सुख व शाति की प्रस्थापना के लिए आवश्यक है कि मानव-जीवन का विकास स्वाभाविकता से हो—परंपरागत विचारो व आदर्शों को सामने रखने से नैसर्गिक प्रवृत्तियो पर दबाव आकर मानव के सर्जन-शील व्यक्तित्व का विकास नही होता, परंपरागत विचारों पर अंधश्रद्धा होने से संघर्ष बढ़ता है व अशाति का वातावरण फैलता है।

कलाक्षेत्र में परंपरागत आदर्शों को ठुकरा कर नैसर्गिक भावनाओं द्वारा कलानिर्मिति करने का कार्य रोमासवादी कलाकारों ने शुरू किया जो रूसो के उपर्युक्त सिद्धांतो के अनुरूप था।

कला के इतिहास के अध्ययन से हम एक कलासंबंधी सत्य से परिचित होते हैं कि कला की कभी पूर्णत्व की अवस्था होती ही नही। पूर्णत्व के लिये प्रयत्नशील रहने की मानवप्रवृत्ति के अनुसार कलाकार किसी काल में शास्त्रीय नियमों का कठोर पालन करके कलानिर्माण करता है तो उस काल के पश्चात् वह नियमों को तोड़ कर स्वतंत्र बुद्धि से कलानिर्मिति करता है। फ्रेंच कला में नवशास्त्रीयतावाद के स्थान पर रोमासवाद का सपन्न होना इस सत्य का परिचायक है। रोमासवादियों का विचार था कि केवल बुद्धिनिष्ठ व नियमबद्ध होने से कला की चेतना नष्ट हो जाती है व उसका विकास नही हो पाता। अतः उन्होने निर्भीक होकर स्वतंत्र विचार से कलानिर्माण करने का निश्चय किया। उनका विश्वास था कि अपने उद्दिष्ट की प्राप्ति भावनाओं पर निर्भर रह कर चित्रण करने से ही हो सकती है। भावनाओं को जागृत करने के उद्देश्य से उन्होने कल्पित कथाओं, साहसिक घटनाओं व परिकथाओं को चित्रित करना सयुक्तिक माना। दाविद् के अनुयायी जिरोदे व ग्रो के चित्रो में रोमांसवाद के कुछ तत्त्वों को अशतः जरूर देखते है किंतु रोमासवाद को स्पष्ट रूप देने का श्रेय जेरिको को ही है।

तेओदोर जेरिको (1791–1824)

1819 में जेरिको ने अपना चित्र 'मेदुसा का बेड़ा'[8] फ्रेंच राष्ट्रीय कला भवन में प्रदर्शित किया। नवशास्त्रीयतावाद के लिए दाविद् के चित्र 'होरेशिग्रा का प्रण' का जो महत्त्व था वही महत्त्व रोमासवाद के लिये 'मेदुसा का बेड़ा' का था। इस चित्र के जरिये जेरिको ने मेदुसा जहाज के अधिकारियो को दोषी ठहरा कर

उनकी भर्त्सना की है। यह जहाज 1818 मे अफ्रीका के किनारे से कुछ दूर समुद्र मे दुर्घटनाग्रस्त हुआ था जब उसके अधिकारियो ने जहाज के सौ से अधिक यात्रियो को छोटे से बेडे पर उतार कर उन्हे अपने भाग्य के हवाले छोड दिया। उनमे से केवल 15 आदमी जीवित रहे व बाकी सब या तो भूख से या पागल होकर मर गये। बचे हुए आदमियो को एक अन्य जहाज ने देखा और वह उनको किनारे पर ले आया। इस प्रत्यक्ष घटना का चित्रण करने के हेतु जेरिको ने दुर्घटना से बचे हुए व्यक्तियो को प्रत्यक्ष देख कर चित्रित किया, जहाज के खाती से बेडे का नमूना बनवाया व रुग्णालयो म जाकर मृत्युशय्या पर आसीन आदमियो के व लाशो के चित्र खीचे। उसी उद्देश्य से उन्होने पागलखाने में जाकर वहा के पागल निवासियो के कई रेखाचित्र खीचे। कहा जाता है कि जेरिको ने अध्ययन के हेतु घर मे भी लाशें रखी थी जिसपर पड़ोसियो ने उनके खिलाफ शिकायतें की। 'मेदुसा का बेडा' मे कुछ ऐसी विशेषताए है जिनसे वह नवशास्त्रीयतावादी चित्र से बिलकुल भिन्न प्रतीत होता है। रोमासवाद का यह सर्वप्रथम चित्र माना गया है। इस चित्र में जेरिको ने मानव-शरीरो को ग्रीक आदर्श के अनुसार बनाने के बजाय रुबेन्स की भांति गतिपूर्ण रेखाओ से अ कित किया है, रगो का प्रयोग परम्परागत सिद्धातो का पालन करके करने के बजाय घटना के कारुण्यपूर्ण भावप्रदर्शन का लक्ष्य सामने रखकर किया है व इस विचार से रगयोजना पर इटालियन चित्रकार कारावाद्ज्यो का अनुसरण किया है। बेडे के व्यक्तियो के चेहरो के भाव एव सम्पूर्ण अवस्था अत्यन्त दयनीय दिखाई है। चित्रसयोजन मे तिरछी रेखाओ का अनोखा प्रयोग करके मानवाकृतियो को सचेत बनाया है व नव शास्त्रीयतावाद के सम्मितियुक्त चित्रसयोजन के नियमो को समाप्त कर दिया है। मानवशरीरो को ऊबड़खाबड चित्रित करके उनकी करुण अवस्था का परिणामकारक दर्शन कराया है जो विचार नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार के मन में कभी नही आ सकता था। तूलिकासचालन व अकन पद्धति में अनोखा जोश है जिसका नवशास्त्रीयतावाद मे अभाव था। जेरिको के इस चित्र को प्रतिष्ठित कलाकारों व कला समीक्षको ने कटु आलोचना की, किंतु उस करुणाजनक सत्य घटना का प्रत्यक्ष चित्रण देखने के लिये दर्शको ने भीड़ की। निराश होकर जेरिको इंग्लैंड चले गये जहां उनको इस चित्र की प्रदर्शनी से काफी आमदनी हुई। इस प्रकार रोमासवादी कला का आरम्भिक प्रचार उसके कलात्मक गुणो के आकर्षण से होने के बजाय चित्रित की गयी घटना के प्रासगिक महत्व की वजह से हुआ।

रोमासवाद 'रोमांटिसिज्म' शब्द का अनुवाद है जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'रोमा' से हुई है (रोमा = कथा)। रोमासवादी चित्रकारो ने विषय के रूप में साहसिक कथाओं व रोमाचकारी घटनाओं को चुना। चित्र को भावस्पर्शी बनाने के उद्देश्य से वे चमकीले रंगो का प्रयोग करते, लयपूर्ण रेखाकन करते व सयोजन, दूरदृश्य लघुता, सतुलन, अकनपद्धति वगैरह कला के अ गो का अतिरजित प्रयोग करते। एक तरह से रोमासवाद यथार्थवाद का कल्पना की सहायता से किया गया

प्रतिशयात्मक रूप था। अतः रोमांसवाद के पश्चात् यथार्थवाद का आगमन कोई दूर नही था।

इंग्लैंड जाने से पहले जेरिको ने निश्चय किया था कि वे पुन तूलिका को हाथ में नही उठायेंगे किन्तु उनको जीवन में कला से अधिक प्रिय कुछ भी नही था व उसके बिना वे जीवित नही रह सकते थे। इंग्लैंड के तीन साल के निवास मे उन्होने घोड़ो व जानवरो के कई चित्र बनाये। इंग्लैंड मे उनको ख्यातनाम प्रकृति-चित्रकार जॉन कान्स्टबल के चित्र देखने का अवसर प्राप्त हुआ। विशुद्ध व चमकीले रगो के प्रयोगो द्वारा कॉन्स्टेबल परम्परागत भूरे रंगो से प्रचुर व निस्तेज रंगाकन पद्धति मे परिवर्तन लाना चाहते थे जिसका इंग्लैंड मे चित्रकारो व कलासमीक्षकों ने कड़ा विरोध किया। कॉन्स्टेबल की रंगाकन पद्धति से जेरिको बहुत प्रभावित हुए तथा प्राकृतिक स्थानो पर जाकर भिन्न वातावरण व प्रकाश से परिवेष्टित प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं का निरीक्षण करके प्रत्यक्ष चित्रण करने की कॉन्स्टेबल की पद्धति उनको बहुत पसद आयी। फ्रान्स लौटने पर जेरिको ने कान्स्टेबल के चित्रो की प्रशंसा की व 1824 की फ्रेंच राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे कॉन्स्टेबल के तीन चित्र प्रदर्शित हुए। फ्रान्स में जेरिको ने पागलखाने के निवासियो के कुछ व्यक्तिचित्र बनाये जिनमे से 'पागल हत्यारा'[9] बहुत प्रभावपूर्ण व प्रसिद्ध चित्र है। घोडे पर से गिरने से जेरिको की 33वें साल मे मृत्यु हुई।

आोजेन देलाक्रा (1799–1863)

जेरिको ने रोमांसवाद को प्रारम्भ किया परन्तु उसमे चेतना डाल कर सामर्थ्यशाली बनाने का श्रेय आोजेन देलाक्रा को है। अतः रोमांसवादी चित्रकारो मे देलाक्रा को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। विद्यार्थी अवस्था मे देलाक्रा जेरिको को अपना प्रेरणास्थान मानते थे यद्यपि जेरिको उनसे केवल आठ साल बडे थे। देलाक्रा प्रयोगशील स्वभाव के थे व निष्कर्षों द्वारा सैद्धांतिक खोज मे मग्न रहते थे। उन्होने अपने कलासम्बन्धी निष्कर्षों को पुस्तकरूप मे प्रकाशित किया जिसका भावी—विशेषतया प्रभाववादी—चित्रकारो को अत्यन्त लाभ हुआ। उनकी कला मे भावना-विलास के अतिरिक्त बौद्धिक सामर्थ्य भी है। देलाक्रा की कला मे वह उन्मुक्तता नहीं है जो रोमांसवाद मे अपेक्षित है। देलाक्रा स्वयं को शास्त्रशुद्ध कला का सच्चा अनुयायी मानते थे किंतु वे उन चित्रकारो से घृणा करते थे जो उनकी दृष्टि से पुरानी कला का अंधानुकरण करते थे। शास्त्रनिष्ठ चित्रकार होते हुए उनकी कला-कृतियो में ऐसा अनोखा जोश है कि उनको रोमांसवादी कला मे समाविष्ट किया गया है व कला के इतिहास मे देलाक्रा को रोमांसवाद के प्रणेता का स्थान दिया गया है। देलाक्रा की कला अन्य रोमांसवादी चित्रकारों को आदर्शवत् थी। देलाक्रा की कला से यही सिद्ध होता है कि सच्चे कलाकार की कला वर्गीकरण के परे होती है। रोमांसवादी कला के प्रणेता माने गये देलाक्रा के चित्रो मे शेरो, घोड़ो, अरबो आदि विषयो का केवल भावपूर्ण सर्जन ही नही है बल्कि उनमे साहसी मानवो के जीवन

का गहरा निरीक्षण एवं कला के मूल तत्वों की खोज भी है। नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार दाविद् की कला के समान देलाक्रा की कला गहरे अध्ययन का परिपाक है, केवल उन्मुक्त अंकन नहीं। उनके इधर-उधर अव्यवस्थित ढंग से लगाये गये रंगों में व तूलिका संचालन में सहेतुकता है, विरोधयुक्त चमकीली रंगसंगति के पीछे पूर्व-नियोजन है। देलाक्रा की कला में प्रतीत यह विरोधाभास कला के इतिहास में प्रत्येक महान् कलाकार की कला में अनुभव किया जाता है। अतः कला का वर्गीकरण केवल अध्ययन को सरल बनाने के उद्देश्य से किया जाना चाहिये; इसके अतिरिक्त उसका न कोई महत्व है न कोई सत्यार्थ। कला का सर्जन इतना जटिल है कि विश्लेषण से उसको ज्ञान-सुलभ बनाना असंभव है, उसका साक्षात्कार प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा ही हो सकता है।

देलाक्रा को प्रारम्भिक यश उनके चित्र 'यमलोक में दाँते व वर्जिल'[10] से मिला जब उनकी आयु पच्चीस साल की थी। जेरिको की भांति देलाक्रा प्रारम्भ में रुबेन्स व माइकेल एंजेलो से प्रभावित थे जिसका प्रमाण उनके उपर्युक्त चित्र में मिलता है। यह चित्र 1822 की फ्रेंच राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखा गया। देलाक्रा के गुरु गेरें को यह चित्र बिल्कुल पसन्द नहीं था और उन्होंने देलाक्रा को यह चित्र प्रदर्शित न करने की सलाह दी थी। परन्तु उस साल की राष्ट्रीय प्रदर्शनी की कार्यकारिणी के एक सदस्य ग्रो उस चित्र से इतने मोहित हुए कि उन्होंने कहा "रुबेन्स ने फिर जन्म लिया है", और चित्र को अपने खर्च से मढ़वाया, क्योंकि देलाक्रा के पास मढ़वाने के लिये पैसा नहीं था। इस चित्र की दर्शकों व आलोचकों ने निंदा की परन्तु फ्रेंच सरकार ने उसको खरीदा। इस घटना के पीछे जरूर कोई रहस्य था। माना जाता है कि देलाक्रा फ्रान्स के विदेशमंत्री तालेरां की अनैतिक सम्बन्ध से पैदा हुई सन्तान थे व इसी कारण उनको प्रोत्साहित करने के हेतु उनका चित्र खरीदा गया। तालेरां ने इस बात को चतुराई से छिपाये रखा और गुप्त रूप में वे देलाक्रा को सरकारी सहायता दिलाते रहे। विरोध के बावजूद देलाक्रा के चित्र राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में स्वीकृत होते गये, फ्रेंच सरकार उनको खरीदती रही व उनको सरकारी भवनों में भित्तिचित्र बनाने का कार्य मिलता रहा। दो साल बाद देलाक्रा ने अपना विख्यात चित्र 'शिओ में मानव-संहार'[11] राष्ट्रीय प्रदर्शनी में रखा। इस चित्र की पहले से भी अधिक निंदा हुई। चित्रकार ग्रो—जो देलाक्रा के चित्र 'यमलोक में दाँते व वर्जिल' से बहुत प्रभावित हुए थे—को भी यह चित्र बिल्कुल पसंद नहीं आया व उन्होंने चित्र का नामकरण किया 'चित्रकला का संहार'[12]। सर्वसाधारण दर्शकों व आलोचकों ने इस चित्र की इस वजह से निंदा की थी कि चित्र के विषय को समकालीन इतिहास से चुना था जबकि प्रचलित विचारधारा के अनुसार कला का विषय पौराणिक या आदर्शवादी ही हो सकता था। ग्रो व अन्य आलोचकों के विरोध का कारण भिन्न था; उनके विचारों के अनुसार उस चित्र में देलाक्रा के किये गये रंगों का प्रयोग नियमहीन एवं रंगांकन-पद्धति बेढंगी थी। वास्तव में इस

चित्र को प्रदर्शनी में रखने के लिये भेजते समय देलाक्रा ने उसको अपनी अभ्यस्त पद्धति से ही बनाया था किन्तु बीच में उन्होने प्रदर्शनी के लिये आये हुए इंग्लिश चित्रकार कॉन्स्टेबल के चित्र 'चारे की गाड़ी'[13] को देखा व उससे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने चित्र 'शिग्रो में मानवसंहार' के रगांकन में प्रदर्शनी के उद्‌घाटन से पहले परिवर्तन किया, जो वे प्रदर्शनी के नियमानुसार कर सकते थे। कॉन्स्टेबल ने अपने चित्र मे भिन्न रगो को मिश्रित करके लगाने के बजाय उनका पृथक् अंकन किया था जबकि प्रचलित पद्धति के अनुसार भिन्न रगो के क्षेत्रो को मुलायम कूची से एक दूसरे मे क्रमशः मिश्रित किया जाता था। देलाक्रा ने देखा कि कॉन्स्टेबल के अपनाये हुए ढग से रंगो की स्वाभाविक चमक की रक्षा होती है एवं चित्रकार के तूलिका-सचालन की विशेषता को देख कर दर्शक उसके कलात्मक व्यक्तित्व से परिचित हो जाता है। विषय के चित्रण के साथ कलाकृति मे कलाकार के व्यक्तित्व का दर्शन भी होना आवश्यक है; मुक्त अंकन पद्धति द्वारा किये गये कलाकार के व्यक्तित्व के दर्शन से दर्शक को सृजन का आनद भी कुछ सीमा तक प्राप्त हो सकता है। देलाक्रा मानते थे कि कलाकृति चित्रकार की अनुभूति व दर्शक की अनुभूति के बीच की कडी होनी चाहिये। कॉन्स्टेबल से प्रेरणा पाकर देलाक्रा ने रगों के क्षेत्र में प्रयोग आरम्भ किये व उस दिशा मे वे आजीवन कार्य करते रहे जिसमे आधुनिक कला को बहुत लाभ हुआ। दाविद् ने रगांकन पद्धति पर जो बधन लगाये थे उनमें देलाक्रा ने चित्रकारो को मुक्त किया व साथ मे अपने नये विचार प्रदान किये। दाविद् की निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार प्रथम वस्तु के आकार को मूर्ति के समान स्पष्ट रेखांकित किया जाता था व उसके पश्चात् उस पर एक सा—जैसे छायाचित्र को रगते समय किया जाता है—चिकना रंग फैलाया जाता था; प्रत्येक वस्तु का रग वस्तु की बाह्य रेखा के अदर ही अदर ठीक लगाया जाता था। इसके विपरीत देलाक्रा के रगांकन मे स्फोटकता थी; वस्तु के निजी रग के साथ अन्य रगो को समाविष्ट करके उसमें चमक डाली जाती थी; वस्तु के छाया वाले हिस्सो मे हरा, जामुनी, नीला आदि रग चमकते व बाह्य रेखा के बाहर फैले हुए रंगों से वस्तु अधिक प्रकाशमान दिखायी देती। देलाक्रा ने आधुनिक चित्रकारों के सम्मुख इस महत्त्वपूर्ण विचार को स्पष्ट किया कि चित्रकला की आत्मा रग है, अतः रगो के गुणधर्मों का सही व पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके रगांकन द्वारा ही वस्तु को ठोस रूप प्रदान किया जाना चाहिये; रंगीन चित्र रंगो से साकार होता है बाह्य रेखा से नहीं। बाद में प्रभाववादी चित्रकारों ने बाह्यरेखा को चित्रकला से हटा दिया। सेजान ने जो कहा था—"मेरे लिये आकार व रंग अभिन्न है"[14] उसका प्राथमिक रूप देलाक्रा के इन रगों सम्बन्धी विचारों में प्रतीत होता है। आधुनिक चित्रकला मे विशुद्ध रगों एवं विशुद्ध स्वाभाविक रंगांकन द्वारा जो प्रयोग हुए उनका उद्‌गम देलाक्रा की कला से हुआ। देलाक्रा की कला की एक और विशेषता थी उसके पौर्वात्य विषय जिसका दूसरे रोमांसवादी चित्रकारों ने अनुसरण किया। पौर्वात्य विषय एव कला के प्रति आधुनिक कलाकारो की अभिरुचि

देलाक्रा की कला से बढ़ती गयी। देलाक्रा बाह्य रेखा पर बल देकर आकार को स्पष्ट या आदर्श रूप देने के विरोधी थे। पौर्वात्य विषय का उनका चित्र 'सारडानापालुस की मृत्यु'[15] विशेष प्रसिद्ध है। यह चित्र उन्होंने 1827 में प्रथम बार चित्रित किया किंतु उससे वे सतुष्ट नहीं थे व सत्रह साल बाद उन्होंने उसको फिर से छोटे आकार में बनाया। दोनों चित्रों के बीच के काल में देलाक्रा ने अपने चित्रकला संबंधी सिद्धान्तों को विकसित करके सुनिश्चित रूप दिया। देलाक्रा के सामने वही समस्या थी जो हरेक प्रतिभावान कलाकार के सामने होती है : भावनाओं को सुदृढ़ व सामर्थ्यवान बनाकर साकार करना, यानि उच्छृंखल भावना व स्थिर आकार का सुयोग्य समन्वय। अत : वे जिस प्रकार नियमों का कठोर पालन करके चित्रण करने की निंदा करते थे उसी प्रकार वे केवल भावनोद्रेक के साथ बेढंगा सर्जन करने के भी विरोधी थे। वे कहते "चित्रांकन गतिपूर्ण व उत्स्फूर्त होना चाहिये जिससे भावनाओं से चित्र सचेत हो जाये किंतु उसके पीछे जब तक निश्चित दृष्टिकोण व अभ्यास की सामर्थ्य नहीं है तब तक उनका प्रभावी व स्थायी रूप असम्भव है"। अपने रंग संबंधी सिद्धांतों के विकास के लिये उन्होंने रंगबिरंगे व कल्पनारम्य पौर्वात्य वातावरण को उपयुक्त माना। अपने विचारों को उन्होंने 'मोरोक्को के वार्तापत्र'[16] शीर्षक से ग्रंथबद्ध किया। इस ग्रंथ में बीच-बीच में रेखाओं व जलरंगों में बनाये गये अभ्यासचित्र हैं। रोमांसवादी चित्रकारों में देलारोश, देकां व रेन्यो ने भी काफी ख्याति प्राप्त की, किंतु उनमें विशेष प्रतिभा नहीं थी।

अँग्र (1780–1867)

जिस समय देलाक्रा के नेतृत्व में रोमांसवाद का सामर्थ्य बढ़ता जा रहा था, उस समय वृद्ध दोमिनिक अँग्र को छोड़ नवशास्त्रीयतावादी चित्रकारों में कोई विशेष ख्यातिप्राप्त चित्रकार नहीं रहा। अँग्र उम्र के सत्रहवें साल में पैरिस आये। वे दाविद् के प्रिय शिष्य थे और विद्यार्थीदशा में उन्होंने कई पुरस्कार प्राप्त किये। तीन साल के भीतर ही दाविद् व अँग्र में वैचारिक संघर्ष शुरू हुआ और अँग्र को दाविद् की अवकृपा का सामना करना पड़ा। 1801 में उन्हें रोम पुरस्कार[17] विजेता घोषित किया गया किन्तु फ्रेंच सरकार की आर्थिक स्थिति असंतोषजनक होने के कारण उनको और पांच साल तक रोम नहीं भेजा गया। अँग्र कोई क्रांतिकारी विचारों के चित्रकार नहीं थे। दाविद् के समान वे भी चित्रण में रेखाबद्ध स्पष्ट आकारों को प्रमुख स्थान देते और रंगों को गौण मानते। किन्तु दाविद् ग्रीक मूर्तिकला में प्राप्त गणितीय अनुपातशुद्ध आदर्शों का तत्परता से पालन करते जबकि अँग्र मानवों व वस्तुओं के नैसर्गिक आकारों को सुन्दर व आदर्श रूप देकर चित्रित करते। दृष्टिकोणों में यह मूलगामी अन्तर होने से दाविद् की आकृतियों में श्रेष्ठत्व है तो अँग्र की आकृतियों में है मानवीय सौन्दर्य।

अँग्र एक श्रेष्ठ रेखाचित्रकार थे और कला के इतिहास में उनकी तुलना के रेखाचित्रकार इनेगिने ही हुए। चित्र बनाने से पहले अँग्र सैंकड़ों अभ्यासचित्र

रेखांकित करते। पेन्सिल द्वारा बनाये हुए उनके रेखाचित्र निरीक्षण, अभ्यास, कौशल व उत्कृष्ट शैली के उदाहरण हैं। व्यक्तिचित्र बनाने से पहले भी अँग्र उस व्यक्ति का पेन्सिल से छायाप्रकाश व बारीकियों को दिखाते हुए पूर्ण रेखाचित्र बनाते। उन्होंने यथार्थ व्यक्तिचित्रण को विशेष महत्त्व नहीं दिया किन्तु व्यक्तिचित्र बनाने के लिये जब वे यथार्थवादी पद्धति को अपनाते तब उनकी बराबरी कोई भी यथार्थवादी चित्रकार नहीं कर सकता था।

1806 से 1820 तक अँग्र रोम में रहे जहाँ उन्हें रोम पुरस्कार देकर विशेष अध्ययन के लिये भेजा गया था। वहाँ उन पर राफेल का बहुत प्रभाव पड़ा। 1820 से 1824 तक वे फ्लोरेन्स में रहे। 1825 में दाविद् की मृत्यु होने पर अँग्र फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था[18] के प्रमुख कलाकार बने और उन्होंने अपने विचारों को फ्रेंच कलाक्षेत्र में कानून की तरह लागू किया। उस समय किसी भी कलाकार को जब तक फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था से मान्यता प्राप्त नहीं होती तब तक प्रसिद्धि या पैसा एक असंभव बात थी। कलाकार अपनी कलाकृतियों के विक्रय की बात भी नहीं सोच सकता जब तक उसकी कृतियाँ राष्ट्रीय कला संस्था की वार्षिक प्रदर्शनी में स्वीकृत नहीं होतीं। इस प्रकार संस्था के पुराने उच्चपदस्थ कलाकारों के हाथों में ऐसी सामर्थ्य थी, जिससे वे नवविचारों के कलाकारों को आगे नहीं बढ़ने देते। अँग्र के विचारों के अनुसार फ्रेंच कलाशिक्षासंस्थाओं[19] में रेखांकन पर बल दिया जाने लगा व विद्यार्थियों को रंगांकन आरम्भ करने से पहले, सालों तक केवल रेखांकन करना पड़ता। अँग्र के सिद्धांत 'रेखांकन चित्रकला का एकमेव आधार है' के देलाक्रा कट्टर विरोधी थे। किन्तु फ्रेंच कला के इतिहास में देलाक्रा एक अपवादमात्र कलाकार थे जो फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था के विरोध के बावजूद ख्याति व धन प्राप्त कर सके और इसके पीछे क्या रहस्यपूर्ण कारण थे यह हम पहले ही देख चुके हैं।

स्त्री के नैसर्गिक सौन्दर्य को आदर्श रूप देकर बनाये गये अँग्र के चित्रों में 'उद्गम' व 'तुर्की हमामखाना'[20] प्रसिद्ध है। अँग्र एक उत्कृष्ट व्यक्ति चित्रकार भी थे व उनके 'मादाम रिविए' 'फ्रान्स्वा आने[21] आदि व्यक्तिचित्र प्रसिद्ध हैं किन्तु 'लुई बर्तें'[22] जैसे अपवादमात्र चित्रों को छोड़ उनके व्यक्तिचित्रों में व्यक्ति की स्वभाव विशेषताओं का दर्शन हमें नहीं मिलता। उनके व्यक्तिचित्र कुशल अंकनपद्धति व कलात्मक गुणों के सौन्दर्य के विचार से ही प्रशंसनीय है। दाविद् की भांति ग्रीक कला का आदर्श सामने नहीं रखने पर भी अँग्र को शास्त्रनिष्ठ चित्रकार मानना पड़ता है क्योंकि शास्त्रनिष्ठ कलाकार के मुख्य लक्षण हैं नियमबद्धता व कला के आंतरिक गुणों का तर्कशुद्ध विकास करने का निग्रह, जो अँग्र में विशेष स्पष्ट थे। अँग्र के समान कोमल, सुनियंत्रित व सजीव रेखा इससे पहले केवल राफेल ही बना सके। इन गुणों से ही अँग्र की गणना संसार के श्रेष्ठ चित्रकारों में की जाती है किन्तु उनके चित्रों में हम मानवता के दर्शन की आशा नहीं कर सकते।

रोमांसवाद व नवशास्त्रीयतावाद में इतनी भिन्नताएँ होते हुए भी एक समानता थी—यथार्थ मानव-जीवन से दोनों मीलों दूर थे। रोमांसवाद ने कल्पना की सहायता से कभी मनोरम, तो कभी साहसपूर्ण घटनाओं से भरी हुई किन्तु असत्य सृष्टि का निर्माण किया, व नवशास्त्रीयतावाद ने आदर्शों को सामने रख कर ऐसी चित्रसृष्टि का निर्माण किया जो वास्तविकता से उतनी ही दूर थी। ऐसी कलानिर्मिति से समाज के पीड़ित लोगों का दुःख मिटाने वाला नहीं था और बदलती परिस्थिति में पीड़ित वर्ग का राष्ट्रीय तथा सामाजिक महत्त्व बढ़ता जा रहा था। विचारवंतों का ध्यान समाज की सत्य स्थिति की ओर आकृष्ट हुआ व विचारों के नवीन प्रवाहों ने राजनैतिक एवं कला के क्षेत्रों को घेर लिया। पीड़ित जनता के उद्धार के विचार से प्रेरित होकर नवविचारकों ने पुराने विचारों को धक्का देना आरम्भ किया। कलाक्षेत्र में भी ऐसे विचारों से प्रेरित होकर कुछ नवीन कलाकारों ने क्रांति शुरू की जिनमें से दोमीय, कुर्बे, मिले व कोरो विशेष प्रसिद्ध हैं। इन सब चित्रकारों को यथार्थवादी चित्रकार कहते हैं क्योंकि इनकी कला में कल्पना की सहायता से निर्मित आभासात्मक, स्वप्निल चित्रण या पलायनवाद नहीं है एवं मायावी आदर्शों के पीछे सत्य परिस्थिति को छिपाने के प्रयत्न भी नहीं हैं बल्कि जो है वे हैं वस्तुस्थिति का गहरे परिशीलन के साथ किया सच्ची प्रतिमाओं से युक्त दर्शन व पीड़ित मानव-जीवन के सुख-दुःखों के प्रति हार्दिक सहानुभूति। इन सभी चित्रकारों से पूर्व विख्यात स्पैनिश चित्रकार गोया की कला में हमको यथार्थवाद के बीज प्रतीत होते हैं यद्यपि असाधारण कल्पनाशक्ति व सम्पन्न प्रतिभा के कारण उनकी रोमांसवादी चित्रकारों में भी गणना की जाती है। गोया व एल्ग्रेको दोनों आधुनिक चित्रकला के पूर्वकाल के चित्रकार हैं परन्तु उनकी कला प्रेरणा के रूप में एवं अन्तर्गत कलात्मक गुणों के कारण आधुनिक चित्रकला के विकास में बहुत सहायक हुई। अतः पूर्वपीठिका में उन दोनों की कला का विचार आवश्यक है।

फ्रान्सिस्को गोया (1746–1828)

गोया को हम विशुद्ध रोमांसवादी चित्रकार नहीं मान सकते क्योंकि उनके रोमांसवादी चित्रण में भी यथार्थ जीवन के गहरे अनुभवों की सामर्थ्य है; उसी प्रकार हम उनको विशुद्ध यथार्थवादी चित्रकार भी नहीं मान सकते क्योंकि उनके यथार्थवादी चित्रण में उपहास, निन्दा व करुणा के अतिरिक्त, अधिक आत्मीयता से सत्य परिस्थिति का अध्ययन करके मार्गदर्शन करने का प्रयत्न नहीं है।

गोया दाविद् के समकालीन थे किन्तु उन्होंने अपने कलात्मक व्यक्तित्व की आवश्यकता के सामने कला के परम्परागत नियमों को ठुकरा दिया। उनकी कल्पनाशक्ति की उड़ान में फ्रेंच रोमांसवाद की निष्क्रियता व निरुपयुक्तता नहीं है; उनकी कल्पनाशक्ति जागरूक है। उनके काल्पनिक चित्र भी सत्यसृष्टि से गहरा संबंध रखते हैं और उनमें जीवन के कटु सत्य की निर्भीक आलोचना है। कला के इतिहास में ऐसा अन्य जिंदादिल कलाकार शायद ही हुआ होगा जिसने सत्य परिस्थिति के प्रति

इतने सचेत रह कर, साहस के साथ ससार की दुष्ट शक्तियों से कड़ा मुकाबला किया हो। अतः अन्य रोमासवादी कलाकारों में व गोया मे जमीन आसमान का अन्तर है यद्यपि असामान्य कल्पनाशक्ति के कारण उनकी रोमासवादी कलाकारों में गणना की जाती है। कुछ यथार्थवादी कलाकारों की भाँति गोया वास्तव सृष्टि के केवल बाह्य सौन्दर्य से लुब्ध होकर संतुष्ट नही हुए बल्कि उन्होने अपनी अतर्भेदी प्रतिभा से जीवन की बुराइयो का पर्दाफाश किया। गोया ने ऐसी परिस्थिति को देखा जिसको वे सह नही सकते थे और उन्होंने उससे सामना करने का मार्ग स्वीकार किया। आदर्शवादी विचारों की मदिरा पीकर सत्य परिस्थिति को भूलना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। स्पेन की राजसत्ता पर मदाध, मूर्ख व दुराचारी राजा एव तत्सम दरबारी लोगों का प्रभुत्व था। अशिक्षित व असहाय जनता दुःख व दरिद्रता से पीडित थी।

गोया का जन्म एक निर्धन किसान परिवार में स्पेन के आरागोन प्रात के फवेन्डेटोडोस गाँव में हुआ। अन्य किसान बच्चों की तरह उनको सुबह से शाम तक खेत में परिश्रम करना पड़ता। उस समय वे जली हुई लकड़ियों से पत्थरो व चट्टानों पर रेखाचित्र बनाते थे। इस छोटे बच्चे की कुशलता को देख कर गाँव वालों ने उसको गिरजाघर की वेदी पर लटकाने के पट को चित्रित करने का काम सौंप दिया। आयु के 14वें साल मे एक धनिक सज्जन ने अपने खर्च से गोया को कला का अध्ययन करने के लिए सारागोसा शहर भेज दिया। गोया के अनिर्बन्ध जीवन व उत्पातकारी कला का यही से आरम्भ हुआ। वे सारा दिन चित्र बनाने में, रात नशा व नृत्य करने मे व छुट्टी तलवार का खेल व सांडो से लडाई करने में बिताते। वे आवारा लड़को की एक टोली के नेता थे और उनकी टोली की दूसरी टोली से हुई लडाई में कुछ लड़के मारे जाने से उनको माड्रिड भागना पडा। वहाँ भी उनकी परिपाटी मे कोई परिवर्तन नही हुआ और वहां से वे इटाली भाग गये। वहाँ वे स्पेन के लोगो के जीवन पर चित्र बना कर सस्ते में बेचते व रोम के नीतिहीन लोगो के साथ रहते। कुछ समय तक वे इटाली के पार्मा शहर मे रहे जहाँ उनको वहाँ की कला-संस्था का पुरस्कार प्राप्त हुआ। कुछ साल तक इटाली में निवास करने के बाद वे अपनी मातृभूमि स्पेन लौट आये और आरागोन मे रहने लगे। उनका एक ख्यातनाम चित्रकार की भगिनी से विवाह सम्पन्न हुआ व उनको दीवार पर्दों की राजकीय निर्माणशाला मे चित्रकार की नौकरी मिली। उन्होने रुबेन्स से प्रभावित प्रचलित दीवार पर्दों की अंकनशैली को छोड़कर एक स्वतन्त्र नयी शैली में काम करना शुरु किया। दीवार पर्दों पर, अप्सराओं व देवताओ की जगह, उन्होंने समकालीन स्पेन के लोगो के जीवन को चित्रित करना शुरू किया। रेखाओं से बनाये गये रूढ़िबद्ध आकारो की जगह उन्होने ठोस आकारो को गहरे रंगों मे अंकित करके दीवारपर्दों को अलंकृत किया। अब तक गोया अपनी शैली का पूर्ण विकास कर चुके थे और उनको भित्तिचित्रण, व्यक्तिचित्रण, गिरजाघर का अलंकरण आदि काम मिलने

लगा। गोया ने स्पेन की राजधानी बार्सिलोना को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। राजा के भाई से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी जो राजा को पसन्द नहीं थी और उसी कारण राजा ने उनको दरबार में स्थान नहीं दिया। किन्तु गोया अब ख्याति-प्राप्त चित्रकार हो गये थे तथा उनको राजाश्रय की आवश्यकता नहीं थी। सरदार व सधन लोग अपना व्यक्तिचित्र बनवाने के लिए गोया के पीछे पड़ते। गोया स्पेन की कलासंस्था के अध्यक्ष बन गये। स्पेन के राजा तीसरे चार्लस की मृत्यु के बाद गोया की दरबारी चित्रकार के रूप में नियुक्ति हुई। इस समय सत्ताधारी वर्ग का भ्रष्टाचार व अनीतिमय जीवन एवं जनता की विपन्नावस्था चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। गोया समाज के सभी स्तरों की परिस्थिति देख चुके थे और अब से उन्होंने जो चित्र बनाये उनमें उनकी असाधारण प्रतिभा व श्रेष्ठ व्यक्तित्व का परिचय होता है। गोया ने राजा व सधन वर्ग के जो व्यक्तिचित्र बनाये हैं उनमें उन व्यक्तियों की विलासवृत्ति व मूर्खता की ओर स्पष्ट संकेत किया है। राजा चतुर्थ चार्लस के परिवार का सामूहिक व्यक्तिचित्र इस बात का उदाहरण है। इस चित्र में राजा व राज-परिवार के सदस्यों को खुश करने का जरासा भी प्रयत्न नहीं है बल्कि व्यभिचारी व बदसूरत रानी एवं अन्य बुद्धिहीन सदस्यों के चेहरों पर यथार्थ भावों को चित्रित करके गोया ने उनको चिरकाल के लिये बदनाम किया है। किन्तु इस चित्र से गोया की निन्दा होने के बजाय धनिक वर्ग में गोया से व्यक्तिचित्र बनवाने की स्पर्धा ही शुरू हो गयी। समाजप्रसिद्ध महिलाएँ गोया से व्यक्तिचित्र बनवाना प्रतिष्ठा व आत्मसम्मान की बात मानती थी। गोया के बनाये माल्वा की बेगम के दो व्यक्ति-चित्र एक सवस्त्र व दूसरा विवस्त्र—[23] कला के इतिहास में प्रसिद्ध हैं; स्त्री शरीर की कोमलता का आकर्षक चित्रण एवं मोहक रंगांकन की दृष्टि से ये चित्र बहुत ही सुन्दर है। कहते है कि गोया के साथ बेगम की घनिष्ठ मित्रता थी। एक समय वे बेगम के साथ पहाड़ों में घूमने गये थे जब सर्दी-जुकाम होकर वे पूर्ण बहरे हो गये। गोया ने 'एक्वाटिंट' पद्धति में कई चित्र बनाये। 'कॉप्रिचस'[24] नाम की चित्रमालिका में उन्होंने मनुष्य की इन्द्रियाधीनता, अहंकार व मूर्खता का उपहास किया। 1808 में फ्रांस ने स्पेन पर आक्रमण किया और निर्घृणता से निष्पाप लोगों की हत्या की। इस विषय के उनके 'एक्वाटिंट्स्' युद्ध की भयानकता'[25] नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के आलोचनात्मक व निदागर्भित चित्र कला के इतिहास में सर्वप्रथम गोया ने ही निर्माण किये। युद्ध के विषय पर उन्होंने 'युद्ध के दुष्परिणाम'[26] नाम से कुछ तैल-चित्र भी बनाये जिनमें से 'दो मई' व 'तीन मई' विशेष प्रसिद्ध है और वे उनके समाजवादी चित्रण की स्फोटकता के उत्कृष्ट उदाहरण है। चित्रों में फ्रेंच सैनिक स्पेनिश जनता की निर्घृणता से हत्या करते हुए दिखाये है। ये चित्र गोया के सबसे प्रसिद्ध चित्रों में से है। अब तक के कलाकारों ने युद्ध के चित्रों का निर्माण वीरता व धैर्य की प्रशंसा में किया था किन्तु गोया ने आक्रामकों की निर्दयता की निंदा करने व पराभूत जनता की दयनीय अवस्था की ओर सबका ध्यान आकर्षित करने के लिये

ये चित्र बनाये। अतः गोया के इन चित्रों में आत्मीयता व नवविचार का जोश है जो गुण पुराने युद्धचित्रों में नहीं मिलते। इनके अलावा गोया ने इन चित्रों के निर्माण में प्रभावी संयोजन, प्रसंगोचित रंगसंगति व सामर्थ्यपूर्ण तूलिका सचालन में अपूर्व सहयोग दिखाया है। चचल व अभिव्यक्तिपूर्ण रेखाओं व हलके गहरे क्षेत्रों की यथोचित किन्तु नाटकीय योजना के परिणामस्वरूप चित्र विस्फोटक बने है; जीवन-मरण के अन्तिम क्षणों का इतना परिणामकारक यथार्थ चित्रण करने में इनेगिने महान् चित्रकार ही सफल हुए है।

नेपोलियन ने स्पेन को हरा कर अपने भाई जोसेफ को स्पेन की राजगद्दी पर बिठाया किंतु गोया के दरबारी चित्रकार के स्थान को कोई धक्का नहीं पहुँचा बल्कि जोसेफ ने उनको मानचिन्ह प्रदान किया। नेपोलियन की पराजय के बाद स्पेन में फिर से पुराना बुर्बोन वश सत्तारूढ हुआ और राजसत्ता से एकनिष्ठ रहने का प्रण लेकर गोया ने स्वय को बचाया। राजा ने उनको दरबार में आश्रय देने का वचन दिया था परन्तु गोया दरबारी जीवन से ऊब गये थे अत. वे सेबिल चले गये। वहाँ के गिरजाघर को उन्होंने चित्रित किया। माड्रिड लौटने पर वे शहर के सीमावर्ती भाग में 1819 में खरीदे हुए अपने मकान में शांति से समय बिताने लगे। इस मकान की दीवारों पर उन्होंने अपने अन्तिम महत्त्वपूर्ण चित्र बनाये जो अतियथार्थवादी है यद्यपि कला के इतिहास में अतियथार्थवाद का जन्म होने म अभी लगभग सौ साल बाकी थे। इन चित्रों में 'पुत्रभक्षक शनि' व 'जादूगरनियों का सतदिन'[27] विशेष प्रसिद्ध है। आयु के 78वें साल में गोया पैरिस गये किन्तु उस समय उनकी आँखें कमजोर हो गई थी और शरीर दुर्बल हो गया था। वहाँ उनको नवकलाकारों में से जेरिको व देलाक्रा की कलाकृतियाँ बहुत पसन्द आयीं; ये दोनों चित्रकार बाद में रोमांसवाद के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। गोया की मृत्यु आयु के 83वें साल में माड्रिड में हुई।

आधुनिक चित्रकला के लिये गोया की कला का बडा महत्त्व है। उन्होंने किन्हीं कलासंबंधी सिद्धान्तों को प्रस्थापित करने के उद्देश्य से कलानिर्मिति नहीं की, फिर भी उनकी कला में यथार्थवाद, रोमांसवाद एव आधुनिक कला के अभिव्यंजनावाद व अतियथार्थवाद के बीज दृष्टिगोचर है। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि इन सभी वादों का उदय गोया की मृत्यु के कई साल बाद हुआ। गोया की कला की विशेषताओं को देख कर. उनको चिरकालीन महत्त्व का महान् कलाकार माना है। गोया की कलात्मक अभिव्यक्ति की यह विशेषता है कि उनके मानव-जीवन के घृणायुक्त चित्रों में अगतिकता व निराशा के भाव है तथा काल्पनिक चित्रों में जीवन की निरर्थकता की स्पष्ट छाया है। इस विरोधाभास के कारण उनके ऐसे चित्र कभी अभिव्यंजनावादी बन गये है तो कभी उनमें व्यक्तिगत अतर्मुखता आयी है। गोया के रंगांकन की चमक व तूलिकासचालन की स्पष्टता व सामर्थ्य को देख कर उनको प्रभाववाद का एक अग्रदूत मानना पड़ता है। देलाक्रा की कल्पना व गोया की

कल्पना मे जमीन आसमान का अन्तर है। देलाक्रा की कल्पना सौन्दर्य व आशा के भाव लिये हुए है जबकि गोया की कल्पना बीभत्स व निराशा की ओर संकेत करती है; अतः गोया को सत्यार्थ में रोमांसवादी चित्रकार नहीं मान सकते। गोया के चित्रों में रूप संबंधी कलात्मक गुण परिपक्व अवस्था में पाये जाते हैं तथा उनके यथार्थ दर्शन में कल्पनाविलास व आतंरिकता का समिश्रण है। अतः गोया की कला का वर्गीकरण कठिन है। गोया की कला की महानता इस बात में है कि उनकी कला का जन्म कठोर बौद्धिकता ने नहीं बल्कि असाधारण प्रतिभा व जीवन के प्रति सच्ची निष्ठा से हुआ। इन्हीं कारणों से गोया की कला आधुनिक कलाकारों को सर्वदा प्रेरणाप्रद रही।

एल्ग्रेको (1545–1614)

गोया के समान एल्ग्रेको एक ऐसे चित्रकार हुए जो कालगणना के अनुसार आधुनिक कला के अन्तर्गत नहीं है किंतु जिनकी कला आधुनिक कलाकारों को सदैव प्रेरणा देती रही और जो दीखने में भी आधुनिक कला की समीपवर्ती है।

उनका सम्पूर्ण नाम डोमेनिकोस थिओटोकोपुलोस था और वे एल्ग्रेको नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म क्रीट में हुआ। विद्यार्थी अवस्था में उन्होंने बिजांटाइन प्रतिमा-चित्रण का अध्ययन किया। बाद में वेनिस जाकर टिशिआं व टिन्टोरेटो की चित्रशालाओं में पुनर्जागरणकालीन व्यक्तिचित्रण व रंगांकन-पद्धतियों का अध्ययन किया। 1577 में उन्होंने स्पेन के टोलेडो नाम के गाँव को अपना निवासस्थान बनाया व अन्त तक वहीं रहे।

आरम्भ से ही एल्ग्रेको घमंडी थे और उनकी किसी से पटती नहीं थी। स्पेन का राजा व जनता दोनों को वे अप्रिय थे किन्तु उनकी वेनिस शैली के कारण उनको व्यक्ति-चित्रण एवं धार्मिक चित्रण का काम मिलता रहा तथा वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हुए। उनके सुखामीन जीवन को देखकर आश्चर्य होता है कि उन्होंने इतने आध्यात्मिक प्रभाव से ओतप्रोत चित्र कैसे बनाये।

एल्ग्रेको के स्पेन में बनाये गये आरंभिक चित्रों में 'मेरी का पुनर्ग्रहण'[28] स्पष्टतया पुनर्जागरणकालीन चित्रकला से प्रभावित है; यह चित्र उन्होंने 1577 में बनाया। बाद में उनकी शैली में परिवर्तन होने लगा व 1588 में बनाये गये उनके चित्र 'ओर्गाज के सरदार का दफन'[29] जो करीब 16′×22′ बड़ा है—उनकी शैली के विकास की दिशा पर प्रकाश डालता है। एल्ग्रेको इस चित्र को अपनी एक अच्छी कलाकृति मानते थे और इस पर बिजांटाइन शैली व टिन्टोरेटो का समिश्र प्रभाव है। उनके चित्र अक्सर मानवाकृतियों से भरे होते हैं और चित्र की पृष्ठभूमि बहुत कम दिखायी देती है किन्तु उनका चित्र 'मन्दिर का शुद्धिकरण'[30] इस बात का अपवाद है। इसकी पृष्ठभूमि में मन्दिर है और मन्दिर की खिड़की में से दूरस्थित जेरूशलेम शहर का धुंधला दृश्य दिखायी देता है।

उन्होने एक ही अपवादमात्र प्राकृतिक दृश्य चित्रित किया किन्तु प्रकृति-चित्रण के इतिहास में बहुत ही श्रेष्ठ चित्र माना गया है। उस चित्र का नाम है 'टोलेडो का दृश्य।' काले आकाश में घने बादल छाये हुए है और उनके बीच-बीच मे तीव्र प्रकाश-शलाकाएँ निकल कर नीचे पहाडो पर फैले हुए किला, गिरजाघर, नदी, वृक्षो आदि पर गहरी छाया के साथ आँख-मिचौनी खेल रही है, जैसे कि पचमहातत्व सचेत होकर अपने अस्तित्व का अनुभव करा रहें है।

16वी सदी के चित्रकार होने हुए भी एलग्रेको आधुनिक चित्रकारो की प्रेरणा के स्रोत थे। सेजान व पिकासो उनकी ऐंठनदार मानवकृतियो से एव आकारो के तोड से बहुत प्रभावित थे। मूल आकारो, सहजनिर्मित गहरी रेखाओ व हलके-गहरे रगो के स्पष्ट क्षेत्रो की सहायता से उन्होने मानव-शरीर व अन्य वस्तुओ को जो ठोसपन प्रदान किया है वह सेजान की शैली से मिलता-जुलता है और यह बात सेजान् के स्नान-मग्न व्यक्तियो की आकृतियो से एलग्रेको की मानवाकृतियो की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाती है। एलग्रेको की सोच-समझकर लबी की गयी ऐंठनदार मानवाकृतियो की तुलना आधुनिक चित्रकार मोदिल्यानी एव अभिव्यजनवादी चित्रकारो की चित्रित मानवाकृतियो मे की जा सकती है। प्रसिद्ध जर्मन लेखक मेरग्राफे ने एलग्रेको को स्पेन का सबसे महान् चित्रकार माना है। स्पेन में ख्याति व यश प्राप्त करके इस महान चित्रकार ने 1614 मे इहलोक से बिदाली और बाद में करीब तीन सो साल तक कलाक्षेत्र मे उनकी कला की उपेक्षा हुई। आधुनिक कलाकारो व कलासमीक्षकों ने उनकी कला की महानता को पहचाना और कला के इतिहास मे उनको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ। 19वी सदी के प्रारभ मे जब यथार्थवाद सबसे प्रमुख कलाशैली था तब स्पेन के चित्रकार वेलास्केस एक महान् व आदर्श चित्रकार माने जाते थे व एलग्रेको की कला की ओर कोई ध्यान नही देता था। किन्तु 19वी सदी के अन्त के करीब यथार्थवाद का महत्त्व घटते ही आधुनिक कला के प्रणेताओ का–विशेषतया सेजान व पिकासो का–ध्यान एलग्रेको की कला की ओर आकृष्ट हुआ व उनको अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ।

एलग्रेको की रंगसगति विरोधयुक्त व चमकीली है। बिजाटाइन कला के बाद ऐसी चमकीली रंगसगति एलग्रेको की कला में ही देखने को मिलती है। बिजाटाइन कला व आधुनिक कला में आकारो की ऐंठन व चमकीली रंगसगति के प्रयोग का जो महत्त्व है वही एलग्रेको की कला मे है। अतः एलग्रेको की कला को हम बिजाटाइन कला व आधुनिक कला के बीच की कडी मान सकते है और एक कारण से एलग्रेको की कला व आधुनिक कलाकारो के लिये आदर्शवत् है, वह कारण है उनकी अकन-पद्धति की निर्भीक, वैयक्तिक स्वतन्त्रता। पुनर्जागरणकाल से प्रचलित नियमबद्ध रेखांकन व चिकनी रंगाकन पद्धति को देखते हुए एलग्रेको की रेखाओ की उन्मुक्तता व ऐंठन, रगाकन की चमक एव तूलिका सचालन की निर्भीकता आश्चर्यजनक है।

यथार्थवाद व ओनोरे दोमीय (1808–1879)

मानव की कमजोरियां, विवशता व ग्रहकार का एव उसके सुख-दुःखो का आत्मीयता से परिशीलन करके परिणामकारक किन्तु व्यग्यपूर्ण चित्रण करने का श्रेय ओनोरे दोमीय को है।

दोमीय का जन्म मासाय शहर मे हुआ। उम्र के 22वें साल मे उन्होंने व्यग्य-चित्रकार के रूप मे कार्य शुरू किया। उसके पश्चात 40 साल के अन्दर उन्होने करीब 4000 व्यग्य चित्र, कई रेखाचित्र व सैकड़ों तैलचित्रों का निर्माण किया। ये सब यथार्थवादी कला क उत्कृष्ट उदाहरण है। इतना कार्य करने पर भी इस महान चित्रकार की मृत्यु अत्यन्त विपन्नावस्था मे हुई।

साधारण रूप से कहा जा सकता है कि 19वी सदी के पूर्वार्ध में फ्रेंच नागरिक रोमासवादी दृष्टिकोण अपनाये हुए था जबकि उसकी सदी के उत्तरार्ध मे तेजी से बदली हुई परिस्थितिवश उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी बन गया और वह अपने हरेक विचार व व्यवहार का मूल्याकन उसी दृष्टिकोण से करने लगा। दोमीय के सामने ऐसी सामाजिक परिस्थिति थी जब बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग निष्फल कल्पनावाद से उद्विग्न हुआ था और वह पक्का उपयुक्ततावादी बन गया था। महान् कलाकारो की कला सदैव समकालीन परिस्थिति का दर्पण व विचारों का सारसग्रह रही है; दोमीय की कला इस बात का उदाहरण है। उनकी कला मे समकालीन परिस्थिति के कारणों की खोज व प्रचलित दुष्ट परम्पराओ की उपहासयुक्त निन्दा है। दोमीय ने वस्तुस्थिति को अपनी कला के लिये समुचित विषय माना और परंपरागत पौराणिक व ऐतिहासिक विषयो को त्यागा। पौल सॅक्स ने लिखा है "अब तक कोई भी व्यक्ति अपने समय के साथ दोमीय जितना एकरूप नही हुआ"। उन्होंने दोमीय की तुलना इंग्लिश उपन्यासकार डिकन्स से की है। दोनो ने शहरी आदमी के जीवन का गहरा निरीक्षण किया और उसकी भावनाओ, मनोवृत्तियों व सुखदु.खो का मनोवैज्ञानिक तरीको से उपहासात्मक चित्रण किया।

सौदर्य की देवता वीनस से ग्रामीण कन्या को चित्रित करना यथार्थवादी कलाकार को अधिक प्रिय था। उसने देखा कि बाह्य रूप मे नीरस दिखायी देने वाली वास्तविकता मे इतनी विविधता है कि उसका कोई पार नही व कलाकार को वास्तव सृष्टि मे ही चित्रण योग्य अनत विषय मिल सकते हैं यदि वह खुली आँखों देखने व बिना पूर्वग्रह व पक्षपात के विचार करने की कोशिश करें। इस प्रकार दृष्टिकोण में मूलगामी परिवर्तन होते ही यथार्थवादी कलाकार को परपरागत आदर्श सौंदर्य से मानव शरीर का नैसर्गिक रूप, कपोलकल्पित कथाओ से सत्य घटनाएँ व काल्पनिक वातावरण से सत्य परिस्थिति अधिक प्रिय व चित्रण योग्य प्रतीत होने लगी। इस प्रकार सर्व-सामान्य मानव, उसका दैनंदिन जीवन, उसकी सुखदु.ख की कहानियां कला का प्रमुख विषय बन गयीं। चित्रकार केवल कल्पना पर निर्भर रह कर चित्रण

करने के बजाय आस-पास की दुनिया का प्रेक्षक के रूप मे निरीक्षण करने लगा और उसकी कला जीवन का सच्चा दर्पण बन गयी।

सत्य जीवन का परिणामकारक चित्रण करने के उद्देश्य से यथार्थवादी कलाकार को परपरागत अंकनपद्धतियों में बहुत परिवर्तन करना पड़ा जिससे उसकी शैली में अंकन के सहज-सामर्थ्य व नैसर्गिकता के गुणों की रक्षा हुई व पुरानी शैली का नियमित एकसा चिकनापन हट गया। अंकनपद्धति में कलाकार को नियत्रण-पूर्वक विषयानुकूल परिवर्तन करना आवश्यक हुआ एव कलाकारों में नये प्रयोग करने की प्रवृत्ति को बढावा मिला। यथार्थवाद के कारण कलाकार के व्यक्तिगत चिंतन व दर्शन को प्रोत्साहन मिला और वह बंधमुक्त होकर सर्जन-व्यस्त हो गया। अतः इसमें कोई आश्चर्य नही है कि भिन्न प्रकृति के कलाकारों को, भौतिक स्तर पर अपनी सर्जनात्मक भावनाओं की पूर्ति का यथार्थवाद एकमात्र प्रभावी साधन प्रतीत हुआ। काव्यमय प्रवृत्ति के चित्रकार प्रकृतिचित्रण की ओर आकृष्ट हुए व चित्रकला मे प्रकृतिचित्रण का महत्त्व बढ़ गया। समाजसेवा से प्रेरित कलाकारों ने पीड़ित जनता के दुःखी जीवन का सहानुभूतिपूर्वक दर्दभरा चित्रण किया एव सारे समाज का ध्यान पीड़ित वर्ग की ओर आकृष्ट करने का कला एक प्रभावी साधन बन गयी। कुछ यथार्थवादी कलाकारों ने पारिवारिक जीवन के—वनभोजन, घरेलू खेल, उत्सव, त्योहार जैसे—प्रसन्नता, उत्साह व हर्ष के प्रसगो का कृतज्ञता भाव से मनोहर चित्रण करके सिद्ध किया कि मानव-जीवन आनद व आशा के क्षणो से कितना ओतप्रोत है। सक्षेप मे यथार्थवाद से कला के क्षेत्र में अधिक व्यापकता आगयी जो व्यापकता पुराने धार्मिक व ऐतिहासिक चित्रण मे नही थी; कलाकार स्वतंत्र रूप से अपनी स्वाभाविक अभिरुचियो के अनुसार निजी विचारों से चित्रण करने को उद्यत होकर अपने पृथक् कलात्मक व्यक्तित्व को अनुभव करने लगा। यह नवीन विचारधारा आधुनिक कला के विकास मे सहायक हुई।

गोया की भाति दोमीय असत्य, पाखंड व अन्याय से घृणा करते थे। व्यंग्य-चित्र द्वारा राजा की निंदा करने के कारण उनको कारावास की सजा हुई। 1835 के कानून से उनके व्यंग्यचित्रण पर प्रतिबंध लगाये गये जिससे उम्र के 22वें साल में शुरू किये उनके व्यंग्यचित्रण के कार्य मे बाधा पड़ी। अब 'ला कारिकात्युर' मासिक पत्रिका के व्यंग्यचित्रकार का काम छोड़ कर उन्होंने 'ला शारिवारि' दैनिक पत्रिका के लिये रेखाचित्र बनाना शुरू किया व तेरह साल में उस पत्रिका में उनके सैकड़ों रेखाचित्र प्रकाशित हुए। दोमीय कोई सामान्य रेखाचित्रकार नही थे। वे असाधारण प्रतिभा के कलाकार थे और उनके रेखाचित्रों की तुलना रेम्ब्राट, रुबेन्स जैसे श्रेष्ठ कलाकारों के रेखाचित्रों से की जा सकती है। दोमीय ने इन कलाकारों का लुव्र संग्रहालय में अध्ययन किया था व उनसे वे बहुत प्रभावित थे। दोमीय के रेखाचित्रों के विषय सर्वसामान्य होने के कारण समकालीन दर्शक व समीक्षक उनकी योग्यता व उनकी कृतियों के कलात्मक गुणों को पहचान नही सके।

बचपन में ही चित्रकार बनने की आकांक्षा ने दोमीय को प्रेरित किया किंतु उम्र के 40वें साल तक वे दरिद्रावस्था को पार नहीं कर सके और अर्थार्जन के लिये रेखाचित्रकारी में व्यस्त होने के कारण वे रंगीन चित्र नहीं बना सके। रेखाचित्रों से उनको कोई विशेष आमदनी नहीं होती थी। सैकड़ों रेखाचित्र बनाने पर ही वे अपना खर्च निभा सकते थे। 1860 में 'ल शारिवारि' पत्रिका ने उनको नौकरी से हटा दिया। अब उनको रंगीन चित्र बनाने के लिये समय मिला किंतु उस काम के लिये उनके पास पैसा नहीं था। तीन साल तक अपने घनिष्ठ मित्रों के दातृत्व पर व नाममात्र सरकारी सहायता पर वे निर्भर रहे। खर्च कम करने के हेतु दोमीय पैरिस छोड़ कर वाल्माद्वा नाम के पैरिस के उपनगर में जाकर रहे। 1863 में उनको कम तनखा पर फिर से 'ला शारिवारि' पत्रिका में नौकरी मिली। किंतु उससे उनकी विपन्नावस्था में कोई अंतर पड़ने वाला नहीं था। अब उनकी दृष्टि भी कमजोर हुई थी। 1879 में इस महान् चित्रकार की मृत्यु ऐसी परिस्थिति में हुई कि उनके अंत्यसंस्कार के लिये सरकारी सहायता लेनी पड़ी जो बड़ी मुश्किल से व बहुत अपर्याप्त मिली। उनकी मृत्यु के पश्चात् धूर्त व्यापारियों ने उनकी विधवा पत्नी से अल्प मूल्य देकर उनके चित्र खरीदे जिनकी समय के साथ कीमत बढ़ती गयी।

दोमीय की कला यही सिद्ध करती है कि कलाकृति में संदेश होने से या कलाकृति का निर्माण केवल सामान्य दर्शक के ज्ञान या मनोरंजन के लिए किये जाने से ही कलाकृति की श्रेष्ठता में कोई बाधा नहीं आती। दोमीय की कला अभिप्राययुक्त होते हुए संयोजन, रूप, अभिव्यक्ति आदि कलात्मक गुणों से प्रचुर है। दोमीय ने कभी आत्मप्रशंसा या सैद्धांतिक चर्चा नहीं की किंतु उनकी कलाकृतियां कला-समीक्षकों व विद्वानों के लिये उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि सामान्य दर्शकों के लिये।

उनके चित्रित किये हुए सभी व्यक्ति-गरीब, धनी, वकील, डाक्टर, न्यायाधीश, व्यापारी, भिखारी, चोर वगैरह-आतंरिक मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से इतने परिपूर्ण व सच्चे हैं कि वेषभूषा व वातावरण की भिन्नता होने पर भी वे हमारे लिये समकालीन महत्त्व रखते हैं जैसे कि वे सब अपने-अपने वर्ग की अपरिवर्तनशील, मूलभूत मनोवृत्ति का दर्पण ही है।

19वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कलाकारों में दोमीय एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने किसी भी चित्रशाला या कलाकार से शिक्षा प्राप्त किये बिना व्यक्तिगत परिश्रम से कलासाधना की। उनके सरल व प्रभावी रेखांकन की तुलना रेम्ब्रांट के रेखांकन से की जा सकती है। रेम्ब्रांट ने धार्मिक विषयों को चित्रित किया जबकि दोमीय ने सामान्य आदमी के दैनंदिन जीवन को विषय के रूप में चुना। कहीं शास्त्रीय अध्ययन या मार्गदर्शन नहीं होने पर भी उन्होंने केवल निरीक्षण द्वारा मानवशरीर रचना, पोशाक, बाह्य एवं घरेलू वातावरण का बारीकियों के साथ जो सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त

किया वह आश्चर्यजनक है। यही बात मानव-स्वभाव, रहन-सहन व व्यक्तित्व के उनके ज्ञान के बारे मे कही जा सकती है।

निरर्थक सैद्धांतिक वादविवाद से दोमीय कितनी घृणा करते थे यह उनके व्यंग्यचित्र 'शैलियो की लड़ाई'[31] से स्पष्ट होता है। इस चित्र में दो चित्रकारो को ढाल तलवार की जगह भित्तिफलक, तूलिका व आधारपट्टी को हाथों में लेकर लडते हुए दिखाया है।

रेम्ब्राट व गोया से प्रभावित होते हुए दोमीय के चित्रों में न रेम्ब्राट की धार्मिकता है न गोया की कल्पना। वे 19वी सदी के चित्रकार थे और उनका धर्म था समाज-जीवन के बाह्य नकली आवरण के पीछे छिपे कटु सत्य को समाजोन्मुख करना व उनकी कल्पना थी उपहास। उन्होंने व्यक्तियो के चेहरों के कृत्रिम भावो व झूठे मुद्राभिनयों का सूक्ष्म निरीक्षण किया व उनको चित्रित करके मानव के पाखंडी व्यवहार का उपहास किया। दोमीय ने अपनी समर्थ कूंची से व्यंग्यचित्रण को कला का स्थान प्राप्त कराया। उनके उपहास का मुख्य लक्ष्य था मध्यमवर्ग, उसका अहंकार व खोखलापन; साथ-साथ उन्होंने गरीबो के दुःख व उच्च वर्ग के अन्यायपूर्ण व्यवहार का भी भंडाफोड किया। उनके व्यंग्यचित्रों में न्यायालय, रेल का डिब्बा, रंगमंच के दृश्य तथा डॉन क्विक्जोट के कहानीचित्र बहुत प्रसिद्ध है।

दोमीय यथार्थवादी चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध है; परन्तु उनकी कला में इतने विविध गुण है कि उनको किसी वाद मे सीमित रखना अयोग्य है। उनके तैल-चित्रों में आकारों का सरलीकरण व भिन्न छटाओं के सुस्पष्ट क्षेत्रों की सुसगत रचना करके ठोस चित्रण किया है जिसके 'भिखारी' व धोबिन ये चित्र उत्कृष्ट उदाहरण है। दोमीय के बाद सेजान ने उसी प्रकार ठोस रचना पर बल देकर चित्रण किया। दोमीय की कला मे रचनात्मकता के अतिरिक्त भावपूर्ण जोशीला अंकन व रेखाओं का गतित्व है जिससे उनकी कला में अभिव्यंजनावादी झलक आ गयी है। अभिव्यक्ति के विचार से उनके चित्र रुओ की कलाकृतियो के समरूप है। अभिव्यंजनावादी चित्रकार एमिल नोल्ड व रुओ दोमीय की कला से प्रभावित थे। कुछ इतिहासकार दोमीय को प्रथम अभिव्यंजनावादी चित्रकार मानते हैं। दोमीय के चित्र देशत्याग व डॉन क्विक्जोट के कहानीचित्र पूर्ण रूप से रोमांसवादी हैं।

दोमीय के चित्र जैसे कलात्मक गुणों से परिपूर्ण है वैसे उनमें परिणाम-कारक विषय प्रतिपादन के साहित्यिक गुण भी हैं जिनसे सामान्य दर्शक भी उनकी कृतियो से आकृष्ट होता है व उनकी कृतियो को सामाजिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। बोदेलेर ने लिखा है "दोमीय न केवल व्यंग्य चित्रकला में बल्कि आधुनिक कला में भी महान् चित्रकार है"। दोमीय के रेखाचित्रो को देख कर बालज़ाक ने कहा था "इस चित्रकार के भीतर माइकेल एंजेलो छिप कर बैठे हैं"।

चित्रकार कुर्बे व देलाक्रा तथा साहित्यकार बोदेलेर व गोतिय, दोमीय के घनिष्ट मित्र थे और उनके यहाँ जा कर, जमीन पर बैठ कर वे सब विचारगोष्ठी

किया करते। एक रोज जब दोमीय लियोग्राफ बनाने में व्यस्त थे तब उनमें से किसी ने धीमी आवाज में कहा "देखो वृद्ध दोमीय को कितना काम करना पड़ता है"। यह सुन कर दोमीय ने कहा "मुझे काम करना पड़ रहा है यह कोई बुरी बात नही है किंतु आंख कमजोर होने से मुझे अत्यधिक परिश्रम होता है। किन्तु दयालु मित्रो, मैं याद दिलाना चाहता हूं कि आपको आमदनी है और मेरे लिये है कलाप्रेमी रसिकगण, और मैं कला प्रेमी रसिकगण को ही चाहता हूँ"। और उनके जीवन में ऐसा ही हुआ; जिसको वे चाहते थे वह रसिकगण उनको मिला व वे लोकप्रिय व्यग्यचित्रकार के रूप मे प्रसिद्ध हुए परतु उनको आमरण आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ग्युस्ताव कुर्बे (1819-1877)

यथार्थवाद के प्रणेताओ मे ग्युस्ताव कुर्बे को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है। कुर्बे का जन्म ओर्नां नाम के छोटे गाव मे किसान परिवार मे हुआ। चित्रकार बन जाने पर उन्होने देहाती वातावरण व ग्राम्य जीवन को चित्रित करना पसद किया। बचपन मे वे पुस्तकीय अध्ययन से घृणा करते थे व जब उनके गुरुजी निसर्ग-अध्ययन व चित्रण के लिये कक्षा को बाह्य स्थानो पर ले जाते तब वे खुश हो जाते। बेसाको के महाविद्यालय मे जब उनको इच्छा के विरुद्ध भरती कराया गया तब वे अपना बहुत-सा समय दावि के शिष्य द्वारा चलायी गयी वहाँ की चित्रशाला मे बिताने लगे। 1839 मे उनको कायदे के अध्ययन के लिये पैरिस भेजा गया परंतु वे वापस आ गये एव उन्होने चित्रकार बनने का अपना निश्चय पिता के सामने रखा। अत मे उनके पिता ने राजी होकर उनको कला के अध्ययन मे सहायता देने का वचन दिया। कुर्बे ने भी खुश हो कर परिवार के सामने प्रण किया कि "मै दस साल के अंदर ही ख्यातिप्राप्त चित्रकार बनूंगा"। 1840 मे वे चित्रकला के अध्ययन के लिये वापस पैरिस आ गये व चित्रशाला स्विस मे भरती हो गये। चित्रशालेय अध्ययन से वे असतुष्ट थे। वे लुव्र सग्रहालय जाकर रेम्ब्राँट, फ्रान्स हाल्स व देलाक्रा के चित्रों का अध्ययन करते व उनके चित्रो की प्रतिकृतिया बनाते। 1844 की राष्ट्रीय प्रदर्शनी मे उनका चित्र 'कुत्ते के साथ चित्रकार कुर्बे' स्वीकृत हुआ। उसके पश्चात् 1849 मे उनके दो चित्र 'आत्मचित्र' व 'ओर्नां का भोजन'[32] स्वीकृत होकर उनमें से 'ओर्नां का भोजन' पर उनको पुरस्कार मिला। इस पुरस्कार से उनको दो लाभ हुए; उनके परिवार के सदस्य सतुष्ट हुए और अब चयन-समिति की स्वीकृत के बिना वे अपने चित्रों को प्रदर्शनी मे रख सकते थे। दूसरा लाभ निश्चित ही महत्वपूर्ण था व 1950 की प्रदर्शनी में वे अपना विशाल चित्र 'ओर्नां का दफन संस्कार'[33] प्रदर्शित कर सके यद्यपि चयन समिति के सदस्यों को यह चित्र बिलकुल पसंद नहीं था। यह चित्र यथार्थवादी चित्रकला के प्रारंभिक चित्रो मे महत्वपूर्ण माना गया है। मानवाकृतियों, उनकी हलचल एवं आसपास के वातावरण में कहीं भी कल्पना-तिरंजन या अनैसर्गिकता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी घटना को हम

प्रत्यक्ष देख रहे हैं। चित्र का कोना कोना निसर्गसादृश्य से ओतप्रोत है। कुर्बे गर्व के साथ कहते थे "ओर्नां के दफन संस्कार ने रोमांसवाद को दफनाया है।" उनके इस चित्र की पैरिस के लब्धप्रतिष्ठ कलासमीक्षकों व दर्शकों ने इस वजह से निंदा की थी कि प्रचलित परंपरा के अनुसार कला के विषय देवता, धर्म, राजा व उच्च खानदान के लोग ही हो सकते थे और उनका चित्रण भी आदर्श रूप देकर किया जाता था जबकि कुर्बे ने इस रूढ़ि को तोड़ कर समाज के सामान्य स्तर के लोगों का और वह भी यथार्थ रूप में चित्रण किया था और इतने बड़े पट पर। सब ने कुर्बे पर गंवारपन व भ्रष्टता का आरोप लगाया और कुछ राजनैतिक विचारकों को इस चित्र में समाजवाद के प्रचार का संदेह हुआ। सब सहमत थे कि राष्ट्रीय स्तर की प्रदर्शनी में ऐसा निम्न श्रेणी का चित्र नहीं रखा जाना चाहिये था। समकालीन कलापरंपरा के अनुसार उस चित्र में और एक निन्दा-जनक बात थी कि सामान्य दैनंदिन घटना के चित्रण के अलावा उसमें कोई कहानी, रोमांसकता, संदेश या विचार नहीं था। दर्शकों के विचार से ऐसी घटना के चित्रण से कला की उच्च परंपरा को नष्ट किया जा रहा था। विरोधी आलोचना से निराश होने के बजाय कुर्बे अधिक उत्साह से कार्य करने लगे। उनको समाजवादी विचारक प्रूदों ने प्रोत्साहन दिया और कुर्बे ने अपनी कला को सामाजिक व राजनैतिक महत्त्व देने की चेष्टा की; किंतु वे एक श्रेष्ठ कलाकार मात्र थे और उनकी कला का केवल कलात्मक विचारों से ही महत्त्व है। वे अब लगातार नवनवीन चित्र बना कर चयनसमिति के विरोध के बावजूद प्रदर्शित करने लगे और उनके प्रत्येक चित्र से कलाक्षेत्र में हलचल मचने लगी। कुछ नवकलाकार अनुयायियों व कलाप्रेमी साहित्यिकों में उनकी स्वतंत्रवृत्ति व नवविचारों की प्रशंसा हुई और झुंझारवृत्ति कुर्बे निर्भीक होकर अपने पथ पर अग्रसर हुए।

बदलते हुए जमाने में पैरिस के नव कलाकारों एवं साहित्यिकों में कला में नवीन प्रयोग करने व जलपानगृहों में सम्मिलित होकर कलासंबंधी चर्चा करने की प्रथा रूढ़ हो रही थी और प्रतिभासंपन्न कलाकार उनका नेतृत्व करते थे। कुर्बे भी पैरिस के 'ब्रासरी द मार्ति' व 'आन्द्रल केल' जलपानगृहों में जाते और नवकलाकारों से चर्चा करके उनका मार्ग दर्शन करते। 1861 में राष्ट्रीय कला संस्था के चित्र-शालेय विद्यार्थियों ने उनको अध्यापन करने की पत्र द्वारा प्रार्थना की। कुर्बे ने इन्कार किया परन्तु विद्यार्थियों की सुविधा के लिये उन्होंने एक चित्रशाला खोली जहां विद्यार्थी स्वतंत्र विचार से चित्रण कर सकते थे। यह प्रयोग विशेष सफल नहीं हुआ। उस चित्रशाला में बनाया हुआ एक चित्र विद्यमान है जिस में चित्रशाला में मॉडेल के रूप में खड़े हुए बैल को देख के कला अध्ययन करते हुए विद्यार्थियों को चित्रित किया है। यह चित्र कुर्बे के यथार्थवादी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है। अपने कलासंबंधी विचारों को शाब्दिक रूप देने में कुर्बे इतने सफल नहीं रहे क्योंकि उनमें विश्लेषणात्मक विचारशक्ति विशेष नहीं थी। लिखते समय वे अपने साहित्यिक

मित्रो से सहायता लेते थे। इसी कारण उनके कलासबधी विचार और प्रत्यक्ष कलाकृतियो मे भिन्नता दिखायी देती है।

कुर्बे के कलाविषयक विचार सरल व स्पष्ट थे। वे कहते "मुझे देवता दिखाओ और मै उसका चित्र खीचूँगा"।[34] उनके विचारो के अनुसार चित्रकला का मूलाधार दृश्य सौंदर्य का परिणाम है अर्थात् कलाकृति में केवल दृश्य वस्तुओ को प्रत्यक्ष देख कर यथार्थ चित्रित किया जाना चाहिये। किंतु यह विचार उनकी निजी कृतियो पर भी पूर्णतया लागू नही होता। उदाहरण के लिये यदि हम उनके चित्र 'स्नानमग्ना युवती' 'तोता व तरुणी' तथा 'सैन नदी के किनारे पर दो महिलाएँ'[35] देखेंगे तो स्पष्ट है कि उन्होने भी नारी-शरीर का चित्रण पूर्ण यथार्थवादी पद्धति से नही किया, बल्कि उन्होने नारी-शरीर को नैसर्गिक रूप से अत्यधिक सुन्दर व आसपास के वातावरण को कल्पना द्वारा रमणीय चित्रित किया है। फिर भी उस काल की कलाक्षेत्र की परिस्थित को देखते हुए मानना पड़ता है कि कुर्बे ने यथार्थवाद की दिशा मे क्रांतिकारी कदम उठाये और वे यथार्थवाद के सच्चे प्रवर्तक व महान् कलाकार थे। उनके कुछ विधान भावी यथार्थवादी कलाकारो के लिए वेदवाक्य हुए यद्यपि कुर्बे ने निजी कला मे उनका शब्दशः पालन नही किया। वे कहते "कलाकार को कोई अधिकार नही है कि वह नैसर्गिक सौंदर्य मे इच्छानुसार परिवर्तन करे, क्योकि निसर्गनिर्मित सौंदर्य कलाकार की कल्पना से अधिक सूक्ष्म, महत व श्रेष्ठ होता है"।

उन्नीसवी सदी के मध्य में पाश्चात्य राष्ट्रों का ध्यान औद्योगिक विकास पर केन्द्रित था। 1855 मे तीसरे नेपोलियन के अनुग्रह से पैरिस मे एक विशाल अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। उसके साथ एक कलाप्रदर्शनी का विभाग था। उसमे चित्र भेजने के लिये 28 राष्ट्रो के प्रमुख कलाकारो को निमंत्रित किया गया था। इस प्रदर्शनी का आयोजन 'पाले द आर' मे किया गया और कुर्बे के प्रमुख चित्र अस्वीकृत हुए। क्रुद्ध होकर कुर्बे ने नजदीक ही 'पाविलो द रेआलिज्म[36]' नाम से अपने 40 चित्रो और 4 रेखाचित्रो की प्रदर्शनी लगायी। इसमे उन्होने अपने पुराने चित्र 'ओर्ना के दफन सस्कार' के साथ एक नया विशाल चित्र 'चित्रकार का कार्यकक्ष'[37] प्रदर्शित किया। इस चित्र के निर्माण के पीछे उनका विशेष उद्देश्य था। नवशास्त्रीयतावाद के लिये 'होरेशिया का प्रण' एव रोमांसवाद के 'मेडुसा का बेडा' का जो महत्त्व था उसी महत्त्व का क्रांतिकारी यथार्थवादी चित्र बनाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होने यह विशाल चित्र (20'×22') निर्माण किया था यह उनकी अहंकारवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण था। इस चित्र मे विस्तीर्ण कार्यकक्ष के बीच चित्रकार को चित्रण करने मे व्यस्त दिखाया है व निकट विवस्त्र स्त्री-मॉडेल और एक छोटा बालक औत्सुक्य के साथ चित्रकार के कार्य को देखते हुए चित्रित किये हैं। चित्र के बायें हिस्से में चित्रकार के अनेक मॉडेल्स विभिन्न अवस्थाओं मे चित्रित हैं व दायें हिस्से मे चित्रकार के मित्र व सग्राहक प्रशसा

व आश्चर्य के भाव लिये हुए चित्रकार के सर्जनकार्य का निरीक्षण कर रहे हैं। चित्र मे कुछ हास्यास्पद बातें होते हुए भी कुर्बे ने अपनी कुशल रगाकन शैली व अभ्यास-पूर्ण रेखाकन से उसको एक प्रभावी चित्र बनाया है। अतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी मे यह चित्र अस्वीकृत होने के अलावा और एक कारण से कुर्बे अपना अपमान नही सह सके; उसी प्रदर्शनी मे नवश,स्त्रीयतावादी चित्रकार अग्र व रोमासवादी चित्रकार देलाक्रा प्रत्येक के 40 चित्र स्वीकृत हुए थे। कुर्बे की एकल चित्रप्रदर्शनी दर्शको को आकर्षित करने मे असफल रही किन्तु देलाक्रा ने 'चित्रकार का कार्यकक्ष' चित्र की बहुत प्रशसा की। कुर्बे ने अपनी यथार्थवादी कला को 'जनतंत्रवादी कला' नाम से घोषित कर के फ्रान्स के भिन्न प्रांतो, हालैंड, बेल्जियम स्विटजलैंड व जर्मनी मे प्रदर्शित किया। योरोप के साहित्यिकों व समीक्षको ने उनकी विशेष प्रशसा की तथा उनको विदेशों मे ख्याति प्राप्त हुई। 1867 की पेरिस की अतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी मे उनके 130 चित्र व कुछ मूर्तियाँ प्रदर्शित हुई। दो साल पश्चात् फ्रान्स के राजा ने उनको राष्ट्रीय सम्मान से पुरस्कृत करना चाहा किंतु कुर्बे ने उसको अस्वीकृत किया। वे अब ससार के सब से ख्यातनाम चित्रकार हो गये थे और राजा को अपमानित करने का मौका छोडना नही चाहते थे। उनके चित्र 'नमस्ते, कुर्बे महोदय'[38] से भी उनके गर्वीले स्वभाव का परिचय होता है। इस चित्र में कुर्बे प्रकृति-चित्रण के लिये बाहर ठाट से घूमते हुए व रास्ते मे उनके चित्रो के सग्राहक अयुया उनको नम्रता से अभिवादन करते हुए दिखाये है।

फ्रान्स में गणतन्त्रराज्य की प्रस्थापना होते ही कुर्बे की राजकीय कलानिदेशक के स्थान पर नियुक्ति हुई। इस समय फ्रांस का जर्मनी से युद्ध चल रहा था। बमवर्षा से बचाने के हेतु कुर्बे ने सभी कलाकृतियो को सुरक्षित स्थान पर हटा दिया और जर्मन कलाकारो को लिखित मे निवेदन किया कि वे सब मिलकर सपूर्ण योरप की एकता व भ्रातृभाव के लिये प्रयत्न करें। जर्मन आक्रमण के सामने फ्रेंच गणतत्र का पतन हो गया एवं फ्रेंच सरकार में उथल-पुथल हो गयी। कुछ समय में ही कुर्बे के दुर्भाग्य का प्रारंभ हुआ। उनकी राष्ट्रीय सेवाओ व त्याग को भूलकर उनपर अभियोग चलाया गया तथा वादोम के राष्ट्रीय स्मारक के विनाश के लिये उनको उत्तरदायी ठहराकर उनको छः महिनों के कारावास से मुक्त होने ही कुर्बे अपने-वतन ओर्नां चले गये। वहा के लोगो ने भी उनका निषेध किया। फ्रेंच सरकार ने उन पर दुबारा अभियोग चलाने का विचार किया और वे फ्रान्स छोड कर स्विटजर्लेंड भाग गये। उनकी अनुपस्थिति में उन पर अभियोग चलाया गया और उनकी सब सपत्ति व कलाकृतियो को अधिकार मे ले लिया गया। ऐसी विपत्ति मे भी वे अत तक चित्रण करते रहे। उनकी 1877 में स्विटजर्लेंड मे मृत्यु हुई। 1919 ने उनकी जन्मशताब्दी के अवसर पर उनके शरीर के अवशेष उनके जन्म-स्थान ओर्नां लाये गये और वहाँ उनका स्मारक बनाया गया।

जीवन ने बार्बिजां चित्रकारों को आकृष्ट किया। उन चित्रकारों का कोई संघटन नहीं था; उनमें से कुछ चित्रकार बहुत काल तक वहाँ रहते और अन्य चित्रकार वहाँ समय-समय पर आकर चित्रण करते।

बार्बिजां चित्रकारों का मुख्य दृष्टिकोण था प्राकृतिक दृश्यों व ग्रामीण जीवन का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके यथार्थ चित्रण करना। उस समय कार्यकक्ष के बाहर दृश्य के स्थान पर जाकर चित्रण करना बिलकुल अनोखी बात थी। कुर्बे ने अपने बहुत से प्रकृतिचित्र कार्यकक्ष में बनाये थे यद्यपि वे अभ्यासचित्रण के हेतु बाह्य स्थानों पर जाया करते थे। वे नवकलाकारों को अक्सर उपदेश दिया करते "यदि आपको गोबर के ढेर का चित्रण करना है तो भी प्रत्यक्ष देख के करो"। बार्बिजां चित्रकार कुर्बे की तरह केवल यथार्थवादी चित्रकार नहीं थे; वे प्रकृति के काव्यपूर्ण सौंदर्य के उपासक भी थे और मिले को छोड़ मानवीय जीवन के दुःखों का विचार उनके मनमें नहीं आया।

'यथार्थवादी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है: पहले अर्थ में यथार्थवादी चित्रकार वे है जो—ऐतिहासिक कथाओं, पुराणों, काल्पनिक विषयों या राजा व सत्ताधारी वर्ग को छोडकर—सामान्य जनता की, उसके सुख-दुःख की कहानियों को चित्रित करते है; दूसरे अर्थ में यथार्थवादी चित्रकार वे हैं जो मानव या वस्तुओं को आदर्श या काल्पनिक रूप में चित्रित करने के बजाय नैसर्गिक रूप में चित्रित करते है। पहला अर्थ चित्रकला के विषय से संबंध रखता है तो दूसरा अर्थ अभिव्यक्ति से। बार्बिजां चित्रकार दूसरे अर्थ में यथार्थवादी थे। उनकी आत्मा कवि की थी और वे प्रकृति के निष्काम पुजारी थे। प्रकृति के निरुपम सौंदर्य के दर्शन के अतिरिक्त उनके चित्रों में कोई संदेश या प्रचार नहीं था। उन्होंने वृक्ष, मैदान, पहाड़, नदी, आकाश आदि प्रकृति के अंगों को विभिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया। उनके चित्रों में सर्वत्र शांति व प्रसन्नता का साम्राज्य है। उन्होंने सुन्दर को ही सत्य माना।

1830 व 1840 के बार्बिजां चित्रकारों ने कड़े परिश्रम के साथ कार्य किया। आरम्भ में गवार कह कर उनका उपहास किया गया किंतु धीरे-धीरे उनके चित्र राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में स्वीकृत होने लगे। उनमें से कुछ चित्रकारों को पुरस्कार प्राप्त हुए। 1850 के करीब उनके चित्र लोकप्रिय होकर बिकने लगे तथा उनको आर्थिक सुस्थिति प्राप्त हुई। प्रभाववादी चित्रकारों के प्रकृतिचित्रों के सामने बार्बिजां चित्रकारों के चित्र तुच्छ प्रतीत होते है, किन्तु प्रकृति में जाकर स्थान पर चित्रण करने की प्रथा को बार्बिजां चित्रकारों ने जन्म दिया और उससे प्रेरणा लेकर प्रभाववादी चित्रकार आगे बढ़े। बार्बिजां चित्रकारों में से रूसो, दोबिन्यी, द्युप्र व त्रायो प्रकृतिचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध थे जिनमें से रूसो व दोबिन्यी विशेष ख्यातनाम हुए।

तेग्रोदोर रूसो (1812–1867)

बार्बिजा चित्रकारों में रूसो सबसे उत्साही थे और उनसे अन्य चित्रकारों का प्रेरणा मिलती थी। जब वे पैरिस की कला-शिक्षासंस्था के विद्यार्थी थे तभी से वे प्रचलित कलासम्प्रदाय से घृणा करने लगे। 1834 में उनका एक चित्र राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ परन्तु उसके पश्चात् 1848 तक प्रदर्शनी के सत्ताधारियों की राजनैतिक चालबाजियों से उनके चित्र स्वीकृत नहीं हुए। परन्तु प्रकृतिचित्रण से रूसो को कोई रोक नहीं सकता था। उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों और तृणों के आकारों की विशेषताओं का गहराई से निरीक्षण किया। उनके चित्रों में मैदान, खेत, वृक्ष, झरना आदि प्रकृति के अंग उनके शास्त्रशुद्ध अध्ययन के कारण पूर्ण नैसर्गिक व आकार में ठोस दिखायी पड़ते हैं। छाया प्रकाश जैसे प्रकृति के चंचल तत्वों को उन्होंने विशेष महत्व नहीं दिया। व्यक्तिचित्रकार मानव-शरीर-रचना का जैसे सूक्ष्म अध्ययन करता है उसी प्रकार रूसो ने प्रकृति के अंगप्रत्यंगों का अध्ययन किया और उसी वजह से उनके चित्रों में हर वस्तु स्वतन्त्र रूप से अपना व्यक्तित्व बतलाती है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को उन्होंने सचेत माना व उसका सहानुभूतिपूर्ण ढंग से स्वाभाविक चित्रण किया जैसे कि कोई मूर्तिकार देवता की प्रतिमा बनाता है। विकास, ऋतुपरिवर्तन आदि प्रकृति के नियमों की सामर्थ्य को उन्होंने पहचाना, उसके कलात्मक महत्व को अनुभव किया और देखा कि उसके सामने कला के साम्प्रदायिक नियमों का पालन आवश्यक नहीं है। उन्होंने इतनी आत्मीयता से चित्रण किया कि चित्र को भावपूर्ण बनाने के लिये उनको कल्पना का सहारा नहीं लेना पड़ा। दर्शन, चिंतन और स्पष्टीकरण उनके लिये विशेष महत्व नहीं रखते थे क्योंकि उनकी कला प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित थी।

फौंतेनब्लो वन की सीमा पर कुटिया में रह कर निर्वाह के लिए अधिक खर्च की आवश्यकता नहीं थी। 1848 में रूसो के चित्र राष्ट्रीयकला प्रदर्शनी में स्वीकृत हुए और वे एक सफल चित्रकार बने। उनके चित्र बिकने लगे। बार्बिजा में उन्होंने एक मकान खरीदा और वे वहाँ अन्त तक रहे।

शार्ल दोबिन्यी (1817–1878)

बार्बिजां प्रकृति-चित्रकारों में दोबिन्यी सब से अधिक लोकप्रिय हुए, यद्यपि वे रूसो को अग्रणी मानते थे। बार्बिजां चित्रकारों के प्रकृति-चित्रण को विशेष रूप प्रदान करने में रूसो के नेतृत्व से दोबिन्यी की अंकनशैली अधिक प्रभावी रही। बार्बिजां के अन्य प्रकृति-चित्रकारों की ख्याति घट जाने के पश्चात् भी दोबिन्यी की लोकप्रियता बढ़ती गयी और उनका भावी चित्रकारों पर बहुत प्रभाव पड़ा। दोबिन्यी व रूसो के प्रकृति-चित्रण में बहुत अन्तर है। दोबिन्यी ने प्रकृति को कवि की दृष्टि से देखा तथा वैसे ही काव्यमय चित्रित किया। दोनों में से किसी ने भी प्रकृति को काल्पनिक रूप नहीं दिया। रूसो प्रत्येक वस्तु का बारीकियों के साथ निरीक्षण करके समूचे आकार को ठोस व नैसर्गिक रूप प्रदान करते जबकि दोबिन्यी

ख्याति में चार चाँद लगा दिये। प्रसिद्ध आधुनिक चित्रकार वान गो, बेल्जियन अभिव्यंजनावादी चित्रकार कॉन्स्टंट पर्मीक, गुस्टाव डि स्मेट व यान स्लुइटस के किसान-जीवन के चित्रों का उद्गम मिले की चित्रकला है। वान गो के प्रसिद्ध चित्र 'बीज बोनेवाला'[46] उसी शीर्षक के मिले की चित्र की आधुनिक आवृत्ति मान सकते है। उपरिनिर्दिष्ट सभी चित्रकारों ने मिले का अनुकरण करके कृषकों के परिश्रम से कठिन व गठीले शरीरों को पत्थर की मूर्तियों के समान ठोस व स्मारकीय रूप प्रदान किया। अभिव्यंजनावादी कला के आवेशपूर्ण रेखांकन का आरम्भिक रूप हमें मिले के चित्रों मे देखने को मिलता है। 'सामाजिक यथार्थवादी' कला के लिये मिले सदैव प्रेरणा रूप रहे। 'बीज बोनेवाला' की भाँति उनका चित्र 'खान-मजदूर'[47] भी बहुत जोशपूर्ण व गतित्वयुक्त बन गया है। कर्णवत् दिशा में गतिमान रेखाओं की योजना, मजदूरों के ऊबड़खाबड़, गठीले शरीरों का अंकन व प्रकाश का संयोजन कुशलतापूर्ण व प्रभावी है।

कामीय कोरो (1796–1875)

कोरो ने अन्य बार्बिजा चित्रकारों की तरह स्वयं को प्रकृति-चित्रण में सीमित नहीं रखा, बल्कि व्यक्तिचित्र व काल्पनिक चित्र भी बनाये। कलाक्षेत्र में क्रान्ति करने के उद्देश्य से वे प्रेरित नहीं हुए थे, अपनी इच्छानुसार वे आत्मसंतोष के लिये चित्रण करते थे। बार्बिजा चित्रकारों के समान वे कभी प्रकृति में जा कर प्रत्यक्ष चित्रण करते, अतः उनको बार्बिजा चित्रकारों मे सम्मिलित करते है। उनको किसी विशिष्ट शैली के चित्रकार मानना कठिन है। वे बहुत ही विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे और अपने विचारों को दूसरों पर लादने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। कोरो पूर्ण शांति से काम करना चाहते और वे आत्मश्लाघा से इतने परे थे कि उनके पिता को उनकी योग्यता के बारे मे तब मालूम पड़ा जब उनको उम्र के 50वें साल में फ्रेंच सरकार ने राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया। तब तक उनके पिता यही समझते थे कि कामीय केवल मन बहलाने के लिये फुरसत में चित्र बनाता है।

कामीय कोरो का जन्म एक सधन परिवार में हुआ। उनके पिता टोपों के व्यापारी थे। कामीय इतने सीधे सादे व सरल स्वभाव के थे कि सफल व्यापारी होना उनके लिये असंभव था। अपने चित्रकारी के व्यवसाय मे भी लगभग 50वें साल तक वे एक भी चित्र बेच नहीं सके। तब तक निर्वाह के लिये वे अपने पिता पर निर्भर थे। उसके पश्चात् वे राष्ट्रीय सम्मान से आभूषित किये गये और उनको ख्याति प्राप्त हुई। अब उनके चित्र काफी तादाद में बिकने लगे और उनको इतनी अर्थ-प्राप्ति होने लगी जितनी उनके पिता को शायद ही कभी उनके व्यापार मे हुई हो।

प्रारंभ मे पिता की आज्ञानुसार कोरो पेरिस के किसी कपड़ों के व्यापारी की दूकान मे अनुभव प्राप्त करने के हेतु लिपिक के रूप में काम करने लगे। इस काम में कोरो का दिल नहीं लगता था और वे मन ही मन जलने लगे। अन्त में वहीं

हिम्मत करके उन्होने पिता से निवेदन किया कि चित्रकारी के अलावा कोई अन्य काम उनसे नही हो सकता, तब उनके पिता ने भी सहानुभूतिपूर्वक सब सहायता करने का आश्वासन दिया व विल द आव्रे मे छोटा-सा मकान दिलाकर नियत-कालिक अर्थ-प्रबंध किया।

कोरो ने 1824 की फ्रेंच राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी मे इंग्लिश प्रकृति-चित्रकार कॉन्स्टेबल के चित्र देखे और वे उनसे बहुत प्रभावित हुए। अब कॉन्स्टेबल के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति को गुरु मान कर चित्रण करने का उन्होने निश्चय किया। दूसरे वर्ष रोम जाकर उन्होने शहर के दृश्य-चित्र व समीपवर्ती प्रदेश के प्रकृति-चित्र बनाये। इसी प्रकार प्रकृति-चित्रण के लिये कोरो भ्रमण करते और फिर लबे समय के लिये वापस आ कर कार्य-कक्ष मे चित्रो को पूर्ण करत तथा बार्बिजां चित्रकारो के साथ स्थानीय प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करने जाते। वैसे देखा जाये तो कोरो विल द आव्रे की अपनी कुटिया के एकात मे रमणीय प्राकृतिक दृश्यो को हलके व मुलायम रगो में चित्रित करना अधिक पसद करते। हलके व कोमल रगाकन के पीछे कोरो का रेखांकन का गहरा अध्ययन व कौशल छिप नही सकते।

1850 के करीब ख्याति प्राप्त होने पर कोरो अधिक लगन से और प्रचुर मात्रा मे चित्रनिर्मित करने लगे। 1855 मे फ्रान्स के राजा को उनका एक प्राकृतिक दृश्य बहुत पसद आया और उन्होने उसको खरीदा। अब कोरो जितने चित्र बनाते वे सब खरीदे जाते और इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी शैली के जाली चित्र बना कर उनके नाम से बिकने लगे। कहा जाता है कि जब एक निर्धन व्यक्ति जाली चित्र बेचने के सशय मे पकड़ा जाकर कोरो के पास लाया गया तब कोरो ने दया-लुता से चित्र पर हस्ताक्षर करके उस व्यक्ति को मुक्त कराया। कोरो बहुत ही कोमल स्वभाव के थे और सदैव दूसरो की सहायता करने मे तत्पर रहते। उनका रहनसहन सीधासादा था। वे आजीवन अविवाहित रहे। अर्थार्जन का उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि उससे वे गरीबो की सहायता करने का आनद प्राप्त कर सकते थे। आवश्यकता के बारे मे पूछताछ किये बिना उन्होने कई कलाकारों की सहायता की। दूसरो की सहायता कोरो ऐसे अप्रत्यक्ष रूप से करते कि उपकृत व्यक्ति उपकार का बोझ महसूस नही करता। चित्रकार दोमीय को वृद्धावस्था मे किराया देने में असमर्थ होने के कारण वाल्मादुवा का मकान छोड़ना पड़ा तब कोरो ने उनको पत्र लिखा "मेरे प्रिय मित्र, वाल्मादुवा मे मेरी छोटी कुटिया है और मेरी समझ मे नही आ रहा है कि उसका क्या किया जाय। अतः मैं उसको आप ही को दे रहा हूं। इसमें मैं आपके लिये कुछ नही कर रह हूं। मेरा केवल आपके दुष्ट मकान मालिक को झुंझलाने का उद्देश्य है।" इस प्रकार कुटिया को दान के रूप में देकर कोरो ने दोमीय को कठिनाई से मुक्त किया।

कोरो के प्रकृतिचित्रो के घनरूप व सरलीकृत आकार हमको पुर्सें का स्मरण दिलाते है। कोरो की कला को हम पुर्सें की शास्त्रशुद्ध शैली व घनवाद के बीच

महत्वाकांक्षी नहीं होते हुए भी कोरो कार्यव्यस्त थे। उन्होंने काफी भ्रमण किया। वे राष्ट्रीय प्रदर्शनी की निर्णायक समिति के सदस्य रहे और कलाक्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करके उन्होंने सम्मान का स्थान प्राप्त किया। इतना होते हुए भी वे चिंतनशील व निरपेक्ष थे।

आयु के उत्तरकाल में कोरो 'बाबा कोरो' नाम से प्रसिद्ध हुए। वे निर्धन कलाकारों की आर्थिक सहायता करते, असफल व निराश कलाकारों को सहानुभूति के साथ समयोचित उपदेश करते व मार्गदर्शन करते। कोरो अंत तक चित्रण करते रहे। कुछ दिनों की कमजोरी के बाद जब एक रोज सवेरे उनको नाश्ता करने को कहा गया तब वे बोले "आज बाबा कोरो ऊपर नाश्ता करेंगे"; वही उनकी आयु का अंतिम दिन था। अंत से पहले वे आकाश की ओर देख कर बोले "मुझे ऐसा लगता है कि आकाश का चित्रण कैसे करना चाहिये यह मैंने कभी नहीं जाना। वहाँ देखो आकाश कितना गुलाबी, गहरा व पारदर्शक है। कलाप्रेमियों के लिये मेरे सामने के क्षितिजों को चित्रित करने को मैं कितना उत्सुक हूँ।"

इस अध्याय में हमने गोया, देलाक्रा, कुर्बे आदि चित्रकारों की कला का अध्ययन किया और देखा कि आधुनिक कला के प्रारम्भिक चरणों की आहट उनकी कला में सुनने को मिलती है। इन महान् चित्रकारों से प्रेरणा पाकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रभाववादी चित्रकार उत्साह व निश्चय के साथ आगे बढ़े और उन्होंने आधुनिक कला की नींव डाली। परम्परागत शास्त्रोक्त नियमों का अध्ययन कला को सामर्थ्यवान बनाने में व कलाकार के पथप्रदर्शन में कितना उपयुक्त है यह आधुनिक कलाकारों ने दाविद् व आँग्र से सीखा, देलाक्रा से विशुद्ध रंगांकन व निर्भीक तूलिकासंचालन पर बल देना सीखा, और कुर्बे से उनको ज्ञान हुआ कि वास्तवसृष्टि व यथार्थ मानव जीवन, सौन्दर्य व सर्जनशील अनुभूतियों से इतना ओतप्रोत है कि चित्रण के लिये काल्पनिक या आदर्श विषयों की आवश्यकता नहीं है। प्रसन्नचित्त व आत्मसंतुष्ट रह कर निष्कामभाव से कलासाधना करने से कितनी सफल कलानिर्मिति की जा सकती है इसकी ओर कोरो ने निर्देश किया। कलानिर्मिति की सार्थकता निरपेक्ष साधना में ही है न कि उसकी सामाजिक मान्यता में या आर्थिक फलप्राप्ति में।

प्रभाववादी चित्रकारों को अपने कलासम्बन्धी सिद्धांतों को प्रस्थापित करने के लिये जो त्याग व संघर्ष करने पड़े उसका अध्ययन हम स्वतन्त्र अध्याय में करेंगे।

□□□

2
प्रभाववाद

आधुनिक योरपीय साहित्य एवं कला एक दूसरे से इतने प्रभावित रहे है कि समान नवविचारों के आंदोलनो से दोनों एक साथ प्रेरित होते दिखाई देते हैं। आधुनिक चित्रकार के अध्ययन मे समकालीन साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन बहुत सहायक रहता है। क्रान्तिवादी साहित्यिको व कवियो ने कला के अन्तर्गत प्रारम्भ हुए नवीन प्रवाहों के महत्व को पहचाना एव नवीन विचारों द्वारा कला के विकास को गति प्रदान करके महत्वपूर्ण योगदान किया। साहित्यिकों के समान कलाकारों में स्वतन्त्र विचारों से अपने कलाविषयक ध्येय को पूर्वनियोजित करने की प्रवृत्ति बढती गयी। आधुनिक कला व प्राचीन कला में यह एक महत्वपूर्ण अन्तर है कि प्राचीन कलाकार अपनी कला के ध्येय के निर्णय के लिए धर्माधिकारियो, राजाओं व सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर रहते थे जबकि आधुनिक कलाकारो ने अपनी कला के ध्येय को निश्चित करने का अधिकार अपने हाथ मे ले लिया।

चित्रकला मे जिस समय प्रभाववाद का उदय हो रहा था, समकालीन साहित्य प्रभाववाद की ओर विकासशील था। दोनों विषय के महत्व को ठुकरा दिया था। साहित्य मे लेखक किसी वास्तविक, किन्तु बिलकुल मामूली, दैनन्दिन प्रसग को लेकर लेखनशैली से उसको प्रभावपूर्ण बनाते थे तो चित्रकला में चित्रकार किसी भी साधारण दृश्य—जैसे कि कोने मे अस्तव्यस्त पड़ी वस्तुएँ, स्वाभाविक अवस्था में बैठा हुआ सामान्य आदमी वगैरह को लेकर चित्रण करते थे। उनका मूल सिद्धान्त यह था कि चराचर सृष्टि के दृश्य, घटनाएँ, प्रसंग सौन्दर्य से ओतप्रोत है और कलाकृति के निर्माण के लिए किसी काल्पनिक या महत्वपूर्ण विषय के होने की आवश्यकता नहीं है। कलात्मक सर्जन मुख्य रूप से आत्मनिष्ठ है वस्तुनिष्ठ नही। भावनाओं की जागृति प्रत्यक्ष रूप से कलाकार की मानसिक अवस्था से सम्बन्ध रखती है विषय से नही। सक्षेप में समस्त सृष्टि को विषय के रूप मे स्वीकार कर कलाकार अधिक सौन्दर्यवादी एवं आत्मकेन्द्रित हो गया।

प्रभाववादी चित्रण के लिए कलाकार प्राकृतिक या शहरी दृश्यो एवं दैनिक जनजीवन के सामान्य घरेलू या सामाजिक प्रसंगो को चुनते थे और इस विचार से कुछ विद्वान् प्रभाववाद को यथार्थवाद का ही परिवर्तित रूप मानते है। इसके अतिरिक्त उनके दृष्टिकोण में प्रभाववाद मे ठोस आकार रचना या अभिव्यंजना—जो आधुनिक कला की प्रमुख विशेषताएँ है—नही होने के कारण उसको आधुनिक कला के अन्तर्गत

को छोड़ देने से माने अपने चित्रों में नैसर्गिक प्रकाश के प्रभाव को अंकित करने में सफल हुए। चित्रित की गयी मानवाकृतियां तथा वस्तुएं ऐसी दिखाई देती हैं मानो चित्रकार ने प्रत्यक्ष देखकर उनकी प्रतिकृतियां बनायी हों। चित्र की रंगांकित पृष्ठभूमि को चिकना बनाने की प्रथा को तोड़ कर माने ने तूलिकासंचालन की स्पष्टता को कायम रखा। उन्होंने परम्परागत विषयों को छोड़कर दैनन्दिन जीवन को विषय के रूप में चुना और कल्पना से चित्रण करने के बजाय प्रत्यक्ष देखकर चित्रण प्रारम्भ किया। 'ग्रालिम्पिया'[3] देवता के चित्रण के लिए उन्होंने किसी स्त्री को मॉडेल के रूप में बिठाया तथा 'तृण पर भोजन' में अपने मित्र व एक स्त्री मॉडेल को देख के मानवाकृतियां चित्रित कीं, पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हुए दोनों चित्रों के विषय समकालीन दैनन्दिन जीवन के प्रसंग हैं। इससे माने ने सिद्ध किया कि प्राचीन कल्पनाओं को लेकर आधुनिक विषयों द्वारा समकालीन जीवन का सजीव चित्रण किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु को स्वतन्त्र रूप में ठोस चित्रित करने के बजाय पूरी चित्रभूमि को हलके गहरे क्षेत्रों में विभाजित करके, उन सभी क्षेत्रों का सन्तुलित व सुसंगतिपूर्ण संयोजन करने पर माने ने अपना ध्यान केंद्रित किया जिससे माने के चित्रों का सम्पूर्ण प्रभाव रचनात्मक व मनोहर बन गया है।

प्राचीन चित्रकार विषय के प्रतिपादन से दर्शकों को आकर्षित करते थे जबकि माने ने कलाप्रेमियों का ध्यान चित्र के कलात्मक गुणों की ओर खींचा। माने के चित्र के सम्मुख दर्शक प्रथम चित्र के कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध हो जाता है और चित्र के विषय के बारे में बाद में विचार करने लगता है। माने के चित्र 'तृण पर भोजन' में भी यह विशेषता है। इस चित्र की तुलना ज्योर्जिग्रोन के चित्र 'चरागाह में समूह-संगीत'[4] से करने पर यह बात स्पष्ट होती है। ज्योर्जिग्रोन के चित्र को देखते समय दर्शक की निगाह प्रत्येक वस्तु व व्यक्ति को स्पष्ट व क्रमशः देखती है जबकि माने के चित्र का पूरा दृश्य एक ही दृष्टिपात में दिखाई देता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि माने ने विषय का महत्व कम करके अंकनशैली पर अधिक बल दिया। हो सकता है कि इस प्रकार की अंकनपद्धति को अपनाने में माने को छायाचित्रणकला से प्रेरणा मिली हो। माने की अंकनपद्धति में और एक विशेषता थी। वे पूरे क्षेत्र को प्रथम हलके रंग से अंकित करते और बाद में गहरे रंगों के छोटे क्षेत्रों को ऊपर से दबाते। यह परम्परागत रंगांकनपद्धति के ठीक विपरीत था। परम्परागतपद्धति में प्रथम सबसे गहरे क्षेत्रों को अंकित करके बाद में हलके क्षेत्रों को क्रमशः अंकित किया जाता था। माने की रंगांकन पद्धति में यह लाभ था कि उससे छाया के हिस्से चमकीले व पारदर्शक दिखाई देते। किंतु परम्परावादियों ने माने पर अज्ञान व अकुशलता का आरोप किया।

माने के चित्र 'तृण पर भोजन' का निंदा का विषय होने का और भी कारण था। माने की मौलिक चित्रणशैली से उतना उत्पात नहीं हुआ जितना कि उस चित्र में एक विवस्त्र स्त्री को दो वस्त्रधारी पुरुषों के साथ चित्रण करने से हुआ। इससे

पैरिस के प्रतिष्ठित लोगों की सदभिरुचि को धक्का पहुँचा। राजा ने घोषित किया कि यह चित्र असभ्यता का परिचायक है। किंतु निकट की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में काबानेल के 'विवस्त्र वीनस' चित्र की बहुत प्रशंसा हुई और राजा ने उसको खरीदा। परंपरागत विचारों के अनुसार देवताओं, अप्सराओं व पौराणिक स्त्रीपुरुषों के विवस्त्र अवस्था में चित्र बनाने में कोई अश्लीलता नहीं थी किंतु सामान्य स्त्री का विवस्त्र अवस्था में—और वह भी पोशाक पहने हुए पुरुषों के साथ चित्रण बिलकुल अनोखी बात थी। अतः सभी विरोधी सहमत थे कि ऐसा चित्रण करनेवाला जरूर कोई विकृत मनोवृत्ति का चित्रकार होगा। माने के समर्थकों ने प्रमाणित किया कि करीब 300 वर्ष पूर्व ज्योर्जिओन ने अपने चित्र 'चरागाह में समूह-संगीत' में दो विवस्त्र महिलाओं का सवस्त्र पुरुष के साथ चित्रण किया था। किंतु ज्योर्जिओन के स्त्रीपुरुष पूर्णरूप से काल्पनिक थे जबकि माने के स्त्रीपुरुष ऐसे लग रहे थे जैसे कि हम किसी समकालीन प्रसंग का प्रत्यक्ष चित्रण देख रहे हैं। माने के समर्थकों ने यह भी सिद्ध किया कि माने ने राफ़ेल के प्रसिद्ध चित्र 'पैरिस का निर्णय'[5] के एक हिस्से में चित्रित किये गये तीन देवताओं के समूह का अनुकरण करके चित्र बनाया था; परन्तु ऐसे पौराणिक विषय के उदाहरण से माने दोषमुक्त नहीं हो सकते थे।

दो साल पश्चात् माने का सुविख्यात चित्र 'आलिम्पिया' फ्रेंच राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में दिखाया गया। यह चित्र इतना विस्फोटक रहा कि कलामशालय ने चित्र की रक्षा के लिये सिपाही की नियुक्त की। वस्तुतः इस चित्र का विषय प्राचीन था और शय्या पर लेटे हुए सौंदर्य की देवता या स्त्री का नग्न अवस्था में चित्र अब तक कई चित्रकार बना चुके थे और उसमें समीप खड़ी हुई दासी को भी चित्रित किया जाता था। रुबेन्स व गोया के इस विषय के चित्र प्रसिद्ध हैं। किंतु टिशियाँ के चित्र 'अर्बिनो की वीनस'[6] से यह चित्र बहुत मिलता जुलता है। माने का अक्षम्य अपराध यह था कि उन्होंने समाज में कुख्यात स्त्री का चित्र बना के 'आलिम्पिया' देवता के नाम से उस चित्र को प्रदर्शित किया था। सत्य को इस प्रकार प्रकाशित करने में धृष्टता थी क्योंकि इससे पैरिस के अनैतिक जीवन की स्पष्ट रूप से निंदा की जा रही थी। आलिम्पिया के मुख पर ऐसे भाव चित्रित किये गये थे जैसे कि किसी वेश्या के चेहरे पर होते हैं। यहाँ नग्न सत्य का दर्शन था और उसके साथ प्रतिष्ठित माने गये व्यक्तियों की पाखंडी वृत्ति का गर्भित उपहास भी।

'आलिम्पिया' माने की पूर्ण विकसित शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चित्र को दो मुख्य समतल क्षेत्रों में विभाजित किया है—गहरी पृष्ठभूमि और हलकी अग्रभूमि—एवं छायाप्रकाश व घनत्वांकन को लगभग पूर्णतः हटा दिया है। अग्रभूमि में शय्या, तकिया, चादर एवं आलिम्पिया की आकृति मानो केवल एक हलकी रेखा से ही अंकित की है। कृष्णवर्ण दासी की अर्धाकृति काली पृष्ठभूमि में अस्पष्ट सी दिखाई दे रही है। चित्र के विषय से भी अधिक चित्र का आकार-सौंदर्य और

हलके गुलाबी, हरे, पीले एवं धूसर रंगों की मनोहर रंग-संगति दर्शक को मोह लेती है। छायाप्रकाश, घनत्व, वर्ण आदि नैसर्गिक रूप के गुणों के विकास के शास्त्रोक्त सिद्धांतों के द्वारा सादृश्य पर बल देने के बजाय माने ने आकारसौंदर्य, रंग-संगति, रचना-कौशल आदि विशुद्ध कलात्मक गुणों के विकास को महत्त्व दिया था। आगे चल कर बीसवी शताब्दी में माने के इस दृष्टिकोण की परिणति वस्तुनिरपेक्ष कला के निर्माण में हुई अतः माने की कला कुर्बे व मिले के यथार्थवाद से भिन्न है क्योंकि उन दोनों की कला में जीवनसंबंधी किसी विचार को लेकर चित्रण किया गया है। कुर्बे के यथार्थवाद के बारे में उनके मित्र कास्तान्यारी ने लिखा है "कुर्बे व प्रूदों का दृष्टिकोण कला की दृष्टि से अयोग्य है; कला का किसी विचारधारा से संबंध नहीं होता"। अतः माने की कला को कुछ समीक्षक वास्तविकतावादी या वस्तुनिष्ठ यथार्थवादी मानते हैं। वास्तविकतावादी कलाकार यथार्थवादी कला को केवल प्रचार या विचार प्रदर्शन मानते है। वास्तविकतावादी कलाकार स्वयं को वस्तु के बाह्य सौंदर्य में सीमित रखते है और उनकी कलानिर्मिति के पीछे 'कला के लिये कला' का भाव छिपा रहता है; बाह्य रूप के सौंदर्यदर्शन के अतिरिक्त उनकी कला में कोई वैचारिक अभिप्राय नहीं होता। वस्तुनिरपेक्ष कला इसी विचारधारा का आत्यंतिक रूप है जिसमें वस्तु के अस्तित्व के विचार को भी स्थान नहीं दिया जाता। 'आलिम्पिया' चित्र का सौंदर्यग्रहण इसी विचारधारा को समझ कर किया जाना चाहिये। इस चित्र का दर्शक पर होनेवाला प्रभाव दृश्य के प्रथम दृष्टिपात में होनेवाले प्रभाव के समान है। प्रथम दृष्टिपात से मिलने वाला अनुभव केवल सौंदर्यजनित होता है —न कि बौद्धिक—और माने की कलाकृति से मिलने वाला आनंद ऐसा ही है। टिशिआ ने 'अर्बिनो की वीनस' में स्त्रीशरीर के आकर्षक सौंदर्य व उसके पीछे छिपे हुए प्रकृति के चिरकालीन सत्य को साकार किया है जबकि 'आलिम्पिया' द्वारा माने ने एक ही क्षण में बंधे हुए दृश्य सौंदर्य को पुनरनुभूत कराया है। माने के साथ कला में पुनर्जागरण काल से चलती आयी बौद्धिकता का महत्त्व घटता गया और विशुद्ध सौंदर्य का महत्त्व बढ़ता गया। विषयप्रतिपादन के विचार से भी 'आलिम्पिया' का सामर्थ्य उपेक्षणीय नहीं है यद्यपि माने ने इस चित्र को निर्मित कथनात्मक उद्देश्य से नहीं की थी। स्त्रीशरीर का मोहक सौंदर्य चित्र का विषय था और सौंदर्यानुभूति माने की कला का प्रमुख लक्ष्य होने के कारण विषयप्रतिपादन के विचार से भी चित्र प्रभावी बन गया है।

एद्वार माने का जन्म 1832 में एक सधन परिवार में हुआ। उनके पिता न्यायाधीश थे। बचपन में ही एद्वार चित्रकार बनना चाहते थे और मातापिता से कहते कि इस विचार में यदि वे उनको अनुमति नहीं देंगे तो वे मुमद्री यात्रा में शामिल होकर कहीं चले जायेंगे। मातापिता ने एद्वार को रियो-डि-जानेरो भेज दिया और सोचा कि इस सागर-परिभ्रमण के अनुभव से शायद वे अपने निश्चय से परावृत्त होंगे। किंतु इसका परिणाम बिलकुल विपरीत हुआ और चित्रकार बनने

का माने का निश्चय अधिक पक्का हो गया। अंत में पिता की संमति से वे चित्रकार कुत्युर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। छः साल के अध्ययन से माने परम्परागत अंकनपद्धतियों से परिचित हो गये किंतु उससे वे संतुष्ट नहीं थे और लूव्र संग्रहालय जा कर उन्होंने विख्यात कलाकृतियों का अध्ययन किया। बाद में वे जर्मनी व हालैंड गये जहाँ फ्रान्स हाल्स की स्वच्छंद अंकनशैली से वे बहुत प्रभावित हुए। इटाली जा कर उन्होंने पुनर्जागरणकालीन ख्यातनाम कलाकारों एवं वेलास्केस के चित्रों का अध्ययन किया जिनमें से वेलास्केस का माने पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा।

आरंभ से ही माने यथार्थवाद की ओर आकृष्ट थे। वे जब कुत्युर के मार्गदर्शन में अध्ययन कर रहे थे तब कुर्बे यथार्थवादी कलानिर्मिति में व्यस्त थे। माने चित्रशालेय वातावरण में परेशान थे और वे जब स्वतंत्र विचार से चित्रण करते तब कुत्युर उपहास के साथ कहते "तुम तो केवल अपने समय के दोमीय हो पाओगे।" माने रूढ़िबद्ध शिक्षा से कितने ऊब गये थे यह उनके निम्न कथन से स्पष्ट होता है; वे कहते "मेरी समझ में नहीं आता कि मैं यहाँ क्यों हूँ। आसपास जहाँ भी देखो सब हास्यास्पद बातें हो रही है। कृत्रिम प्रकाश कृत्रिम छाया! जब मैं चित्रशाला में प्रवेश करता हूं, मुझे ऐसा लगता है कि मैं कब्र में प्रवेश कर रहा हूं।" असंतुष्ट होने पर भी माने ने दृढ़ता से वहाँ का नियमबद्ध अध्ययन जारी रखा और उससे यह लाभ हुआ कि उनके स्वच्छंद चित्रण में भी आकारों व रेखाओं में ऐसा डौल व लय है जो परिश्रम से ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

कुत्युर व उनके अनुयायियों के यथार्थवाद के बारे में क्या विचार थे यह उनकी चित्रशाला में चित्रित किये गये 'यथार्थवादी' चित्र से अवगत होता है। इस चित्र में एक गंवार पोशाक वाला व्यक्ति ग्रीक मूर्ति के शीर्ष पर बैठ के मरे हुए सूअर का चित्र खींचते हुए दिखाया गया है। 1859 में जब माने ने अपना चित्र 'एब्सिंथ पीनेवाला'[7] राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी के लिये भेज दिया तब कुत्युर ने उसको देख कर उपहास के साथ कहा "यह किसी एब्सिंथ पीनेवाले ने बनाया होगा"। इस चित्र के बारे में माने ने लिखा है "मैंने पेरिस में ऊँचा टोप पहने हुए किसी निर्धन, घुमक्कड़ को देखा और उसको वेलास्केस की सरलीकृत शैली में चित्रित किया"। वेलास्केस से माने बहुत प्रभावित थे। माने का यह चित्र स्वीकृत नहीं हुआ।

1862 में पेरिस में स्पेनिश नर्तकों व वादकवृंदों के कार्यक्रम हो रहे थे और माने ने प्रत्यक्ष देख कर उनके कुछ तैलचित्र व रेखाचित्र बनाये। ये चित्र माने ने 1863 की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी से पहले मार्तिने कलावीथिका में प्रदर्शित किये। चमकीली स्पेनिश रंगसंगतियां माने को बहुत पसंद आयी थी और उनके अनुसार माने ने इन चित्रों में काले या धूसर रंगों के ऊपर विशुद्ध रंगों के प्रयोग किये थे जिससे ऊपर के रंग अधिक चमकीले दिखाई दे रहे थे। चमकीले रंगों के इन प्रयोगों को समीक्षकों ने हीन अभिरुचि का लक्षण माना व लोला नाम की नर्तकी के व्यक्तिचित्र[8] की बहुत निंदा हुई। इस प्रदर्शनी के बाद माने ने जब अपने चित्र 'तृण पर

भोजन' को 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' में दिखाया तब-जैसे हम पहले देख चुके है— बड़ा प्रक्षोभ हुआ। इस प्रदर्शनी के बाद राजा ने नवकलाकारों के प्रति अपनी उदारता को सीमित रखा और 1864 मे 'अस्वीकृत चित्रकारो की प्रदर्शनी' के बजाय कुछ अस्वीकृत चित्रो को प्रदर्शित करने के लिये राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का एक कक्ष आरक्षित किया गया। तीन चौथाई निर्णायकों का चुनाव पुरस्कृत कलाकारो द्वारा कराने का नियम बनाया गया।

1865 को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में माने का चित्र 'आलिम्पिया' स्वीकृत हुआ और कास्तान्यारी ने उसको 'ताश का पत्ता' कह कर निंदा की। 'आलिम्पिया' की निंदा के बाद माने स्पेन गये। वहाँ का रंगीला जीवन देखने को वे उत्सुक थे। किंतु वहाँ की परिस्थिति को प्रत्यक्ष देखकर वे निराश हो गये। कल्पना व यथार्थ दोनों सदैव एक दूसरे से परे होते है। 1866 की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे उनका चित्र 'बासुरीवाला'[9] अस्वीकृत हुआ किंतु 1868 मे उनके दो चित्र 'तोतेवाली स्त्री' व 'एमिल जोला'[10] स्वीकृत हुए। एमिल जोला माने की चित्रकला के प्रशंसक थे और उन्होने माने पर एक पुस्तक लिखी थी। जोला के व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि में दीवार पर 'आलिम्पिया' की प्रतिकृति व जापानी छापचित्र लगाये है। जापानी छापचित्रो का प्रभाववाद के इतिहास मे विशेष स्थान है। योरपीय चित्रकारों को जापानी छापचित्रो का परिचय आकस्मिक रूप से हुआ। जापान से जो चीनी मिट्टी के पात्र योरप जाते थे वे पुराने कागजो मे लपेटे हुए होते थे और इन कागजों पर कभी जापानी कलाकार होकुसाई व हिरोशिगे के छापचित्र हुआ करते। इन छापचित्रों से कुछ योरोपीय कलाकार इतने प्रभावित हुए कि इन छापचित्रो को प्राप्त करने के हेतु चीनी मिट्टी के पात्र मगाये जाने लगे। पैरिस के एक विक्रेता ने साहित्यिक व कलाकार ग्राहकों के लिये जापानी छापचित्र मगवाये। 1867 मे पैरिस की विश्व-प्रदर्शनी में जापानी कला का विभाग पृथक् किया गया था जिसमे जापानी छापचित्र, अलंकरणयुक्त कपड़े कलापूर्ण पात्र, पंखे व हस्तकला के नमूने रखे गये थे। पैरिस के कई कलाकार जापानी कला से प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी कलाशैली में जापानी कला के कुछ तत्त्वों का समावेश किया। ऐसे कलाकारो में माने, विसलर, देगा, वान गो, गोग्याँ व तुलुज लोत्रेक थे जिनका आधुनिक चित्रकला के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन चित्रकारो ने अपने कुछ चित्रो की पृष्ठभूमि मे जापानी छापचित्रों, पात्रों, पखो आदि कलाकृतियो को चित्रित किया है जिससे वे जापानी कला से कितने आकृष्ट थे इसका प्रमाण मिलता है। जापानी कला के समतलत्व, रेखात्मकता एव कोमल व मनोहारी रगायन के गुणो से वे मोहित थे। माने की कला मे इन्ही गुणों को पाश्चात्य अंकनपद्धतियो के अनुकूल परिवर्तित रूप में विकसित किया है। माने ने जापानी कला का अंधानुकरण नही किया। जापानी छापचित्रों का और एक विचार से भी नवीन चित्रकारों के लिए महत्त्व था, वे चित्रकार जिन विषयों को लेकर चित्रण करना चाहते थे वैसे ही इन छापचित्रो

के भी विषय थे—रंगमंचों, जलपानगृहों व नृत्यगृहों के दृश्य तथा प्राकृतिक दृश्य, नटनटियों के व्यक्तिचित्र व समकालीन घरेलू व सामाजिक प्रसंग। जापानी चित्रकला से प्रभावित होते हुए माने व अन्य योरपीय चित्रकारों की कला व जापानी छापचित्र कला में पर्याप्त अंतर है। जापानी कलाकार बारीक बाह्यरेखा से अंकित रूढ़िबद्ध आकारों में चित्रण करते थे जबकि योरपीय चित्रकारों का रेखांकन स्वच्छंद है। जापानी कलाकार कल्पना से चित्रण करते थे और उनके चित्रों में छाया-प्रकाश व वातावरण का वास्तविक प्रभाव नहीं है जबकि योरपीय चित्रकार प्रत्यक्ष देखकर चित्रण करते और वास्तविक प्रभाव का पुनर्निर्माण उनकी कला का एक प्रमुख उद्देश्य था।

इधर माने के चित्रों की समीक्षकों द्वारा कटु आलोचना होती रही और उधर उनके आसपास साहित्यिकों, नवकलाकारों व कलाप्रेमियों का मंडल एकत्रित हो रहा था। राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनियों में माने के चित्रों की निंदा होने के पश्चात् वे नवचित्रकारों के आदर्श नेता बन गये। ये सब चित्रकार व साहित्यिक पैरिस के जलपानगृह काफे ग्वेर्बा में मिलते व विचारगोष्ठी करते। साहित्यिकों में ड्युरे, ड्युराँति, जोला व आस्त्युक, व चित्रकारों में माने, सिसली, पिसारो, रेन्वार, देगा, बाजीय व सेजान प्रमुख थे। कलाविषयक चर्चाएं होतीं और प्रत्येक सदस्य अपने विचारों को सिद्ध करने का प्रयत्न करता। इन गोष्ठियों के बारे में माने ने लिखा है "इन गोष्ठियों से अधिक आनंदप्रद कुछ नहीं हो सकता। सदैव मतभिन्नता होती और हर कोई अपने मत का तर्कबुद्धि से समर्थन करने का प्रयत्न करता। सभी सदस्य उत्साह से भाग लेते और सप्ताहों तक एक ही बात पर मस्तिष्क को चेतना देकर सोचते रहते तथा अपने अनुभवों द्वारा सत्यता की प्रतीति करना चाहते। इन गोष्ठियों ने हमें अधिक तर्कनिष्ठ व निश्चयी बनाया।"। 1870 में फातँ लातुर द्वारा बनाया हुआ इन चित्रकारों का समूह-चित्र विद्यमान है जिसमें माने, मोने, बाजीय, जोला, रेन्वार आदि सदस्यों को चित्रित किया है। माने इन चित्रकारों से सहानुभूति रखते और उनको प्रोत्साहित करते यद्यपि वे उनके सभी विचारों से सहमत नहीं थे, न वे कभी उनके साथ पूर्ण रूप से प्रभाववादी चित्रकार बने। माने स्वतन्त्र रूप से कलानिर्मिति करते और उनको प्रभाववादी चित्रकार केवल इसीलिये अपना नेता मानते कि वे राष्ट्रीय-कलासंस्था के परम्परागत विचारों का विरोध करते, एवं अनुभवी थे और नवीन चित्रकारों को उचित सलाह देकर प्रोत्साहित करते थे। उन चित्रकारों को छोड़कर माने सुसज्जित, आलीशान जलपानगृहों में जाते एवं घुड़दौड़ के मैदानों, नाटकगृहों, संगीतभवनों व सार्वजनिक बगीचों में जाकर प्रतिष्ठित समाज के जीवन को चित्रित करते। असल में माने प्रभाववादी चित्रकारों के साथ तद्रूप नहीं हुए यद्यपि वे उनके प्रशंसक व हितचिंतक जरूर थे और उनके नवीन प्रयोगों में उनको सहयोग देते थे। वे स्वयं को प्रतिष्ठित चित्रकार मानते और उन्होंने कला के परम्परागत नियमों को पूर्ण रूप से कभी नहीं छोड़ा; अतः माने के चित्रों में आकारों की

अध्ययनपूर्ण रेखा व शास्त्रशुद्ध रचना ये गुण जो दृष्टिगोचर है वे अन्य प्रभाववादी चित्रकारो के चित्रों मे नही मिलते । वे स्यातनाम चित्रकार बनने के लिये प्रयत्नशील रहे एव कुर्बे के समान निजी प्रेरणा से राष्ट्रीय कलासंस्था के विरोध में खडे नही हुए । कई बार अस्वीकृत होने पर भी वे अपने चित्रों को प्रदर्शन के हेतु राष्ट्रीय कलासस्था को भेजते रहे । राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे अस्वीकृत होने एवं प्रभाववादियों द्वारा प्रशसा किए जाने से वे प्रभाववादी चित्रकारो के अधिक निकट आ गये परन्तु उन्होने अपने चित्रो को प्रभाववादियो की प्रदर्शनियो मे कभी नही रखा तथा उनके पूर्ण प्रभाववादी चित्र भी सख्या में बहुत कम हैं । माने दरिद्र कलाकारो की सहायता करते और मोने की विपन्नावस्था में उन्होने काफी मदद की । माने कला को परिवर्तनशील मानते थे व नवीन प्रयोगो मे उत्सुकता से भाग लेते किंतु उन्होंने कला की उपयुक्त विद्यमान मर्यादाओं का उल्लघन नही किया । इस विचार से माने यथार्थवाद व प्रभाववाद के बीच की कडी थे ।

1873 मे बनाया हुआ माने का चित्र 'अच्छी बीअर'[11] राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ । माने ने अपनी शैली में कोई परिवर्तन नही किया था परन्तु यह चित्र लोगो ने बहुत पसद किया । प्रसिद्ध डच चित्रकार फ्रान्स हाल्स से प्रभावित होकर, चित्रविषय व रग-सगति मे उनका अनुसरण करके माने ने यह चित्र बनाया था । किंतु यह सफलता तात्कालिक थी । आनेवाले दो सालो मे माने के तीन चित्र फिर अस्वीकृत हुए ।

माने के प्रभाववादी अनुयायी बाह्य स्थानो पर जाकर प्राकृतिक दृश्यो को प्रत्यक्ष देख कर विशुद्ध रगो में चित्रित करते थे । उन्होने अपनी रग-सगति से काले व धूसर रंगों को—जिनका माने की रग-सगति मे महत्वपूर्ण स्थान था—बिलकुल हटा दिया । जब माने ने मोने को सेन नदी के दृश्यो को प्रत्यक्ष चित्रित करते हुए देखा तब वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होने 1874 मे अपना चित्र 'नाव की सवारी'[12] बनाया जिसको हम पूर्ण प्रभाववादी चित्र मान सकते है । इसके पश्चात् माने ने प्रभाववादी चित्र बनाना शुरु किया किन्तु वे अन्य प्रभाववादियो के समान प्रकृति-चित्रण की ओर आकृष्ट नही हुए । वे प्रत्यक्ष देख के चित्रण करते परन्तु उनके चित्रो के विषय वैसे ही प्रतिष्ठित व्यक्तियों के रहनसहन से संबधित थे । 'नाव की सवारी' मे बाह्य वातावरण व प्रकाश का परिणाम सफलता से अंकित किया है जैसा उनके इससे पहले के चित्रों में देखने को नही मिलता । चित्र मे स्त्री व पुरुष इतने स्वाभाविक ढग से बैठे हुए है कि उसके सामने 'तृण पर भोजन' में बैठी हुई मानव आकृतिया कृत्रिम दिखायी पड़ती है । 'नाव की सवारी' वास्तविकतापूर्ण है जबकि 'तृण पर भोजन' रचनात्मक है ।

अब माने ने प्रभाववादियो के क्षणिक दृष्टि प्रभाव की दिशा में प्रगति की जिसके लिए उनको आकारो की स्पष्टता को कम करके विशुद्ध चमकीले रगों का

प्रयोग करना पड़ा। 1879 में बनाये 'जार्ज मूर का व्यक्तिचित्र' व 'फोलिय वर्जेर का मदिरागृह'[13] इस नवीन विकसित शैली के अप्रतिम उदाहरण है।

'फोलिय वर्जेर का मदिरागृह' मे उनकी निजी अभ्यासपूर्ण शैली एव प्रभाववाद का सुन्दर संगम है और यह उनका सर्वोत्कृष्ट चित्र माना गया है। इस चित्र मे प्रभाववादी रंगों की जगमगाहट व चचलता होते हुए अग्रभूमि का शीशियो, फलो व फूलो का वस्तुचित्रण एव सेविका की आकृति शास्त्रशुद्ध अध्ययन का परिपाक है। चित्र के मध्य मे सेविका की आकृति का अकन बहुत ही स्वाभाविक ढग से एव मुक्त तूलिका सचालन से किया है फिर भी आकृति, सुस्पष्ट, सुडौल व शरीररचनाशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए सुन्दर बन गयी है। पृष्ठभूमि के शीशे मे दिखाई देनेवाले मदिरागृह के दृश्य एव कोने मे खडे हुए स्त्री-पुरुष को प्रभाववादी ढग से अस्पष्ट रूप में अकित करके मध्यवर्ती सेविका की आकृति को स्पष्टता व महत्त्व प्रदान किया है; और चित्र को व्यक्तिचित्र का आकर्षण प्राप्त हुआ है। रंगाकन के लिए ऐसे सौम्य व स्वच्छ रगो को चुना है कि रगसगति नेत्रोद्दीपक न होकर कोमल व विषयवस्तु को साकार करने म सहायक हो गयी है। सयोजन के विचार से चित्रकार ने अपार कौशल दिखाया है। मध्यवर्ती सेविका की त्रिभुजात्मक आकृति को अग्रभूमि की मेज एव शीशे की आडी रेखाओ ने स्थैर्य प्रदान किया है तथा शीशे में दिखाई देने वाला दो खभो के बीच वह सतुलित होकर आगे निकलती है। माने ने इस चित्र द्वारा सिद्ध किया कि प्रभाववादी अकनशैली का आकार सौदर्य व रचना-कौशल से समन्वय किया जा सकता है। कट्टर प्रभाववादी न होते हुए भी माने ने यह एक ऐसा महान् चित्र बनाया जैसा कोई अन्य प्रभाववादी नही बन पाया। इस चित्र के बाद उन्होने विशेष चित्रण नही किया। इस चित्र को बनाते समय ही उनका स्वास्थ्य ठीक नही था और उसके बाद वह और भी बिगड़ता गया और 1883 मे उनका देहावसान हुआ।

मृत्यु के बाद माने के चित्र चढते मूल्य मे बिकने लगे। सात साल बाद उनके प्रशसको ने चन्दा एकत्रित करके 'आलिम्पिया' चित्र को खरीद कर लुव सग्रहालय को दान किया।

प्रभाववादियों का भ्रातृमण्डल (बातिन्योले कलाकार) :—

जैसे हम पहले देख चुके है, 1870 के करीब नवीन विचारो के तरुण चित्रकार पेरिस के बातिन्योले मार्ग मे 'काफे गेर्ब्वा' में मिलकर कलाविषयक चर्चा करते और माने उनको प्रोत्साहन देते। राष्ट्रीय कलासस्था मे परम्परागत विचारों के कलाकारो का प्रभुत्व होने के कारण उसके द्वारा आयोजित प्रदर्शनिओं में नवीन विचारो के कलाकारों को स्थान नही मिलता था और यह बात उनके विकास मे बहुत बड़ी बाधा थी। 1874 मे इन असन्तुष्ट चित्रकारो ने स्वतन्त्र रूप मे प्रदर्शनी का आयोजन करने का निश्चय किया। यह विचार उनके सामने पहले भी आ चुका था किन्तु उनमे एकमत नही होने के कारण वे अब तक प्रदर्शनी का आयोजन नहीं कर सके। अब उन्होंने देखा कि लोगों के सामने आने का व आगे बढने का

और कोई मार्ग नहीं है। उनके विचारों से सहानुभूति रखने वाले कोरो व कुर्बे जैसे अनुभवी कलाकारों को अपने चित्रों को प्रदर्शित करने का निमन्त्रण देकर अपनी प्रदर्शनी को प्रतिष्ठा देने का उन्होंने विचार किया। कुछ सदस्यों ने यह भी प्रस्ताव रखा कि प्रदर्शनी में भाग लेनेवाले चित्रकारों को प्रण करना होगा कि वे अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखने के लिए नहीं भेजेंगे। माने व फातें लातुर ने उन चित्रकारों की प्रदर्शनी में भाग लेने में अपनी असमर्थता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की। भाग लेनेवालों में भी कुछ चित्रकारों का मत था कि राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में यश प्राप्त करना आर्थिक सफलता का एकमेव मार्ग है। आयोजित प्रदर्शनी के दो प्रमुख उद्देश्य थे; पहला था अर्थप्राप्ति और दूसरा, अपने कलाविषयक प्रयोगों को मतप्रदर्शन के लिये लोगों के सम्मुख रखना। अब तक व्यापारी दुरां रुएल इन चित्रकारों के चित्र भविष्य में अच्छे मूल्य पर बिकने की आशा में खरीदते थे, किंतु उनके पास भी बहुत से चित्र खरीदे न जाने से पड़े रहे व उन्होंने चित्र खरीदना बन्द कर दिया। इसी समय उनमें से कुछ चित्रकारों के चित्र नीलाम में अच्छे मूल्य पर बिके और उससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने सोचा कि यदि वे अपने चित्रों की स्वतन्त्र प्रदर्शनी करेंगे तो सम्भवतः दर्शकों को पसन्द आकर इनका विक्रय हो सकता है एवं इसी तरह उनके लिये आगे बढ़ने का रास्ता खुल जायेगा। इसके अतिरिक्त कला के विकास के उद्देश्य से वे कलाप्रेमियों के सामने अपनी इस विचारधारा को प्रस्तुत करना चाहते थे कि कलाकार तबतक मौलिक कलानिर्मिति नहीं कर सकता जबतक वह रुढिबद्ध नियमों को तोड़कर आगे नहीं बढ़ता; अतः प्रतिभावान् कलाकारों को चाहिये कि वे स्वतन्त्र प्रेरणा से कलासाधना करके मौलिक सर्जन करें।

बहुत सी गड़बड़ी व आपसी वादविवाद के बाद नियोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन छायाचित्रकार नादार के कार्यकक्ष में हुआ व तीस कलाकारों की 165 कलाकृतियों को दर्शकों के सम्मुख रखा गया। प्रदर्शनी की व्यवस्था रेन्वार ने की थी। प्रदर्शनी का किस नाम से प्रसिद्धिकरण किया जाना चाहिये इस विषय में मतभिन्नता हुई। देगा व रेन्वार कोई भी नाम देने के विरोधी थे। अत में प्रदर्शनी की निम्न-प्रकार प्रसिद्धि की गयी, 'अज्ञात चित्रकारों, मूर्तिकारों व रेखाकलाकारों की परिषद'[14] किंतु प्रदर्शनी को अपने आप नाम प्राप्त हो गया। प्रदर्शनी में क्लोद मोने के चित्र 'सूर्योदय का प्रभाव'[15] प्रदर्शित किया गया था। कलासमीक्षक लुई लेराय ने प्रदर्शनी की निंदा में 'शारिवारी' पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया और मोने के चित्र के शीर्षक को सूत्ररूप में लेकर उन्होंने लेख को 'प्रभाववादियों की प्रदर्शनी' शीर्षक दिया व स्थान-स्थान पर प्रभाव, प्रभावी, प्रभावित, प्रभाववादी वगैरह शब्दों का प्रयोग कर के प्रदर्शनी की हंसी उडायी। प्रदर्शकों ने उदारता से इस नाम को स्वीकारा व अपने भ्रातृमंडल को 'प्रभाववादी चित्रकार'[16] नाम से घोषित किया। असफलता से प्रभाववादी चित्रकार निराश नहीं हुए क्योंकि भविष्य में यश मिलने

के कुछ अस्पष्ट पूर्वचिन्ह दृष्टिक्षेप में आये। तीन चार व्यापारियो व सग्राहकों ने भविष्य में खरीदने के हेतु चित्रों का वर्गीकरण कर के सूची बनायी। समजस समीक्षक व साहित्यिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कलाक्षेत्र मे अब परिवर्तन होनेवाला है।

प्रभाववादियों ने अपनी दूसरी प्रदर्शनी का आयोजन द्यु रा रुएल कलावीथिका में किया। अब की बार प्रदर्शकों की सख्या तीन से घट कर उन्नीस हुई। सेजान ने भाग नही लिया व केयबोत ने पहली बार एक चित्र प्रदर्शित किया जो अब लुव्र संग्रहालय में है। पहले की भाति इस प्रदर्शनी के विरुद्ध प्रक्षोभ नही हुआ यद्यपि प्रमुख समीक्षको ने प्रदर्शनी की पुनश्च कटु आलोचना की। कुछ अन्य समीक्षकों ने प्रदर्शनी की सीमित प्रशसा की व कुछ चित्रो का क्रय हुआ। 1877 मे तीसरी प्रदर्शनी के आयोजन के समय फ्रान्स में राजनैतिक अशांति थी और राजसत्तावादी प्रचारक नवीन तत्त्वों को 'साम्यवादी' नाम देकर दबाने में लगे थे। इसका असर प्रभाववादियो पर होकर उनके चित्रो की बिक्री मुश्किल हो गयी और उनको कठिनाइयो का सामना करना पडा। विपन्नावस्था के कारण पिसारो चित्रकला को छोड कर अन्य किसी व्यवसाय की खोज मे लगे; क्या कला जीवन के लिये आवश्यक है? क्या कला से पेट भरता है? ये उनके विचार हो गये। किंतु 1879 मे गणतंत्र प्रस्थापित होकर राजनैतिक वातावरण मे शाति आ गयी। प्रभाववादियो ने चतुर्थ प्रदर्शनी का आयोजन करने का विचार किया। रेन्वार् सिसली व सेजान भाग लेने से इन्कार हो गये क्योकि वे आशा कर रहे थे कि उस साल उनके चित्र राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हो सकते है और यदि वे प्रभाववादियो की प्रदर्शनी मे भाग लेते है तो उनको राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे स्वीकृति मिलना कठिन था। देगा ने इस शर्त पर भाग लेना स्वीकार किया कि प्रदर्शनी को कही भी 'प्रभाववादी' नाम से प्रसिद्धि नही की जाये। देगा ने अपनी अमेरिकन शिष्या मेरी कँसाट को भी प्रदर्शनी में भाग लेने को निमंत्रित किया। अब तक की प्रभाववादियो की प्रदर्शनियो से यह प्रदर्शनी अधिक सफल रही। प्रवेशशुल्क देकर दर्शक बहुसख्या मे प्रदर्शनी देखने आये और उन्होने चित्रो की प्रशसा की यद्यपि अभी कुछ ऐसे दुराराध्य समीक्षक थे जिन्होने पूर्ववत् निंदा के राग गाये। चित्रों की सीमित बिक्री हुई और प्रवेश शुल्क से प्राप्त धनराशि से प्रत्येक प्रदर्शक को 439 फ्रांक्स दिये गये। मेरी कँसाट ने अपने हिस्से की राशि से रेन्वार् व देगा प्रत्येक का एक चित्र खरीदा।

चतुर्थ प्रदर्शनी से प्रभाववादियों को सफलता मिली और प्रसिद्धि प्राप्त होकर उनके चित्र बिकने लगे किंतु उससे अधिक सघटित होने के बजाय उनमे फूट पड़ने लगी। रेन्वार् ने चतुर्थ प्रदर्शनी में भाग नही लिया था व उस साल उनके चित्र 'मादाम शार्पा तिय व उनकी पुत्रियां'[17] को वार्षिक राष्ट्रीय प्रदर्शनी मे सफलता मिली। यह देखकर विचलित होकर दूसरे वर्ष मोने ने प्रभाववादियों की पाचवी प्रदर्शनी मे भाग न लेकर अपने दो चित्रो को राष्ट्रीय प्रदर्शनी के लिये भेज दिया।

और कोई मार्ग नहीं है। उनके विचारों से सहानुभूति रखने वाले कोरो व कुर्बे जैसे अनुभवी कलाकारों को अपने चित्रों को प्रदर्शित करने का निमन्त्रण देकर अपनी प्रदर्शनी को प्रतिष्ठा देने का उन्होंने विचार किया। कुछ सदस्यों ने यह भी प्रस्ताव रखा कि प्रदर्शनी में भाग लेनेवाले चित्रकारों को प्रण करना होगा कि वे अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखने के लिए नहीं भेजेंगे। माने व फातें लातुर ने उन चित्रकारों की प्रदर्शनी में भाग लेने में अपनी असमर्थता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की। भाग लेनेवालों में भी कुछ चित्रकारों का मत था कि राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में यश प्राप्त करना आर्थिक सफलता का एकमेव मार्ग है। आयोजित प्रदर्शनी के दो प्रमुख उद्देश्य थे, पहला था यशप्राप्ति और दूसरा, अपने कलाविषयक प्रयोगों को मतप्रदर्शन के लिये लोगों के सम्मुख रखना। अब तक व्यापारी दयुरा रूएल इन चित्रकारों के चित्र भविष्य में अच्छे मूल्य पर बिकने की आशा में खरीदते थे, किंतु उनके पास भी बहुत से चित्र खरीदे न जाने से पड़े रहे व उन्होंने चित्र खरीदना बन्द कर दिया। इसी समय उनमें से कुछ चित्रकारों के चित्र नीलाम में अच्छे मूल्य पर बिके और उससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने सोचा कि यदि वे अपने चित्रों की स्वतन्त्र प्रदर्शनी करेंगे तो सम्भवतः दर्शकों को पसन्द आकर इनका विक्रय हो सकता है एवं इसी तरह उनके लिये मार्ग बढ़ने का रास्ता खुल जायेगा। इसके अतिरिक्त कला के विकास के उद्देश्य से ये कलाप्रेमियों के सामने अपनी इस विचारधारा को प्रस्तुत करना चाहते थे कि कलाकार तबतक मौलिक कलानिर्मिति नहीं कर सकता जबतक वह रुढिबद्ध नियमों को तोड़कर आगे नहीं बढ़ता; अतः प्रतिभावान् कलाकारों को चाहिये कि वे स्वतन्त्र प्रेरणा से कलासाधना करके मौलिक सर्जन करें।

बहुत सी गड़बड़ी व आपसी वादविवाद के बाद नियोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन छायाचित्रकार नादा के कार्यकक्ष में हुआ व तीस कलाकारों की 165 कलाकृतियाँ को दर्शकों के सम्मुख रखा गया। प्रदर्शनी की व्यवस्था रेन्वार् ने की थी। प्रदर्शनी का किस नाम से प्रसिद्धिकरण किया जाना चाहिये इस विषय में मतभिन्नता हुई। देगा व रेन्वार् कोई भी नाम देने के विरोधी थे। अंत में प्रदर्शनी की निम्न-प्रकार प्रसिद्धि की गयी, 'अज्ञात चित्रकारों, मूर्तिकारों व रेखाकलाकारों की परिषद'[14] किंतु प्रदर्शनी को अपने आप नाम प्राप्त हो गया। प्रदर्शनी में क्लोद मोने के चित्र 'सूर्योदय का प्रभाव'[15] प्रदर्शित किया गया था। कलासमीक्षक लुई लेराय ने प्रदर्शनी की निंदा में 'शारिवारी' पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया और मोने के चित्र के शीर्षक को सूत्ररूप में लेकर उन्होंने लेख को 'प्रभाववादियों की प्रदर्शनी' शीर्षक दिया व स्थान-स्थान पर प्रभाव, प्रभावी, प्रभावित, प्रभाववादी वगैरह शब्दों का प्रयोग कर के प्रदर्शनी की हंसी उडायी। प्रदर्शकों ने उदारता से इस नाम को स्वीकारा व अपने भ्रातृमंडल को 'प्रभाववादी चित्रकार'[16] नाम से घोषित किया। असफलता से प्रभाववादी चित्रकार निराश नहीं हुए क्योंकि भविष्य में यश मिलने

के कुछ अस्पष्ट पूर्वचिन्ह दृष्टिक्षेप में आये। तीन चार व्यापारियों व संग्राहकों ने भविष्य में खरीदने के हेतु चित्रों का वर्गीकरण कर के सूची बनायी। समजस समीक्षक व साहित्यिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कलाक्षेत्र मे अब परिवर्तन होनेवाला है।

प्रभाववादियो ने अपनी दूसरी प्रदर्शनी का आयोजन द्युरा रुएल कलावीथिका मे किया। अब की बार प्रदर्शको की सख्या तीन से घट कर उन्नीस हुई। सेजान ने भाग नहीं लिया व केयबोत ने पहली बार एक चित्र प्रदर्शित किया जो अब लुव्र संग्रहालय में है। पहले की भांति इस प्रदर्शनी के विरुद्ध प्रक्षोभ नही हुआ यद्यपि प्रमुख समीक्षको ने प्रदर्शनी की पुनश्च कटु आलोचना की। कुछ अन्य समीक्षकों ने प्रदर्शनी की सीमित प्रशसा की व कुछ चित्रो का क्रय हुआ। 1877 में तीसरी प्रदर्शनी के आयोजन के समय फ्रान्स मे राजनैतिक अशाति थी और राजसत्तावादी प्रचारक नवीन तत्त्वो को 'साम्यवादी' नाम देकर दबाने में लगे थे। इसका असर प्रभाववादियो पर होकर उनके चित्रों की बिक्री मुश्किल हो गयी और उनको कठिनाइयों का सामना करना पडा। विपन्नावस्था के कारण पिसारो चित्रकला को छोड कर अन्य किसी व्यवसाय की खोज मे लगे; क्या कला जीवन के लिये आवश्यक है? क्या कला मे पेट भरता है? ये उनके विचार हो गये। किंतु 1879 में गणतंत्र प्रस्थापित होकर राजनैतिक वातावरण मे शाति आ गयी। प्रभाववादियो ने चतुर्थ प्रदर्शनी का आयोजन करने का विचार किया। रेन्वार् सिसली व सेजान भाग लेने से इन्कार हो गये क्योकि वे आशा कर रहे थे कि उस साल उनके चित्र राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे स्वीकृत हो सकते है और यदि वे प्रभाववादियो की प्रदर्शनी मे भाग लेते है तो उनको राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे स्वीकृति मिलना कठिन था। देगा ने इस शर्त पर भाग लेना स्वीकार किया कि प्रदर्शनी की कही भी 'प्रभाववादी' नाम से प्रसिद्धि नही की जाये। देगा ने अपनी अमेरिकन शिष्या मेरी कँसाट को भी प्रदर्शनी में भाग लेने को निमंत्रित किया। अब तक की प्रभाववादियो की प्रदर्शनियों से यह प्रदर्शनी अधिक सफल रही। प्रवेशशुल्क देकर दर्शक बहुसंख्या मे प्रदर्शनी देखने आये और उन्होने चित्रो की प्रशंसा की यद्यपि अभी कुछ ऐसे दुराराध्य समीक्षक थे जिन्होंने पूर्ववत् निंदा के राग गाये। चित्रों की सीमित बिक्री हुई और प्रवेश शुल्क से प्राप्त धनराशि से प्रत्येक प्रदर्शक को 439 फ्रांक्स दिये गये। मेरी कँसाट ने अपने हिस्से की राशि मे रेन्वार् व देगा प्रत्येक का एक चित्र खरीदा।

चतुर्थ प्रदर्शनी से प्रभाववादियो को सफलता मिली और प्रसिद्धि प्राप्त होकर उनके चित्र बिकने लगे किंतु उससे अधिक संघटित होने के बजाय उनमें फूट पड़ने लगी। रेन्वार् ने चतुर्थ प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया था व उस साल उनके चित्र 'मादाम शार्पा तिय व उनकी पुत्रियां'[17] को वार्षिक राष्ट्रीय प्रदर्शनी मे सफलता मिली। यह देखकर विचलित होकर दूसरे वर्ष मोने ने प्रभाववादियो की पांचवीं प्रदर्शनी में भाग न लेकर अपने दो चित्रो को राष्ट्रीय प्रदर्शनी के लिये भेज दिया

देगा ने मोने को 'विश्वासघाती' कह कर दोष लगाया व रुष्ट होकर मोन ने नवागत प्रभाववादियो को 'धुनाईकार' नाम दिया क्योंकि पाचवी प्रदर्शनी न देगा व पिसारो के चित्रों को छोड़ कर शेष चित्र बर्त मोरिसो, केयबोत, गियामें आदि नये कलाकारों के थे। देगा के दोषारोपण से सेजान, सिसली व रेन्वार् भी नाराज हुए। प्रभाववादियो की प्रदर्शनी की कार्यवाही अब केयबोत करते थे व उन्होंने छठी प्रदर्शनी में देगा के चित्रों को स्थान न देने का प्रस्ताव रखा किंतु पिसारो ने यह अनुचित समझा। 1882 म छठी प्रदर्शनी की गयी। आतरिक झगड़ों के कारण सातवीं प्रदर्शनी के आयोजन म केयबोत कठिनाई महसूस करने लगे तब चित्रविक्रेता द्यु रा रुएल ने मध्यस्थता कर के उनके अधीन चित्रों को प्रदर्शित करने की असतुष्ट चित्रकारो से सम्मति प्राप्त की। देगा ने इस प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया क्योंकि उनके अनुयायियो को निमंत्रित नहीं किया गया था। सेजान के चित्रो की बिक्री होने की आशा नही थी, अतः द्यु रा रुएल ने उनको निमत्रित नहीं किया किंतु सेजान लूप में कि राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी म उनका एक चित्र पहली बार प्रदर्शित किया गया था। असल में इस साल की प्रदर्शनी की चयन समिति में सेजान के एक मित्र चुने गये थे व उनकी सिफारिश से सेजान का एक चित्र स्वीकृत हुआ था। 1885 तक राष्ट्रीय आर्थिक सकट के कारण प्रभाववादियो को फिर विपन्नावस्था का सामना करना पड़ा। 1885 में अमेरिकन आर्ट एसोसिएशन ने द्यु रा रुएल को फ्रेंच चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन करने का निमंत्रित किया। मेरी कँसाट के प्रयत्नों से अमेरिकन कलाप्रेमी प्रभाववादी चित्रकला से परिचित हो गये थे। न्यूयार्क में की गयी प्रदर्शनी में प्रभाववादी कलाकारो को बहुत सफलता मिली जिसकी वे आशा नही कर रहे थे। अब उन्होंने उसी साल आठवीं प्रदर्शनी का आयोजन किया। पिसारो के सुझाव से सोरा व सिन्याक को निमंत्रित किया था। पहले से ही प्रभाववादियों का विघटन हो रहा था और आठवी प्रदर्शनी में मोने, रेन्वार्, सिसली, केयबोत व सेजान ने भाग नहीं लिया। प्रदर्शकों मे बर्त मोरिसो, गोगँ, मेरी कँसाट व ओदिलों रेदा प्रमुख थे। यह प्रदर्शनी प्रभाववादियो की अंतिम प्रदर्शनी रही व इसके साथ ही उनका पूर्ण विघटन हुआ।

कुछ भी हो प्रभाववादी कलाकार अपना कार्य कर चुके थे और प्रभाववाद के सिद्धान्तो का चित्रकारों में बहुत प्रसार हुआ था। प्रभाववाद ने योरपीय व अमेरिकी कला को नयी दिशा मे मोड़ दिया था। अब प्रभाववादी चित्रकारों की स्वतन्त्र सस्था होने से कोई कार्यसिद्धि होनेवाली नहीं थी। व्यापारियों व सग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने में प्रभाववादी सफल हो गये थे और उनके चित्रों की काफी माग थी। किंतु राष्ट्रीय सस्था एवं उससे सबधित मडलो का विरोध कायम था और जब 1893 में केयबोत के मृत्युपत्र द्वारा प्रभाववादी चित्रों का सग्रह लुव्र सग्रहालय को प्रदान किया गया तब चित्रकार जेरोम ने उन चित्रों को रद्दी की उपमा देकर उनको स्वीकारने की सरकारी नीति की आलोचना की। जेरोम व बुग्वेरो जैसे प्रतिष्ठित

परंपरावादी अब वृद्ध हो गये थे और उनके चित्रों के बराबर मोने, रेन्वार, देगा व दूसरे प्रभाववादी चित्रकारों के चित्रों की माँग बढ़ रही थी। अमेरिका में प्रभाववादी चित्र काफी तादाद में बिक रहे थे और मोने के चित्र 'आर्मिन्पियो' को चंदा एकत्रित करके खरीदने के पीछे यही भय था कि शायद अन्य श्रेष्ठ प्रभाववादी कलाकृतियों की तरह यह चित्र भी अमेरिका नहीं पहुँच जाये। परंपरावादी विचारों का सामना करके जिन कलाविषयक सिद्धांतों को प्रभाववादियों ने स्थापित किया था उनका क्या स्वरूप है वह अब हम देखेंगे।

प्रभाववाद के सिद्धांत

मोने के चित्र 'सूर्योदय का प्रभाव' की आलोचना में 'प्रभाव' शब्द का प्रयोग होने से पहले भी इस शब्द का इसी तरह का प्रयोग किया जा चुका था। दोबिन्यी के प्रकृतिचित्रों की निंदा करते हुए लेखक तेओफिल गीतिए ने लिखा था "दोबिन्यी के चित्रों में बारीकियों की ओर ध्यान नहीं है व उनमें केवल दृश्य के सर्वसाधारण प्रभाव का अंकन है"। प्राकृतिक दृश्य की काव्यात्मकता पर बल देने के हेतु दोबिन्यी सोच-समझकर बारीकियों की उपेक्षा करते क्योंकि वे जानते थे कि चित्र की काव्यात्मकता दृश्य के हूबहू चित्रण की अपेक्षा दर्शक की मानसिक अवस्था पर अधिक निर्भर करती है; अतः ऐसी मानसिक अवस्था को जागृत करने के लिये निसर्ग के तदुचित काव्यपूर्ण अंगों पर बल दिया जाना चाहिये। अतः दोबिन्यी को प्रभाववादी की अपेक्षा निसर्गवादी कहना योग्य है।

प्रभाववादी चित्रकार दृश्यांतर्गत वस्तु के यथार्थ-रूप-सादृश्य की ओर ध्यान नहीं देते; उनका लक्ष्य वस्तुसंचय पर हुए वातावरण व प्रकाश के समूचे प्रभाव को चित्रित करना था, अर्थात् समय एवं ऋतु के परिवर्तन के साथ वही वस्तुसंचय उनके लिये भिन्न चित्रविषय बन जाता। बदलते हुए प्रकाश के साथ वही वृक्ष उनको हरा, पीला, लाल, जामुनी इस तरह बदलते हुए रूप में दिखायी देता। वातावरण व प्रकाश से दृश्य पूर्ण रूप से व्याप्त है, अतः उनको अंकित करने के उद्देश्य से प्रभाववादी चित्रकारों को व्यापक दृष्टिकोण अपनाना पड़ता और वे प्रत्येक वस्तु एवं उसकी बनावट तथा बारीकियों में रुचि नहीं लेते। एक ही दृष्टिपात में सम्पूर्ण दृश्य के नेत्रपटलीय परिणाम को अंकित करना उनका लक्ष्य हुआ; इस लक्ष्य की पूर्ति में वस्तुसम्बन्धी ज्ञान एवं निरीक्षण सहायक नहीं होते तथा वस्तु के आकार का अंकन उस क्षण की स्मृति से करना पड़ता। सीमित अर्थ में आधुनिक कला के वस्तुनिरपेक्षता की ओर मार्गक्रमण में प्रभाववाद प्रारम्भिक चरण था। कट्टर प्रभाववादी चित्रकार मोने कहते कि यदि वे जन्मतः अंधे होते व उनको अचानक दृष्टि प्राप्त होती तो अच्छा होता जिससे वस्तुओं के बारे में जरासा भी पूर्वज्ञान नहीं होने के कारण वस्तुओं पर हुए प्रकाश के परिणाम को वे विशुद्ध रूप में चित्रित कर सकते; वस्तु के निजी रंग व आकार का ज्ञान नहीं होने के कारण वे केवल देखे गये ही उसी क्षण में हुए वस्तु के नेत्रपटलीय परिणाम को रंगों द्वारा पट पर उतारते। पर

वास्तविकता का प्रभाववादी चित्रकारों के लिए इतना ही महत्त्व था कि उसकी वजह से उनको प्रकाश व वातावरण के तरल तत्त्वों का दृष्टिमान हो सकता था। प्रभाववादी चित्रकारों के चित्रण के मुख्य विषय थे प्रकाश व वातावरण। इस सम्बन्ध में माने का वक्तव्य उद्बोधक है। जब किसी मित्र ने माने के व्यक्तिसमूह के चित्र को देख कर पूछा "चित्र में सबसे अधिक महत्त्व किस व्यक्ति को दिया गया है?" तब माने ने उत्तर दिया "किसी भी चित्र में सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है प्रकाश"।[18]

चित्रकला में प्रकाश के महत्त्व के बारे में प्रभाववादियों के जो विचार थे उनमें गोया के कुछ विचारों को अन्तिम रूप दिया था। गोया कहते थे "प्रकृति में रेखा कहाँ है? मुझे तो केवल प्रकाशित व अप्रकाशित आकार दिखायी देते हैं—समतल जो निकट है एवं समतल जो दूर है। मुझे रेखाएँ एवं बारीकियाँ दिखायी नहीं देतीं। मैं व्यक्ति के सिर के बालों को नहीं गिन सकता, न उसके कोट के बटनों को। मुझे जो दिखायी नहीं देता वह देखने का मेरी कूंची को कोई अधिकार नहीं है"।[19] किन्तु गोया ने प्रभाववादियों के समान वास्तविक आकारों की उपेक्षा नहीं की थी। 17वीं सदी के चित्रकार वेलास्केस के चित्र प्रभाववाद के इस सिद्धान्त के सीमित प्रयोग के उदाहरण हैं। वे दूरस्थित व निकटवर्ती वस्तुओं के आकारों की स्पष्टता में अन्तर रखते और उनके चित्र 'वीनस व क्युपिड' में वीनस की आकृति एवं उसकी दर्पण में परावर्तित प्रतिमा की स्पष्टता में अंतर है; प्रभाववादी सिद्धान्त के अनुसार रंगों की छटाओं में परिवर्तन करके प्रतिमा को धुंधला चित्रित किया है। चित्रकला के इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनसे सिद्ध किया जा सकता है कि प्रभाववाद के कुछ सिद्धान्तों की संकुचित कल्पना पहले भी कुछ चित्रकारों को थी; परन्तु प्रभाववादियों ने आगे बढ़ कर, प्रकाश व रंगों का वैज्ञानिक अध्ययन करके अपने सिद्धान्तों को जो स्पष्ट व वैज्ञानिक रूप प्रदान किया वह क्रांतिकारी कदम था।

नेत्रपटलीय परिणाम को प्रभाववाद में दिये गये महत्त्व को देखकर उपहास में प्रभाववाद को 'नेत्रशैली'[20] नाम दिया गया। दृश्य को अंकित करने की प्रभाववादियों की नयी पद्धति को देखकर पौल मान्स ने लिखा "ये चित्रकार जरूर किसी नेत्रदोष से पीड़ित हैं"। 1884 में अमेरिकन चित्रकार इन्नेस ने प्रभाववाद की त्रुटियों को बताते हुए लिखा "यह बिलकुल असत्य है कि इन चित्रकारों ने जैसे चित्रित किया है वैसे उनको प्रकृति में दिखाई देता है।" क्षणिक दृष्टिपात एवं उसमें होने वाले सम्पूर्ण दृश्य के नेत्रपटलीय परिणाम को इतना महत्त्व अब तक के चित्रकारों ने नहीं दिया था; ये चित्रकार वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करके चित्र बनाते और उसमें वस्तुसादृश्य का महत्त्व होता। प्रभाववाद में वस्तुसादृश्य का स्थान वस्तुओं से परावर्तित प्रकाश ने ले लिया। जब कलाकृति में वस्तुसादृश्य को महत्त्व देना होता है तब वस्तुरचना का अध्ययन करने के लिए चित्रकार को प्रत्येक वस्तु के भिन्न अंगों

का क्रमशः निरीक्षण करना पड़ता है—यह 'क्रमबद्ध दृष्टि' है। प्रभाववाद में प्रकाश को महत्त्व है; क्योंकि प्रकाश का प्रभाव एक ही क्षण में होता है, प्रभाववादी चित्रकार दृश्यांतर्गत वस्तुसंचय को एक ही समयावच्छेद में देखता है—यह 'समपात दृष्टि' है। प्रभाववादी चित्रों मे वस्तुओं के आकारों की ठोसपन नही होने का यही कारण है; उनके चित्रो का सम्पूर्ण क्षेत्र सौम्य चचलता से सचेत होता है। रचनात्मक एव अभिव्यंजनावादी कलाओं की दृष्टि से यह बहुत बड़ी कमजोरी है जिसको अनुभव करके उत्तरप्रभाववादी चित्रकारो ने नयी दिशाओं को अपनाया। किन्तु इससे प्रभाववाद का महत्त्व कम नही होता; उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों को भी अपने कलात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रभाववादियों की स्वतन्त्र व विशुद्ध अंकनपद्धति को, परिश्रम व अध्ययन के साथ, आत्मसात् करना पड़ा।

प्रभाववाद की आधुनिक कला को सबसे बड़ी देन है रंगांकन की विशुद्धता और कलाकार के मूलभूत सर्जनस्वातंत्र्य की प्रस्थापना। यदि प्रभाववादियों से यह कार्य नहीं होता तो बीसवी सदी की कला के विकास का आरम्भ नही होता।

प्रभाववादी चित्रकारो ने रंगसंगति एव अकनपद्धति में जो क्रांतिकारी परिवर्तन किये उसके पूर्वचिन्ह हमको देलाक्रा की कला मे प्रतीत होते हैं। कूंची द्वारा बनाये गये धब्बों व लकीरो को देलाक्रा चित्रण में कायम रखते और उनको वे 'फ्लोशेताज'[21] कहते। इस पद्धति को कुछ प्रभाववादियो ने इतना आत्यंतिक रूप दिया कि उनके चित्रों के क्षेत्र ऊबडखाबड़ दिखाई देते। देलाक्रा ने सूक्ष्म निरीक्षण करके देखा कि लाल रंग के क्षेत्र मे कुछ हरी एवं पीले रंग के क्षेत्र में कुछ नीली झलक होती है; अतः लाल वस्तु का यथार्थ चित्रण केवल लाल रंग से एवं पीली वस्तु का चित्रण केवल पीले रग से नहीं किया जा सकता। किसी भी रंग के यथार्थ अंकन में उसके पूरक रंग की झलक आवश्यक है जिसके बिना उसकी स्वाभाविक चमक का परिणाम चित्रण में प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त परावर्तन के कारण प्रत्येक वस्तु में निजी रंग के साथ अन्य रंग भी दिखायी देते है। देलाक्रा को ज्ञात हुआ कि प्रत्येक वस्तु का रंग उसके द्वारा किये गये प्रकाश के परावर्तन का परिणाम है। साथ ही समीपवर्ती रंग एक दूसरे पर प्रभाव डाल के मूल रंग को बदल देते हैं। देलाक्रा के इन निष्कर्षों से प्रारम्भ करके प्रभाववादियों ने रंगांकन को शास्त्रीय स्वरूप दिया। उन्होंने प्रकाशविज्ञान के नियम को मूलाधार माना कि सूर्य का श्वेत प्रकाश लाल, नारंगी, पीले, हरे, आसमानी, नीले व जामुनी किरणों के समपाती प्रभाव से बनता है।

19वी सदी में परम्परावादी चित्रकार प्रथम सुनियन्त्रित बाह्य रेखा से आकारों को पट पर अंकित करते और उन आकारों में एक से रंग की चिकनी परत देकर रंगांकन करते। रंगों या रगांकन पद्धति को चित्रण मे इससे अधिक महत्त्व नही था। कॉन्स्टेबल का अनुसरण करके देलाक्रा ने इस पद्धति को तोड़ दिया और भिन्न रंगों के स्पष्ट धब्बो व लकीरो में रंगांकन आरम्भ किया जिसका स्पष्ट व

सूक्ष्म-शुद्ध, विवरण, उन्होंने अपने ग्रंथ में किया है। बाह्यरेखा के महत्व को घटा कर हल्की, गहरी छटाओं के समीपवर्ती क्षेत्रों के अंकन से वे वस्तु के आकार को स्पष्ट करते। इस पद्धति को माने ने अपनाया। प्रभाववादी चित्रकार इसको 'छटाओं द्वारा अंकन'[22] कहते थे व उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन से इसका पर्याप्त विकास किया। उन्होंने रेखा की आवश्यकता को ही समाप्त कर दिया क्योंकि उन्होंने देखा कि रेखा केवल कल्पना की निर्मिति है व उसका प्रत्यक्ष अस्तित्व नहीं है।

समपात दृष्टि से नेत्रपटल पर क्या परिणाम होता है इसके बारे में विचार करते पर प्रभाववादियों को ज्ञात हुआ कि प्रकाशविज्ञान के अनुसार कोई भी वस्तु तब दिखाई देती है जब उससे परावर्तित प्रकाशकिरणें दर्शक के नेत्रपटल पर आघात करती हैं; अर्थात् वस्तु के चित्रण का सत्य अर्थ है प्रकाशकिरणों के नेत्रपटलीय परिणाम का चित्रण; अतः इस परिणाम के सत्य स्वरूप को समझने के लिए वैज्ञानिक अभ्यास आवश्यक है। अब प्रकाशविज्ञान, दृष्टिविज्ञान व रंगविज्ञान का अभ्यास करके उन्होंने अंकनपद्धति के निश्चित नियम बनाये। काले रंग का वैज्ञानिक अर्थ है सभी प्रकाशकिरणों का अभाव; अतः जहाँ ज़रासा भी प्रकाश है, वहाँ काला रंग नहीं हो सकता उसी तरह परावर्तन के नियमों के अनुसार काली छाया नहीं हो सकती। अब प्रभाववादियों ने काली वस्तु या छाया का अंकन गहरे नीले, जामुनी या हरे रंग से करना शुरू किया। उसी प्रकार परावर्तन के कारण जिसको हम पूर्ण सफ़ेद मानते हैं ऐसी वस्तु में भी पीले, नीले, लाल-वगैरह रंगों की हलकी झलक प्रतीत होती है; अतः उन्होंने विशुद्ध सफेद रंग में अन्य रंगों को समुचित मात्रा में मिश्रित करना शुरू किया। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रत्यक्ष में प्रत्येक वस्तु पर उसके निजी रंग के अलावा अनेक रंगों की—विशेषतया पूरक रंगों की छटाएँ चमकती हैं। इस विचार के परिणामस्वरूप प्रभाववादियों ने अपनी रंगांकन-पद्धति में मौलिक परिवर्तन किये। प्रत्येक रंगीन क्षेत्र को भिन्न शुद्ध रंगों में अंकित करने लगे जिसमें उनको मूल व पूरक रंगों सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्तों से काफी मार्गदर्शन हुआ। वैज्ञानिकों के रंगविषयक नये आविष्कारों को पढ़-कर उनको बहुत प्रसन्नता हुई। उनको ज्ञात हुआ कि लाल रंग के समीप हरे, नारंगी के समीप नीले व पीले के समीप जामुनी को अंकित करने से वे रंग अधिक सतेज दिखाई देते हैं; संक्षेप में पूरक रंगों को समीप अंकित करने से वे एक दूसरे की चमक बढ़ा देते हैं एवं समीपीकरण का परिणाम मिश्रण के परिणाम से अधिक तेजस्वी होता है। इसी प्रकार रंगसम्बन्धी सिद्धान्तों का पालन करके रंगांकन करने से प्रभाववादी चित्रों में पुराने चित्रों से अधिक तेज व जगमगाहट आ गयी। उनकी इस रंगांकनपद्धति को 'इन्द्रधनुषी रंगांकन'[23] कहते थे। इस पद्धति का सीमित प्रयोग कॉन्स्टेबल के चित्रों में किया हुआ देखने को मिलता है।

31. जैसे हम पहले देख चुके है कि परम्परागत पद्धति के अनुसार कूँची से बनी हुई लकीरों को मिटाकर पूरे चित्रक्षेत्र को चिकना बनाना चित्रकार के कौशल का

प्रमाण माना जाता था और इस पद्धति को प्रथम देलाक्रा व फ्रास हाल्स ने तोड़ दिया था। किन्तु वे दोनों भी स्पष्ट-तूलिका-संचालन का प्रयोग रंगांकन की अंतिम अवस्था में करते थे। प्रभाववादियों के साथ यह बात नहीं थी; जब तक वे प्रारम्भ से ही स्पष्ट-तूलिका-संचालन नहीं करते तब तक भिन्न विशुद्ध रंगों के समीपवर्ती धब्बों द्वारा चमकीला रंगांकन करने के अपने उद्देश्य में वे सफल नहीं हो सकते थे। स्पष्ट-तूलिका-संचालन के साथ उससे बनी हुई ऊबड़खाबड़ सतह के स्वाभाविक सौंदर्य की ओर प्रभाववादियों का ध्यान आकृष्ट हुआ और सतह की बुनावट चित्र के सौन्दर्य का महत्वपूर्ण अंग बन गयी; मोने के रुआं के गिरजाघरों के चित्र इस दृष्टि से सुन्दर व अभ्यसनीय है। बाद में बीसवीं सदी में सतह के इस स्वाभाविक प्रभाव को बढ़ाने के उद्देश्य से चित्रकारों ने नये प्रयोग किये; कूची के स्थान पर चित्रण-चाकू को काम में लेकर मोटी परतों में रंगों को पट पर लगाने लगे, और सतह को खुरदरापन देने के लिये, चित्रण से पहले, पट पर बालू, कपड़ा व लकड़ी का बुरादा चिपकाने लगे। प्रभाववादियों की प्रथम प्रदर्शनी को देखकर कास्तान्यारी ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य निकली; उन्होंने लिखा था "प्रभाववादियों में अवश्य मौलिक गुण है; किन्तु उनके दृष्टिकोण में वास्तविक दृश्य चित्रण के लिये बहाना मात्र रह जाता है, और अन्त में इसका परिणाम यह होगा कि कला का वास्तविकता से सम्बन्ध पूर्णरूप से टूट जायेगा"।

प्रभाववादी कृति का मूल उद्देश्य था दृश्य के क्षणिक-दृष्टि-प्रभाव को चित्रकार की बौद्धिक कल्पना एवं रचना के रूढ़िबद्ध नियमों से मुक्त कर के छाया चित्रण के समान यथार्थ चित्रित करना। प्रभाववादियों का 'इन्द्रधनुषी रंगांकन' इस उद्देश्य की पूर्ति का साधनमात्र था। यह उद्देश्य ऐसा था कि चित्रण के लिये किसी विशिष्ट विषय का होना आवश्यक नहीं था। अब प्रभाववादियों को आसपास जो कुछ दिखायी देता चित्रण के योग्य था व उसके चित्रण में कल्पना की सहायता से, या विचारपूर्वक परिवर्तन करना वे अनुचित मानते। दृश्य में स्वाभाविकता का परिणाम दिखाने के उद्देश्य से वे चित्रक्षेत्र की सीमा पर अर्धमानवाकृतियों को चित्रित करते, एवं वस्तुओं को नैसर्गिक फूटी-टूटी अवस्था में चित्रित करते। इस विचार से प्रभाववाद की नैसर्गिकतावाद से घनिष्ठ समानता है; अतः कुछ विद्वान् उसको आधुनिक कला के अंतर्गत नहीं मानते। विषयसंबंधी इस दृष्टिकोण के कारण प्रभाववाद में प्रकृतिचित्रण को सब से अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ; उसमें अन्य विषयों के चित्र बहुत ही कम हैं। बार्बिजा चित्रकारों के प्रकृतिचित्रण में और प्रभाववादियों के प्रकृतिचित्रण में अंकन पद्धति की भिन्नता के अतिरिक्त और भी अंतर है। प्रकृतिचित्र को काव्यमय बनाने के उद्देश्य से बार्बिजा चित्रकार योग्य दृश्यों को चुनते; उन्होंने प्रकृति को मानवतावादी दृष्टिकोण से विषय के रूप में अपनाया और उसको मानव के अस्तित्व एवं विकास के लिये पोषक वातावरण के रूप में चित्रित किया। प्रभाववादियों का प्रकृतिचित्रण अधिक निरपेक्ष था; उन्होंने

प्रकृति के मानवीय संबंध का विचार नहीं किया। उन्होंने प्रकृति को स्वतंत्र व्यक्तित्व देकर ऋतु व समय के अनुरूप भिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया जैसे कोई व्यक्ति चित्रकार मानव को चित्रित करता है। मोने के प्रकृतिचित्र इस बात के समुचित और बहुत ही सुन्दर उदाहरण हैं।

बाह्य स्थानों पर जाकर प्रत्यक्ष चित्रण करना प्रभाववादियों की विशेषता थी जो 'बाह्य-स्थान-चित्रण'[25] नाम से प्रसिद्ध है। देगा इस तरह बाहर जा कर चित्रण करने के विरोधी थे किन्तु मोने, पिसारो व सिसली इस पद्धति के निष्ठावान् उपासक थे। मोने ने इसी उद्देश्य से शिकारा बनवाया था जिस पर बैठ कर वे नदी-किनारों के दृश्यों को चित्रित करते।

प्रभाववादियों की जीवन के प्रति क्या धारणाएँ थी। इसकी स्पष्ट कल्पना उनके चित्रों के विषयों से होती है। साधारणतया उनके चित्रों के विषय थे नदी के किनारों, सागरतटों, मैदानों, उपवनों, बगीचों, खेतों, शहर के रास्तों व चौराहों के दृश्य एवं जनसमुदाय के चित्रों में घुड़दौड़ के मैदानों, वनभोजनों, मेलों, सार्वजनिक समारोहों, नृत्यों, नाटकगृहों व मदिरागृहों के दृश्य। प्रभाववादियों ने जीवन को प्रसन्नता व कृतज्ञता के भाव से देखा व चित्रित किया। उनके दृष्टिकोण में संसार का कोना-कोना सौंदर्य से इतना परिपूर्ण है कि विषय की खोज में धर्म, साहित्य, पुराण या इतिहास को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है; कलाकार जहाँ भी देखता है वहाँ उसको सौंदर्य पूर्ण, कलात्मक विषय मिल सकता है। औद्योगीकरण से दुनिया में नवीन चेतना आ गयी है; कारखाने, रेलगाड़ियाँ, लोहे के पुल, जहाज व यंत्र, प्रकृति के साथ, दृश्य सौंदर्य के नवीन अंग बन गये हैं; वैज्ञानिक प्रगति से हम संसार को स्वर्ग बनाने की आशा कर रहे हैं। प्रभाववादी चित्रकारों ने उद्योगसृष्टि का भी आशावादी दृष्टिकोण से चित्रण किया; वहाँ भी उनको अनोखा सौंदर्य प्रतीत हुआ। प्रभाववाद ने चित्रकार को कार्यकक्ष की सीमाओं के बाहर जाकर संसार के वास्तविक सौंदर्य को अनुभव कराने को प्रेरित किया। 1876 में द्युराँति ने लिखा था "अब हम मानव को उसके आसपास के वातावरण से भिन्न नहीं मानते। संन्यासी की तरह कार्यकक्ष में बंदी होकर स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है, किंतु हम चाहते हैं कि चित्रकार इस सीमित स्थान को छोड़ कर मानवता के खुले वातावरण में आ जायें।" वर्नर हाफ्टमन के शब्दों में "प्रभाववाद आशावादी भौतिकवाद का ही एक रूप है।"

क्लोद मोने (1840–1926)

प्रभाववाद के सिद्धांतों को चरम सीमा तक प्रयोगान्वित कर के उनको चित्रकार के लिये उपयुक्त सिद्ध करने का कार्य मोने ने किया। वे प्रभाववादियों के नेता थे और अंत तक प्रभाववाद में निष्ठावान् रहे।

क्लोद मोने के पिता पन्सारी थे और उन्होंने क्लोद की चित्रकार बनने की मनीषा का विरोध किया। बचपन में ही क्लोद अपनी शालेय अभ्यास-पुस्तिकाओं में रेखाचित्र बनाने में रुचि लेने लगे। उम्र के 16वें साल तक वे ल आव्र में चित्रकार

व व्यंग्यचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए और उनको 25 फ्राक प्रति चित्र के मूल्य से बहुत काम मिलने लगा। उनके चित्र किसी दूकान की प्रदर्शन-खिड़की में लगाये जाते। उसी दूकान में उनको प्रकृति-चित्रकार ओजेन बुदें के चित्र देखने को मिले। बुदें पहले उस दूकान के मालिक थे और चित्रकारों को कलासामग्री व चित्रों के चौखटे बेचते थे। मिले, कुरबुर, त्रायो आदि चित्रकार गर्मी की छुट्टियां बिताने को वहां आते। उनसे प्रोत्साहन पाकर बुदें चित्रण करने लगे और कुछ समय बाद अधिक अध्ययन के लिये पॅरिस रवाना हुए। पहले से ही खुले वातावरण के चित्रण में बुदें की रुचि थी और पॅरिस की चित्रशाला में अध्ययन करने से वह कम नहीं हुई। बुदें ने क्लोद की असाधारण प्रतिभा को पहचाना और उनको प्रत्यक्ष स्थान पर जाकर प्रकृति-सौंदर्य को चित्रित करने का महत्व समझाया। प्रारंभ में घमंडी क्लोद ने बुदें के उपदेश को नहीं माना, परन्तु धीरे-धीरे प्रकृति सौंदर्य ने उनको अपनी ओर ऐसे आकृष्ट किया कि वे अंत तक प्रकृति के पागल पुजारी बने रहे। 1859 में वे जब पॅरिस गये तब तक प्रकृतिचित्रण के प्रति रुचि काफी बढ़ गयी थी। 1861 में जब सैनिक-सेवा में उनको अल्जियर्स भेजा गया तब वहां के प्रकाशमान व रंगीले वातावरण का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा जो आजीवन टिका रहा।

1862 में मोने वापस पॅरिस आकर ग्लेयर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। वहां मानव शरीर चित्रण के लिये आदमी को सामने बिठाते किंतु प्राचीन ग्रीक मूर्तियों को आदर्श मान कर मानवशरीर चित्रण करने को कहते। मोने के व्यक्ति-चित्र की यथार्थता को देख कर ग्लेयर ने कहा "वह भद्दा है, वास्तविकता के अध्ययन से चित्रण में सहायता मिलती है परंतु आदर्शों के पालन से ही चित्र सुन्दर व कलापूर्ण बनता है"। मोने को इस प्रकार की शिक्षा से घृणा थी किन्तु वे ग्लेयर की चित्रशाला को छोड़ नहीं सकते थे क्योंकि उनके पिता का आदेश था कि यदि वे किसी प्रसिद्ध चित्रकार से शिक्षा प्राप्त नहीं करेंगे तो उनको किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। वहां उनका बाजीय से परिचय हुआ जो वैद्यकी के साथ चित्रकला का भी अध्ययन कर रहे थे। सिसली व रेन्वार् भी ग्लेयर की चित्रशाला के विद्यार्थी थे। 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' के दूसरे साल ग्लेयर ने अपनी चित्रशाला बंद की और मोने पूर्ण स्वतंत्र होकर चित्रण करने लगे। मार्तिने कला-वीथिका में आयोजित माने की प्रदर्शनी को देख कर मोने से बहुत प्रभावित हुए। यह उनका विशुद्ध रंगांकन पद्धति से प्रथम परिचय था। रूढ़िबद्ध छाया प्रकाश के कृत्रिम प्रभाव को हटा कर चित्र को चमकीला रूप कैसे प्रदान किया जा सकता है यह उन्होंने माने के चित्रण से सीखा। अब उन्होंने चित्रकार साथियों का मंडल बनाया और वे सब फांतेनब्लो वन के सीमावर्ती शेनी नाम के गांव के आसपास प्रकृति-चित्रण करने लगे। यहां उनका बार्बिजा चित्रकारों से परिचय हुआ एवं उनकी प्रकृति-चित्रणपद्धति का उनको ज्ञान हुआ।

पर आगे काम करते और इस प्रकार चित्रमालिका को पूर्ण करते। समय के अनुसार बदलने वाले दृश्य प्रभाव को चित्रित करने का ऐसा अनोखा प्रयोग अब तक किसी चित्रकार ने नहीं किया था। रुआं के गिरजाघर के दर्शनीयभाग के ठोस शिलाकार्य पर चंचल सूर्यकिरणों को नेत्रोद्दीपक नृत्य मोने ने देखा और उसको भी उन्होंने चित्रमालिका में बन्दी किया। इस चित्रमालिका में स्थायित्व व चांचल्य जैसे विरोधी तत्वों को परिणामकारक ढंग से एक साथ चित्रित करके चित्रकार ने अपने कला-प्रभुत्व को सिद्ध किया है। आर्ज्वांतिल के दृश्यों को चित्रित करने के लिए मोने ने शिकारा खरीदा और उस पर बैठ कर उन्होंने नदीकिनारों के कई चित्र बनाये।

मनोहर प्राकृतिक दृश्य से प्राप्त ऐंद्रिक आनन्द में तन्मय होने के मोने के मनोबल व दृश्य अनुभूति का परिशीलन करके उसको पट पर अंकित करने की उनकी कुशलता को देखकर सेजान ने कहा था "मोने केवल आंख है—किन्तु कैसी आंख !" चित्रण करते समय मोने दृश्य में कितने तद्रूप होते थे इसका प्रमाण उनके बेझाय को लिखे हुए पत्र से मिलता है; उन्होंने लिखा था "मुझे जो दिखाई देता है वह मैं चित्रित करता हूँ; यदि चित्रण के सम्मुख कोई मूलभूत सिद्धान्त हैं तो उनको मैं उस समय भूल जाता हूँ; संक्षेप में, मेरी व्यक्तिगत सौन्दर्यानुभूति को साकार करने के प्रयास में मैं अपने दोषों को भी चित्रण में रहने देता हूँ।"

1901 के करीब मोने ने लंदन में टेम्स नदी के 37 चित्र बनाये जिनमें कुहरे से व्याप्त वातावरण के अन्तर्गत नदी किनारे पर स्थित मानवनिर्मित जड़ वस्तुओं व नैसर्गिक चंचल सूर्यप्रकाश के बीच के संघर्ष को चित्रित किया है। 'कुमुदिनी के फूलो'[28] की चित्रमालिका को छोड़ मोने की कोई सी भी सम्पूर्ण चित्रमालिका एक ही जगह देखने को नहीं मिलती यह दुर्भाग्य की बात है। मोने के 8 चित्रों की अन्तिम चित्रमालिका 'कुमुदिनी के फूल' पॅरिस के तिवलेरी बगीचे में एक छोटे तालाब के चारों ओर लगायी गयी है। इस चित्रमालिका में कहीं भी जमीन या आसमान को चित्रित नहीं किया गया है; पूरे चित्रक्षेत्र में पानी ही पानी है और उसके पृष्ठभाग पर प्रकाश किरणों से चमकते हुए रंगबिरंगे फूलों व पत्तों को चित्रित किया है; फूलों व पत्तों का चित्रण निमित्तमात्र है और चित्र का प्रभाव वस्तुनिरपेक्ष सा रंगसंगति में मोहक है। इस चित्रमालिका से वस्तुनिरपेक्ष कलाकारों को काफी प्रेरणा मिली।

प्रारम्भ में मोने ने जिस ध्येय को अपनाया था उसकी सफलता के लिये वे श्रद्धा व निश्चय के साथ अविरत, आजीवन कार्य करते रहे। जब उनको फ्रेंच सरकार ने राष्ट्रीय सम्मान[29] से पुरस्कृत किया तब रेन्वार् ने उसको अभिनन्दन-पत्र लिखकर उनकी निश्चयवृत्ति की प्रशंसा की; रेन्वार् ने लिखा था "आप अपने मार्ग को सुनिश्चित व सराहनीय रूप में देख रहे है.......... इसके विपरीत यह तो कभी मेरी समझ में नहीं आया कि मुझे अगले क्षण क्या करना है"। स्वभाव से

भावनाशील होने के कारण बहुत ही कम कलाकारो मे मोने की निश्चयवृत्ति एव ध्येयनिष्ठता देखने को मिलती हैं।

मोने के चित्रो से प्रभाववाद का अध्ययन सब से सरल व लाभदायक है क्योंकि उन्होने प्रभाववादी सिद्धान्तो का जितनी एकनिष्ठता से पालन किया उतना और किसी चित्रकार ने नही किया। 'आर्ज्वातिल की लाल नावें', 'चिनारवृक्ष'[30] या उनके किसी अन्य चित्र का यदि हम निकट से अध्ययन करेंगे तो प्रकाश के क्षेत्र मे हलके पीले, गुलाबी वगैरह रगो के धब्बे व छाया के क्षेत्र में नीले, हरे, जामुनी वगैरह गहरे रगो के धब्बे स्पष्ट रूप से दिखाथी देंगे; प्रत्येक रग के कई प्रकारो को चुनकर उन्होंने प्रयोगान्वित किया है। दूर से देखने पर ये भिन्न रगो के धब्बे एक दूसरे मे विलीन हो जाते है और जगमगाहट सी नजर आती है जो प्रभाव रंगो के प्रत्यक्ष मिश्रण से किसी हालत मे नही बनता। समीपवर्ती भिन्न रगों के धब्बों को नेत्र द्वारा मिश्रित रूप मे देखने की क्रिया को 'दृष्टिजन्य मिश्रण'[31] कहते है व यह मिश्रित प्रभाव रगो के प्रत्यक्ष मिश्रण से अधिक चमकीला, मोहक व यथार्थ होता है; चित्र के जगमगाते हुए क्षेत्र में दृश्यातर्गत वस्तुएँ अस्पष्ट सी दिखाथी देती है और सम्पूर्ण प्रभाव मे प्रत्येक वस्तु को गौण स्थान प्राप्त होता है। अपने अन्तिम चित्रो में वस्तुओ को आभास के रूप मे अस्पष्ट चित्रित करके मोने वस्तुनिरपेक्ष कला के काफी निकट पहुँचे। मोने को नैसर्गिकतावाद एव वस्तुनिरपेक्ष कला के बीच की कडी मानते हैं।

पिसारो व सिसली :—

कट्टर प्रभाववादियों में मोने के बाद 'पिसारो व सिसली' को स्थान दिया जाता है।

कामीय पिसारो (1831–1903) का जन्म डैनिश वेस्ट इंडीज की राजधानी सेंट टॉमस मे हुआ जहाँ उनके पिता की दूकान थी। पैरिस में कुछ साल तक शालेय शिक्षा प्राप्त करके वापस आकर वे अपने पिता की दूकानदारी मे सहायता करने लगे। दूकान में बैठे-बैठे एव फुरसत के समय में वे रेखाचित्र बनाते। वे अपना सारा समय चित्रकारी मे लगाना चाहते थे और पाँच साल तक प्रतीक्षा करने के बाद एक दिन किसी डैनिश चित्रकार के साथ वे घर छोड़ कर वेनेजुएला चले गये। जब उनके मातापिता ने देखा कि कामीय को चित्रकार बनने से रोका नहीं जा सकता तब उन्होंने अनुमति देकर कामीय को पैरिस जाने दिया।

सदेहपूर्ण अवस्था मे वे पैरिस की भिन्न-भिन्न चित्रशालाओं में शिक्षा लेते रहे। 'स्विस' चित्रशाला में उनका मोने से आकस्मिक परिचय हुआ। 1855 की पैरिस विश्वप्रदर्शनी में कुर्बे के चित्रो को देखने से उनको काफी प्रेरणा मिली। बार्बिजां चित्रकारों मे से कोरो सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से नवकलाकारों की सहायता करते और उनका मार्गदर्शन करते। कोरो के मार्गदर्शन से लाभ उठाने वालों में पिसारो भी थे। बाह्य स्थानों पर जाकर प्रत्यक्ष चित्रण करने की समान अभिरुचि

के कारण पिसारो व मोने में घनिष्ट मित्रता हुई यद्यपि पिसारो मोने से उम्र में दस साल बड़े थे। समान ध्येय से प्रेरित होते हुए प्रभाववादी चित्रकारों में कुछ वैयक्तिक विशेषताएँ थी; पिसारो को पान्टवाज व ओवर के देहाती प्रदेश के दृश्य चित्रण के लिये विशेष प्रिय थे; प्राकृतिक चित्रों मे कार्यव्यस्त मानवाकृतियों को चित्रित कर के उन्होंने प्रकृति व मानवीय जीवन के घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध की ओर संकेत किया है।

1859 मे पिसारो के चित्र राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे स्वीकृत हुए। जर्मन आक्रमण की वजह से 1870 में उनको अपने बहुत से चित्रों को पीछे छोड़ कर लंदन भागना पड़ा। वहाँ उन्होंने मोने के साथ कॉन्स्टेबल व टर्नर के चित्रों का अध्ययन किया। दोनों के प्रकृति-चित्र पिसारो को पसन्द आये किन्तु उनमें कुछ त्रुटियाँ भी नजर आयी। बाद मे उन्होंने एक मित्र से कहा "कॉन्स्टेबल व टर्नर के चित्रों से हमने बहुत कुछ सीखा, परन्तु मैंने देखा कि वे दोनों छाया के रंगों का विश्लेषण करने मे सफल नही हुए है, उन्होंने छाया को प्रकाशहीन क्षेत्र के रूप में अंकित किया है; टर्नर ने छटाओं द्वारा रंगांकन करने के महत्त्व को सिद्ध किया है यद्यपि वे अपने चित्रों में उसका इतना सफल प्रयोग नही कर सके"। लंदन से लौटने पर उन्होंने पान्टवाज को अपना निवासस्थान बनाया।

1873 मे पिसारो का सेजान से परिचय हुआ, दोनों ने एक्दूसरे से बहुत कुछ सीखा। पिसारो ने सेजान को प्रभाववादी अंकनपद्धति से अवगत कराया। जब प्रभाववादियों ने 1874 से अपनी प्रदर्शनियों का स्वतन्त्र आयोजन शुरू किया तब पिसारो ने अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी मे भेजना छोड़ दिया और प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में उत्साह से भाग लिया। 1880 तक पिसारो ने विशुद्ध प्रभाववादी अंकन पद्धति से चित्रण किया किन्तु उसके बाद उनके चित्रांतर्गत वस्तुओं के आकार अधिक स्पष्ट हो गये। 1884 में उनका सोरा से परिचय हुआ और उनके प्रभाव में आकर वे बिंदुवादी पद्धति ने चित्र बनाने लगे। सोरा की कला के बारे में उन्होंने अपने पुत्र को लिखा "सोरा की कला मे ऐसी नवीनता है जो कला के विकास मे सहायक होगी"। सोरा की बिन्दुवादी अंकनपद्धति का अध्ययन करके उन्होंने उस पद्धति के चित्र करीब 4 साल तक बनाये। उसके बाद उन्होंने निर्णय किया कि वह पद्धति उनकी स्वाभाविक रुचि के अनुकूल नही है; उन्होंने स्पष्टीकरण किया "इस पद्धति मे वैज्ञानिकता पर अत्यधिक बल दिया है, अतः इस पद्धति से दृश्य अनुभूति का स्वाभाविक चित्रण नही किया जा सकता"। अब उन्होंने अपने कुछ बिंदुवादी चित्रों को नष्ट कर दिया और वे पुनः प्रभाववादी चित्रण करने लगे।

आयु के उत्तरकाल में पिसारो को ख्याति प्राप्त होकर उनके चित्र पर्याप्त मात्रा में बिकने लगे। 1892 मे द्यू रा रुएल ने उनके पुराने व नये चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जिससे उनकी ख्याति बढ़ गयी। पिसारो नवकलाकारों को मार्गदर्शन करने मे तत्पर रहते; सहृदयता से विचारपूर्वक सलाह देने के उनके मित्रतापूर्ण

व्यवहार मे वे अन्य चित्रकारों को प्रिय थे और वे उनका आदर करते थे। सेजान, वान गो व गोग्वँ के शिक्षाकाल में पिसारो ने उनका उपयुक्त मार्गदर्शन किया। उनके मधुर स्वभाव, समझाने का तरीका व अनुभव को देख कर सेजान जैसे हठी प्रकृति के चित्रकार भी उनसे सीखने आये। 1872 व 1877 मे दोनो ने पात्वाज मे प्रकृति-चित्रण किया। पिसारो से प्रभावित होकर सेजान ने शुरू में उनका अनुकरण करके छोटे धब्बों में रगांकन किया। पिसारो ने उनकी प्रकृतिचित्रण मे रुचि बढायी। पिसारो की स्वच्छद शैली व विशुद्ध रगांकन को आधार के रूप में लेकर सेजान ने अपनी ठोस कलाशैली का विकास किया। सेजान पिसारो का बहुत आदर करते और उनकी स्मृति में उन्होने अपने एक चित्र पर हस्ताक्षर के साथ लिखा है 'पिसारो का शिष्य' आयु के उत्तरकाल मे आँख में विकार होने से वे प्रकृतिचित्रण के लिए बाह्य स्थानों पर जाने में असमर्थ हुए; अतः वे कार्यकक्ष से देख कर शहरी रास्तो के दृश्य-चित्र बनाने लगे; इन दृश्यचित्रो में पॅरिस, रुआँ, ल आव्र व दिएप के चित्र प्रसिद्ध है व पिसारो की कलानिर्मिति में ये सबसे श्रेष्ठ माने जाते है। 1903 में इस महान् प्रभाववादी चित्रकार की मृत्यु हुई।

आल्फ्रेड सिसली (1839–1899) का जन्म पॅरिस के एक इंग्लिश व्यापारी के परिवार मे हुआ। उम्र के 18वें साल में उनके पिता ने व्यापार का अनुभव कराने के हेतु उनको इंग्लैंड भेजा; किंतु चित्रकला के अतिरिक्त किसी अन्य विषय में रुचि नही होने के कारण 1862 म वे पॅरिस मे ग्लेयर की चित्रशाला मे भरती हुए जहाँ उनका रेन्वार्, मोने व बाजीय से परिचय हुआ। मोने के साथ बाह्य स्थानो पर प्रकृतिचित्रण करके उन्होंने अपनी प्रभाववादी शैली की नीव पक्की की। 1870 मे पिता की मृत्यु होने से परिवार का सारा भार उन पर पडा जिसके लिये वे स्वभावतः अयोग्य थे। व्यवहारकुशल नही होने से वे अपने चित्रो को बहुत कम मूल्य मे बेचते। पिसारो के समान वे आरंभकाल मे कुर्बे व कोरो से प्रभावित थे। विक्रेता द्युरा रुएल ने उनके चित्रों को खरीद कर कुछ सहायता करने के प्रयत्न किये किन्तु उससे उनकी विपन्नावस्था मे अन्तर नही पड़ा। जीवन के उत्तरकाल में सिसली अतर्मुख हुए और वे बहुत कम मित्रों से सम्पर्क रखने लगे। आर्थिक बल नहीं होन के कारण वे पॅरिस के उपनगरो के अलावा और कही विशेष यात्रा नही कर सके। उनके चित्रो में मार्लि, बुगिवाल, आर्ज्वांतिल, लुवेसिएन आदि पॅरिस के उपनगरो के दृश्यचित्र प्रसिद्ध हैं। 1899 मे कर्कविकार से उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु के पश्चात् उनके चित्रों की माँग बढती गयी और वे ऊँचे मूल्य में बिकने लगे।

सिसली की शैली मे मोने व कोरो की शैलियो का मनोहर सम्मिश्रण व बार्बिजां चित्रकारो की काव्यमयता है; रंगसंगति सौम्य है। मोने के समान केवल प्रकाश के प्रभाव को प्रधानता देकर सिसली ने चित्रण नहीं किया; उनके चित्रो मे प्राकृतिक सौन्दर्य का भी दर्शन है। उन्होने नदी किनारों, झरनों, बगीचों व छोटे गाँवो को प्रचुर मात्रा में चित्रित किया। सौम्य, सुनहरी किरणों से जगमगाते

आकाश का चित्रण करने मे ये अन्य प्रभाववादियों से अधिक सफल हुए; वे कहते भी थे "मैं चित्रण का आरंभ आकाश से करता हूँ"। उनके विचार से आकाश चित्र की पृष्ठभूमि मात्र नही था बल्कि भूमि के समान महत्त्व का चित्र का एक आवश्यक अंग।

एद्गा देगा (1834–1917)

प्रभाववादी चित्रकारो मे देगा एक ऐसे चित्रकार थे जो प्रभाववाद के कुछ सिद्धान्तों से सहमत नही थे। कला में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के ध्येय से प्रेरित होने हुए, उन्होने कला के परम्परागत अच्छे आदर्शों का निष्ठा से पालन किया। देगा की कला अनुशासनपूर्ण है और उन्होने नवीन विचारो को तभी अपनाया जब सतर्क होकर उन्होने निश्चित रूप से देखा कि ये विचार कला के अबाधित नियमों के प्रतिकूल नही हैं एवं कला के विकास में सहायक हो सकते हैं।

देगा जन्मतः अमीर थे और कलाकार के रूप मे भी उनका व्यक्तित्व श्रेष्ठ व स्वतन्त्र था जो उनकी बुद्धिमत्ता, व्यवहार व कलानिर्मित मे स्पष्ट दिखायी देता है। प्रभाववादी चित्रकारों मे देगा की कला प्रत्यक्ष रूप से स्वाभाविक किन्तु अभ्यासपूर्ण, बाह्यदर्शन मे सरल किन्तु रचना मे जटिल, भाव में स्पष्ट किन्तु चिंतनशील है। रेखांकन व संयोजन के विचारो से ये प्रभाववादी चित्रकारो मे सर्वश्रेष्ठ व संसार के महान् चित्रकारो मे से एक है। अन्य प्रभाववादियों की भाँति-क्षणिक-दृष्टि-प्रभाव को प्रमुख महत्त्व देकर उन्होने चित्रण किया परन्तु चित्रांतर्गत मानवाकृतियों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खोने नही दिया। देगा ही एक ऐसे प्रभाववादी चित्रकार है जिनकी चित्रित मानवाकृतियाँ व्यक्तित्व लिये हुए है; उनकी चित्रित धोबिनें, वेश्याएँ, नौकरानियाँ, स्वेच्छाचारी मनुष्य एवं लिपिक आदि व्यक्ति अपने व्यवसाय व स्वभाव-विशेषताओं, आंतरिक भावनाओ व सामाजिक स्तर को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते है। वास्तविकता के बाह्य सौन्दर्य के प्रति आकर्षण व आंतरिक कठोर सत्य का विचार ये दोनो प्रवृत्तियाँ देगा में आरम्भ से ही थी; बाह्य सौन्दर्य के आकर्षण से वे प्रभाववाद के निकट आ गये किन्तु जीवन के कठोर सत्य को चित्रित करने के उद्देश्य से वे उससे पृथक् रहे।

देगा का जन्म 1834 मे एक सघन परिवार में हुआ। उनके पिता बैंकर थे व एद्गा को भी उसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे। किन्तु बचपन मे ही एद्गा अपनी शालेय अभ्यासपुस्तिकाओं में रेखाचित्र बनाते व बड़े होकर चित्रकार बनना चाहते थे। अन्त मे अनुमति देकर पिता ने उनको अँग्र के शिष्य लुई लामोत की चित्रशाला में प्रविष्ट कराया। उस समय फ्रेंच कलाक्षेत्र मे दो विचार-प्रवाह प्रबल थे; देलाक्रा के नेतृत्व में रोमांसवादी चित्रकार भावपूर्ण रंगांकन द्वारा साहसिक घटनाओं को चित्रित कर रहे थे व अँग्र के नेतृत्व मे नवशास्त्रीयवादी चित्रकार ग्रीक कला को आदर्शरूप मानकर पौराणिक व ऐतिहासिक विषयो को चित्रित कर रहे थे। लामोत के मार्गदर्शन से देगा असंतुष्ट थे और वे लुव्र संग्रहालय जाकर वहाँ के इटालियन चित्रकारो की कृतियो का अध्ययन करते। पुनर्जागरणकालीन इटालियन

चित्रकारो से वे इतने प्रभावित हुए कि बाद मे कई बार इटाली जाकर उन्होने बोतिचेलि, लिप्रोनार्दो वगैरह विख्यात चित्रकारो की कृतियों का निरीक्षण किया। प्रारम्भ में ऐतिहासिक विषयों को लेकर उन्होने यथार्थवादी शैली के कुछ चित्र बनाये परन्तु तुरन्त ही उन्होने अपना ध्यान उससे हटा कर व्यक्तिचित्रण पर केन्द्रित किया। देगा एक श्रेष्ठ व्यक्तिचित्रकार थे और अपने प्रारम्भिक व्यक्तिचित्रों मे भी उन्होने मानव-स्वभाव-विशेषताओं व आतरिक गुणों को परिणामकारक ढग से व्यक्त किया है। उनके व्यक्तिचित्रो की रेखा मे प्राचीन महान् चित्रकारों की रेखा की सामर्थ्य है, एव रंगसगति में सूक्ष्मता व सौम्य प्रकाश का प्रभाव है। व्यक्तिचित्र बनाने से पूर्व देगा व्यक्ति को देखकर कई रेखाचित्र बनाते व तत्पश्चात् उनकी सहायता से व स्मृति से अन्तिम व्यक्तिचित्र को पूर्ण करते। समय के साथ उनके चित्रण मे अधिक निश्चय व चचल मुद्राओं व भावों को अकित करने का सामर्थ्य आ गये। देगा की एक स्वभाव विशेषता थी कि वे किसी के कहने से व्यक्तिचित्र बनाने को तैयार नही होते और चित्र के प्रभाव से असन्तुष्ट होते ही चित्रण करना बन्द कर देते। जब एक प्रतिष्ठित व सुन्दर महिला ने उनसे अपना व्यक्तिचित्र बनाने की प्रार्थना की तब उन्होने कहा "हां, यदि आप नौकरानी की पोशाक मे अपना व्यक्तिचित्र बनवाना चाहो तो मैं बना सकता हू"।

1870 के युद्ध मे सैनिक-सेवा करके जब देगा वापस आये तब उन्होने देखा कि पुरानी सामाजिक प्रथाएँ टूट रही थी व रहनसहन बदल रहा था। अब उन्होने बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार अपने चित्रविषयो मे परिवर्तन करना चाहा एव नृत्यगृहों व नाटकगृहो के दृश्यो को चित्रण के लिये पसद किया। इसी समय उनका माने, पिसारो व रेन्वार् से परिचय होकर वे प्रभाववादी चित्रकारो की चर्चाओं मे भाग लेने लगे। इन चित्रकारो के इस विचार से वे सहमत थे कि चित्र का विषय समकालीन जीवन से चुना जाना चाहिये किन्तु बाह्य स्थान पर जाकर चित्रण करने के वे कट्टर विरोधी थे। उनका स्पष्ट मत था कि कला सर्जनशील होने के कारण उसमे ऐसे तत्त्व पाये जाते हैं जो प्रकृति मे नही होते व जिनका कल्पना व भावनाओ द्वारा कलाकृति में अंतर्भाव किया जाता है; अतः केवल प्रकृति पर निर्भर रह कर श्रेष्ठ कलाकृति का निर्माण नही किया जा सकता। वे कहते "यदि मैं सरकार होता तो रक्षको को नियुक्त कर के प्रकृतिचित्रण करने वालो पर सख्त प्रांख रखता"[32]। उनकी मान्यता थी कि कलाकृति मे प्रकृति का अनुकरणमात्र नही होना चाहिये क्योंकि कलाकृति कलाकार की कल्पना का विलास है; प्राचीन महान् चित्रकारो के चित्रों में जो वायु है वह श्वास द्वारा जो वायु हम अन्दर लेते है उससे निराली है; स्मृति से चित्रण करना सब से अच्छा है क्योंकि उसमे चित्रकार केवल उन्ही बातों का विचार करता है जो सौन्दर्य या किसी अन्य विशेषता के कारण उसके स्मृतिपटल पर टिकी रहती है; ऐसे चित्रण में कल्पना से सहायता मिलकर कलाकृति को उदात्त रूप प्रदान किया जाता है; चित्रकार को वस्तु के नैसर्गिक रूप की हूबहू प्रतिकृति

करने का प्रलोभन नहीं होता व उसकी प्रतिभा व कला की कठोर वास्तविकता से सुरक्षा की जाती है। वे कहते "कला का अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति की शरण लेना। चित्र का निर्माण मस्तिष्क में होता है; एकाग्रचित्त होकर निरीक्षण करके वैयक्तिक शैली के अनुरूप उसको अन्तिम रूप दिया जाता है"[33]।

चित्र बनाने से पहले देगा नृत्यगृहों, नाटकगृहों या अन्य चित्रणीय स्थानों पर जाकर सूक्ष्म निरीक्षण करके अभ्यासचित्र बनाते और पश्चात् संयोजन व सरलीकरण करके लयबद्ध रेखाओं से सजीव व स्वाभाविक रूप देकर चित्र को अन्तिम रूप देते। उनके प्रारम्भकाल के अधिकतर चित्र तैलरंगों में बनाये हुए हैं किन्तु बाद में वे रंगीन खड़िया से चित्रण करने लगे क्योंकि उसमें रेखाएँ खींचने में सुविधा रहती एवं प्रकाश के सौम्य किन्तु सतेज प्रभाव को सफलता से अंकित किया जा सकता। तैलरंगों में चित्रण करते समय टर्पेंटाइन का अधिक मात्रा में प्रयोग करके उन्होंने चित्र की सतह को पारदर्शक व चमकीला रूप प्रदान किया। 1890 के बाद वे पूर्णरूप से रंगीन खड़िया से काम करने लगे। रंगा[?]न से पहले वे खड़िया को भाप से मुलायम बनाते जिससे खड़िया की रेखाएँ अधिक कोमल बनती। देगा की विकसित अंकनपद्धति की कुछ वैयक्तिक विशेषताएँ हैं। भिन्न रंगों की समानान्तर रेखाओं या लकीरों से वे चित्र के सम्पूर्ण क्षेत्र को रंगान्वित करते जिससे उनके चित्रों में प्रकाश एवं वातावरण का चंचल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता।

1855 में पैरिस में हुई अन्तरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में देगा को कुर्बे के चित्र देखने को मिले और उससे उनको काफी प्रेरणा प्राप्त हुई। देलाक्रा की स्वच्छंद अंकनपद्धति से वे बहुत प्रभावित थे किन्तु उनके मुख्य प्रेरणा के स्रोत थे अँग्र। जब पिता के घनिष्ठ मित्र वाल्पैंको के साथ अँग्र से मिलने का उनको मौका मिला तब अँग्र ने देगा को उपदेश दिया "रेखायें खींचो, बेटा, खूब रेखायें खींचो।" देगा की रेखा उनकी विद्यार्थी अवस्था में ही इतनी सधी हुई थी कि रेखांकन का अधिक अध्ययन करने की उनको कोई आवश्यकता नहीं थी किन्तु वे निश्चय के साथ लामोत के मार्गदर्शन में रेखाचित्र बनाते रहे। साधारण विद्यार्थियों की भाँति देगा प्राचीन कलाकृतियों का अन्धानुकरण न करके उन कलाकृतियों की महानता के पीछे छिपे हुए कला के मूलतत्वों के बारे में चिंतन करते। कला के मूलतत्वों को आत्मसात् करके उनका परिपालन करते हुए समयानुरूप कलानिर्मिति करना देगा ने उचित माना। 'माने का व्यक्तिचित्र', 'घोड़े पर सवार महिला', 'जलपानगृह की गायिकायें'[34] आदि आरम्भकाल के उनके चित्र पूर्ण विकसित व उत्कृष्ट रेखांकन शैली के उदाहरण है। अँग्र के रेखाचित्रों के समान देगा के रेखाचित्र केवल आदर्शवादी नहीं है। देगा के रेखाचित्रों में शास्त्रीय अध्ययन व नियन्त्रण के साथ शैली की मुक्तता, स्वभाव-दर्शन व विषयवस्तु के प्रति आत्मभाव ये जो गुण वे शास्त्रीयतावादी कला में नहीं मिलते। वस्तुओं के आकारों की हूबहू नकल नहीं होते हुए देगा के रेखाचित्र

स्वाभाविक एव सजीव प्रतीत होते है; रेखाचित्र के किसी भी हिस्से में अनावश्यक बारीकियां या अस्वाभाविकता नहीं दिखायी देती।

प्रभाववादियो की चर्चाओं में वे फार्ते लातूर के साथ उत्साह से भाग लेते थे; किन्तु 1865 के करीब उन्होंने अपनी प्रतिभा व अभिरुचि के अनुकूल चित्रविषयों को निर्धारित किया और उन विषयों को लेकर अन्त तक पृथक् रूप से चित्रण करते रहे। उनके चित्रविषयो में शहरी जीवन के ऐसे दृश्य हैं जो जलपानगृहों, नाटकगृहो, नृत्यगृहो, घुडदौड़ के मैदानों, दूकानों, बगीचों एव प्रतिष्ठित व्यक्तियो के गृहो की बैठकों मे पाये जाते है।

चित्रांतर्गत दृश्य को देगा ऐसी कुशलता से संयोजित करते कि उनके चित्र बिना सूचित किये अकस्मात् खीचे गये जल्द छायाचित्र के समान दिखाई देते है[35]। दृश्य में यह असावधानी का स्वाभाविक प्रभाव डालते हुए देगा प्रायः 'ऊँचे या अनोखे दृष्टिकोण'[36] से चित्रसयोजन करते। उनके चित्रो में सामान्य जनजीवन के दृश्य ऐसे दिखाई देते है जैसे कि प्रेक्षकगृह या वीथिका से दिखायी देने वाले रगमंच पर अभिनीत किये जा रहे नाटक के दृश्य। दृश्य की स्वाभाविकता को बढावा देने के हेतु वे चित्रभूमि के किनारो पर आदमी, जानवर या वस्तुओं की अधूरी कटी हुई आकृतियां बनाते। उनके चित्र 'घुडदौड के मैदान पर'[37] में घोड़ों की आकृतियां एक तरफ से इस प्रकार काट दी गयी हैं कि कोई छायाचित्रकार दृश्य को उसी क्षण अंकित करने की जल्दी मे जैसे तैसे खीच लेता है। उस समय जापानी छापचित्रो न चित्रकारो का ध्यान आकर्षित किया था और देगा भी उनसे प्रभावित थे; दृश्य को आकस्मिक व घटनासदृश बनाने के उद्देश्य से अधूरी आकृतियों के अंकन एवं असाधारण दृष्टिकोण से सयोजन इनके पीछे यही जापानी छापचित्रो का प्रभाव कारण था। देगा ने छायाचित्रण का अध्ययन किया था और उसमें प्राप्त प्रभावों का—दूर की एव समीपवर्ती वस्तुओं का धुंधलापन, निकटवर्ती वस्तुओं का अस्वाभाविक आकार-विस्तार, दृश्य का अनैच्छिक विभाजन आदि का उन्होंने अपने चित्रो में अनुसरण किया जिससे उनके दृश्य ऐसे प्रतीत होते है जैसे कि पात्रो की असावधानी में अंकित किये गये क्षणिक दृश्य। देगा के चित्रो में आकस्मिकता का प्रभाव इतना सहजसिद्ध है कि दर्शक भूल जाता है कि उसके पीछे देगा का असामान्य कौशल और गहरा अध्ययन है; प्रत्येक छोटी सी वस्तु या बारीकी का अंकन सुयोग्य स्थान पर व चित्र के समूचे दर्शन व सयोजन को ध्यान में रखते हुए किया गया है; कहीं भी स्थानान्तर या लोप असम्भव है। देगा स्वयं कहते "मेरी कला से किसी भी चित्रकार की कला अधिक स्वाभाविक है। मैं जो कुछ बनाता हूं वह चिंतन व महान् चित्रकारों की कृतियों के अध्ययन का परिपाक है। मैं नहीं समझता कि स्फूर्ति, सहजसिद्धि व चित्रकार का प्रकृतिस्वभाव आदि कुछ तत्वों का सर्जनकार्य से कोई सम्बन्ध है"[38]। देगा के चित्रण के पीछे इतना गहरा अध्ययन होने हुए उनमे कितनी पराकाष्ठा की स्वाभाविकता है यह बात उनके चित्र 'दिएगो मार्तेलि'[39] की तुलना

माने के चित्र 'एमिल जोला' से करने से स्पष्ट हो जाती है। माने के चित्र में 'एमिल जोला' ऐसे बैठे है जैसे कि उनका चित्र खीचा जा रहा है जबकि देगा के चित्र में दिएगो मार्तेलि पूर्ण स्वाभाविक मुद्रा लिये हुए है जैसे कि उनका आसपास ध्यान ही नही है। देगा के इस चित्र का यथार्थ संयोजन, विशुद्ध रंगों का प्रयोग, स्पष्ट तूलिका-सचालन प्रभाववादी है, सामर्थ्यपूर्ण रेखांकन, रचनाकौशल व मार्तेलि का व्यक्तित्वदर्शन उनके शास्त्रीय अध्ययन व स्वतन्त्र प्रतिभा के निर्देशक है।

देगा 'प्रभाववादी' शब्द से घृणा करते थे क्योंकि उसमें अहेतुकता और आकस्मिकता की ओर सकेत है। उन्होंने लड़कर 1879 की प्रभाववादियों की चतुर्थ प्रदर्शनी के विज्ञापन से 'प्रभाववादी' शब्द को हटवा दिया। बाह्य स्थानों पर जाकर खुली वायु एवं तेज प्रकाश से युक्त प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण से वे सहमत नहीं थे क्योंकि वायु व प्रकाश जैसे चचल तत्त्वों को सम्पूर्ण महत्त्व देना उनको पसन्द नहीं था। कमरो मे पाया जाने वाला नैसर्गिक प्रकाश एव नाटकगृहों व सार्वजनिक स्थानों में पाया जाने वाला कृत्रिम प्रकाश उनकी दृष्टि में सतोषजनक थे। वे कहते "मैं मानवीय जीवन व मानवनिर्मित प्रकाश को पसन्द करता हू; कला मानवनिर्मित है, कला का प्रकृति से सम्बन्ध नही है"। वे स्मृति से चित्रण करते; जब कभी मानव-शरीर के अध्ययन के लिए किसी आदमी की आवश्यकता पड़ती तो वे उसको कार्यकक्ष में घूमने को कहते और उसका निरीक्षण करने के बाद में उसको स्मृति से चित्रित करते। इस पद्धति से विशिष्ट मुद्रा में आदमी को बिठाकर चित्र बनाने में जो अस्वाभाविकता आती है उससे वे बचते।

सुरचना व स्थायी रूप दर्शन ये शास्त्रीयतावादी कला के गुण देगा की कला की महानता के आधार है; 'रूई का बाजार', 'ओलिम्प', 'बेलेलि परिवार'[40] आदि चित्र इसके समुचित उदाहरण है। इन चित्रों के सतुलन, सुस्थापन, लयबद्ध रेखांकन व आकारों की सुस्पष्टता ये गुण देगा के गहरे अध्ययन व योजनाकौशल की ओर सकेत करते है, तो गतित्व व क्षणिक-दृष्टि-प्रभाव उनकी नवीनता की ओर।

नृत्यगृहों में उनको नवीन ढग से सयोजन करने के लिए समुचित वातावरण व अनोखा कृत्रिम प्रकाश मिलते जो उनको विशेष पसन्द थे। उनके नर्तकियों के चित्र स्वाभाविक वातावरण व गतित्व से सजीव एव आदर्श आकार व लय से सुडौल बन गये हैं। शास्त्रशुद्ध परम्परा व प्रयोगशील आधुनिकता का उनकी कला मे सुन्दर सगम है; सुनियत्रित, अभ्यासपूर्ण रेखा के साथ मुक्त तूलिका-सचालन व विशुद्ध रगांकन का विलास है।

व्यक्तिचित्रणकला के व्यवसाय से देगा घृणा करते थे किन्तु उन्होंने अपने रिश्तेदारों के कुछ ऐसे व्यक्तिचित्र बनाये है एव आत्मचित्र बनाये है जो आतरिक व्यक्तित्व के दर्शन से सजीव है। अपनी भाभी एस्तेल म्युसो[41] के व्यक्तिचित्र मे देगा ने उच्च कोटि के संयोजनकौशल के अलावा भाभी के चेहरे पर दृष्टिक्षीणता व समर्पण के भाव बड़ी कुशलता से अंकित किये है। सगीत सुनते समय बनाये गये

अपने पिता के व्यक्तिचित्र में गायक की तन्मयवृत्ति व पिता के चेहरे की मुग्धता के भाव परिणामकारक ढग से अकित किये है। 'युवती का शौर्य', 'आत्मचित्र' एवं 1875 के पश्चात् बनाये गये धोबिनों व नर्तकियो के चित्र उनके मानवतावादी विचारो के प्रमाण हैं।

देगा किसी भौतिक महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित चित्रकार नही थे। उनका ध्येय था निजी कला का पूर्ण विकास व इस ध्येय की प्राप्ति के लिये वे जीवन के उत्तर-काल मे अधिक एकातप्रिय बन गये और अपने इनेगिने मित्रो से भी वे बहुत कम सम्पर्क रखते। देगा सवेदनशील, अतर्मुख व स्पष्टवक्ता थे। उनके कोई विशेष मित्र नही थे और वे आजन्म अविवाहित रहे। वे प्रशसा से घृणा करते थे।

देगा उत्कृष्ट मूर्तिकार भी थे। दृष्टि कमजोर होने के बाद उन्होने मूर्तिकला पर ध्यान केन्द्रित किया और कई उत्कृष्ट मूर्तियाँ बनायी जिनमें 'तरुण नर्तकी', 'दौड़ने वाला घोडा' विशेष प्रसिद्ध है। देगा की मूर्तिकला के बारे मे रेन्वार् ने कहा था "उनको मैं पहला मूर्तिकार मानता हूँ"[43]।

देगा प्राय. अपने चित्रो को बेचना नही चाहते किन्तु 1876 के बाद अपने चचेरे भाई की आर्थिक सहायता करने में बहुत वित्तहानि होने से उनको विवश होकर निजी चित्रो का विक्रय करना पडा। 1917 मे करीब अधावस्था मे उनकी मृत्यु हुई। उससे पहले उन्होने अपने मित्र फोर्रे को सूचित किया था कि उनकी मृत्यु के बाद कोई शोकप्रदर्शन नही होना चाहिये और यदि अनिवार्य हो तो केवल इतना ही कहा जाये "देगा को रेखाचित्रण बहुत प्रिय था"[43]।

ओग्युस्त रेन्वार् (1841–1919)

देगा के समान रेन्वार् भी एक ऐसे प्रभाववादी चित्रकार थे जिन्होंने दृश्य के बाह्य रूप के साथ विषयवस्तुजनित निजी भावनाओं को भी चित्रित किया है। दोनों में से किसी का भी दृष्टिकोण आलोचनात्मक नही था; किन्तु देगा का दृष्टिकोण उदासीनता का था जबकि रेन्वार् का दृष्टिकोण स्नेह व प्रसन्नता का था। देगा ने स्त्री का चित्रण उसके यथार्थ व्यक्तित्व के साथ किया और उसमे स्त्री को सुन्दर या आदर्श दिखाने का प्रयत्न नही है जबकि रेन्वार् की स्त्री आदर्श सौंदर्य लिये हुए है। देगा के समान रेन्वार् के चित्र केवल जीवन के किसी विशिष्ट क्षण का अंकन नही हैं; उनमें स्त्रीसौन्दर्य की उपासना व जीवन की सुखमयता पर संतोष व्यक्त किया है। देगा ने स्त्री को व्यक्तिरूप दर्शाया है जबकि रेन्वार् की स्त्री नारीसौन्दर्य का प्रतीकरूप है। रेन्वार् के स्त्री-चित्र दर्शक का ध्यान प्रथम स्त्रीसुलभ सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करते हैं, उसके पश्चात् उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का विचार मन में आता है। व्यक्तिचित्रों को छोडकर अन्य स्त्रीचित्रो में रेन्वार् ने स्त्रीसौन्दर्य की अपनी प्रिय कल्पना को साकार करके उसको पुनः पुनः उसी रूप में चित्रित किया है मानो वे सभी उसी स्त्री के व्यक्तिचित्र हैं।

चित्रकार रेखांकन का कौशल एवं रगसंगति का स्वाभाविक ज्ञान खो बैठता है, एवं प्रकृति को प्रत्यक्ष देख के चित्रण करने की आदत पड़ने से स्वतन्त्र रूप से विचार करके रचना करने का सामर्थ्य भी वह प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने 1879, 1880 व 1881 की प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में भाग लेना अस्वीकार किया। 1882 में उन्होंने इटाली की यात्रा कर वेटिकन में राफेल के भित्तिचित्र व पाम्पिया के उत्खनन में प्राप्त चित्र देखे जिनसे दाविद् व अँग्र प्रभावित हुए थे। अब अँग्र के रेखांकन व रचना के कौशल का सौन्दर्य ग्रहण करने की नयी दृष्टि उनको प्राप्त हुई। इसके पश्चात् नियमबद्ध अध्ययन करके कलानिर्मिति करने का उन्होंने निश्चय किया।

इटाली से वापस आने के बाद बनाये गये चित्र 'बुगिवाल का नृत्य'[49] की आकृतियाँ ठोस, सुसबद्ध व अध्ययनपूर्वक अंकित की गयी हैं। उसके बाद उन्होंने अपना विख्यात चित्र 'स्नानमग्ना युवतियाँ'[50] बनाया जिस पर उन्होंने 1884 से 1887 तक परिश्रम किया। इस चित्र की बहुत प्रशंसा हुई। यह चित्र बुशे की परम्परा का है यद्यपि इसमें बहुत ही हलकी व सुन्दर रंगसंगति का कोमल तूलिका-सचालन द्वारा प्रयोग किया है। चित्र के विषय को रेन्वार् ने 17वी सदी के फ्रेंच कलाकार फ्रान्स्वा जिरार्दों की उभारदार शिल्पकृति से चुना है जो वर्साय के फव्वारे पर अंकित है। पृष्ठभूमि में प्रभाववादी पद्धति से प्रकाश की जगमगाहट व वातावरण की चंचलता का परिणाम दिखाया है किन्तु सबसे अधिक महत्त्व स्नानमग्ना युवतियों को दिया है जिनकी मनोहर, लययुक्त, स्पष्ट आकृतियाँ व क्रीडाशील अभिनय एवं त्वचा की मोतियों जैसी हलकी चमक व ताजगी दर्शक को मोह लेती है। रेन्वार् स्वयं किसी भी सिद्धान्त के गुलाम होने के विरोधी थे। उसके 'स्नानमग्ना युवतियाँ' जैसे चित्रों में उन्होंने विभिन्न कलासिद्धान्तों का ऐसी कुशलता से समन्वय किया है कि वे चित्र दर्शक को पूर्ण स्वाभाविक व सर्वांग सुन्दर प्रतीत होते हैं। वे कहते थे "आजकल, हरेक बात का स्पष्टीकरण किया जाता है, किन्तु यदि किसी चित्र का स्पष्टीकरण किया जा सकता है तो अवश्य समझ लो कि वह कला नहीं है"[51]। 'स्नानमग्ना युवतियाँ' चित्र में अँग्र की रेखा की गति, प्रभाववादी प्रकाश व वातावरण की चचलता व 18वी सदी की फ्रेंच कला की विवस्त्र स्त्रीशरीर की कोमलता इन सबका सुरीला सहअस्तित्व है। रेन्वार् कलाकार की भावनाओं की तीव्रता को सबसे प्रमुख स्थान देते थे। वे कहते "चित्रकार की भावनाओं के साथ सब कुछ आता है"[52]। 'स्नानमग्ना युवतियाँ' चित्र के बाद रेन्वार् ने दैनंदिन जीवन से विषयों को चुन कर चित्र बनाये जिनमें 'पियानो पर दो लड़कियाँ'[53] यह प्रसिद्ध चित्र व कई विवस्त्र स्त्रियों के चित्र है।

रेन्वार् की उत्तरायु की कलाकृतियों में तर्कहीन अतिशयोक्ति का दोष पैदा होकर उनकी स्त्रियों की आकृतियाँ मोटी व भद्दी बन गयीं। 1890 से संधिवात से पीड़ित होने से रेन्वार् हलचल करने में धीरे-धीरे असमर्थ हो गये। पहियेवाली कुर्सी पर बिठा कर उनको हिलाया जाता था। कहते हैं कि तूलिका पकडने में असमर्थ

होने के कारण कपड़े की पट्टी से तूलिका को हाथ मे बंधवा कर वे कुर्सी पर बैठे-बैठे चित्रण करते थे। इस बात की सत्यता संदेहास्पद है किन्तु एक बात सच है कि रेन्वार् आत्यंतिक शारीरिक दुर्बलता व पीड़ा के बावजूद अन्त तक कलाकृतियां बनाते रहे। ऐसी अवस्था मे चित्रण करते हुए देख कर जब किसी ने उनसे आश्चर्य से पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया "चित्रकार हाथ से चित्र नही बनाता"[51]। उनकी इस उक्ति का उनकी निजी कला समुचित उदाहरण है। रेन्वार् ऐसे महान् चित्रकारों में है जिन्होंने अपने दिल की उमंगो से कला को जन्म दिया।

आंरी द तुलुज लोत्रेक (1864–1901)

तुलुज लोत्रेक की कला मे ऐसे मौलिक गुण विद्यमान है कि उनकी शैली को पूर्ण रूप से प्रभाववादी शैली नही मान सकते। अंकनपद्धति व चित्र के संपूर्ण प्रभाव के विचारों से उनकी कला व प्रभाववाद में कुछ ऐसी समानताएँ है कि उनको प्रभाववादी चित्रकारों में सम्मिलित किया जाता है। किन्तु साथ ही अपनी कलाकृतियो द्वारा लोत्रेक ने प्रभाववाद की त्रुटियों पर प्रकाश डाला व भावी चित्रकारो का मार्गदर्शन किया। लोत्रेक की कला का व्यापारिक व विज्ञापन कलाओं पर काफी प्रभाव पड़ा किन्तु उससे उनकी कला के श्रेष्ठत्व मे कोई न्यूनता नही आती। प्रभाववादियो की भांति उन्होंने चित्र विषय को गौण नही माना बल्कि विषय को परिणामकारक ढंग से चित्रित करने के उद्देश्य से उन्होंने प्रभाववादी शैली का प्रयोग किया। समाज के जिस स्तर को उन्होंने विषय के रूप में चुना, जिस वातावरण को उन्होंने निकट से देखा और जिन स्थानो पर उनका अक्सर आना-जाना रहा वहां के जीवन को उन्होंने आत्मीयता से यथार्थ रूप मे चित्रित किया। ऐसे चित्रों में पॅरिस के नृत्यगृहो व मदिरागृह 'मुलें रुज'[53] के चित्र बहुसंख्य है। यहा पॅरिस के साहित्यकार, कलाकार, नट-नटियां एवं कलाप्रेमी सम्मिलित होते। इनके अतिरिक्त अन्य मदिरागृहो, वेश्यागृहों, नाटकगृहों व सर्कसो के अन्तर्गत दृश्यों एवं सामान्य जनजीवन को भी उन्होंने यथार्थ चित्रित किया। लोत्रेक ने जिस दुनिया का चित्रण किया वह बडी अनोखी थी व उनका स्वयं का व्यक्तित्व भी बड़ा अनोखा था।

लोत्रेक का जन्म 1864 मे बहुत ही सम्पन्न व अमीर खानदान मे हुआ। उनके पूर्वजों का राजपरिवार से रिश्तानाता था। यदि दुर्घटनाग्रस्त होकर बचपन मे ही वे अपंग नही होते तो शायद वे भी परिवार के अन्य सदस्यो की भांति शिकार, मित्र-सम्मेलन, भोजन, नृत्य, मदिरापान आदि विलासों में अपना जीवन चैन से बिताते। 1878 मे फर्श पर गिरने से उनकी एक टांग मे चोट आयी; 15 महीने बाद जब पहली टांग का इलाज हो रहा था- फिर ऊंचाई से गिरने से दूसरी टांग मे भी चोट आयी। समय बीतता गया और मालूम हो गया कि आंरी की दोनो टांगों की वृद्धि रुककर वे कमजोर हो गयी है। शारीरिक दौर्बल्य का लोत्रेक की महत्वाकांक्षा पर जबरदस्त परिणाम हुआ और उन्होंने निश्चय के साथ

चित्रकारी पर ध्यान केन्द्रित करके कठिन परिश्रम से कला साधना की। किन्तु यह सोचना अन्यायपूर्ण होगा कि लोत्रेक की कला केवल कठिन परिश्रम का फल थी व उनमें कोई विशेष प्रतिभा नहीं थी। उनके बचपन के रेखाचित्र उनकी असाधारण प्रतिभा के प्रमाण हैं। दुर्घटना-ग्रस्त होने से पहले भी छोटे आरी को रेखाचित्रण का शौक था। जब आरी तीन साल का था तब माताजी के साथ वह शादी में गया था। वहां की प्रथा के अनुसार माताजी ने पंजिका में हस्ताक्षर किया तब आरी ने भी हस्ताक्षर करना चाहा। माताजी ने उसको रोका कि वह अभी लिखना नहीं जानता था तब आरी ने कहा "तो क्या हुआ? मैं बैल का चित्र खींचूंगा।" यह साधारण प्रसंग लोत्रेक में बचपन से ही कलाभिरुचि कैसी थी इसका प्रमाण है। आयु के दसवें साल के करीब उन्होंने रेखाचित्र पुस्तिका में जानवरों, आदमियों व नावों के बहुत से चित्र बनाए।

दुर्घटनाओं के बाद जब वे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, पैरिस के प्रेंस्तो नाम के गूंगे व बहरे चित्रकार से परिचय हुआ। प्रेंस्तो घोड़ों व कुत्तों के चित्र बनाने में निपुण थे और उनके मार्ग दर्शन में लोत्रेक ने कला का अध्ययन जारी किया। इसी समय उनके पिता ने उनको चित्रकार फोर्रें से भी परिचित कराया जिनसे कला के मार्गदर्शन के अतिरिक्त वे पैरिस के रंगमंच से भी परिचित हुए। अब लोत्रेक ने प्रभाववाद का अध्ययन आरम्भ किया। प्रथम चित्रकार बोन्ना व बाद में चित्रकार कोर्मों की चित्रशालाओं में उन्होंने चित्रकला का अध्ययन किया; वहाँ परम्परागत शैलियों के अध्ययन के साथ लोत्रेक ने अपनी वैयक्तिक शैली का विकास किया।

केवल 'कला के लिए कला' लोत्रेक का ध्येय नहीं था; वान गो व गोगँ के समान वे कला को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। अन्य कलाकारों से वैयक्तिक संपर्क द्वारा एवं उनकी कृतियों के अध्ययन से उन्होंने बहुत लाभ उठाया; किन्तु सभी चित्रकारों में से वे देगा को आदर्श चित्रकार मानते व उनकी कृतियों को सबसे अधिक पसन्द करते। जापानी छाप चित्रकला का भी लोत्रेक पर बहुत प्रभाव था। पूर्वगामी चित्रकारों में से गोया व वेलास्केस की कृतियां उनको विशेष प्रिय थीं। गोया की कला ने विशेषतः युद्ध दुष्परिणाम चित्रित करने वाली 'मैंने यह देखा'[55] नाम की चित्रमालिका ने—उनको निरीक्षणपूर्वक, निर्भीक होकर यथार्थ को उसकी सभी कटुताओं के साथ चित्रित करना सिखाया। अँग्र की कला का अभ्यास करके उन्होंने सशक्त व लयबद्ध रेखा से अपनी अभिव्यक्ति को परिणामकारक बनाया। रंगमंच के एवं मोंमार्त्र के निशाचरों के जीवन को चित्रित करने के विचार से उन्होंने देगा की चित्ररचना पद्धति को सुयोग्य माना। आरम्भ में उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति व सिद्धांतों का अध्ययन करके देखा कि प्रभाववाद में कुछ ऐसी कमजोरियाँ हैं कि वह चित्रकार की अभिव्यक्ति का परिणामकारक माध्यम नहीं हो सकता। उसके बाद वे बाह्यरेखा से अंकित आकारों, रंगों के विस्तृत क्षेत्रों व छोटी

लकीरों से चंचल पृष्ठभूमि का प्रयोग करके चित्रण करने लगे। अब लोत्रेक की रंग-संगति में नयी चमक आ गयी जिसके विकास में उनके नये मित्र वान गो व एमिल बर्नार के विचारों से भी उनको लाभ हुआ।

1888 से लेकर करीब 10 साल तक लोत्रेक की कला उत्कर्ष के परम बिंदु पर थी। 1889 से उन्होंने 'मुलँ रुज' मदिरागृह के अन्तर्दृश्यों के कई चित्र बनाये। पैरिस के कुख्यात वेश्यागृह 'रुए आम्ब्राज' की बैठक को सजाने का काम लोत्रेक को मिला था। इस मौके से लाभ उठाने का उन्होंने निश्चय किया व 1889 में आरम्भ करके उन्होंने उस वेश्यागृह के काफी तादाद में चित्र बनाये। 1894 से उन्होंने एक अन्य वेश्यागृह 'रुए द मुलँ' के अन्तर्गत दृश्यों के चित्र बनाये।

लोत्रेक की कला के विकास में उनका 1888 में बनाया चित्र 'सर्कस फर्नांदो'[56] बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस चित्र में लोत्रेक की प्रभाववाद से भिन्न निजी शैली पूर्ण विकसित रूप में प्रथम दृष्टिगोचर हो गयी; इस चित्र में यथार्थ दूरदृश्य-लघुता एवं छाया प्रकाश व वातावरण के प्रभावों की उपेक्षा करके वस्तुओं के आकारों का स्वतन्त्र विचार से अभिव्यक्तिपूर्ण अंकन किया है। दृश्य के सम्पूर्ण प्रभाव से दृश्यातर्गत वस्तुओं के, कुछ ऐंठन देकर सरलीकृत किये आकारों के, स्पष्ट व भावपूर्ण दर्शन को अधिक महत्त्व दिया गया है। सौन्दर्यात्मक कलासिद्धान्तों के पीछे मानवीय सत्य को लोत्रेक ठुकरा नहीं सकते थे; अतः उनके चित्र 'सर्कस फर्नांदो' में विषयवस्तु का अभिव्यक्तिपूर्ण दर्शन व चित्र के कलात्मक गुणों का विकास इनमें स्पष्ट स्पर्धा है। इस चित्र पर जापानी कला का भी प्रभाव है। जापानी प्रभाव के कारण वे समतल रंगों के क्षेत्रों को बाह्य रेखा से अंकित करते व पृष्ठभूमि के रंगों व वस्तुओं की छटाओं में स्पष्ट विरोध रख के संयोजनपूर्वक चित्रण करते, जिससे उनके चित्र आलंकारिक किन्तु अभिव्यक्तिपूर्ण बन जाते।

सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से लोत्रेक ने मासिक पत्रिकाओं व समाचारपत्रिकाओं के लिए व्यंग्यचित्र बनाये एवं व्यंग्यचित्रकारों की संस्था 'सलों द आर इंकोएरा'[57] की प्रदर्शनियों में चित्रों को प्रदर्शित किया किन्तु उनको वहां विशेष सफलता नहीं मिली। 1891 में उन्होंने 'मुलँ रुज' के लिए एक विज्ञापन-चित्र बनाया जिससे उनको ख्याति प्राप्त हुई। इतना प्रभावी व क्रांतिकारी विज्ञापन-चित्र पैरिस की दीवारों पर अब तक नहीं लगाया गया था। इस चित्र पर जापानी कला एवं 'आनुवो' शैली का प्रभाव था। यह चित्र विज्ञापनकला में लोत्रेक का आरम्भिक चरण था जिसका बाद में उन्होंने काफी विकास किया। उन्होंने कुल लगभग 30 विज्ञापनचित्र बनाये जिनमें 'पैरिस के बगीचे में जान आवरिल'[58] सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट है। इस चित्र में नर्तिका जान आवरिल की पूर्णाकृति के चारों ओर से लेकर एक विशाल वाद्ययन्त्र चित्रित किया है जिसको हाथ में पकड़े हुए वादक का बेतुका अमानवीय चेहरा नीचे के दायें कोने में बनाया है। व्यापारिक उद्देश्य से बनायी गयी लोत्रेक की कृतियां—विज्ञापनचित्र, लिथोग्राफ्स, आवेष्टनचित्र आदि—

कलाजगत को महत्त्वपूर्ण देन है व उससे भविष्य की व्यावसायिक कला को विकास की दिशा में गति प्राप्त हुई। लोत्रेक ने विज्ञापनचित्रों के निर्माण में ऐसे सिद्धान्तों को सुनिश्चित रूप दिया जो आजकल की विज्ञापनकला के मूल सिद्धान्त माने जाते हैं। प्रारम्भिक क्षणिक-दृष्टि में होने वाला सम्पूर्ण प्रभाव, अक्षरों का समतलों के साथ सुसंगत प्रयोग एवं परिणामकारक रचना ये इन सिद्धान्तों के मूल-तत्व हैं। लोत्रेक के विज्ञापन-चित्रों के सामर्थ्य को देखकर एक समकालीन व्यक्ति ने कहा "लोत्रेक ने रास्तों पर स्वामित्व प्राप्त किया है"[59]। रंगीन लिथोग्राफी की अंकन-पद्धतियों में लोत्रेक ने महत्त्वपूर्ण आविष्कार किये जिनसे लिथोग्राफी के माध्यम से भी कलाकार अपनी मौलिक प्रतिभा से दर्शकों को परिचित कराने में समर्थ हुआ और लिथोग्राफी को सर्जनकलाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। व्यापारिक कला में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होने से लोत्रेक की चित्रकला के श्रेष्ठत्व में कोई बाधा नहीं आती।

देगा के समान लोत्रेक प्रथम रेखाकार थे और तत्पश्चात् रंगकार। उनके कई चित्र अक्सर तूलिका से बनाये गये रंगीन रेखाचित्र मात्र हैं। देगा के समान वे तूलिका से छोटी-छोटी लकीरें खींच कर पूरे चित्रक्षेत्र को रंगांकित करते जो उनके प्रसिद्ध चित्र 'मुलें रुज के अन्तर्भाग के दृश्य' (1892)[60] में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऊंचाई से लिया गया दृष्टिकोण, चित्रक्षेत्र की सीमारेखा से कटी हुई प्रति-कृतियाँ देगा के संयोजन व कूं जौहिइ दृश्य का स्मरण दिलाते हैं। परिस्थितिवश हो या स्वभाववैचित्र्य के कारण स्वेच्छा से हो, लोत्रेक ने समाज के उपेक्षित व निम्न वातावरण में अधिकतर जीवन बिताया और गोया के समान उस वातावरण को यथार्थ चित्रित करने की चुनौती को स्वीकार कर सफल व परिणामकारक कृतियों का निर्माण किया। लिखना सीखने से पहले ही लोत्रेक ने वस्तुओं को यथार्थ चित्रित करना शुरू किया व अन्त तक चित्रकला ने उनके लिए भाषा का कार्य किया। लोत्रेक ने चित्रकला को अभिव्यक्ति का माध्यम माना न केवल 'स्वान्तः सुखाय कला' अपितु उस माध्यम से अपनी परिचित दुनिया को यथार्थ चित्रित किया। अतः उनके बारे में ज़र्दे ने समुचित शब्दों में लिखा है "रेखांकन, यथार्थ रेखांकन यही लोत्रेक की विशेषता थी"[61]।

अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण जिस भोगमय जीवन से वे वंचित रहे उसको कला का विषय बनाकर उन्होंने अपनी मनोवैज्ञानिक पूर्ति की। उनके चित्रों के विषय भी अधिकतर ऐसे क्षेत्र हैं—घुड़सवारी, नृत्य, सर्कस वगैरह, जिनमें वे प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते थे। उनके लिए कला जीवन से परोक्ष रूप से आनन्द प्राप्त करने का साधन थी, न केवल कला के लिये कला। वान गो के समान सांसारिक दुःखों पर प्रकाश डालने का उसमें उद्देश्य नहीं था। समकालीन साहित्यिक मोपासा व त्रिस्ता बर्नार के समान उन्होंने पेरिस के स्वच्छंद जीवन के सत्य रूप को यथार्थ चित्रित किया। आदमी की मूर्खता व जीवन के कटु सत्य को उन्होंने समग्र किन्तु वाल्तेर की निष्ठा 'अन्त में सब कुछ ठीक होता है' का विश्वास करके सब को

प्रसन्नता से स्वीकारा। गोया का ध्येय वाक्य 'मैंने यह देखा' लोत्रेक की कला पर भी नैतिक एवं कलात्मक, दोनों दृष्टिकोणों से पूर्ण लागू होता है। लोत्रेक की मृत्यु के पश्चात् उनके मित्र त्रिस्ता बर्नार ने लिखा "अब हम समझते हैं कि लोत्रेक की कला हमको इसी वजह से अनैसर्गिक प्रतीत होती थी कि वे वास्तविक सत्य के प्रति अत्यधिक एकनिष्ठ थे ...... उनको दूसरों के विचारों से चलना पसन्द नहीं था, न उनके सामने वे कभी झुके"। इस स्वतन्त्रवृत्ति का अर्थ यह नहीं था कि लोत्रेक में भौतिक महत्त्वाकांक्षा नहीं थी या व्यापारिक दृष्टिकोण की कोई कमी थी। अपनी प्रतिभा का वे कभी प्रदर्शन करते तो उसके विपरीत कभी कठोरता से स्वयं को भी अपंग या हास्यास्पद चित्रित करते। अपने पिता के प्रति नितांत आदरभाव रखते हुए भी लोत्रेक ने उनके कुछ व्यंग्यचित्र बनाये। उनकी विनोदवृद्धि के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हो सकता है कि उसके जरिये वे अपनी शारीरिक दुर्बलता को भूल जाते थे। शायद इसी कारण ही वे सर्कस के विदूषकों, नट-नटियों, वेश्याओं वगैरह निम्नस्तर के लोगों की मित्रता पसन्द करते; ऐसे मित्रों के साथ वे अपनी नैसर्गिक कमजोरियों को महसूस नहीं करते व हँसीमजाक में समय बिताते। जीवन के बाह्य दिखावटी रूप के पीछे जो कटु सत्य छिपा है उसकी खोज में उनको सर्जन का आनन्द मिलता। उन्होंने इवेत गिल्बेर से कहा था "सब जगह व सदैव कुरूपता का भी ऐसा पक्ष है जो सुन्दर है एवं जिसकी खोज में बड़ा आनन्द मिलता है"।[62] वे कहते "यदि मैं चित्रकार नहीं बनता तो मैं शल्यचिकित्सक बनना चाहता" लोत्रेक ने तात्त्विक चर्चा करने या निष्कर्ष निकालने की इच्छा नहीं बल्कि निष्काम कर्मयोगी के समान जीवन के सुखदुःखों को स्वीकार कर यथार्थ चित्रित किया। लोत्रेक में निरर्थक भावुकता या मन की कमजोरी नहीं थी, और यही कारण है कि समान ध्येय से प्रेरित होते हुए व साधनों से सम्पन्न होते हुए लोत्रेक व देगा की कला में भिन्नता है। लोत्रेक किसी भी विषय को लेकर चित्रण कर सकते थे जबकि देगा विषय को चुनने से पहले सोचते थे कि उससे सुन्दर व सन्तोषप्रद कलाकृति के निर्माण की कहाँ तक शक्यता है। लोत्रेक के लिए कला जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करने का साधन थी जबकि देगा के लिए जीवन के दृश्य कलात्मक सर्जन के लिये एक बहानामात्र था। देगा का दृष्टिकोण मुख्यतः कलाकार का था जबकि लोत्रेक का सामाजिक जीवन के निरीक्षण का। लोत्रेक में व अन्य समकालीन चित्रकार माने, मोने, सेजान, रोन्वार वगैरह में यही मुख्य अन्तर था कि ये सभी चित्रकार कलात्मक ध्येय से प्रेरित थे और कलासम्बन्धी निजी धारणाओं का दृढ़ता से पालन करते थे, किन्तु लोत्रेक का ध्येय था जीवन का दर्शन व यथार्थ चित्रण। अतः स्वतन्त्र अंकनपद्धति का आविष्कार करने की प्रतिभा रखते हुए दूसरों के प्रयोगों से लाभ न उठाने का दुराग्रह उन्होंने नहीं किया।

कला के सर्जन में उन्होंने जो अविरत परिश्रम किये व पतित जीवन को प्रत्यक्ष अनुभव किया उसका उनकी शारीरिक व मानसिक शक्ति पर बुरा असर

पड़ा। वे दिन भर चित्रण करने, रात को मदिरागृहों, नृत्यगृहों व नाटकगृहों में जाते व अत्यधिक मदिरापान करते। इससे वे बिलकुल कमजोर हो गये और 1901 में आयु के केवल 37वें साल में उनका स्वर्गवास हुआ। उनका व्यक्तित्व महान् था; वे सामाजिक निन्दा या आलोचना के सामने नहीं झुके। उनकी कलाकृतियाँ भी महान् हैं, उनमें हमको समकालीन जीवन का यथार्थ दर्शन मिलता है।

अब तक कुछ अग्रगण्य प्रभाववादी चित्रकारों के कार्य व कला का हमने परिशीलन किया। इनके अलावा सोरा, सेज़ान, वान गो व गोग्वँ ऐसे श्रेष्ठ चित्रकार थे जिन्होंने आरम्भ में प्रभाववाद के अध्ययन से अपनी अंकनशैलियों को सामर्थ्यवान् बनाया और तत्पश्चात् कलासम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों को प्रस्थापित करके नयी कलाशैलियों को जन्म देकर आधुनिक कला को नयी दिशाओं में मोड़ दिया। इन चित्रकारों की कला ने आधुनिक कला के विकास में अपरिमित पथप्रदर्शन किया अतः इनको आधुनिक कला का प्रणेता मानते हैं। इनकी कला का अध्ययन हम स्वतंत्र अध्याय में करेंगे।

प्रभाववाद को आरम्भ से फ्रान्स में कुछ ऐसे अनुयायी मिले जिनकी गणना अच्छे चित्रकारों में की जा सकती है यद्यपि कला के इतिहास में उनका स्थान गौण है। इन चित्रकारों में बुदँ, योंकिंड, बाज़ीय, बर्त मोरिसो व मेरी कॅसाट आते हैं।

प्रभाववाद का जैसे प्रसार होता गया वैसे उसको दूसरे देशों में भी अनुयायी मिले। इनमें से इंग्लैंड में विसलर, सिकर्ट, ओर्पेन व स्टिअर; जर्मनी में माक्स लिबरमन, लोविस कोरिंट व स्लेवोट एवं अमेरिका में प्रेंडरगास्ट विशेष प्रसिद्ध हुए।

जेम्स मॅक्नील विसलर (1834–1903) माने के समकालीन थे व उन्होंने माने के साथ 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' में भाग लिया था। उनके प्रारम्भिक चित्रों पर कुर्बे का प्रभाव था। 1864 में चित्रित किये गये 'छोटी श्वेत बालिका'[63] में माने—व कुछ 'प्रिराफेलाइट भ्रातृमंडल'[64] के तत्वों—का स्पष्ट अनुसरण है।

विसलर का जन्म अमेरिका में लोवेल शहर में हुआ। सेना की प्रवेश परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने से वे 1855 में कला के अध्ययन के लिये पैरिस रवाना हुए जहाँ वे ग्लेयर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। यहाँ कुर्बे, माने, जापानी छापचित्र व प्रभाववाद के अध्ययन से उनकी व्यक्तिगत शैली को सुनिर्णीत रूप प्राप्त हुआ। 1859 में उन्होंने लंदन के चेलसी विभाग को अपना निवासस्थान बनाया। प्रिराफेलाइट चित्रकारों से परिचय होने से उनके कुछ तत्वों ने विसलर की कला में प्रवेश किया। विसलर की कला में योजनापूर्ण मनोहर रंगसंगति, आकारों का स्पष्ट सुस्थापन, कुशल संयोजन, आलंकारिता वगैरह कलात्मक गुणों का विचारपूर्वक विकास किया गया है, अतः हम उनको निष्ठावान प्रभाववादी चित्रकारों में सम्मिलित नहीं कर सकते एवं कला के इतिहास में उनका स्वतन्त्र स्थान है। 1870 के करीब उन्होंने जापानी छापचित्रों का गहरा अभ्यास किया। चित्ररचना की तुलना संगीत-रचना के साथ करके उन्होंने टेम्स नदी के 'निशादृश्य'[64] की चित्रमालिका का

निर्माण किया जिसमें दृश्य की वास्तविकता की अपेक्षा आकार-रचना व रंगसंगति को बहुत महत्त्व दिया है। इस मालिका के कारण उनका प्रसिद्ध इंग्लिश समीक्षक जॉन रस्किन से न्यायालयीन संघर्ष हुआ जिसमें जीत जाने पर भी उनको बहुत खर्च उठाना पड़ा और परिणामस्वरूप उनको आर्थिक विपन्नावस्था से सामना करना पड़ा। अब अर्थार्जन के लिये उनको आलेखनकला का सहारा लेना पड़ा; उनके एचिंग द्वारा बनाये गये वेनिस के दृश्य आलेखनकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनके चित्रों में 'माता का व्यक्तिचित्र' एवं टामस कार्लाइल का व्यक्तिचित्र बहुत लोकप्रिय हुए।

विसलर ने योरोपीय आधुनिक चित्रकारों को समतल आलंकारिक आकार, आकर्षक रंगसंगति व उद्देश्यपूर्ण चित्ररचना को प्रमुख स्थान देकर चित्रण करने का संदेश दिया।

वाल्टर सिकर्ट (1860–1942) ने आरम्भ में विसलर के मार्गदर्शन में लंदन में कला का अध्ययन किया। विसलर के साथ उन्होंने एचिंग का कार्य भी किया। लंदन से भी वे कला केन्द्र के रूप में पैरिस की ओर अधिक आकृष्ट हुए जहाँ उनका 1883 में देगा से परिचय हुआ। देगा की कला का उन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। देगा के समान वे कट्टर प्रभाववादी कभी नहीं बने; प्रत्यक्ष बाह्य स्थान पर चित्रण करने के बजाय वे स्थान पर जल्द अभ्यासचित्र बनाते और बाद में उसकी सहायता से योजनापूर्वक अन्तिम चित्र बनाते। 1885 से 1905 तक वे दिएप में रहे जहाँ से वे बीच-बीच में वेनिस जाया करते थे; इस काल के उनके संगीत-गृहों के अन्तर्भागों व वेनिस व दिएप के शहरी दृश्यों के चित्र प्रसिद्ध हैं। इन चित्रों में कुछ गहरे किन्तु सतेज रंगों का प्रभाव व गहरी बाह्यरेखा का प्रयोग है। 1905 में लंदन वापस आकर वे केम्डेन टाउन में रहने लगे। उनके प्रोत्साहन से 'कॅम्डेन टाउन मंडल'[63] नाम से 16 चित्रकारों का मंडल फ्रेंच उत्तरप्रभाववादियों के समान प्रभाववाद से आगे निकल कर आधुनिक कला का विकास करने में प्रयत्नशील हुआ जिनमें गिल्मन, स्पेन्सर, गोअर, गिन्नर, बेवन, विंड्हॅम लेविस प्रमुख थे। 'कॅम्डेन टाउन' काल में सिकर्ट ने शहरी जीवन व गृहांतर्गत भागों के दृश्यों को विशेष रूप से चित्रित किया।

माक्स लिबरमन (1847–1935) लिबरमन प्रकृतिचित्रण, व्यक्तिचित्रण व कृषक-जीवन-चित्रण के लिये प्रसिद्ध थे। उनका अध्ययन बर्लिन, वेमार व पैरिस में हुआ। 1873 में वे बार्बिज़ो गये थे जहाँ त्रोयिन्यों व कोरो की कलाकृतियों को देख कर वे प्रकृतिचित्रण की ओर आकृष्ट हुए, मिले व इस्त्राएल्स की कलाकृतियों को देख कर कृषक-जीवन-चित्रण में उनकी रुचि बढ़ गयी। शहर में पैदा होने हुए भी उनको देहाती वातावरण व जीवन प्रिय थे; इसीलिये उन्होंने खुली हवा व सामान्य जनजीवन को अपनी कला का विषय बनाया, जिसका उनका चित्र 'बकरीवाली' सुन्दर उदाहरण है। बाद में प्रभाववाद की ओर आकर्षित होकर उन्होंने विशुद्ध रंगाङ्कनपद्धति में प्रकाश व वातावरण के प्रभाव को महत्व देकर

चित्रण शुरू किया व वे प्रभाववादी जर्मन चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे 1899 से 'बर्लिन जेचेमिम्रोन' के अध्यक्ष रहे व उन्होंने कलाकारों के नवीन वैचारिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया।

माक्स स्लेवोट (1868–1932), लिबरमन से 21 साल छोटे थे। उन्होंने कला का अध्ययन म्युनिख व पैरिस में किया व प्रभाववादी शैली के प्रकृतिचित्र, वस्तुचित्र व व्यक्तिचित्र बनाये। निर्भीक तूलिकासंचालन उनकी कला की विशेषता थी।

लोविस कोरिंट (1958–1925) की कला में प्रभाववाद के तत्व अधिक अस्पष्ट हैं। विषय के परिणामकारक चित्रण व अभिव्यक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया। कुछ समय तक उन्होंने बायबल व पुराणों से विषयों को चुनकर चित्रण किया। 1911 में गम्भीर बीमारी से मुक्त होने के पश्चात् उनकी कलाकृतियों में अभिव्यंजनावादी झलक प्रतीत होने लगी। वक्रगति स्पष्ट तूलिकासंचालन व गहरे रंगों के प्रयोग से उनके व्यक्तिचित्रों व आत्मचित्रों को आंतरिकता प्राप्त हुई है।

मोरिस प्रेंडरगास्ट (1861–1924) ने अमेरिकन प्राकृतिक दृश्यों व दैनंदिन जीवन को विशुद्ध रंगों के धब्बों में प्रभाववादी सिद्धान्तों का पालन करते हुए चित्रित किया। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा बोस्टन में प्राप्त की, किन्तु 1886 में वे पैरिस जाकर 'कला सस्था ज्युलिआ' में भरती हुए। पैरिस में वे प्रभाववाद से *आकृष्ट हुए व उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति का गहरा अध्ययन किया।* न्यूयार्क जाने से पहले वे कुछ समय तक इटाली में रहे। बाद में उनकी शैली पर कुछ उत्तर-प्रभाववादी बिन्दुवाद का परिणाम दृष्टिगोचर होने लगा।

□□□

3
नवप्रभाववाद

प्रभाववाद ने विषय को गौण स्थान देकर उसका कला-क्षेत्रीय महत्व घटा दिया किन्तु इससे प्रभाववाद यथार्थवाद से पूर्ण रूप से पृथक् नहीं हो सकता था। प्रकाश व वातावरण के सम्पूर्ण प्रभाव को अंकित करने के उद्देश्य में सफल होने के लिये प्रभाववादी चित्रकारों को किसी यथार्थ दृश्य को ही चुनना पड़ता था जिससे यथार्थवाद से मुक्त होकर आधुनिक कला के रूपात्मक विशुद्ध दृष्टिकोण को अपनाने में कलाकार कठिनाई अनुभव कर रहे थे; प्रभाववादी कलाकृतियों में आकारजनित सौन्दर्य का विकास या प्रतीति नहीं होती। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक भावनाओं या स्वतन्त्र कल्पना से कलानिर्मिति करने को प्रभाववाद में स्थान नहीं था जिससे मौलिक सर्जन के आनन्द से कलाकार वंचित रह जाता। प्रभाववाद की इन त्रुटियों को देख कर जिन चित्रकारों ने नयी दिशा में प्रयोग किये उनमें जार्ज सोरा* थे और उन्होंने जिस शैली को जन्म दिया वह 'नवप्रभाववाद' नाम से प्रसिद्ध हुई।

प्रभाववाद से असंतुष्ट होकर रेन्वार् ने मनुष्याकृतियों को ठोस रूप में चित्रित करके अपना चित्र 'स्नानमग्ना युवतियाँ' बनाया एवं लगभग उसी समय जार्ज सोरा ने उसी विषय को लेकर नवप्रभाववाद का प्रथम चित्र 'स्नानस्थल'[1] पूर्ण किया; किन्तु दोनों की अंकनपद्धतियों एवं अभिव्यक्ति में पर्याप्त अन्तर है। यह चित्र सोरा ने 1884 की 'सलों द अँदेपादाँ'[2] प्रदर्शनी में रखा व उसको देगा, रेन्वार् व रेदों ने बहुत पसन्द किया। 'सोसिएते द अँदेपांदाँ'[3] की प्रस्थापना राष्ट्रीय कलासंस्था से अस्वीकृत, नवविचारों के कलाकारों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सोरा, रेदों, सिन्याक वगैरह कलाकारों ने की थी।

विशुद्ध मूल रंगों के अमिश्रित, छोटे धब्बों से रंगांकन यह सोरा की अंकन-पद्धति की विशेषता थी; ये धब्बे नियंत्रणपूर्वक पूरे पट पर एक से लगाये जाते थे। इसके विपरीत प्रभाववादी चित्रकारों का तूलिकासंचालन मुक्त व स्वच्छंद था व उस पर कोई नियन्त्रण नहीं होता था न उसमें कोई सुसूत्रता होती थी। प्रभाववादी चित्रों में वस्तुओं व आदमियों की आकृतियाँ वातावरण में घुलमिल कर अस्पष्ट हो जाती जबकि सोरा हलके व गहरे रंगों की उचित छटाओं के प्रयोग द्वारा एवं बाह्य

---

* टिप्पणी :—'सोरा' (Seurat) नाम का सही उच्चारण 'सोरा' व 'सेरा' के कहीं बीच का है, कुछ 'सोएरा' जैसा।

रेगा के सरलीकरण से आकृतियों को स्पष्ट व ज्यामितीय रूप देते, व वातावरण से प्रथक् करते। आकृतियों को स्पष्टता मिलने से सोरा के चित्र प्रसंगनिष्ठ बन गये हैं। *प्रभाववाद के क्षणिक दृष्टि के सिद्धान्त को चित्रण का प्रथम चरण मान कर,* सोरा दैनिक जीवन के किसी क्षण को चुनते व आदमियों व वस्तुओं को ठोस रूप में अंकित करके उस क्षण को चित्र द्वारा अमर रूप देते। संक्षेप में, प्रभाववाद में, प्रकाश व वातावरण जैसे चचल तत्त्वों का आभास है जबकि नवप्रभाववाद में आदमियों व वस्तुओं के सरलीकृत ठोस आकारों द्वारा जीवन के प्रसंगों का परिणामकारक दर्शन है। प्रभाववादी चित्रकार दृश्य में स्वाभाविक आकस्मिकता का परिणाम दिखाने का प्रयत्न करते जबकि सोरा विचारपूर्वक संयोजन करके चित्र-विषय के प्रतिपादन में कोई त्रुटि नहीं होने देते।

सोरा की कला में प्रभाववाद से भिन्न नवीन दृष्टिकोण था जिसको देख कर फेलि फेनिओ ने उनकी कलाशैली को 'नवप्रभाववाद' नाम दिया। इसको 'बिंदुवाद' या 'विभाजनवाद' भी कहते हैं।

1884 की 'सलों द अँदेपांदां' प्रदर्शनी में सोरा का पौल सिन्याक से परिचय हुआ व उन्होंने देखा कि दोनों समान ध्येय से प्रेरित थे। तब से दोनों ने मिलकर अपनी ध्येयप्राप्ति के लिये अपरिमित परिश्रम किये और नवप्रभाववाद को सामर्थ्यवान बनाने का श्रेय दोनों को बराबर दिया जाना चाहिये। *1889* में प्रकाशित सिन्याक की पुस्तक 'दोजेन देलाक्रा ओ निओ-इंप्रेशनिजम'[4] में नवप्रभाववाद के सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण है।

सिन्याक ने लिखा है "पट के सम्मुख, चित्रकार को चाहिये कि वे पहले जिन रेखाओं व समतलों द्वारा रचना करना चाहते है उनको निश्चित करें एवं जिन रंगों व छटाओं की योजना करना चाहते है उनकी पूर्वकल्पना करें। प्रथम दो छटाओं के बीच के विरोध को निश्चित करके बाद में एक के पश्चात् दूसरी इस तरह अधिक छटाओं का समावेश कर सकते है। चित्रकार को रंगों के क्रम व अनुपात का सूक्ष्म निर्णय लेना चाहिये।"...रंग, छटा व रेखा का चित्र के इष्ट प्रभाव से समन्वय करना होगा। वर्ण-क्रम की सुसंगति से चित्ररचना करने वाला चित्रकार संगीतकार के समान है; रेखाओं व रंगों द्वारा भावनाओं की पूर्ति करने वाला चित्रकार कवि व निर्माता के समान है"। नवप्रभाववाद की परिभाषा करते हुए सिन्याक ने लिखा "यकायक सोरा को ज्ञात हुआ कि चित्र क्या है—चित्र का अर्थ है लय, संतुलन व विरोध के नियमों का पालन करके की गयी रचना; चित्र निसर्ग का अनुकरणमात्र नही है; चित्र श्रेष्ठ श्रेणी का सर्जन है जबकि निसर्ग का अनुकरण करके की गयी कृति अवसरवाद मात्र है"।

नवप्रभाववादियों ने विज्ञान पर अत्यधिक बल दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि उससे चित्रकला को सरल बनाया जा सकता है। वैज्ञानिक शेवरोल, रूड व मेक्सवेल के प्रकाश व रंगों सम्बन्धी सिद्धान्तों व डेविड सटर के 'दृष्टि के चमत्कार'

का अध्ययन करके नवप्रभाववादियों ने अपनी रंगांकन पद्धति के नियमों को निश्चित किया। शेवरोल के 'मूल व माध्यमिक रंगों का चक्र'[4] व 'समयावच्छेदी विरोध का सिद्धान्त'[5] के अध्ययन से उन्होंने विशुद्ध रंगों के पारस्परिक सुसंगति के नियम बनाये। वैज्ञानिक रूड ने रंगों सम्बन्धी प्रयोग करके सिद्ध किया था कि रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण से नेत्र द्वारा किये गये मिश्रण या 'दृष्टिजन्य मिश्रण'[6] का परिणाम अधिक तीव्र व चमकीला होता है। इस आविष्कार से नवप्रभाववादियों को नयी प्रेरणा मिली और उन्होंने रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण के स्थान पर भिन्न मूल रंगों के धब्बों को समीप अंकित करके मिश्रित रंग का प्रभाव चित्रित करना शुरू किया। सोरा का वैज्ञानिक हल पर इतना विश्वास था कि वे सोचते थे कि मानवीय भावनाओं को भी विश्लेषण करके गणितीय सूत्रों में बाधा जा सकता है। गोगँ ने उपहास में सोरा को नाम दिया था, 'छोटा हरा रसायन-विशारद'[7] व उनकी अंकन-पद्धति को वे 'रिप्पी पाइंट'[8] कहते। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह भी सिद्ध हुआ था कि प्रत्येक रंग समीपवर्ती रंग पर अपने पूरक रंग की झलक डालता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अध्ययन से पहले सोरा ने देलाक्रा की रंगांकन पद्धति व रंगों सम्बन्धी विचारों का गहरा अध्ययन किया था और उनको विश्वास हो गया था कि संगीत की भाँति चित्रकला को भी शास्त्रशुद्ध रूप दिया जा सकता है। उनके पत्र में से निम्न उद्धरण उनके विचारों पर प्रकाश डालता है "चित्रकला के तत्वों का सरल वर्गीकरण है—छटा, रंग व रेखा; इनके समुचित प्रयोग से उत्साहित, शांत या उदासीन भावनाओं को जागृत किया जा सकता है। उतरती रेखाओं, गहरी छटाओं व ठंडे रंगों से उदासीनता का भाव उत्पन्न होता है जबकि चढ़ती रेखाओं, चमकीली छटाओं व उष्ण रंगों से उत्साह का भाव उत्पन्न होता है"।

वस्तु के प्रकाशित हिस्से के रंगों को विश्लेषण से निश्चित करने के बाद नवप्रभाववादी चित्रकार उन रंगों के पूरक रंगों की झलक उचित अनुपात में, छाया के हिस्से में अंकित करते एवं रंगीन क्षेत्र की सीमा पर उसके पूरक रंग की छटा हलकी बाह्यरेखा की तरह अंकित करते। वे यह भी देखते कि वस्तु के पूरे दृश्य प्रभाव में उसके निजी रंग का क्या अनुपात है। मुक्त तूलिकासंचालन के स्थान पर नवप्रभाववादी चित्रकारों ने विशुद्ध रंगों के एक से बिन्दुओं द्वारा रंगांकन प्रारम्भ किया। इस पद्धति में कितनी यांत्रिकता थी इस सम्बन्ध की निम्न घटना मनोरंजक है। 1893 की नवप्रभाववादी चित्रकारों की प्रदर्शनी के समय प्रवेश शुल्क देने से पहले एक महिला ने झाँककर प्रवेशद्वार के अन्दर भाँका एवं चित्रों को देखकर वहाँ बैठे हुए चित्रकारों में से एक से पूछा "क्या ये चित्र यन्त्र से बनाये गये हैं?" चित्रकार ने शांति से उत्तर दिया "नहीं बहन जी, ये हाथ से बनाये गये हैं"।

नवप्रभाववाद के प्रणेता सोरा का जन्म 1859 में पैरिस में हुआ। उन्होंने कला का अध्ययन वहाँ के 'एकोल द बोजार' में प्राप्त किया। 1884 में उन्होंने अपने सबसे विख्यात चित्र 'ग्राद जात द्वीप में रविवासरीय सरगाह'[9] को प्रारम्भ

किया व 1886 में पूर्ण करके 'मलो द अंदेपादा' में प्रदर्शित किया। इस चित्र के पूर्वाभ्यास के रूप में उन्होंने पेन्सिल व तैलरगों से लगभग 250 अध्ययन चित्र बनाये। चित्र को देखकर कलासमीक्षक युइमा ने उपहास में लिखा "इस चित्र के ऊपर जो रंगीन मक्खियाँ बैठी हैं उनको हटा दो और आप देखेंगे कि उनके नीचे कुछ भी नहीं है—न कोई विचार न आत्मा"[10]। कुछ भी हो 'ग्राद जात् छीप' चित्र में सोरा ने नैसर्गिक जटिल आकार रचना को सरल व ठोस ज्यामितीय रूप देकर गतिमान मानव-समुदाय को स्थायी रूप में अंकित करके एक क्षणजीवी प्रसंग को ऐतिहासिक महत्व प्रदान किया है।

सोरा उन चित्रकारों में से थे जो अपने विचारों के पक्के होते हैं और जिनको अपने नियोजित कार्य के बारे में पूर्ण आत्मविश्वास होता है। उनका दृष्टिकोण आरम्भ से ही तर्कशुद्ध था एवं शास्त्रशुद्ध चित्र रचना उनका लक्ष्य था। रेखाओं व समतलों की सुसंगत रचना एवं अवकाश में सुस्थापन करने में उनकी प्रतिभा असाधारण थी यद्यपि अंकनपद्धति के विचार से उनका रगांकन यंत्रवत् था। आड़े व खड़े समतलों से वे अपने चित्रक्षेत्र को सचेत करते एवं भिन्न मूल रगों के बिन्दुओं से उसमें चंचलता डालते। आयु के अठारहवें साल में उन्होंने पुसँ, अँग्र, राफेल व हाल्बिन के चित्रों की अनुकृतियाँ कीं। पुसँ को वे आदर्श चित्रकार मानते थे। चित्रांतर्गत रचनातत्वों का ज्ञान फ्रेंच फातेनब्लो चित्रकारों में लेकर पुसँ व शार्दें तक सबको था किन्तु उसका इतना पर्याप्त व वैज्ञानिक प्रयोग प्रथम सोरा ने किया व उनके तीस वर्ष पश्चात् मोंद्रियां व क्लेमर ने। देलाक्रा व प्रभाववाद के अध्ययन से सोरा ने मूल रंगों का प्रयोग शुरू किया व अपनी रचनाओं को चमकीला रूप प्रदान किया।

सोरा के विचार से केवल विशुद्ध रगों के बिन्दुओं में अंकन करने से चित्रकार का कार्यभाग पूरा नहीं होता जब तक आकृतियों में त्रिमिति का आभास उत्पन्न नहीं होता; वे कहते "चित्रण खुदाई के समान है"[11]। अपने चित्रों के वातावरण व प्रकाश को उन्होंने ऐसे साँचे में ढाला है कि उनमें से प्रत्येक वस्तु व मानवाकृति स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साथ जगमगाहटभरे चचल वातावरण से परिवेष्टित होकर, दर्शक के सम्मुख खड़ी होती है एवं दर्शक एक अनोखे कान्यमय दृश्य को अनुभव कर लेता है। प्रभाववाद के क्षणिक दृष्टि के सिद्धान्त पर निर्भर रह कर सोरा अपने त्रिमिति दर्शन के ध्येय में सफल नहीं हो सकते थे; उसके लिये उनको शास्त्रीयतावाद के रगों की छटाओं एवं विरोधों के सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ा और शास्त्रोक्त ढग से खड़ी व आड़ी रेखाओं का समन्वय व सरलीकृत रेखाओं का प्रयोग करना पड़ा। सोरा केवल रंगसम्बन्धी संशोधन से सतुष्ट होते तो वे प्रभाववाद से आगे नहीं बढ़ते। वे सौन्दर्यगुणों की एकात्मकता के रहस्य को जानना चाहते थे। वे कहते "यदि मैं रंगों के विज्ञान का कलात्मक उपयोग कर सकता हूं तो क्या मैं उसी प्रकार रेखाओं की सहायता से तर्कशुद्ध व वैज्ञानिक चित्ररचना नहीं कर सकूं गा?"।

1886 में उनका विद्वान ग्रभ्यासक हेनरी जेम्स से परिचय हुआ जिनसे इस समस्या का हल करने में उनको काफी सहायता मिली।

सोरा की कला की तुलना दक्ष गृहिणी के गृहकार्य से की जा सकती है; ऐसी गृहिणी जो एकचित्त होकर, घर की सब वस्तुओं को उचित स्थान पर सुव्यवस्थित रचाती है व इस रचना में किंचिदपि परिवर्तन नजर आते ही बेचैन हो जाती है। इतना वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर, सुव्यवस्थित नियमवद्ध कलानिर्मिति करने वाला कोई चित्रकार सोरा से पहले नहीं हुआ। किन्तु सोरा की शैली में एक धोखा है कि जिस चित्रकार मे स्वाभाविक संवेदनशीलत्व का अभाव है उसकी कला, सोरा के अनुकरण से, यांत्रिक व निर्जीव मात्र बनेगी।

सूत्ररूप में, सोरा की शैली के तीन प्रमुख पहलू हैं : पहला, नैसर्गिक आकारों का सरलीकृत, ज्यामितीय, ठोस रूप में परिवर्तन और उसके लिये पृष्ठभूमि एवं वस्तुओं के आकारो में हलके व गहरे रंगों का विरोधयुक्त प्रयोग; दूसरा, भिन्न आकारो का एकदूसरे से सुसंगत समन्वय व अवकाश में सुस्थापन के उद्देश्य से संयोजन; तीसरा, नवप्रभाववादियो के रंगसम्बन्धी सिद्धान्तो के अनुसार मूल रंगो का समाकार बिन्दुओं मे रंगाकन। चित्र संयोजन के विचार से, सोरा की कला पर पुसँ व जापानी कला का द्विविध प्रभाव है।

समाकार बिन्दुओ मे रंगाकन करना दीर्घ समय व बड़े परिश्रम का कार्य था। सोरा प्रथम विश्लेषण करके आवश्यक रंगो को निश्चित करते व उसके पश्चात् दृश्य के इष्ट प्रभाव का निर्माण करने के उद्देश्य से प्रत्येक रंग का अनुपात निकाल लेते। निकट से उनके चित्र पदार्थ के रंगीन कणो का चंचल समूह जैसे दिखायी देते है किन्तु दूर से देखने पर उसी धूसर वातावरण से मूर्तियों के समान घनरूप मानवाकृतियाँ व ठोस जड़ वस्तुएँ उभर आती है। सोरा की मानवाकृतियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसी कि कलो से चलने वाली कठपुतलियाँ किन्तु इससे सोरा की कृतियों का आकर्षण कम नही होता क्योंकि वास्तवसृष्टि से प्रेरणा लेकर बनायी गयी इन आकृतियों का उद्देश्य यथार्थवादी नही है न उस दृष्टिकोण से इनका रसग्रहण होना चाहिये। यहाँ हम आकारों की निराली स्वप्निल दुनिया मे प्रवेश पाते हैं और यह सोचकर जो दर्शक इन चित्रों को देखता है वह इनके सौन्दर्य को पहचान सकता है। यहाँ वास्तविक दृश्य को चंचलता को चित्रकार की अमर कल्पना में परिवर्तित किया है। सोरा की कला ने आधुनिक चित्रकारों के सम्मुख इस विचार को प्रस्तुत किया कि सर्जनात्मक कला में प्रकृति के अस्थायी तत्वों की अपेक्षा आकार, रचना व चित्रकार की मौलिक कल्पना अधिक महत्त्व रखते हैं एवं इनके विकास में ही कलाकृति की महत्ता है। सोरा ने सिद्ध किया कि चित्रकार को स्वतन्त्र विचार से एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपना कर कलानिर्मिति करनी चाहिये। सोरा की मृत्यु के पश्चात् पिसारो ने अपने पुत्र को लिखा "तुम कहते हो यह सही है; बिंदुवाद का अब अन्त हो गया है। किन्तु उसके ऐसे परिणाम हुए हैं जो भविष्य में कलाक्षेत्र में

महत्त्वपूर्ण माने जायेंगे । सोरा ने जरूर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है" । पिसारो की यह भविष्यवाणी सत्य हुई; आधुनिक कला में आकार, रचना व शास्त्रशुद्धता का महत्त्व बढ़ता गया और आधुनिक कलाकार प्रयोगवादी एवं सर्जनशील बन गया।

सोरा के कार्यकक्ष को कार्यकक्ष की अपेक्षा प्रयोगशाला कहना समुचित होगा। अंकनपद्धति की वैज्ञानिकता पर अत्यधिक बल देने के कारण कुछ कला-मर्मज्ञों ने सोरा की निन्दा की है। किन्तु सोरा को केवल एक नयी अंकनपद्धति का आविष्कारक मानना उनके प्रति अन्याय होगा; मौलिक प्रतिभा द्वारा उन्होंने अपनी कृतियों को उच्चकोटि के कलात्मक गुणों से सम्पन्न किया है।

ब्रुसेल्स में आयोजित नव कलाकारों की प्रदर्शनी 'ल वं' में सोरा ने, पिसारो व सिन्याक के साथ, अपनी कृतियों को प्रदर्शित करके काफी ख्याति प्राप्त की। 1891 में उनकी अल्पायु में मृत्यु हुई जिसका अविरत परिश्रम एक मुख्य कारण था। सोरा ने अपनी आयु में केवल 6 बड़े चित्र पूर्ण किये यद्यपि उन्होंने काफी तादाद में अभ्यासचित्र, सागरी दृश्यों के चित्र व रेखाचित्र बनाये। 'सर्कस', 'शृंगार', 'मचनृत्य' व 'भिन्न मुद्राएँ'[12] उनके बड़े चित्रों में से हैं। 'शृंगार' यह उनका चित्रित किया हुआ एक ही व्यक्तिचित्र है; यह चित्र मादलेन नॉब्लाश नाम की महिला का है जो उनके साथ पत्नी के रूप में रही।

नवप्रभाववाद को बहुत अनुयायी मिले। सोरा के बाद सिन्याक (1863-1935) ने नवप्रभाववाद का नेतृत्व किया व वे उसके सबसे मेहनती सदस्य थे। 1908 से 26 साल तक सिन्याक 'सोसिएते द अंदेपादां' के अध्यक्ष थे। सिन्याक की अंकनपद्धति सोरा से अधिक स्वच्छंद व मुक्त थी। सोरा की भांति वे नियमों का सम्पूर्ण दासत्व नहीं करते; समाकार बिन्दुओं के स्थान पर कुछ मोटी लकीरों का भी प्रयोग करते।

अन्य नवप्रभाववादी चित्रकारों में से आरी एदमों क्रॉस व मॉक्सिमिलिआं ल्यूस अधिक प्रसिद्ध थे। कुछ समय तक पिसारो नवप्रभाववाद की ओर आकृष्ट हुए थे। किन्तु उससे असंतुष्ट होकर वे फिर प्रभाववादी चित्रण करने लगे। वान गो भी सोरा की अंकनपद्धति से प्रभावित हुए थे किन्तु वे केवल अंकनपद्धति के सामर्थ्य से कला की महानता को आजमाने के विरोधी थे और उन्होंने लिखा था "बिंदुवाद एक आश्चर्यजनक आविष्कार है; किन्तु न बिंदुवादी अंकनपद्धति या न दूसरी कोई अंकनपद्धति कला की सभी समस्याओं को हल करने में समर्थ है"। और यही हुआ नवप्रभाववादी अंकनपद्धति को 20वीं सदी के चित्रकार भूल गये किन्तु सोरा के निर्दिष्ट मार्ग से वे आकारों की भाषा का विकास करने में प्रयोगशील हुए।

सोरा व उनके अनुयायियों का प्रभाववाद को स्थायी व संगीत के समान शास्त्रोक्त रूप देने का उद्देश्य था। आरम्भिक प्रयत्नों के बाद उनकी कला को नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ; उनके चित्रित किये गये नैसर्गिक वस्तुओं के आकारों को

वस्तुनिरपेक्ष सदृश रूप प्राप्त हुआ एवं उनमे नैसर्गिकता नाममात्र रही। वस्तु-निरपेक्षता का कला में प्रवेश होते ही स्थायित्व, सतुलन, अपरिवर्तनशीलत्व, संकोच, प्रसरण, तनाव, दबाव वगैरह आकारसंबंधी गुणों का महत्व कला मे बढता गया। इस प्रकार बिंदुवाद से नये शास्त्रप्रिय कलाशैलियों को विकास की दिशा मे गति प्राप्त हुई। चित्रकला को विशुद्ध व वस्तुनिरपेक्ष प्राप्त कराने की दिशा में नव-प्रभाववाद एक महत्त्वपूर्ण चरण सिद्ध हुआ। 19वीं सदी के अन्त में बिंदुवाद एव प्रतीकवाद ने आधुनिक चित्रकला के पथप्रदर्शन मे परिणामकारक योगदान किया—बिंदुवाद ने आकार की ओर व प्रतीकवाद ने आत्मा की ओर। एक समकालीन व्यंग्यचित्र में आत्मा का चित्रण करनेवाले चित्रकार को पट पर प्रतीकों व बिंदुओं को अंकित करते हुए दिखाया था। सोरा के सिद्धान्तों से फाववाद, भविष्यवाद, स्टाइल कलाकार, बौहौस के कलाकार एवं चित्रकार मोंद्रिया व श्लेमर को बहुत मार्गदर्शन हुआ; रंगों, समतलो व अवकाश के गतिविज्ञान की पूर्वसामग्री प्राप्त हुई।

□□□

4
उत्तरप्रभाववादी चित्रकार

प्रभाववाद का जन्म ऐसे समय हुआ जब विज्ञानयुग का प्रारम्भ हो गया था और मानव की वैज्ञानिक प्रगति को देखकर कलाकार, साहित्यिक व समाजधुरीण भूतल को नंदनवन बनाने का स्वप्न देख रहे थे। किन्तु वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ आंतरिक प्रवृत्ति बढ़ती गयी व 19वीं सदी के अन्त तक कुछ विचारकों को संदेह होने लगा कि विज्ञान की सुखसुविधाओं के बदले में मानवतावादी व आत्मिक मूल्यों का बलिदान करना पड़ रहा है। इस वैचारिक अस्थिरता के वातावरण का समकालीन साहित्य व कला पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। प्रभाववाद के उत्तरकाल में चित्रकारों ने बाह्य दृश्य जगत् से अपनी दृष्टि को हटाया व अंतर्मुख होकर आंतरिक दुनिया में सत्य व शांति की खोज की। गोगँ ने अपनी कल्पनासृष्टि को साकार करने के प्रयत्नों में अपरिमित संघर्षों को उठाकर सर्वस्व का बलिदान किया; आंतरिक अनुभूति की तीव्रता को कला में अभिव्यक्ति करने के प्रयत्नों में वान गो मानसिक संतुलन खो बैठे; सेजान ने एकांत में जाकर वस्तु के आकार सौन्दर्य के रहस्यों को ज्ञात करने के अथक प्रयत्न किये। इस प्रकार बीसवीं सदी की कला का उद्गम परस्परविरोधी आत्यंतिक विचारप्रवाहों में हुआ। परस्परविरोधी होते हुए ये विचारप्रवाह एक-दूसरे का सामर्थ्य बढ़ाने में सहायक हुए और ऐसे भिन्न प्रवाहों से बीसवीं शताब्दी की कला का विराट रूप बना जिसमें हम 'विविधता में एकता' के सत्य का सौन्दर्यात्मक दर्शन पाते हैं।

प्रभाववादी चित्रकारों ने त्याग व परिश्रम से अपने कला-विषयक सिद्धान्तों को प्रस्थापित किया। उनकी कलाकृतियाँ बिकने लगीं एवं प्रभाववाद का विदेशों में प्रसार होकर उसको अनुयायी मिले। किन्तु जब एकतरफ प्रभाववाद का प्रसार हो रहा था, दूसरी तरफ कुछ चित्रकार उससे असन्तुष्ट होकर अभिव्यक्ति की नयी शैलियों की खोज में लगे थे। वे चित्रकार थे सोरा, सेजान, वान गो व गोगँ जिनको कला के इतिहास में 'उत्तरप्रभाववादी' नाम से वर्गीकृत किया गया है। 'उत्तरप्रभाववाद' किसी कलाविषयक वाद का नाम नहीं है न उत्तरप्रभाववादी चित्रकार किसी समान ध्येय से प्रेरित थे। उनमें एक ही समानता थी कि वे सब प्रभाववाद से असन्तुष्ट थे। प्रभाववाद के उत्तरकाल में उन्होंने वैयक्तिक विचारों के अनुसार कला को नये मोड़ दिये जिस कारण वे 'उत्तरप्रभाववादी' कहलाये। उनमें से सोरा 'नवप्रभाववाद' के प्रणेता थे और उनकी कला का हम पहले ही अध्ययन कर चुके

है। सेजान की कलाशैली किसी विशिष्ट नाम से प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु उसमें आकार व रचना पर बल देकर चित्रण किया है एवं उससे प्रेरणा पाकर आधुनिक कला में प्रथम घनवाद व उसके पश्चात् कई ऐसे वादों का जन्म हुआ जिनमें केवल कला के मूलाधार सर्जनतत्त्वों का विचार करके वस्तुनिरपेक्ष या सरलीकृत आकारों द्वारा भिन्न माध्यमों में विशुद्ध सौन्दर्यात्मक कलाकृतियों का निर्माण होने लगा। वान गो की कला से अभिव्यंजनावाद को व गोग्यँ की कला से फाववाद को प्रेरणा मिली; केवल विशुद्ध सौन्दर्य की अपेक्षा आत्मिक अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व देकर चित्रकार विषयवस्तुजनित भावनाओं के अनुसार, विषयवस्तु के रूप को विकृति देकर, भावनाओं को पोषक रंगसंगति व अंकनपद्धति की सहायता से, अपनी आंतरिक अनुभूति का चित्ररूप दर्शन कराने लगा। इस प्रकार इन चारों चित्रकारों से प्रेरणा पाकर आधुनिक कला दो प्रमुख व स्पष्ट रूप से भिन्न प्रवाहों में तेजी से अग्रसर हो गयी। आधुनिक चित्रकला की कई शाखाएँ व उपशाखायें है किन्तु यदि हम सूक्ष्म भेदों की उपेक्षा करके विचार करेंगे तो हमें मुख्यतः दो आत्यंतिक दृष्टिकोणों का ज्ञान होगा। कुछ आधुनिक कलाकारों के दृष्टिकोण में कला भावनाओं एवं आन्तरिक जीवन की अभिव्यक्ति का साधनमात्र है तो कुछ आधुनिक कलाकारों की धारणा है कि विशुद्ध, निरपेक्ष सौन्दर्य का शास्त्रशुद्ध निर्माण यही कला का एकमेव लक्ष्य है और इसके अतिरिक्त कला में कोई मानवीय विचार नहीं होना चाहिये। किन्तु दोनों दृष्टिकोणों के कलाकार एक विचार में सहमत है कि सर्जनात्मक कला विषयवस्तु के दृश्य रूप की प्रतिकृति मात्र नहीं होती; कला केवल वस्तुनिष्ठ नहीं है; कलाकृति कलाकार के सर्जनशील व्यक्तित्व का दर्पण है।

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार प्रभाववाद से इसी कारण असंतुष्ट थे कि उनमें वास्तवसृष्टि के बाह्य सौन्दर्य के चित्रण के अतिरिक्त मौलिक सर्जन का आनन्द नहीं मिलता, न वे उसके द्वारा अपनी वैयक्तिक भावनाओं की पूर्ति कर सकते। प्रकाश-विज्ञान व नेत्रविज्ञान के नियमों पर निर्भर रह कर बनायी गयी कृतियाँ एकसी [illegible] सम्भव था और ऐसी कृतियों द्वारा अपने सर्जनशील व्यक्तित्व का प्रदर्शन [illegible] अहंकार को तृप्त करने का कलाकार को अवसर नहीं मिलता। प्रभाववादी [illegible] प्रकाश की जगमगाहट व वातावरण की चंचलता में चित्रित वस्तुएँ [illegible] निर्जीव दिखाई पड़ती।

प्रारम्भ में, उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों ने परिश्रमपूर्वक [illegible] प्रभाववादी अंकनपद्धति पर प्रभुत्व प्राप्त किया। इस अध्ययन से उनको [illegible] हुआ; प्रयोगवादी दृष्टिकोण व कलाकार के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के महत्त्व [illegible] ज्ञान हुआ, उनमें कुंभारवृत्ति आ गयी व स्वानुभूति के मार्गदर्शन में [illegible] वे कला का निर्माण करने लगे। प्रभाववादी अंकनपद्धति के विशुद्ध [illegible] स्पष्ट-तूलिका-संचालन व अपरोक्ष रंगांकन ये तत्त्व उत्तरप्रभाववादि[illegible] पद्धति के भी मूलाधार रहे। संक्षेप में प्रभाववाद एवं उत्तरप्रभाववाद [illegible]

यह था कि प्रभाववाद की प्रधान प्रेरणा दृश्यजगत् का ऐंद्रिक अनुभव था जबकि उत्तरप्रभाववाद की प्रमुख प्रेरणाएँ आंतरिक भावना व तर्कशुद्ध विश्लेषण थी।

पौल सेजान (1839–1906)

भौतिक सृष्टि की हर वस्तु के आकारसौन्दर्य व आकारजनित सौन्दर्य के आंतरिक स्थायी तत्वों का दर्शन कराने में सेजान की कला को जो सफलता मिली वह सोरा की कला को नहीं मिली। सोरा की कृतियों के आकारसौन्दर्य के पीछे कठोर नियमबद्धता है जबकि सेजान की कृतियों में सहजज्ञान से समस्या को हल करने की सामर्थ्य है। सेजान की चित्रित वस्तुओं व मानवाकृतियों में ज्यामितीयता होते हुए वे स्वाभाविक दिखाई देती हैं; वे सोरा की चित्रांतर्गत आकृतियों के समान कठपुतलियों जैसी कृत्रिम प्रतीत नहीं होतीं। आधुनिक चित्रकारों में से सेजान की महानता इसमें है कि उन्होंने सर्वप्रथम नैसर्गिक आकारों के यथार्थ व सम्पूर्ण दृष्टिज्ञान के पीछे जो तर्कशुद्धता है उसका अविरत परिश्रम व निश्चय के साथ आविष्कार किया। सोरा की कृतियों को देखकर हम आकारों की सुन्दर परन्तु चित्रकारनिर्मित काल्पनिक दुनिया में प्रवेश पाते हैं; सेजान की कला से हम नैसर्गिक आकारों के सौन्दर्य से परिचित होते हैं। इन रहस्यों को हम वस्तु को केवल आँखों से देखकर नहीं जान सकते। उसके लिए सौन्दर्यप्रेम व संवेदनाक्षमता के अतिरिक्त तर्कशुद्ध दृष्टिकोण एवं सहजज्ञान की भी आवश्यकता है। सेजान की कला में पाये जानेवाले रूपान्तरित आकार को रोजरफ्राय ने 'लचीला आकार'[1] नाम दिया है। अन्य उत्तर-प्रभाववादी चित्रकारों की अपेक्षा सेजान का बीसवीं सदी की कला पर अधिक क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। अतः उनको 'आधुनिक कला के जन्मदाता'[2] मानते हैं। उनकी कला में आकारसौन्दर्य पर बल दिया है।

सेजान के लिए, रंग आकारों को सामर्थ्य देने का साधन था और उनका विश्वास था कि आकारों को स्पष्टता देने का कार्य रेखा की अपेक्षा रंगों से अधिक सफलता से किया जा सकता है। वे कहते थे "रेखा व रंग भिन्न नहीं हैं" जब रंग सबसे योग्य होता है आकार भी सबसे उत्कृष्ट होता है"। कुछ समय तक उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति का प्रयोग किया किन्तु बाद में उन्होंने उसके रेखात्मक व वातावरणीय दूरदृश्यलघुता का पालन करना पूर्णरूप से छोड़ दिया। सेजान को नवप्रभाववादी पद्धति के अनुसार बिन्दुओं या त्रुटित रेखाओं से रंगांकन करना पसन्द नहीं था। सेजान के आरम्भ के चित्रों की रंगांकन पद्धति स्वच्छंद व रोमांसवादी है व उनमें गहरे रंगों का अत्यधिक प्रयोग है जिसके 'आशिय एम्परेर का व्यक्तिचित्र' व 'काली घड़ी'[3] उदाहरण है, उसके बाद कुछ साल तक प्रभाववादी अंकनपद्धति से कार्य करके फिर अपनी व्यक्तिगत शैली का उन्होंने विकास किया जो बहुत ही क्रमबद्ध व सुसूत्र था। जिन्होंने उनको काम करते हुए देखा है उनके कहे अनुसार, कईबार, सेजान एक लकीर खींच कर दूसरी लकीर खींचने से पहले 20–25 मिनट तक चित्र को गौर से देखते रहते। कुछ चित्र उन्होंने महीनों तक अविरत परिश्रम करके

बनाये हैं। सेजान भी कहते कि अधिक समय तक गौर से देखने से उनकी आँखें खिचने लगती जैसे कि उनसे खून बह रहा है।

जैसे कि कोई जुलाहा कपड़ा बुनता है उसी प्रकार सेजान आडे व खडे समनलों में चित्रण करते। उनकी इस चित्रणपद्धति का परिशीलन उनके 'मों सेंत विक्टवार'[4] के पहाड़ों के दृश्य-चित्रो से बहुत सरलता से किया जा सकता है। इन चित्रो से ऐसा लगता है कि चित्रकार ने रंगबिरंगी पट्टियो को एकदूसरे के समीप रखके पच्चीकारी के समान चित्र रचना की है।

घनरूप वस्तु को पट की समतल पृष्ठभूमि पर चित्रित करने में क्या विसंगति है इसको सेजान ने प्रथम अनुभव किया। उन्होने देखा कि ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमो का पालन करके वस्तु का किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रतिरूप बनाया जा सकता है किन्तु उससे वस्तु की आकारविशेषताओं का परिचय या साक्षात्कार नहीं होता। अब वे सोचने लगे कि पट की द्विमिति के बंधन में रह कर कैसे चित्रण किया जाये जिससे कि वस्तु के सम्पूर्ण आकार का सत्य ज्ञान केवल चित्र को देखने से ही हो सके। सेजान ने वस्तु की स्वाभाविक आकारविशेषताओं की रक्षा करते हुए उसको लचीलापन देकर चित्रित करने का निश्चय किया। उन्होने देखा कि छाया-प्रकाश की अपेक्षा, वस्तु की बाह्य सतह की वक्रता का विचार करके रंगों की हलकी व गहरी छटाओं को चुन कर, वक्रता की अनुकूल दिशा में तूलिका से रंगो को थपथपाया जाये तो वस्तु के स्वाभाविक घनत्व का परिणाम दिखाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में उन्होने कहा था "मेरे लिये रंग ही आकार है—[यानी आकार निर्माण का कार्य करते हैं]"।[5] उनको ज्ञात हुआ कि इसके लिये प्रथम वस्तु के सरलीकृत आकार का ज्यामितीय प्रतिरूप देखना चाहिये। वस्तु के आकार को ज्यामितीय रूप देने की आवश्यकता को समझाते हुए उन्होंने एमिल बर्नार को उपदेश दिया था "निसर्ग को वृत्तचिति, गोल व शंकु द्वारा प्रतिरूप दो"[6] इस प्रकार तर्कनिष्ठ होकर उन्होंने मनुष्याकृतियों, वृक्षों, फलों व अन्य वस्तुओं को ज्यामितीय सरल रूप देकर अपनी अंकनपद्धति द्वारा घनत्व प्रदान किया व अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। उनके शब्दो में उनका लक्ष्य था "…………प्रभाववाद को संग्रहालयीन कलाकृतियों के समान ठोस व शाश्वत रूप देना"। सेजान की प्रत्येक कलाकृति का छोटे से छोटा टुकड़ा उनके विचारपूर्वक किये रंगांकन से सचेत है एवं उससे सेजान की असाधारण परिश्रमवृत्ति, सर्जनशक्ति व तर्कबुद्धि का प्रमाण मिलता है। जैसे कोई मूर्तिकार छेनी से काट कर पत्थर की प्रतिमा बनाता है उसी प्रकार सेजान तूलिका के नियन्त्रित चलनो से, रंगों की छटाओं में परिवर्तन करते हुए, एकाग्रचित्त होकर, वस्तु को ठोस रूप में चित्रित करते। उनके चित्रों में मूर्तियों के समान ठोसपन है उसका यही कारण है। किन्तु वे स्वयं अपने चित्रो से कभी पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए। वे कहते "मेरे मस्तिष्क मे जो प्रतिमाएँ उभरतों हैं वैसी पट पर उतारना असम्भव है"। कई बार निराश होकर के वे अपने चित्रों को नष्ट कर देते

या बाहर खेत या कार्यस्थल पर छोड़ आते। परन्तु अन्त तक उन्होंने चित्रण करना नहीं छोड़ा एवं अपनी कल्पना को साकार करने में लगे रहे, यद्यपि उम्र के 50वें साल तक उनको मान्यता या आर्थिक सफलता नहीं मिली।

वर्नर हाप्टमन ने सेजान की कला के बारे में लिखा है "वान गो के समान सेजान वस्तुओं के साथ भावनात्मक तादात्म्य नहीं रखते; वे केवल रचना पर ध्यान केन्द्रित करते व उनके रचनात्मक सर्जन में वस्तु का उपयुक्ततावादी भाव नष्ट होकर उसको निरपेक्ष मूर्तभाव प्राप्त होता; सेजान के चित्रों की वस्तुएँ नैसर्गिक की अपेक्षा ज्यामितीय आकारों से आकर्षक है"। सेजान ने स्वयं कहा था "वैसे देखा जाये तो चित्र में रंगों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, कहानी, मनोविज्ञान''''ये सब बाद के विचार है"[7]। चार्ल्स होम्स ने लिखा है "सेजान के चित्रों में टेढ़े-मेढ़े मेजपोश को भी पहाड़ की भव्यता प्राप्त होती है"। आधुनिक चित्रकला के लिये सेजान की कला के महत्व को देखते हुए सेजान के निम्न विचारों का अध्ययन उद्बोधक है; सेजान कहते "रेखाकन व घनत्व दर्शन कोई पृथक् पद्धतियां नहीं है।''' ''''रेखाकन व घनत्वदर्शन का रहस्य है—छाया व प्रकाश का विरोध व समन्वय"। "रेखाकन व रगाकन भिन्न नहीं हैं। जैसे आप रग लगाते है वैसे रेखा बनती जाती है"। "रंगों की सहायता से समतलों को निश्चित करके उनको एकदूसरे में भिन्न छटाओं से गूंथना पड़ता है"। इस पद्धति का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने गास्के के सामने अपने दोनों हाथों की उगलियों को आपस में फंसा दिया और कहा "इस तरह मुझे चित्रण करना पड़ता है। इसमें जरासी भी ढील नहीं होनी चाहिये–न कोई जरासी ऊपर न कोई जरासी नीचे–एक भी धागा ढीला नहीं होना चाहिये"।

सूक्ष्म विचिकित्सावृत्ति के कारण सेजान आसानी से संतुष्ट नहीं होते व व्यक्ति चित्रण के समय सामने बैठे हुए व्यक्ति को निर्जीव वस्तु के समान निश्चल बैठने को कहते। अपनी शांत स्वभाव की पत्नी के उन्होंने बहुत व्यक्तिचित्र बनाये; पत्नी को वे कहा करते "सेब की तरह स्थिर बैठो। क्या सेब इधरउधर हिलता है"। चित्रविक्रेता वोलार को अपने व्यक्तिचित्र के लिये सौ से भी अधिक बार बैठना पड़ा। इतने परिश्रम करके बनाये व्यक्तिचित्र से सेजान संतुष्ट नहीं हुए; उन्होंने इतना ही कहा "शर्ट की कालर कुछ ठीक बनी है" व चित्र को अधूरा ही छोड़ा।

दुराराध्य स्वभाव के कारण सेजान ने बाद में व्यक्तिचित्रण की जगह वस्तु-चित्रण पर ध्यान केन्द्रित किया। अचल वस्तुएँ न कभी थकतीं, न हलचल करतीं, न अपनी बातों से चित्रकार की एकाग्रता में बाधा डालतीं एवं सेजान अपनी आकार सम्बन्धी समस्याओं का तूलिका द्वारा हल करने में एकाग्रचित्त होकर लगे रहते। वस्तुचित्रण की प्रेरणा उनको प्रख्यात वस्तुचित्रकार शार्दे से मिली; किन्तु शार्दे के वस्तुचित्र पूर्णतया नैसर्गिकतावादी है जबकि सेजान के वस्तुचित्रण का लक्ष्य उनके शब्दों में था, "मुझे निसर्ग प्रतिकृति करना नहीं है, मुझे उसका पुनर्निर्माण करना है"[8]। उनके शब्दों में कला की परिभाषा थी, "निसर्ग के सम्पर्क में प्राप्त किया

ज्ञान व उसका प्रात्यक्षिक प्रयोग"[9] उनकी मान्यता थी कि प्रकृति के आतरिक रहस्यों की सौन्दर्यानुभूति किये बिना चित्रकार की आत्मा उसकी कला में नही बोल सकती। व कहत "प्रकृति के बिना कला का विकास नही हो सकता; प्रकृति के सम्पर्क से ही आँखें सवेदनशील होती है"। सेजान ने कला के बाह्य विरोधाभास के अन्तर्गत सत्य को पहचाना कि ऐंद्रिक ज्ञान व बौद्धिक विश्लेषण इन दोनो के सहयोग से ही श्रेष्ठ कलानिर्मिति हो सकती है। उन्होने कहा था "चित्रण के लिये आँख व मस्तिष्क दोनो आवश्यक है; एक से दूसरे को बल मिलना चाहिये, निसर्ग के निरीक्षणसे आँख का सामर्थ्य बढ़ना चाहिये, मस्तिष्क का तर्क व कलात्मक अनुभूति की सुरचना से"।

आलकारिकता के दोष से बचने के लिये, सेजान वस्तु को चारों ओर से बाह्य रेखा से अकित करना टालते व कुछ जगह आवश्यक बलरेखाएँ खीचकर हलकी या गहरी छटाओ से आकार को स्पष्ट करते।

सेजान ने ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों में ऐसे परिवर्तन किये कि दर्शक की निगाह अग्रभूमि से पृष्ठभूमि की ओर फिसलने के बजाय पृष्ठभूमि से आकर अग्रभूमि में केन्द्रित हो जाती है। जहाँ वे सबसे तेज रगो का प्रयोग करके प्रमुख आकारों को स्थापित करते। वस्तु के स्वाभाविक आकार का परिचय कराने व त्रिमिति के आभास को परिणामकारक बनाने के उद्देश्य से वे पड़े समतलो को उठा कर अकित करते; जैसे कि वे सीधे रास्ते की दोनो भुजाओ को कुछ समानातर व लम्बाई बढ़ाकर अकित करते एव मर्तबान के मुख को कुछ वृत्ताकार बनाते जिससे अग्रसर झुकाव मिलकर उनकी आकार विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती।

सेजान की कला मे निरीक्षण व बौद्धिक विश्लेषण का सफल समन्वय होने से दर्शक दृश्य प्रभाव व रूपतत्व दोनो को उतनी ही तीव्रता से अनुभव कर लेता है। सेजान की कला मे वस्तु के नैसर्गिक आकर्षण व विशुद्ध आकार सौन्दर्य के बीच उचित सतुलन है। माध्यम की मर्यादाओं की वजह से वस्तु का चित्रित प्रतिरूप उतना परिणामकारक नही होता जितना कि उसका पुनर्निर्मित रूप, जिसको सेजान 'चित्रित समरूप'[10] कहते। ज्योतो के बाद चित्रविषय व आकारसौन्दर्य का इतना सुन्दर समन्वय प्रथम सेजान की कला मे ही देखने को मिलता है जिसके उनके चित्र 'स्नानमग्न', 'ताश खेलनेवाले'[11] एवं बहुत से आत्मचित्र व व्यक्तिचित्र समुचित उदाहरण है। कलासमीक्षक क्लाइव बेल ने लिखा है "योरपीय चित्रकला में यदि सेजान सबसे महान् नही हैं तो वे है ज्योतो"। पुनर्जागरण के बाद सेजान की कला सबसे क्रांतिकारी सिद्ध हुई। ज्योतो, उच्चेलो, पायरो देला फ्राचेस्का, वेरोनीस व पुर्से के चित्रो को सेजान बहुत पसन्द करते थे व वे स्वयं उन्ही की परम्परा के चित्रकार थे; इस परम्परा के चित्रकारो की कृतियों मे वास्तुतुल्य भव्यता होती है।

वस्तु के आकारसौन्दर्य के दर्शन पर ध्यान केन्द्रित होते हुए सेजान ने छाया प्रकाश के प्रभाव को पूर्ण रूप से नही त्यागा जितना उन्होंने पिसारो व अन्य

प्रभाववादियों के साथ अध्ययन किया था। किन्तु सेजान का प्रकाश प्रभाववादियों का वह प्रकाश नहीं था जो ऋतु व समय के साथ बदलता है, विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार जिसके रंग का निर्णय किया जाता है जिससे वस्तु दृश्यमान होकर अपना रूप बदलती है। सेजान का प्रकाश अपरिवर्तनशील एवं कालातीत था; उसका उद्गम सूर्य नहीं था बल्कि चित्रकार की प्रतिभा थी तथा वस्तु के आकारसौन्दर्य का दर्शन जिसका लक्ष्य था। सेजान यदि प्रकाश को काल्पनिक व निश्चित रूप नहीं देते तो वस्तु के निजी रंग का निर्णय करके उनके द्वारा वस्तु को उसके स्वाभाविक ठोस रूप में चित्रित करना असम्भव था। सेजान ने सभी प्राकृतिक दृश्यों को प्रत्यक्ष स्थान पर जाकर चित्रित किया एवं उनमें नैसर्गिक प्रकाश का अभाव होते हुए वे कितने प्रकृति सदृश बन गये हैं। इसका अनुमान उन प्राकृतिक स्थानों के कैमरा से खींचे गये छायाचित्रों से हम कर सकते हैं। सेजान कहते "चित्रकार के लिए कोई प्रकाश नहीं होता; चित्रकार, देखने के अतिरिक्त पृथक्करण का कार्य करता है जिसके लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती।"

सेजान की अंकनपद्धति का जैसा विकास होता गया वैसे वे पृष्ठभूमि के गहरे रंगों को पतली परतों में लगाने लगे, जिससे पट के श्वेत रंग की चमक उनमें उतरती व वे अधिक सतेज बनतीं। बाद में वे जलरंगों में भी चित्रण करने लगे, किन्तु उसका प्रयोग वातावरण की धूसर चंचलता का प्रभाव दिखाने के लिये उन्होंने नहीं किया जैसा कि प्रायः जलरंगचित्रण में किया जाता है।

सेजान ने फ्रांस के दक्षिणी भाग में एजा प्रोवान्स को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना जहाँ के स्वच्छ भूमध्यप्रदेशीय प्रकाश में वस्तु के आकारसौन्दर्य की स्पष्ट कल्पना देने की शक्ति थी। वहाँ के वातावरण ने सेजान के आदर्श चित्रकार पुसें व ख्यातनाम इटालियन चित्रकारों के चित्रांतर्गत वातावरण का स्मरण दिला कर सेजान की कला की पुष्टि की। सेजान पुसें को आदर्श चित्रकार मानते; वे कहते "मुझे पुसें का अनुसरण करके प्रकृति को चित्र में पुनर्निर्मित करना है, किन्तु प्रकृति के सान्निध्य में"[12]। पुसें की कलाकृतियों में शास्त्रीय कला का आकारसौन्दर्य होते हुए वे अनैसर्गिक व कृत्रिम दिखाई देती है। सेजान इस दोष से बचना चाहते थे और उन्होंने देखा कि इस समस्या का एक ही हल है कि प्रकृति को प्रत्यक्ष देख के किन्तु शास्त्रीय नियमों का पालन करके चित्रण करना। सेजान की आधुनिक कला को क्या देन है इस सम्बन्ध में जान कैनडे ने लिखा है "सेजान ने प्रकृतिसम्बन्धी नियमों की उपेक्षा करके स्वतन्त्र विचार से प्रकृति को समरूप में चित्रित करने के चित्रकार के स्वातंत्र्य को प्रस्थापित किया""अपनी भावनाओं व चिकित्सा के अनुसार चित्रण करके विषयवस्तु के मूलभूत सारतत्त्व को व्यक्त करना, प्रकृति के बाह्यरूप से विचलित न होकर अभिव्यक्ति के पोषक भिन्न तत्त्वों को स्वीकारना, यही आधुनिक कला का सार है"।

पौल सेजान का जन्म 1839 में एजा प्रोवास में हुआ। उनके पिता का टोपों का कारखाना था व वे सम्पन्न बैंकर थे। बचपन से ही सेजान की एमिल जोला से—जो बाद मे साहित्यिक के रूप में प्रसिद्ध हुए—मित्रता थी। पिता ने पौल की कानून के अध्ययन मे अरुचि को देख कर, एमिल जोला के साथ पैरिस जाकर कला का अध्ययन करने की अनुमति दी व वे 1861 मे पैरिस आये। वहाँ वे अकादमी स्विसे मे भरती हुए व वही उनका मोने व पिसारो से परिचय हुआ। पिसारो ने उनका काफी मार्गदर्शन किया व अन्य प्रभाववादियों से परिचय कराया। पैरिस के जलपान-गृहों में होनेवाली उनकी चर्चाओं में सेजान उपस्थित रहते किन्तु अधिकतर मौन रहकर श्रोता की भूमिका अपनाते। वे अत्यधिक कोमलहृदय थे और यदि उनको विवश होकर बोलना पड़ता तो वे यकायक भावनावश होकर बोलते। सेजान के स्वभाव के बारे मे जोला ने लिखा है कि वे दयालु किन्तु बहुत ही स्वाभिमानी एव जिद्दी थे। जरा-सा सन्देह होते ही वे चुप हो जाते। जोला आगे लिखते है "किसी भी बात पर सेजान को विश्वमित करना उतना ही कठिन था जितना कि नोत्रदाम के मीनारों से नाच नचाना"।

सेजान को प्रारम्भ से बरोक चित्रकारों का घनत्वाकन बहुत पसन्द था। देलाक्रा के उन्मुक्त तूलिकासंचालन से वे बहुत प्रभावित थे व कुर्बे का अनुसरण कर के उन्होने कई बार चित्रण-चाकू से रंगांकन किया। उपर्युक्त कलात्मक गुणों का दर्शन हम उनके प्रारम्भिक काल के प्रसिद्ध चित्र 'चाचा दोमिनिक'[13] 'काली घड़ी' व 'पिता के व्यक्तिचित्र' में पाते हैं; चित्रो का रंगाकन मोटी परतो मे किया है—कही चाकू से—व काले, भूरे व मिश्रित रगो का प्रयोग अधिक है; प्रभाववादियो की विशुद्ध रंगसंगति का प्रयोग इन चित्रों मे नही है किन्तु आकारो के ठोसपन व स्पष्टता के गुण सेजान के इन चित्रो मे भी पाये जाते है जो बाद मे सेजान की परिणत शैली की विशेषता के रूप में दृष्टिगोचर हुए।

1869 मे सेजान का ओर्तास से परिचय हुआ जो बाद मे उनकी पत्नी व आदर्श चित्रविषय (मोडेल) बन गयी। 1872 से 1877 तक उन्होने प्रभाववाद का एकाग्रचित्त होकर अध्ययन किया। 1872 मे उन्होने पिसारो के साथ पोतवाज में प्रकृतिचित्रण किया। प्रभाववादी अंकनपद्धति में भी सेजान ने रगो का मोटी परतों में प्रयोग किया है और जब 1874 की प्रभाववादियों की प्रथम प्रदर्शनी मे उनका चित्र दिखाया गया तब एक समीक्षक ने 'पिस्तोल चित्रकार'[14] नाम देकर उनकी निन्दा की। 1880 के करीब वे हलकी परतो मे नियन्त्रित तूलिका संचालन से रगाकन करने लगे। ओवर मे बनाया हुआ चित्र 'फासी दिये व्यक्ति का मकान'[15] उनकी प्रभाववादी काल की उत्कृष्ट कृति है। प्रभाववाद के पाँच साल के अध्ययन से सेजान की रंगसंगति मे विशुद्धता आ गयी और वे चमकीले रगो का प्रयोग करने लगे किन्तु प्रभाववाद की त्रुटियों को भी वे स्पष्ट रूप से समझ गये। पिसारो का प्रभाववाद पर निर्भर रहना उनको पसन्द नहीं था एवं वे कहते कि यदि पिसारो ने

अपनी प्रारम्भिक शैली का विकास किया होता तो वे हम सब में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार बन जाते। प्रभाववाद से असन्तुष्ट रहने पर भी वे पिसारो व मोने का बहुत आदर करते। प्रभाववादियों के विपरीत सेजान जबतक चित्रविषय का पूर्वनियोजन मस्तिष्क में नहीं होता तबतक चित्रण का आरम्भ नही करते। उनकी मान्यता थी कि—जैसे उन्होंने गास्के को लिखा था—दृश्य का प्रभाव नवजात शिशु की नेत्रपटलीय संवेदनाओं के समान असम्बद्ध व अर्थहीन होता है व उसको विचार व संशोधन से सुरचित, आकार व सार्थ बनाने का कार्य चित्रकार को करना पड़ता है। यह कार्य सेजान सफलता से कर सके क्योंकि—जैसे वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है—"उनके विचारों की गतिविधि पूर्णरूप से चित्रमय थी"।[16]

सेजान लगातार अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी के लिये भेजते किन्तु वे अस्वीकृत होते। प्रभाववादियो की प्रदर्शनियो में उनके चित्रो की निन्दा होने के बाद वे एजा प्रोवान्स चले गये और अन्त तक वहीं रहे जहाँ से वे बीच-बीच थोड़े समय के लिये पैरिस आकर रहते। पैरिस में वे अधिक समय तक नही रह सकते और इसके मुख्य कारण थे उनकी शांतिप्रिय वृत्ति व मानवस्वभाव का अविश्वास। यदि कोई उनकी कला की प्रशसा करता तो उनको सदेह होता कि यह सब मजाक में किया जा रहा है। एक बार उनकी कला की प्रशसा में आयोजित सम्मेलन में मोने ने उनकी कला की सराहना की तब वे नाराज होकर वहाँ से चल पड़े।

1878 के बाद उन्होंने प्रभाववादियों की प्रदर्शनियो में भाग नही लिया; एज के एकान्त में प्रकृति के सम्पर्क में अपने कलात्मक ध्येय की पूर्ति में वे अविरत परिश्रम करते रहे।

उनके प्रकृति-चित्र स्पष्ट रूप से ज्यामिति पर आधारित है जिसका उनका चित्र 'गार्दान का दृश्य'[17] अभ्यसनीय उदाहरण है। इस चित्र में व घनवाद के प्रारम्भिक प्रकृतिचित्रो में इतनी समानता है कि सेजान की कला की घनवाद में कितनी स्वाभाविक रूप से परिणति हुई इसका ज्ञान इस चित्र द्वारा सरलता से होता है। यही बात उनके चित्र 'स्नानमग्ना युवतियाँ'[18] के बारे मे कही जा सकती है; इसकी तुलना पिकासो के पहले घनवादी चित्र 'आविन्यों की स्त्रियाँ'[19] से करने पर दोनो चित्रकारों के दृष्टिकोणो की समानता की स्पष्ट कल्पना आती है। सेजान के चित्रांतर्गत वस्तुओं के आकारों में जैसी ज्यामितीयता है वैसी रंगांकन पद्धति में भी है; वे कहते "रग दूरदृश्य लघुता है"[20]।

सेजान के कलासम्बन्धी विचारो को देख कर यह नही समझना चाहिये कि उनकी कला केवल सैद्धांतिक प्रदर्शन है। उनके व्यक्तिचित्रों मे मानवता व व्यक्तित्व का दर्शन है एवं प्रकृतिचित्रो में निसर्ग के जन्म व विकास के नियमो का सचाई से पालन है, किन्तु इन विचारो का उनकी कला में बहुत ही गौण स्थान है।

1886 में उनके पिता की मृत्यु हुई और वे उनके लिए काफी सम्पत्ति छोड़ गये। उस समय सेजान की आयु 47 साल की थी व तब तक आर्थिक दृष्टि से वे

अपने पिता पर ही निर्भर थे। उनका एक ही चित्र अब तक राष्ट्रीय प्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ था और उसकी स्वीकृति भी उस वर्ष की चयनसमिति के सदस्य आन्त्वान गियेमे ने अपने मित्र जोला को खुश करने के लिये करवायी थी। सेजान का चित्र पहले पहल डॉ. गाशे ने खरीदा। आयु के चालीसवें साल तक सेजान ने अपने विवाह व पुत्रजन्म की हकीकत पिता से छिपाये रखी क्योंकि उनको भय था कि शायद नाराज होकर वे आर्थिक सहायता बन्द नहीं कर दें। वे यदि सम्पन्न परिवार में पैदा नहीं होते एवं उनको अर्थार्जन के लिये अपने पैरों पर खड़े होना पड़ता तो उनकी क्या परिस्थिति होती इसकी कल्पना करना कठिन है। उनमें व्यवहारकुशलता बिलकुल नहीं थी व अत्यधिक संवेदनाक्षम होने से वे प्रापंचिक जिम्मेवारियों से पृथक् रहना चाहते। पैरिस में उनकी पत्नी ओर्तांस सब कार्यभार सम्हालती व एज में उनकी छोटी भगिनी मारी।

प्रभाववादियों की तीसरी प्रदर्शनी के बाद सेजान के चित्र पेर तांग्वी की चित्रों की छोटी सी दूकान में देखने को मिलते जहाँ चित्रों के व्यापारी आम्ब्राज वोलार ने उनके चित्रों को 1892 में पहली बार देखा व बहुत पसन्द किया। 1895 में वोलार ने पिसारो की सलाह से सेजान के चित्रों की प्रदर्शनी की। यद्यपि प्रदर्शनी की कटु आलोचना हुई सेजान की कला के सामर्थ्य को उनके प्रभाववादी मित्रों ने पहचाना, कुछ संग्राहकों ने उनके चित्रों की प्रशंसा की व उनके चित्र बिकने लगे। फ्रेंच कलाक्षेत्र के वातावरण में परिवर्तन हो रहा था एवं राष्ट्रीय कलासंस्था के अतिरिक्त स्वतन्त्रवृत्ति के कलासमीक्षकों का प्रभाव बढ़ रहा था जिसके फलस्वरूप सेजान को कुछ प्रशंसक मिले।

सेजान ने अपने ध्येय की पूर्ति के लिये अथक प्रयत्न किये और कलानिर्मिति की। 1906 में एक रोज प्रकृतिचित्रण के लिये वे बाहर गये थे। दो घंटों तक उन्होंने वर्षा में काम किया; लौटते समय थकान के कारण वे रास्ते में बेहोश हुए एवं एक गाड़ीवाला उनको घर ले आया। बीमार होते हुए दूसरे रोज उन्होंने बगीचे में काम शुरू किया किन्तु चक्कर आने से उनको फिर बिस्तर पर लेटना पड़ा। चार रोज बाद उनका स्वर्गवास हुआ और उनकी इच्छा "मैं काम करते हुए मरना चाहता हूँ" की पूर्ति हुई।

1907 में उनकी जीवनभर की कलानिर्मिति को एक विशाल प्रदर्शनी द्वारा दर्शकों के सम्मुख रखा गया। इस प्रदर्शनी का नवकलाकारों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। कलाक्षेत्र में नवनवीन विचार प्रवाह शुरू हुए एवं बीसवीं सदी की कला का आरम्भ सेज़ान की कला से प्रेरणा पाकर हुआ।

सेज़ान का जीवन असीम आत्मविश्वास व ध्येयपूर्ण कला साधना का अनुल्य उदाहरण है। प्रशंसा की जगह जीवनभर सभी ने उनकी कला का उपहास किया। उनके घनिष्ठ मित्र जोला ने आरम्भ में उनको बहुत प्रोत्साहित किया और अन्त तक वे उनकी सहायता करते रहे किन्तु सेजान को इस बात का दुःख हुआ कि जोला भी

उनकी कला की महानता को समझने में असमर्थ रहे। सेजान में ऐसा दुर्दम्य आत्म-विश्वास था कि असफलता के कारण वे एकांतप्रिय व सशयी जरूर हुए किन्तु निरुत्साही कभी नही हुए। अपनी कला के भविष्य के बारे में वे निश्चित थे और कहते "मैं एक नयी कला का आदिम कलाकार हूँ"[20]। उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई और आधुनिक कला के जन्मदाता के नाम से वे अमर हुए।

आत्मविश्वास होते हुए सेजान में दुरभिमान नही था व वे दूसरों को सलाह देते "सग्रहालयो में कलाकार विचार करना सीखता है व प्रकृति में देखना सीखता है। हमारी कला कुकुरमुत्ते की तरह पैदा नही होती। उसके पीछे पीढ़ियों के परिश्रम होते है; उनसे क्यो न लाभ उठाया जाये" उनके शब्दों में उनकी महत्वाकांक्षा थी "कला की महान् परम्परा में अपना योगदान करना"।

सेजान का बीसवी सदी की कला पर इतना प्रभाव पड़ा कि सेजान की कला को छोड़ कर बीसवी सदी की कला का विचार भी असम्भव है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि सेजान ने किसी नयी शैली को जन्म दिया। बोदेलेर ने कलाकार के बारे में लिखा है "कलाकार केवल अपनी कलानिर्मिति के लिये ही उत्तरदायी है। वह अपनी कला को छोड़ जाता है और आगामी पीढ़ी उसकी कला को किस दृष्टिकोण से स्वीकारती है यह विचार उसकी कला के मूल्यांकन में गौण है। कलाकार की कोई संतान नही होती। वह अपनी ही कला का निर्माता, प्रभु होता है"। इस विचार से सेजान की कला घनवाद, फाववाद या अन्य किसी वाद के अन्तर्गत नहीं आती। वे ऐसे काल के कलाकार थे जिस काल में फ्लोबेर, बोदेलेर, जोला जैसे साहित्यकार व माने, मोने, पिसारो जैसे चित्रकारों ने सत्य पर नया प्रकाश डाला। 'कला के लिये कला' अमूर्तवाद या किसी अन्य वाद के जरिये कला को सुनिर्णीत रूप देने का उनका विचार नही था। हर्बर्ट रीड ने लिखा है "यदि सेजान जीवित होते तो वे भी अपनी कला से प्रभावित होकर जिन नवीन भिन्न वादों ने जन्म लिया उनको देख कर विस्मित हो जाते"। सेजान का मुख्य विचार कला को आकारप्रधान व रचनात्मक बनाने का था; किन्तु इस विचार ने कला को परम्परागत बंधनो से मुक्त किया एवं उसमें अपरिमित परिवर्तन हुए। वैसे गोग्वँ की कला भी कलाकारों को बंधनमुक्त करने में सहायक हुई और वे स्वतन्त्र विचार से स्वच्छंद चित्रण करने लगे। किन्तु केवल स्वच्छंद चित्रण से महान् कलाकृतियो का निर्माण असम्भव है; उसके लिए कलांतर्गत नियमो की खोज भी आवश्यक है और यह गोग्वँ भी जानते थे। यह खोजकार्य सेजान ने किया।

वर्नर हाफ्टमन ने सेजान के बारे में लिखा है "सेजान ने एक बात को अच्छी तरह समझा कि तर्कशुद्ध, अपरिवर्तनशील रचना का हमेशा कठोर आकार के दासत्व में अन्त नही होता बल्कि उससे चित्र को ऐसा सामर्थ्य प्राप्त होता है जिस सामर्थ्य से हम प्रार्थना में हाथ जोड़ते हैं व जिससे नयी दुनिया का प्रवेशद्वार खुलता है, जिसको धार्मिक युगो में ईश्वरीय साक्षात्कार कहते थे। प्रकृति का सत्य रूप बाह्य

मतह की गहराई में अप्रकट रहता है व वाह्य रंग उसके साक्षी है"। सेजान ने कला की परिभाषा की थी "कला प्रकृति सदृश सुसगनि है"।[22]

प्रभाववाद के ऐतिहासिक महत्त्व के बारे में हम जितना अधिक विचार करते हैं उतना स्पष्ट हो जाता है कि जो उत्तरप्रभाववादी चित्रकार उसकी त्रुटियों को देखकर उससे पृथक् हुए, उन्होने उससे लाभ उठा कर उसको जितना सार्थक किया उतना उसके अनुयायी नही कर सके। उसमे से सोरा व सेजान की कला आकार-निष्ठ है जबकि वान गो व गोग्वँ की कला आत्मनिष्ठ है। वान गो की कला में उनके भावनोद्वेग की अभिव्यक्ति है जबकि गोग्वँ की कला मे उनके आतरिक जीवन का कल्पना द्वारा किया गया दर्शन है। इन दोनो को जीवन मे कठिनाइयों व आर्थिक विपन्नावस्था से जितना कडा संघर्ष करना पडा उतना कला के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कलाकार को करना पड़ा होगा।

वान गो (1853–1890)

वान गो की कला व जीवन एकदूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखते है कि दोनों का पृथक् अध्ययन नही किया जा सकता। वान गो ने अपने भाई थिम्रो को पत्र मे लिखा था "मैं अपने सामने के दृश्य को हूबहू चित्रित करने का कभी प्रयत्न नही करता। मैं रंगो का प्रयोग पूर्ण स्वेच्छा से करता हू जिससे मैं दृश्य के प्रति मेरी आतरिक भावनाओं को प्रभावी रूप मे अंकित कर सकूं"। इसी दृष्टिकोण को लेकर उन्होंने आजीवन कलानिर्मिति की व अभिव्यंजनावादी कला की यही संक्षिप्त, समुचित परिभाषा है। उनकी कला ऐतिहासिक कलाशैलियों, कलासम्बन्धी सिद्धांतो या रचना के नियमों पर आधारित नही है। कला के इतिहास का परिशीलन करके उन्होंने अपनी कला का ध्येय निश्चित नही किया बल्कि पूर्ण मानवतावादी ध्येय से प्रेरित होकर उन्होंने कलानिर्मिति की। उनके लिये कला एक साधन मात्र थी। उनकी कला के बारे में कलासमीक्षक युइग ने लिखा है "उनकी कहानी सौन्दर्य-चकित आँख, तूलिका या चित्रफलक की कहानी नहीं है, बल्कि एक ऐसे अकेले दिल की कहानी है जो अन्धेरे बंदिवास में धड़क रहा था, जानता नही था यह क्यों दुःखी है व क्या चाहता है"[23]। ससार मे प्रेम व दुःख अभिन्न है। वान गो ने मानवता से अपार प्रेम किया व उसकी सेवा करना चाहा किन्तु उसके बदले में उनको कष्ट व मानसिक यातनाओं के अलावा कुछ नही मिला। वान गो का प्रेम स्वार्थी व भोगलोलुप नही था। वे संसार के प्राणिमात्र के दुःख को देख कर तड़पते थे व जानना चाहते थे कि क्या किया जाये जिससे इस दुःख का अन्त हो। वे अपनी आत्मा को सेवा की वेदी पर अर्पण करना चाहते थे। मानवता की सेवा के उन्होंने भिन्न मार्गों से प्रयत्न किये किन्तु भोलापन व निष्कपट वृत्ति के कारण वे असफल हुए और उनके लिये कला एकमेव साधन रही जिसके द्वारा वे मानवता के प्रति अपनी सद्भावना को व्यक्त कर के उसकी अप्रत्यक्ष सेवा कर सकते। मानवसेवा की उनकी उत्कंठा को समाज ने निर्दयता से ठुकरा दिया व दार्शनिक स्पाइनोजा के

वचन "जो भगवान से प्यार करता है उसे यह आशा नहीं करनी चाहिये कि भगवान भी बदले मे उसे प्यार करे" की सत्यता को उन्होंने अनुभव किया। उनके जीवन मे उनको छोटे भाई थियो ऐसे देवतातुल्य व्यक्ति मिले जिन्होंने उनमे सच्चा प्यार किया, उनकी कला को सहानुभूति से समझा व उनकी अपरिमित मदद की।

वान गो ने 'कला के लिये कला' ध्येय का विश्वास नहीं किया। कलाकृति मे, वे कला के सौन्दर्यात्मिक गुणों के विकास की अपेक्षा मानवीय दु:ख, परिश्रम व पारमार्थिक आकाक्षाओं का भावनापूर्ण दर्शन कराना चाहते। वान गो का कार्यक्षेत्र फ्रान्स रहा किन्तु उनको कोरो, कुर्बे व माने की परम्परा के कलाकार नहीं मान सकते। वैसे वे जन्म से डच थे।

विन्सेंट वान गो का जन्म 1853 मे हालैंड के ग्रूट्ज्युंडर्ट गाँव में हुआ। उनके पिता पादरी थे व उनकी आर्थिक परिस्थिति साधारण थी। विन्सेंट का चेहरा बेतुका था। वे शुरू से ही एकातप्रिय व भावनाप्रधान थे व उनको नियमबद्ध जीवन पसन्द नही था। विन्सेंट व उनके छोटे भाई थियो मे बहुत प्यार था। उम्र के 12वें साल में जेवेनबर्गेन के विद्यालय मे शालेय अध्ययन के लिये उनको भेजा गया। वहाँ वे 16वें साल तक रहे किन्तु उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नही हुआ। उसके बाद उन्होंने पेरिस के चित्रो के व्यापारी गुपिल की हेग की शाखा मे विक्रेता की नौकरी की। उनको रेम्ब्राट, कोरो, मिले व डच चित्रकारो के चित्र बहुत पसन्द थे और उनकी बड़ी प्रशसा कर के वे बेचते। कार्यक्षमता को देख कर उनकी लदन की शाखा में बदली की गयी। यहाँ पहली बार सुव्यवस्थित नियमबद्ध रहन-सहन मे उनकी रुचि पैदा हुई। वे अपनी मकानमालकिन की लड़की उर्सुला से प्रेम कर रहे थे। उर्सुला ने आरम्भ मे उनको प्रोत्साहन दिया किन्तु जब वे उससे विवाह की बात करने गये तब उसने उनको जाने को कहा और उनके पीछे ज़ोर से दरवाजा बन्द किया। उनकी मानसिक अवस्था पर प्रेमभंग का परिणाम होकर उनसे पहले की तरह काम नही होता। उनको लदन से हटा कर पेरिस की शाखा मे नौकरी दी गयी किन्तु वे अब उस नौकरी से ऊब गये थे और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उसके पश्चात् उन्होंने एक के बाद दूसरी इस तरह नौकरियाँ की। प्रथम वे लंदन जाकर किसी के निजी विद्यालय मे फ्रेंच भाषा के शिक्षक रहे। वहाँ उनको विद्यार्थियो के माता-पिता से भोजन व निवास का शुल्क वसूल करने का काम दिया गया व वे अभिभावको की दरिद्रता से परिचित हुए। वसूली के काम मे असमर्थ रहने से उनको नौकरी से हटा दिया गया। अब वे लदन मे ही एक मेथॉडिस्ट धर्मोपदेशक के विद्यालय मे नौकरी करने लगे। वहाँ कभी धर्मोपदेश करने के वृथा प्रयत्न भी उन्होंने किये। धर्मोपदेशक से वे धर्मसम्बन्धी चर्चा करते जिससे असहाय व पीड़ित लोगो को धर्मोपदेश द्वारा मन-शाति करने के विचार ने उनके मस्तिष्क मे जन्म लिया। वे डोर्ड्रेश्ट में पुस्तको के व्यापारी की दूकान मे रहे; यहाँ वे धार्मिक पोशाक पहनते व ईश्वरभक्ति मे व्यस्त रहते। कभी फुरसत म वे रेखाचित्रण करते किन्तु उसमे वे

विशेष रुचि नहीं रखते। अब उन्होंने पादरी बनने का निश्चय किया किन्तु उसके लिये विश्वविद्यालयीन स्नातक होना आवश्यक था। 14 महिनों तक आमस्टरडाम में रह कर उन्होंने स्नातक परीक्षा के लिये मेहनत की किन्तु उनको सफलता नहीं मिली। तब धर्मोपदेशक बन कर वे बोरिनाज नाम के खानों के प्रदेश में गये। त्याग व सेवा के उनके विचार निष्कपट किन्तु अव्यवहार्य थे। खान के मजदूरों के कामों में वे स्वयं मदद करते, संसर्गजन्य बीमारियों में रुग्णों की सेवा करते किन्तु खुद फटे कपड़े पहनते व खराब खाना खाते। उनके पिता ने व जिस धर्मसंस्था ने उनको यह कार्य सौंपा था उसने इस अदूरदर्शित्व को देख कर उनको वापस बुला लिया।

बोरिनाज में उनकी कला का सत्य अर्थ में आरम्भ हुआ। वे गरीबों की सेवा करते व उनके परिश्रमी व दुःखी जीवन के चित्र खींचते। वे कहते "ईसा सबसे महान् चित्रकार थे"[24]। महात्मा गांधी ने भी ईसा को 'सर्वश्रेष्ठ कलाकार'[25] माना है। अब वान गो की धार्मिक आकांक्षाओं व कलात्मक सहज प्रवृत्ति के बीच द्वंद्व शुरू हुआ। उन्होंने अपने भाई थिओ को लिखा "पाँच साल से मैं इधर-उधर घूम रहा हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन का कुछ सदुपयोग हो। मेरे अन्तर्गत कोई प्रेरणा मुझे परेशान कर रही है। मैं नहीं जानता कि यह क्या है"। उसके बाद उन्होंने फिर दूसरे पत्र में लिखा "कुछ भी हो मैं फिर हाथ में पेन्सिल लेकर चित्रण करूंगा जो मैंने निराश होकर छोड़ दिया था"। एट्टेन जाकर वे थिओ से मिले जिन्होंने सब आर्थिक सहायता करने का वचन दिया। अब वान गो के तपस्यापूर्ण जीवन का आरम्भ हुआ। कला के अध्ययन के हेतु वे हेग जाकर चित्रकार आंटोन मॉव–जो उनके रिश्तेदार थे–के पास दो साल तक रहे। यहाँ के अध्ययन से न वे खुश थे न मॉव। वे संग्रहालयों में जाकर रेम्ब्रांट के चित्रों का अध्ययन करते। अब वे चित्र के धार्मिक या सामाजिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके कलात्मक गुणों की ओर भी ध्यान देने लगे। अपनी अल्प आमदनी से थिओ उनको जो कुछ पैसा भेजते वह वान गो चित्रकारी में लगा देते व सारा समय चित्रकारी में व्यस्त रहते। इस काल के उनके चित्र मिले के समान अंकनपद्धति में स्वच्छंद, सरल व प्रभाव में सामर्थ्यशाली हैं। 1880 से 1886 तक चित्रों के विषय पूर्णतया मानवतावादी दृष्टिकोण लिये हुए हैं—खान या खेत के मजदूरों के कष्टमय जीवन, अनाथालयों, गरीब बस्तियों एवं रास्तों के दृश्य चित्रों के मुख्य विषय हैं। वे कोयले या क्रेयॉन से रेखांकन करते व डच चित्रकारों के समान भूरे, काले एवं गहरे रंगों का अधिक प्रयोग करते जिससे चित्र में दुःख व निराशा के भाव प्रतीत होते। थिओ उनको जो आर्थिक सहायता भेजते उससे उनका पूरा खर्च नहीं निभता। वे गाँव के मजदूरों में घूमते, उनसे बातें करते व कभी घास पर ही सो जाते। इसी समय उनकी धार्मिक व परोपकारी वृत्ति ने फिर उछाल खायी। उनका सिएन नाम की स्त्री से परिचय हुआ जिसने अबतक की जिन्दगी वेश्यावृत्ति में गवायी थी व जिसकी शारीरिक व मानसिक अधोगति पूरी तरह हो चुकी थी। वान गो उस गर्भवती स्त्री को व उसके बच्चों को घर ले आये

व उन्होंने उसका व्यक्तिचित्रण किया। उस स्त्री का 'दुःख'[26] शीर्षक का रेखाचित्र प्रसिद्ध है, उसमें शारीरिक व मानसिक पतन का परिणामकारक चित्रण है। उस स्त्री से विवाह करने की मनीषा वान गो ने व्यक्त की, किन्तु सहायता करने के इस अनोखे विचार से घबड़ा कर वह चली गयी। वान गो उस स्त्री के खानेपीने, दवाइयों, शराब व धूम्रपान का खर्च उठाने व स्वयं भूखे रहते। उस स्त्री के बारे में उनकी क्या धारणा थी यह उनके निम्न वाक्य से स्पष्ट होता है जो उन्होंने लेखक मिचेले से उद्धृत करके उस स्त्री के रेखाचित्र के नीचे लिखा है "दुनिया में दुःखी, अकेली परित्यक्ताएं कैसी हो सकती है!" अब थिओ ने आकर वान गो को इस परिस्थिति से मुक्त किया व अपने पिता के पास न्युनेन में छोड़ आये।

वान गो की कला के प्रारम्भिक काल (1880–1886) को 'डच काल' कहते है। इस काल का उनका चित्र 'आलूभक्षी'[27] बहुत ही प्रसिद्ध। इस सामर्थ्यपूर्ण चित्र में डच कला के समान गहरे, भूरे व हरे रगों का प्राचुर्य है। इस चित्र के सम्बन्ध में वान गो ने थिओ को पत्र लिखा है "मैने इस चित्र द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि ये जो निर्धन लोग, दीपक के प्रकाश में, हाथ डाल कर आलू खा रहे हैं उन्ही हाथों से धरती को खोद कर अपनी आजीविका चलाते है। सुशिक्षित लोगों से बिलकुल भिन्न रहनसहन का इसमें दर्शन है और मैं नही सोचता कि हरेक दर्शक इसको पसन्द करे। रूढ़िबद्ध पद्धति से इस चित्र को चिकना व आकर्षक बनाना अयोग्य होगा। कृषिजीवन के चित्र को सुगंध की क्या आवश्यकता है? ऐसे चित्र मे यदि धुएँ, गोबर व खाद की गंध आती है तो यह उचित ही है"। ऊबड़खाबड़ मानवाकृतियाँ, वक्रतापूर्ण रेखांकन, जोशीला तूलिका-सचालन एव हलके व गहरे रगो का विरोधयुक्त प्रयोग इन से चित्र अभिव्यक्तिपूर्ण बन गया है।

मानवीय जीवन के सत्य दर्शन को ही वान गो कला की आत्मा मानते थे और इस विचार से उनके विचार महात्मा गांधी के सत्य व सौन्दर्यविषयक विचारों से मिलते है। गांधीजी के अनुसार "सच सत्य······अत्यन्त सुन्दर है। जब मनुष्य को सत्य मे सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है तब सच्ची कला की निर्मिति होती है। ···· "सच्ची कला आत्मिक अभिव्यक्ति है"[28]। वान गो की कलाभिरुचि के पीछे यही भावना कार्यरत थी। वे कलाकृति के बाह्य रूप की अपेक्षा उसके विषय व अभिव्यक्ति का अधिक ख्याल करते। उनके प्रिय-चित्रकार थे कृषिजीवन के चित्रकार मिले व योसेफ इस्राएल्स यद्यपि उन चित्रकारो की अतिरंजना वान गो को पसन्द नहीं थी। रेम्ब्राट व दोमीय की कलाकृतियाँ भी उनको पसन्द थी। चार्ल्स डिकन्स व जार्ज एलियट के गरीबों के जीवनसम्बन्धी उपन्यास व अमेरिकन लेखक स्टोव का प्रसिद्ध उपन्यास 'टॉम चाचा की कुटिया' उनके प्रिय साहित्य मे से थे। वान गो कहते "यदि आप विकास चाहते हैं तो आपको जमीन की गहराई मे पहुँचना होगा"[29]। इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने गरीब कृषकों, मजदूरों, पीड़ित व

पतित लोगों के जीवन को चित्रण के लिये चुना व सत्य की खोज में उसका गहराई तक उत्खनन किया।

आटवर्प की कलासंस्था में कुछ समय तक वान गो ने अध्ययन किया जिस समय उनकी आयु 31 साल की थी। वहां वे इतनी पर्याप्त मात्रा में रंग लेते कि रंग मिश्रण-फलक से नीचे बहता। गुस्से में उनके अध्यापक ने उनको नाम पूछा तब उन्होने आवेश मे जवाब दिया "मैं हूं डच आदमी वान गो"। तब उनको फौरन रंगांकन कक्षा से रेखांकन कक्षा में हटा दिया गया। आटवर्प में ही वान गो ने रुबेन्स की कलाकृतियाँ व जापानी छापचित्र देखे व उनसे प्रभावित होकर वे गहरे रंगो की मात्रा कम करके हलके रंगों का अधिक प्रयोग करने लगे। होकुसाई की 'फूजियामा के सौ दृश्य' चित्रमालिका के अध्ययन से वान गो की रेखा को अभिव्यक्ति के अनुकूल लचीलापन व निजी बल प्राप्त हुए। आंटवर्प में 3 महिनो तक अध्ययन करने के पश्चात् वे पॅरिस में थियो के साथ रहने गये व कोमों की चित्रशाला में भरती हुए जहाँ उनका तुलुज लोत्रेक व एमिल बर्नार से परिचय हुआ। यहाँ उनको दैलाक्रा व प्रभाववादियों के चित्र देखने को मिले। गुपिल की कलावीथिका में वे गोगँ से परिचित हुए व वहीं उनको देगा के चित्र देखने को मिले जो उनको पसन्द नहीं आये। पेर तांग्वी की दुकान का चित्रसंग्रह उनको बहुत पसन्द आया जिसमें पिसारो, सेजान, रेंग्वार्, सिसली, सोरा, गियामें व सिन्याक के चित्र थे। थियो से प्रेम व प्रोत्साहन पाकर वे पॅरिस के कलापूर्ण वातावरण में नये जोश से चित्रण करने लगे। विन्सेंट की कला की महानता को अभी तक किसी को पहचान भी नहीं थी और थियो के सम्मुख एक ही समस्या थी कि किसी तरह विन्सेंट को, जो अब 31 साल के थे व आदर्शवादी किन्तु दुनिया की व्यवहारनीति से अनजान थे, अर्थार्जन का कोई ऐसा मार्ग बतलाया जाय जिससे वे अपनी रुचि के अनुकूल कार्य कर सकें व उनकी भौतिक एवं आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होकर वे सुख व शान्ति से जीयें। विन्सेंट के कला द्वारा मान्यता व अर्थार्जन के लिये किये अथक किन्तु विफल प्रयत्न व उसमें थियो से की गयी सहानुभूतिपूर्ण सहायता की दर्दभरी कहानी का अब प्रारम्भ हो गया। इस कहानी के आधार पर उपन्यास लिखे गये है किन्तु विन्सेंट के थियो को आत्मीयता से लिखे पत्रों का संग्रह सबसे चित्तवेधक व उद्‌बोधक है व उसमें विन्सेंट ने अपने कला सम्बन्धी विचारों को व जीवन के ध्येय को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है जो गुण उनकी बातों में शायद ही देखने को मिलते। ये पत्र विन्सेंट की आंतरिक तड़प व थियो के असीम प्रेम व सहनशीलता के साक्ष्य हैं।

वान गो का प्रभाववादी चित्रकारों से परिचय होने पर वे उनकी चर्चाओं मे भाग लेने लगे। अब उन्होंने कोमों की चित्रशाला को छोड दिया, प्रभाववादी चित्रकारों से सम्पर्क बढा कर उनकी अंकनपद्धति को आत्मसात् किया एवं पॅरिस के संग्रहालयों में जाकर प्रसिद्ध चित्रकारों की कलाकृतियों का अध्ययन किया। वान गो की रंगसंगति में बड़ा परिवर्तन हुआ व उनके डच-काल के भूरे, काले व गहरे रंगो

का स्थान प्रभाववादी विशुद्ध रंगों ने ले लिया। पिसारो ने वान गो प्रभाववाद एवं नवप्रभाववाद के सिद्धान्तों व अंकनपद्धतियों का ज्ञान कराया। सोरा की अंकनपद्धति ने उनको विशेष रूप से आकृष्ट किया व उन्होंने सोरा के प्रसिद्ध चित्र 'ग्राद जात द्वीप' का सूक्ष्म अध्ययन किया। गोग्वँ व तुलुज लोत्रेक से उनका कलाविषयक विचारों का आदानप्रदान हुआ। लूव्र संग्रहालय जाकर उन्होंने देलाक्रा की रंगांकन-पद्धति व स्वच्छंद-तूलिका-संचालन का निरीक्षण किया। पैरिस के मार्गों व मोमार्त्र, शातो व बुगिवाल आदि उपनगरों के दृश्यों को उन्होंने पूर्ण रूप से नवीन अंकन-पद्धति में चित्रित किया। पैरिस में वान गो की प्रतिभा रंग, रूप, सतह आदि सौंदर्यात्मक गुणों के प्रति जागरूक हुई जो अबतक चित्रविषय की आत्मिक अभिव्यक्ति पर मुख्य रूप से केंद्रित थी। पैरिस के जलपानगृहों के लाल, पीले व नीले रंगों का विशुद्ध प्रयोग करके उन्होंने बड़े ही प्रभावपूर्ण चित्र बनाये जो वहाँ के रंगीले जीवन के परिचायक हैं। इन चित्रों के अलावा 'पैरिस काल' के चित्रों में वान गो के 'पीला वस्तुचित्र' व 'पेर तान्वी' का व्यक्तिचित्र' बहुत प्रसिद्ध है। पेर तान्वी चित्रों के व्यापारी थे व बहुत सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने प्रभाववादियों के चित्रों को अपनी दूकान में प्रदर्शित करके बेचने के प्रयत्न किये। उनकी दूकान में प्रभाववादियों की विचारगोष्ठी व चर्चाएँ हुआ करती व उनमें पेर तान्वी भी भाग लेते। वे रंग, तूलिका वगैरह कलाकारों को आवश्यक सामान बेचते व निर्धन चित्रकारों को चित्र के बदले में सामान दिया करते जिससे सोने, सिसली व वान गो जैसे गरजमन्द चित्रकारों को बहुत सहायता मिली। सेजान व वान गो की कलाकृतियों का चयन उनकी दूरदर्शी कलामर्मज्ञता का प्रमाण है। 'पेर तान्वी के व्यक्तिचित्र' में चित्रविषय के व्यक्तित्व एवं चित्रकार के व्यक्तित्व दोनों का समन्वित दर्शन है। इस व्यक्तिचित्र में चमकीले रंगों का प्रयोग है व प्रभाववादियों के समान छोटी-छोटी लकीरों में रंगांकन किया है। चित्र की पृष्ठभूमि जापानी छापचित्रों से अलंकृत है जिससे विदित होता है कि वान गो जापानी छापचित्रों से कितने प्रभावित थे। वान गो ने हिरोशिगे के कुछ प्रकृतिचित्रों की अनुकृतियाँ भी की थी। वान गो के व्यक्तिचित्रों में व्यक्ति के बाह्य रूप की अपेक्षा चित्रकार की चित्रविषय के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति को मुख्य स्थान था; अतः अंकनपद्धति व रंगसंगति प्रभाववादी होते हुए 'पेर तान्वी का व्यक्तिचित्र' दर्शन में प्रभाववादी व्यक्तिचित्रों से पूर्ण भिन्न प्रतीत होता है। वान गो के 'पैरिस काल' के अन्य चित्रों में उनकी अभिव्यक्ति इतनी उत्कंठित नहीं है जितनी कि इस चित्र में।

प्रभाववाद में अपनी कलानिर्मिति के लिए साधन के रूप में जो कुछ उपयुक्त था वह सब वान गो आत्मसात् कर चुके थे व वान गो ने देखा कि अब पैरिस में अधिक काल तक रहने में कोई मतलब नहीं था; उनके चित्र बिकते नहीं थे व थियो पर भार मात्र होकर रहना उनको असह्य हो गया था। इसके अलावा जैसे रंगीले शहर का वातावरण उनकी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं

था। उन्होंने सेजान की तरह कहीं फ्रांस के दक्षिणी भाग में जाकर कलानिर्मिति करने का सकल्प किया। 1888 मे एक दिन जब पिस्रो काम से वापस आये तब उन्होने देखा कि विन्सेंट ने दीवार पर अपने चित्रो को सुव्यवस्थित लगाया था व कमरे की सफाई करके मेज पर चित्र, विदाईपत्र व फूल रख दिये थे।

फ्रान्स के दक्षिणी भाग प्रोवान्स मे आर्ल नाम के गांव को वान गो ने कलानिर्मिति के लिये अनुकूल देखा व निवासस्थान के रूप मे निश्चित किया। यहां उनकी प्रतिभा बाह्य बन्धनो से मुक्त हो गयी व आयु के उर्वरित दो साल में उन्होंने ध्येयपूर्ति मे एकलक्ष्य होकर उन्मुक्त अवस्था मे जो कलासर्जन किया उससे उसका नाम कला के इतिहास में अमर हो गया। आर्ल में उनकी रंगांकनपद्धति में अनोखा सामर्थ्य आ गया व वे रंगों का विस्तृत क्षेत्रो में प्रयोग करने लगे जिससे उनके चित्रांतर्गत आकारों में स्पष्टता आ गयी। पैरिस-काल से भिन्न रंगसंगति का उन्होंने प्रयोग शुरू किया। वे चित्र की भावना को पोषक रंगों को चुनते व उद्देश्य के अनुसार रंगसंगति में परिवर्तन करते। अंकनपद्धति मे इस तरह कायापलट होते ही उनकी कला से प्रभाववाद समाप्त हो गया एवं रंगो की विशुद्धता के गुणो को साथ लेकर वान गो की कला दोमीय की कला के निकट आ गयी।

आर्ल मे जलपानगृह के ऊपर की मन्जिल का एक कमरा वान गो ने किराये पर लिया। इसमें एक पलंग व दो कुर्सियां थीं। वान गो ने दोनों कुर्सियों के दो चित्र बनाकर उनमे से एक को शीर्षक दिया है 'गोग्वं की कुर्सी' जिसमे उनके गोग्वं के प्रति आदरभाव व प्रगाढ़ स्नेह का प्रमाण मिलता है।

जिस जमीन व सूर्य के प्यार में बेचैन होकर वे फ्रान्स के दक्षिणी भाग मे आये थे उस जमीन को सूर्य के प्रखर प्रकाश मे चित्रित करने का कार्य उन्होंने तन्मयता से शुरू किया। वे अपना अस्तित्व भूल गये; वे दिनभर धूप में तपते व लगातार चित्र बनाते। जिस विनाशकारी आत्मसमर्पणवृत्ति से वान गो ने कलानिर्मित की उसके पीछे मनोवैज्ञानिक तत्त्व थे व उसके परिणामस्वरूप वे अन्त में पागल हुए। चित्रकार क्ले ने इस वृत्ति को 'वान गो की शोकान्तिका वृत्ति'[30] नाम दिया था। वान गो ने एक प्रकार से सांसारिक दुःखो को आवाहन किया था "मुझे मेरी कला द्वारा मेरी आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। अब मेरे शरीर का कुछ भी हो मुझे उसकी चिन्ता नही है"। वान गो की कलानिर्मिति के अन्तर्गत उन्माद की अग्नि थी जो उनकी अस्तित्ववादी[31] जीवनप्रेरणा को जला रही थी। बचे हुए दो साल की अवधि में वान गो ने अगणित चित्र बनाये जैसा कि उनकी अन्तरात्मा को भविष्य का पहले ही ज्ञान हो चुका था। वान गो का जीवन एक दुःखी जीवन की आदर्श कहानी थी जो आधुनिक कलाकारो को बराबर प्रेरणा देती रही व जिसमे किर्शनर, नोल्ड, कोकोश्का आदि अभिव्यंजनावादी कलाकारों को पथप्रदर्शन प्राप्त हुआ।

वान गो ने आर्ल के हरेभरे खेतों; सार्वजनिक बगीचों, वाटिकाओं, पुलों, रास्तो व चौराहो के दृश्यो को चित्रित किया। टोकरी मे रखे फलों व पात्र में सजाये फूलों के वस्तुचित्र बनाये। पोस्टमैन रूलें व उनके परिवार के सदस्यों, किसानो व आर्ल के परिचित आदमियो के व्यक्तिचित्र बनाये। समीपवर्ती गांव में जाकर सागर-तट एव नावों के चित्र बनाये। जिस मकान में वे रहते थे उसको व नीचे के जलपानगृह के अतर्गत दृश्य को भी उन्होने चित्रित किया। दिन-रात परिश्रम करके उन्होने सैकड़ों चित्र बनाये। शारीरिक थकान आने पर भी वे यत्रवत् कार्य करते जिससे उनके कुछ चित्र आलकारिक बन गये हैं।

वान गो ने कमरे को सूर्यमुखी के फूलों के चित्रों से सजाया व वहा चित्रकारों के मित्रमण्डल की प्रस्थापना करने का विचार किया। प्राचीन क्रिश्चन लोगो की सहजीवन की कल्पना उनके मन में बारबार आती व वे सोचते कि वहा समाजसेवा के ध्येय से प्रेरित चित्रकार एकत्रित होकर चित्र बनायेंगे व उनको उचित मूल्य मे बेचेंगे जिससे सामान्य लोग भी उनको खरीद कर अपने मकानो की शोभा बढा सकेंगे। वान गो की कला व कार्य के पीछे कोई न कोई भावनात्मक उद्देश्य सदैव प्रेरणा रूप रहता; विशुद्ध कलासाधना का वे कभी विश्वास ही नही करते। बस वे चराचर सृष्टि से प्यार करना जानते व बाकी सब विचार उनके लिये गौण थे।

रग से सुखद ऐंद्रिक अनुभव प्राप्त करने से पहले उसका जन्म प्रतीक रूप मे वान गो के मस्तिष्क मे होता। वान गो ने रंगो के प्रतीकात्मक महत्त्व को जाना व देखा कि प्रत्येक रग से किसी विशिष्ट भावना का उद्दीपन होता है जैसे कि नीले से शान्ति, लाल मे क्रोध, पीले से स्नेह वगैरह। वे भावना के अनुकूल रगसंगति का प्रयोग करते; यह एक प्रकार से उनका रंगों का प्रतीकवाद था। 'मदिरागृह के अतर्गत दृश्य'[32] के बारे में उन्होने लिखा है "लाल व हरे रग से मैंने चित्र मे मानवीय वासना को जागृत करने का प्रयत्न किया है। मैं व्यक्त करना चाहता हूँ कि मदिरागृह ऐसा स्थान है जहां आदमी स्वयं को भूल जाता है, गुनाह करता है व अपना सर्वनाश कर सकता है"। गुलाबी व हल्के रगों से युक्त उनके चित्र 'शयन-कक्ष'[33] के बारे मे उन्होने कहा था "यहा रगों का कार्य है। सादे व प्रसन्न रंगो के प्रयोग से विश्राम व निद्रा के पोषक वातावरण का निर्माण करना है"। किन्तु उनकी रगसगति का ध्येय रोमासवादी नहीं था; अपनी रगसंगति के उद्देश्य के बारे में उन्होने लिखा है "मेरी रगसगति का उद्देश्य शाति, रोचकता व सत्य के भाव को निर्माण करना है व भावनाओं के साथ..........सगीत के समान शातिप्रद"। चित्रकला में रंगो की भाषा को समझने की आवश्यकता पर वान गो ने बल दिया। 'ओजेन बॉश'[34] के व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि के सदर्भ मे उन्होने कहा "पृष्ठभूमि को मैं चमकीले नीले रंग से–जिसमे आकाश के अनंतत्त्व का भास है–अंकित करता हूँ जिससे व्यक्ति का चेहरा ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि आसमान में सितारा"। मानव-जाति के लिये सूर्य के महत्त्व को रूपायित करने के उद्देश्य से वे सूर्य को पीले रंग

से चित्रित करते क्योंकि वे जानते थे कि पीले रंग में वही पावित्र्य व चैतन्य की भावना है जो सूर्य में है। पीले रंग को प्राधान्य देकर बनाये उनके 'सूर्यमुखी के फूल' चित्रो मे पारलौकिक तेज व पावित्र्य है जिनमे वे साधारण वस्तुचित्रों से भिन्न व श्रेष्ठ दिखायी देते है। वान गो स्वयं कहते "मेरे सूर्यमुखी के फूलों के चित्रों पर गिरजाघरो के कांचचित्रों का प्रभाव है"।

वान गो के आत्मचित्रो व व्यक्तिचित्रो से वान गो की सहृदयता व चित्र-विषय के प्रति आत्मीयता का परिचय होता है। उन्होंने अपनी व्यक्तिचित्रण की आकांक्षा के बारे में लिखा है "महात्माओं के ऐसे चित्र बनाने की मेरी मनीषा है जिनमें चित्रविषय आधुनिक हो किन्तु दर्शन में प्राचीन सन्तों की प्रतिमाओं के समान पवित्र व सहृदय"। किन्तु वे निजी प्रबल भावनोद्वेग के सामने विवश थे व उनको सर्वत्र दुःख, कष्ट व अगतिकता का साम्राज्य फैला हुआ दिखायी देता एव मुख्यतः इन्ही भावनाओं का दर्शन हमे उनके व्यक्तिचित्रों में होता है। उनके आत्मचित्र उनकी दयालु किन्तु किंकर्तव्यमूढ मानसिक अवस्था के दर्पण हैं एवं व्यक्तिचित्रों के मानव निष्कपट, परिश्रमी किन्तु दुःखी व अकेले हैं। बचपन से ही वे फूलों से सजीव प्राणियों के समान प्यार करते और उन्होने फूलों के चित्र भी उतनी ही आत्मीयता से बनाये है जितने कि व्यक्तिचित्र।

उनके चित्रों का केवल सदेशात्मक महत्व नही है; उनमें हमे सौंदर्यात्मक गुणो का भी दर्शन होता है। अवकाश व स्थानांतर के परिणाम को अंकित करने के लिये वे जापानी कला के समान स्वाभाविक संयोजन करके वस्तुओं का समुचित स्थापन करते। लयबद्ध रेखाओ से उनके चित्रों को गतित्व प्राप्त होता। उनकी पसन्द के चित्रो में रेम्ब्राट के 'लाजारस का उत्थान'[35], देलाक्रा के 'दयालु सेमेरिटन', दोमीय के 'शराबी' व मिले के 'बीज बोनेवाला' ये चित्र थे जो गतिमान रेखाओं से सचेत हैं। वस्तु की आकार-विशेषताओ को स्पष्टता देने के हेतु वे ज्योतो की तरह अनावश्यक बारीकियो को छोड़ देते व जापानी कला का अनुकरण करके आकारो को बाह्य रेखा से अंकित करके सरलीकृत रूप देते। रंगांकन के समान उनका रेखांकन भी भावदर्शी व सजीव है। जहां आवश्यक हो वहा गतिमान लयबद्ध रेखाओं का प्रयोग है—जैसे कि उनके चित्र 'सरोवृक्षों का मार्ग'[36] मे। 'आोजेन आोंग', 'नट' मार्मी रूलें'[37] आदि व्यक्तिचित्रो मे बाह्यरेखाओं को ऐंठन देकर उन्होंने चित्रित व्यक्ति की आतरिक स्वभाव-विशेषता का दर्शन कराया है। उनका ऐंठनदार रेखांकन अभिव्यंजनावादी कला का प्रारम्भिक चरण था। बाह्य रेखा के अलावा छोटी-छोटी लकीरो में रंगांकन करके वे पूरे चित्रक्षेत्र में गतित्व डालते। वे चित्रकला को संगीत के समान मानते और इस समानता के पारस्परिक सम्बन्धों को ज्ञान करने के हेतु कुछ समय तक उन्होंने एक पियानो-वादक से संगीत के पाठ लिये। उनके चित्रो की रंगसंगति मे रंगबिरंगे पक्षियो, तितलियों व फूलो की मनोहारिता है।

वान गो के आयोजित 'चित्रकार-सदन'[33] में सम्मिलित होने का निमन्त्रण केवल गोग्वँ ने स्वीकारा। गोग्वँ उस समय ब्रितनी में रहते थे, व उनकी आर्थिक परिस्थिति वान गो से भी गयी बीती थी। गोग्वँ के स्वागत के लिये वान गो ने मकान को अच्छे ढग से सजाया। गोग्वँ के आने पर दोनो के कलासम्बन्धी काफी वादविवाद होते जिनमें गोग्वँ अधिकारवाणी से प्रभुत्व जमाते एवं इसका संवेदनशील वान गो के मस्तिष्क पर विकृत परिणाम होता। गोग्वँ वान गो के कलात्मक दृष्टिकोण एव समस्याओं को भलीभांति जानते थे और उनको आवेशपूर्ण किन्तु कल्पनाहीन चित्रण करने से परावृत्त होने की सलाह देते। गोग्वँ की बुद्धिमता पर वान गो विश्वास करते थे एव उनका बहुत आदर भी करते थे किन्तु अपनी भावनाओं की उमंगों को रोक कर गोग्वँ की सलाह से चलना उनके लिए असम्भव था। वे वस्तु के अन्तर्गत छिपी प्राकृतिक शक्तियों का—जिनसे जड वस्तुए भी सचेत व स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिये हुए प्रतीत होती है—साक्षात्कार करना चाहते थे। वस्तु के अन्तर्गत चैतन्य को अनुभव करने के लिये आवश्यक था कि वस्तु को प्रत्यक्ष सम्मुख देखकर उसका आत्मीयता से निरीक्षण किया जाये और उसके साथ भावनात्मक तादात्म्य रखा जाये। भौतिक सृष्टि एक प्रकार से दर्पण है जिसमें देखे बिना आत्मा का दर्शन नही होता; अतः वान गो के लिये जड़ सृष्टि की सहायता आवश्यक थी जिसके जरिये वे चितशक्ति को अनुभव कर सकते। वान गो की इस मानसिक अवस्था को गोग्वँ समझ नही पाये और वे उनको प्रत्यक्ष देख कर चित्रण करने से बारबार रोकने लगे। गोग्वँ की बुद्धिमत्ता पर अत्यन्त श्रद्धा होने से वान गो उनकी सलाह मानते किन्तु उसको कार्यान्वित करने में असफल रहते। अचल वस्तुओं की चिन्मयता पर निष्ठा रख के उनकी आत्मिकता पर कला मे बल देने की वान गो की कल्पना का बाद मे इटालियन 'आत्मतत्त्वीय कला' व 'अतियथार्थवाद' मे अधिक स्पष्टता से प्रयोग किया गया।

गोग्वँ व वान गो के बीच का तनाव बढता गया। एक बार वान गो ने गोग्वँ के ऊपर कांच का प्याला फेंक दिया व दूसरी बार उस्तरा ले कर उनके पीछे भागे। अन्त मे किसी रहस्यमय घटना के फलस्वरूप वान गो ने अपना एक कान काट कर कागज में लपेट लिया व वेश्यागृह के दरवाजे पर छोड़ आये। गोग्वँ वहीं से चले गये और वान गो को चिकित्सालय में भरती करना पड़ा। थिओ उनसे मिलने आये व कुछ दिनो बाद उनकी चिकित्सालय से मुक्ति हुई। वान गो के इस आचरण से आर्ल के लोग उनको पागल समझ कर परेशान करने लगे और फिर उनके दिमाग में विकृति पैदा होकर उनको सें रेमी के पागलखाने मे भरती होना पड़ा। आर्ल के चिकित्सालय में उन्होने अन्तर्भागों के दृश्यो, निवासियों, बगीचो एव स्वयं के कई प्रभावी चित्र बनाये। सें रेमी मे वे पुनश्च कुछ मानसिक शांति को अनुभव कर रहे थे और वहा उन्होने बहुत चित्र बनाये जिनमें उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतिया भी है। वहा के एक साल के निवास मे उनको बीचबीच में उन्माद के झटके

भाते एवं उस साल के उनके चित्रों का अंकन व तूलिका संचालन इतना सावेश और वृत्ताकार रेखाओं से गतिपूर्ण है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र उन्होंने उन्मत्तावस्था में बनाये हों। इन चित्रों में से 'घाटी', 'तारों भरी रात'[39] व 'सरो-वृक्षों का मार्ग' प्रसिद्ध है। चित्रों में सारी सृष्टि प्रलयग्रस्त सी प्रतीत होती है। वहां एक बार उन्मत्त होकर वान गो रंग पी गये।

उस वर्ष के अन्त के करीब थिम्रो ने उनको कुछ उत्साहदायक खबरें भेजी कि वान गो का एक चित्र बिक गया और थिम्रो के लड़का पैदा हुआ। वान गो का यह चित्र जो बिक गया था वह भी थिम्रो ने वान गो को उत्साहित करने हेतु अपने मित्र से खरीदवाया था। अब थिम्रो की सलाह से वान गो ओवर में डा. गाशे की देखभाल में रहने गये। गाशे प्रभाववादियों के मित्र व उनके चित्रों के रसिक संग्राहक थे और सेजान का चित्र पहलेपहल उन्होंने ही खरीदा था। गाशे के स्नेहपूर्ण व्यवहार से वान गो में उत्साह पैदा हुआ और उन्होंने फिर से चित्रण शुरू किया, और गाशे के व्यक्तिचित्र, नदी किनारों व खेतों के दृश्यचित्र बनाये। किन्तु वहां भी उनको बारबार उन्माद के झटके आने लगे। एक रोज बाहर दृश्यचित्र बनाते समय वान गो ने अपने ऊपर गोली चलायी। थिम्रो तुरन्त उनसे मिलने आये। दो रोज बाद इस महान् कलाकार की आयु के 37वें साल में मृत्यु हुई। मरने से पहले उनकी थिम्रो से बहुत बातें हुई जब उन्होंने कहा "मानवीय दुःख कभी मिट नहीं सकता"[40]। अन्तिम पत्र उन्होंने लिखा था "मेरे कार्य की सिद्धि में मैंने अपनी जान खतरे में डाली है और मेरे मस्तिष्क का संतुलन आधा नष्ट हो चुका है"। छः महिने बाद उनके प्रिय भाई थिम्रो का भी देहावसान हुआ। दोनों भाइयों के शव ओवर में पासपास दफनाए हैं और दफनभूमि के चारों ओर वान गो के प्रिय सूर्य-मुखी फूल लगाये है।

वान गो की कला में मौलिक गुण होते हुए उनमें घमण्ड नहीं था। वे बहुत ही विनयशील थे और जब 1890 में प्रतीकवाद के पुरस्कर्ता ओरिय ने वान गो की प्रशंसा में लेख प्रकाशित किया तब वान गो ने विनम्रता से उनको पत्र में निवेदन किया कि जिस कार्य की सराहना में उन्होंने वान गो की प्रशंसा की है उसका संपूर्ण श्रेय गोगँ को ही दिया जाना चाहिये। 20 साल की अवधि में वान गो ने 700 से अधिक रंगीन चित्र व 1000 से अधिक रेखाचित्र बनाये किन्तु जीवनभर में केवल एक दृश्यचित्र व व्यक्तिचित्र व करीब बीस रेखाचित्र बेच सके जिसमें उनको कुल लगभग पांच सौ रुपयों की प्राप्ति हुई। मृत्यु के बीस साल पश्चात् उनका सूर्यमुखी के फूलों का चित्र लगभग तीन लाख रुपयों में बिका।

वान गो के जीवन एवं कला में द्वन्द्वात्मक प्रेरणाएं कार्यान्वित थी—एक ओर शारीरिक कष्ट व मानसिक असन्तुलन और दूसरी ओर चराचर सृष्टि का प्रेम व अज्ञात की खोज। वान गो कहते "चित्रकला में सनातनता का दर्शन है"।

दिया। एकांतप्रिय होने से वे फ्रान्स के उत्तरी भाग में शहर से दूर रहे जिसके संदर्भ में उन्होंने लिखा है "मैं देहात में रहता हूं। एकांत में कितने विशाल भाव हैं। मैं कृतज्ञ हूं कि ऐसे प्राकृतिक स्थानों में जीवन के आंतरिक मूल्यों को मैं पहचानता हूं व प्रगाढ़ शांति को अनुभव कर लेता हूं"। वे अपने को किसान कहलवाना पसन्द करते उन्होंने कार्नेजी पुरस्कार के अतिरिक्त कई अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये। चित्रकला के साथ उन्होंने काष्ठखुदाई, लिथोग्राफ्स, एचिंग, चीनी मिट्टी के बरतन के अलंकरण आदि कलाकार्य भी किया।

यद्यपि व्लामेंक की शैली में कुछ परिवर्तन होते गये, उनके फाबकालीन जोश में विशेष अंतर नहीं पड़ा व वे अन्त तक फाव चित्रकार कहलाये। उनकी कला की इस अपरिवर्तनशीलता की आलोचना होने पर उन्होंने लिखा "यह एक तरह से हमेशा वाग्नेर के समान संगीतरचना करने के कारण वाग्नेर की या हमेशा बीटोवेन के समान संगीत रचना करने के कारण बीटोवेन की निन्दा करने के समान है"।[21]

आन्द्रे देरें (1880–1954)

आन्द्रे देरें का जन्म शातो में हुआ। उनके पिता की दुकान थी व वे चाहते कि आन्द्रे इंजीनियर बने, किन्तु आन्द्रे की चित्रकला के प्रति रुचि को देख कर उनको अकादमी कारियर में भरती कराया गया जहाँ मातिस भी पढ़ते थे। 1900 में उनका व्लामेंक से आकस्मिक परिचय हुआ और उनमें बरसों तक घनिष्ठ मित्रता रही यद्यपि दोनों के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर था। व्लामेंक पूर्णतया अपने विचार से चलते जबकि देरें जहां कहीं कुछ सीखने को मिलता बड़ी उत्सुकता से सीख लेते। देरें बहुत ही विचिकित्सावृत्ति के व सदेह होते ही चित्रण को पुनः प्रारम्भ कर लेते। उम्र के 18वें साल तक उन्होंने बहुत से प्रसिद्ध चित्रों की प्रतिकृतियों का संकलन किया। वे कहते "अज्ञानी रहने में क्या लाभ है?"। उनके ज्ञानपिपासु स्वभाव के संदर्भ में रॉबर्ट रे ने लिखा है "वे दुनिया में सब कुछ जानना चाहते व स्वयं को भी जानना चाहते। वे अपनी कृतियों का निरहंकार बुद्धि से निरीक्षण करते; उनके बारे में दूसरों के विचारों को सुधार करने के उद्देश्य से उत्सुकता से सुनते व कठोरता से आत्मपरीक्षण करते। अपनी कमजोरियों को ढूंढ निकालने में ही उनको संतोष मिलता"। देरें भी अपने स्वभावदोष को भलीभांति जानते व कहते "बहुत अधिक ज्ञान कला के लिए सबसे अधिक हानिकारक है"।[22]

फाव काल में उन्होंने वान गॉ के प्रभाव में आकार चित्रण किया, किन्तु चमकीले रंगों के विरोध को, बीच-बीच हलकी छटाओं को अंकित करके, वे सौम्य करते। 1905 में वोलार ने उनके सभी चित्र खरीदे और उनको लंदन व टेम्स नदी के दृश्यों को चित्रित करने को कहा। ये चित्र देरें के फाव काल के चित्रों में सबसे सुन्दर बन गये हैं व्लामेंक की लंदन में देरें के चित्रों में ठण्डापन है व रंगसंगतियां अधिक आकर्षक व प्रसन्न हैं। लंदन से वापस आते ही देरें मोमार्त्र के कलाकार

मंडल में शामिल हुए । घनवादी चित्रकार पिकासो, ब्राक, ग्लेज व मेंजिजे एवं कलासमीक्षक अपोलिनेर व मावस याकोव से उनका परिचय हुआ । अब उनका व्लामैंक से सपर्क कम हो गया । पिकासो व ब्राक से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध अन्त तक बना रहा ।

1907 मे वे सरलीकृत आकारों में चित्रण करने लगे । इस काल में वे अफ्रीकन मूर्तिकला के प्रभाव में आ गये जिसका उनकी इस काल में बनायी मूर्तियाँ उदाहरण हैं । 1908 में उनका फाववादी दृष्टिकोण पूर्ण रूप से समाप्त हो गया । उन्होने चटकीले रंगों को त्यागा एवं सेजान व घनवाद से प्रभावित होकर, घनवादी शैली से मिलतेजुलते चित्र वे कई साल तक बनाते रहे यद्यपि उनको कट्टर घनवादी चित्रकारों मे समाविष्ट नही किया जा सकता । उनके प्रकृति-चित्रों मे सेजान का सामर्थ्य है किन्तु वे अधिक सरलीकृत है । उनके व्यक्तिचित्र व वस्तुचित्र घनवादी होते हुए उनमे सादृश्य का विचार है । देरें घनवाद से पूर्ण संतुष्ट नही थे किंतु वे अपने चित्रसंयोजन को आकारसामर्थ्य प्रदान करना चाहते—जिसका फावकला मे अभाव था—और उसी उद्देश्य से वे घनवाद का अध्ययन करने को उद्यत हुए । घनवाद के प्रभाव में आकर उन्होंने मानवाकृति की नैसर्गिक विशेषताओं की उपेक्षा नही की, बल्कि 1911 के बाद सिएनीज चित्रकला का अध्ययन करके अपनी कला को वस्तुनिष्ठता की ओर मोड़ दिया । फाववाद को वे केवल अपनी जवानी का जोश मानते । 1914 के बाद उन्होने घनवादी शैली के चित्र नही बनाये । घनवादी शैली के चित्रों मे से 'अंतिम भोजन',[23] 'दो बहनें', 'शराबी' व 'शनिवार' ये चित्र प्रसिद्ध हैं ।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उन्होने स्वतन्त्र शास्त्रशुद्ध शैली का विकास करके अपने सबसे लोकप्रिय चित्रो का निर्माण किया । इस विकसित शैली में कभी देलाक्रा का रोमांसवाद एव कभी कुर्बे का रोमानी यथार्थवादी प्रतीत होते है; मानवाकृतियो में घनवाद की कठोरता को एवं प्रकृतिचित्रण में सेजान के प्रभाव की अस्पष्ट झलक है । 1920 तक पैरिस के युवा कलाकार उनका पिकासो से अधिक सम्मान करते थे व उनसे मिलकर कलासबधी मार्गदर्शन लेते । 1928 मे उनको 'पिटसबर्ग इन्टरनेशनल' प्रदर्शनी में कार्नेजी पुरस्कार मिला । 1945 मे उन्होंने राबेले की पुस्तक 'पाताग्रुएल'[24] के लिये काष्ठखुदाई से छापचित्र बनाये । 1954 में मोटर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई ।

रौल द्यु फि (1877–1953)

द्यु फि को विशेष प्रतिभासंपन्न चित्रकार नही मान सकते किन्तु उनकी व्यक्तिगत कलाशैली इतनी आकर्षक व सुबोध है कि उसमें नवीनता होते हुए वह शीघ्र ही लोकप्रिय हुई । उनकी विकसित शैली पूर्णतया रेखात्मक है और उसमें वातो की कला का गतित्व है ।

रौल द्यूफि का जन्म ल आव्र में हुआ। उम्र के 15 वें साल में उन्होंने स्थानीय 'एकोल द बोजार' की सायकालीन कक्षाओं में कला का अध्ययन प्रारम्भ किया। वहाँ के निर्देशक शार्ल लुलिय, गुस्ताव मोरो के समान, कुशल अध्यापक व अँग्र के प्रशंसक थे। द्यूफि के पिता व दोनों भाई संगीत में प्रवीण थे व इस संगीतमय वातावरण में वे स्वयं शौकिया संगीतकार बने। ल आव्र के प्राकृतिक सागर-सौंदर्य का व घर के संगीतमय वातावरण का उनकी कला पर अमिट प्रभाव पड़ा एवं उन्होंने सागरी दृश्यों व संगीत संबंधित विषयों को लेकर आजीवन अनरूप आत्मीयतापूर्ण कृतियां बनायीं। घर की आर्थिक स्थिति चिंताजनक होने से बचपन में ही उनको कॉफी के व्यापारी की दूकान में नौकरी करनी पड़ी। बाहर से आया हुआ सामान लाने के लिये उनको बंदरगाह जाना पड़ता, जहाँ वे समुद्र के किनारे पर घण्टों बिताते व मालिक के दिये हुए बिलों पर रेखाचित्र बनाते।

1900 में छात्रवृत्ति प्राप्त करके वे पॅरिस के 'एकोल द बोजार' में भरती हुए जहाँ चित्रकार बोन्ना उनके अध्यापक थे। पॅरिस में रहते हुए वे लुव्र संग्रहालय देखने को शायद ही कभी गये होंगे। शुरू में ही व प्रभाववाद की ओर आकृष्ट हुए; उनको मोने, पिसारो व रेन्वार् के चित्र बहुत पसन्द थे। 1904 तक उन्होंने प्रभाववादी पद्धति के प्राकृतिक चित्र बनाये। 1905 के सलों द अँदेपादा में उन्होंने मातिस का चित्र 'विलास' देखा जिससे उनको एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। इस चित्र के प्रभाव के बारे में उन्होंने लिखा है "जब मैंने यह चित्र देखा तब मेरा प्रभाववाद की ओर आकर्षण समाप्त हो गया; मैं रंग व रेखा की सहायता से निर्मित, कल्पना के सर्जन चमत्कार के बारे में चिंतन करने लगा। मुझे चित्रकला-संबंधी नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ"। उन्होंने मार्के के साथ फाव ढंग का प्रकृति-चित्रण करना आरम्भ किया। उत्साही प्रसन्नचित व विनोदप्रिय द्यूफि की कला को फाववाद पोषक सिद्ध हुआ। आरम्भ में वे कुछ मोटी रेखा से आकारों को बाँध लेते थे व उनके चित्रों के प्रसन्न चित्ताग्राही विषयप्रतिपादन के सामने अन्य फाव चित्रकारों के चित्र केवल रंगों का उत्पात या रंगांकन का अभ्यास जैसे प्रतीत होते। उनकी रंगसंगति भी प्रशांत व विविधतापूर्ण थी। दो तीन साल तक फाव दृष्टिकोण के चित्र बनाने के पश्चात् वे सेजान से प्रभावित होकर चित्रण करने लगे। 1908 में लेस्ताक में,ब्राक के साथ बनाये प्रकृति-चित्र घनवादी शैली के हैं। अब उन्होंने चमकीले व शुद्ध फाव रंगों के स्थान पर ओकर्, धूसर प्रश-प्रशियनब्ल्यू व हलके रंगों का प्रयोग शुरू किया। इन घनवाद चित्रों से भी उनकी कला के यथार्थवादी रूप व आलंकारिक रेखांकन के स्वाभाविक गुण छिपे रहते व इन गुणों की वजह से ही उनसे अधिक काल तक घनवादी चित्रण नहीं हो सकता था। घनवादी चित्रण से वे स्वयं असंतुष्ट थे। उनके आरम्भ के प्रशंसकों ने भी नाराज होकर उनके चित्र खरीदना बन्द कर दिया था। अब उन्होंने अविलम्ब बाह्य प्रभावों से मुक्त होकर अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्र शैली का विकास किया जिसके

प्रमुख गुण हैं–गतिपूर्ण रेखात्मक ग्रालंकारित्व व यथार्थ विषयों का प्रसन्न व सुखद दर्शन।

प्रारम्भ से ही द्यु फि का जीवन के प्रति कृतज्ञ व आशावादी दृष्टिकोण था; अतः उनकी कला केवल रचनात्मक या वस्तुनिरपेक्ष नही बन सकती थी। उन्होने आसपास के जीवन से आनन्द व उत्साह के क्षणों को चुना एवं आत्मीयता से उनको रूपायित किया। उनके चित्रों के प्रमुख विषय हैः समुद्र किनारों पर एकत्रित हुए जनसमुदायों, भूमध्यसागरीय किनारों, सागर परिवेष्ठित जलपानगृहो, नावो व जहाजों के दृश्य एवं घुड़दौड़ के मैदानो, बगीचों व संगीत भवनों के भीतरी दृश्य। उनकी रंगसंगति सदैव विषयानुकूल, सौम्य व चित्ताकर्षक होती है। इन्ही कारणो से आधुनिक चित्रकारों में से उनकी कला भिन्न रुचियो के दर्शको को समान रूप से प्रसन्न कर सकती है। उनके संगीतसम्बन्धी विषयो पर बनाये चित्रो मे संगीतरचना के भावों का विचार करके उन्होने समुचित रंगसंगति व संयोजन का प्रयोग किया है जिसके 'नीला मोजार्ट', 'लाल वाद्यवृंद[25] आदि प्रसिद्ध उदाहरण है। 1911 मे अपोलिनेर की एक पुस्तक के लिये उन्होंने काष्ठखुदाई से छापचित्र बनाये। 1911 से 1932 तक उन्होने पुस्तकचित्रण, कपडे के अलकरण पर्दों के अलकरण, छापचित्र, नृत्यगृह व रंगमंच की साज-सजा वगैरह विविध कला कार्य किया। 1937 में उन्होने पैरिस की विश्वप्रदर्शनी के लिये 200' × 35' आकार का बड़ा चित्र बनाया। 1911 के बाद उन्होने अपनी मौलिक शैली में जलरंग, तैलरग व रेखाकन में जो चित्र बनाये वे योरप व अमेरिका में लोकप्रिय होकर काफी तादाद में बिके। उनकी 1953 मे मृत्यु हुई।

फाववाद के विशुद्ध रंगो से द्यु फि अन्त तक एकनिष्ठ रहे यद्यपि गतिपूर्ण रेखाओं द्वारा चित्रण करने की नयी पद्धति को उन्होंने अपनाया था। विशुद्ध रंगो के आकर्षण के सामने उन्होने वस्तु के निजी रग रूप को ओर विशेष ध्यान नही दिया। अपने सौंदर्यवादी ध्येय को निश्चित करने के पश्चात् उन्होंने कहा "जो वस्तुएं हमको दिखायी नही देतीं ऐसी वस्तुओं की सृष्टि का निर्माण मेरी कला का प्रधान उद्देश्य है"। वस्तु के नैसर्गिक रूप का निरीक्षण करके उसको सुन्दर बनाने का उन्होने प्रयास नही किया बल्कि स्वतन्त्र प्रतिभा से ऐसी नयी; सर्वांगसुन्दर व प्रसन्न चित्रसृष्टि का उन्होंने निर्माण किया कि जिस पर भिन्न रुचियों के दर्शक लुब्ध होते है। यही द्यु फि की कला की महानता है।

जार्ज रुग्रो (1871–1958)

द्यु फि के चित्र प्रसन्न, चित्ताकर्षक व भौतिकवादी हैं, जिसके विपरीत रुग्रो के चित्र धार्मिक हैं, व उनमे सासारिक दुःख अन्याय व भ्रष्टाचार का निषेध है। जार्ज रुग्रो का जन्म 1871 मे पैरिस मे हुआ व उनके नानाजी ने उनका पालन-पोषण किया। उनके नानाजी को कुर्बे, माने व दोमीय के चित्र बहुत पसद थे और छोटे जार्ज को भी वे उनके चित्रो को दिखाया करते। उम्र के 14 वें साल में

रंगीन काच-चित्रों का काम करने वाले हुर्श नाम के कलाकार के यहाँ रुप्रो नोसिखिया सहायक बने जहाँ वे पुराने कावचित्रों को सुधारने का काम करते। कला के अध्ययन के लिये वे 'एकोल द आर देकोरातिफ'26 की सायंकालीन कक्षा में भरती हुए। उम्र के 20 वें साल में पूरा समय, अध्ययन करने के हेतु वे नौकरी छोड़ कर 'एकोल द बोजार' में प्रविष्ट हुए जहाँ उनका मातिस से परिचय हुआ एवं मोरो के मार्गदर्शन में काम करने का उनको मौका मिला।

रुओ धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। बचपन में धार्मिक रंगीन काचचित्र के किये कार्य का उनकी कला के विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा, बाद में उनकी विकसित शैली में वे जो चमकीले अविभाजित रंगों के आकारों को गहरी मोटी रेखा से परिसीमित करने लगे उसके पीछे शायद इसी कार्य का सुप्त प्रभाव मूल कारण रहा होगा। 1892 में उन्होंने धार्मिक विषयों की चित्रमालिका बनायी जिस पर उनको एकोल का प्रथम पुरस्कार मिला। 1898 में ग्युस्ताव मोरो की मृत्यु से वे बहुत दुःखी हुए। मोरो संग्रहालय के अध्यक्ष के स्थान पर उनकी नियुक्ति हुई किन्तु यहाँ उनको बहुत कम तनखा मिलती थी। इस समय वे बीमार पड़े; रुग्णावस्था में उन्होंने रेम्ब्राट के समान काले व भूरे रंगों से युक्त व लयबद्ध बाह्य रेखा से अंकित वेश्याओं एवं सर्कस के विदूषकों के चित्र बनाये। इन चित्रों में उनके जीवन की दुःखमयता को स्पष्ट करने के हेतु विरोधी छटाओं एवं अंधेरी पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है। सलो दोतान की प्रस्थापना में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया और 1903 की उसकी प्रदर्शनी में भाग लिया। 1905 की फाव चित्रकारों की प्रथम प्रदर्शनी में उन्होंने अपनी नयी शैली में बनाये 3 महत्त्वपूर्ण चित्र प्रदर्शित किये। रुओ की अंकनपद्धति के जोश एवं अभिव्यक्ति के मनोलेपन को देख कर, आलोचकों व दर्शकों ने उनको फाव चित्रकारों में शामिल किया यद्यपि उनके चित्र फाव चित्रकारों से पृथक् कक्ष में रखे गये थे। वैसे रुओ की कला का ध्येय फाववाद से बिलकुल भिन्न था; केवल घनिष्ठ मित्रता के कारण उन्होंने फाव चित्रकारों के साथ अपने चित्रों को प्रदर्शित किया था। फाव चित्रकारों के समान उन्होंने केवल चमकीले मूल रंगों का प्रयोग नहीं किया। उनकी रेखा अभ्यासपूर्ण थी और उनकी कला का ध्येय था विषयजनित आत्मिक अभिव्यक्ति, जबकि फाव चित्रकार विषय की पूर्ण उपेक्षा करते थे।

1904 में रुओ कैथोलिक लेखक युइमां व लिओं ब्लाय से परिचित हुए। युइमां कैथोलिक चित्रकारों के भ्रातृमंडल की स्थापना करके कला में धार्मिकता लाना चाहते; ब्लाय सोचते कि दुःख व अनीति में डूबे समाज की रक्षा प्राचीन ईसाई धर्म के पुनरुज्जीवन से ही की जा सकती है। उनमें घनिष्ठ मित्रता हुई एवं रुओ धार्मिक अभिव्यक्ति के चित्र बनाने लगे जिनमें शारीरिक अधोगति की पराकाष्ठा तक पहुँची हुई वेश्याओं, बेतुके विदूषकों—जो ऊपरी हास्यविनोद से अपनी असम्मानजनक घृणित अवस्था को भूल नहीं सकते थे—एवं वृथाभिमान से

फूले हुए किन्तु अपने चेहरों के मूर्खता के स्पष्ट भावों को छिपाने में असमर्थ न्यायाधीशों के चित्र प्रसिद्ध है। वास्तव मे रुग्रो की कला फ्रेंच कला परम्परा मे अपवाद सी है और अभिव्यजना के विचार से वह जर्मन कला के अधिक निकटवर्ती है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त उन्होंने सायंकालीन वातावरण के काल्पनिक प्रकृतिचित्र, किसानों व मजदूरो के जीवन के चित्र एव कुछ व्यक्तिचित्र बनाये। उनके व्यक्तिचित्रो मे से 'मिस्टर एक्स' विशेष प्रसिद्ध अभिव्यजनावादी शैली का चित्र है।

रुग्रो मानव के सुख-दुःखो एव आत्मिक आकांक्षाओ के प्रति जागरूक थे; अतः हम उनको मध्ययुगीन धार्मिक परम्परा के चित्रकार मान सकते है। किन्तु रुग्रो की धार्मिक कला में एव मध्ययुगीन धार्मिक कला मे पर्याप्त अन्तर है। रुग्रो स्वयं केथोलिक थे और उनकी निष्ठा थी कि मानवता को शातिप्राप्ति के लिये धर्म एकमात्र साधन है; किन्तु उनके चित्रो मे मध्ययुगीन धार्मिक चित्रो की श्रद्धा व उससे प्राप्त सकटो से सामना करने के सामर्थ्य का कही भी दर्शन नही है। इसके विपरीत मानसिक व शारीरिक अधःपतन, आत्मविश्वास का अभाव व लाचारी के भाव लिये हुए उनके चित्र मानव के दारिद्रय, कष्ट व भ्रमीतिपूर्ण जीवन की निराशामय यथार्थ प्रतिमाए है। मोरो की कल्पनाशक्ति का उन पर प्रभाव था किन्तु उससे उनकी कला में दैवी या अतिमानवीय गुण आने के बजाय वे अपनी सहृदय, सवेदनाशील कल्पना से मानव-जीवन की घृणित स्थिति का अतिरंजित चित्रण करने को उद्यत हुए। एक तरह से उन्होने बाह्य जीवन का निषेधात्मक बीभत्स चित्रण करके आत्मिक जीवन व धर्म को अनिवार्यता पर बल दिया है। वान गो के समान वे मानव-जीवन के प्रति सचेत थे व मानव के दुःख व अगतिकता को भूल नही सकते थे। मानव के मानव के प्रति व्यवहार को देखकर वे तड़पते। उनके धर्म में चमत्कार व दैवी शक्ति को स्थान नही था; उनका धर्म था मानवता। केवल बायबल व पुराणों की कथाओ का चित्रण करके उनकी धर्मभावना की पूर्ति नही हो सकती थी। व्यक्तिगत व पूर्ण मानवतावादी चित्रण उनकी कला की आतरिक आवश्यकता थी। इन सब बातों का विचार करने से स्पष्ट होता है कि वे सही अर्थ मे वान गो व जर्मन अभिव्यंजनावादी कलाकारो की परम्परा के चित्रकार थे। फाव चित्रकारों का आनंदोत्साह उनकी कला मे नाम मात्र भी नहीं था।

1911 के करीब रुग्रो की व्यक्तिगत अभिव्यजनावादी शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। वे काले व भूरे रगो का छाया के हिस्सो मे प्रयोग करते एव चित्र की पूरी पृष्ठभूमि पर उन रगो को न्यूनाधिक छटा फैला देते जिससे दुःख व निराशा की अभिव्यक्ति के अनुकूल मलिन वातावरण बन जाता; कज्जल जैसे वातावरण में हलके ठडे रंगो मे अकित मानवाकृतिया अस्पष्टसी चमकती जैसे कि घने अंधेरे मे टटोलती हुई अतृप्त आत्माएं; परिणामस्वरूप चित्र मे भयानकता व

मार्क्वे (1875–1947) की मातिस के साथ आजीवन घनिष्ठ मित्रता थी व विद्यार्थी दशा में दोनों ने एक साथ अध्ययन किया। मार्क्वे सैद्धान्तिक बातें करने के आदी नहीं थे और पूर्ण विचार करके अपना अन्तिम निर्णय स्पष्ट व्यक्त करते। मातिस व व्लामँक के समान उन्होंने केवल मूल रंगों में चित्रण नहीं किया और उनके पूर्ण रूप से फाव चित्र बहुत ही कम हैं। फाव चित्रकारों में से उनकी कला प्रभाववाद से अधिक मिलतीजुलती है। उनके ल आव्र के समुद्रकिनारों व सेन नदी के पुलों के दृश्यचित्र एवं व्यक्तिचित्र हलकी, मनोहर रंगसंगति, प्रकाश व वातावरण के प्रभाव एवं यथार्थचित्रण के विचारों से आकर्षक है।

वान डोन्जेन (1877–1968) अपने सहवासप्रिय व आनन्दी स्वभाव से पॅरिस के सामाजिक जीवन में बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी चित्रांतर्गत मानवाकृतियाँ भी वैसे ही खुशदिल व सुखासीन हैं। आरम्भ में उनको कुछ समय तक आर्थिक कठिनाइयों से सामना करना पड़ा किन्तु उनके मानवचित्र–जिनमें फॅशनेबल महिलाओं के चित्र बहुसंख्य है—जल्द ही लोकप्रिय हुए व उन्होंने अपनी लम्बी आयु सुखी व सफलता के साथ बितायी। 1912 के बाद उन्होंने विशुद्ध रंगों के साथ मिश्रित रंगों का प्रयोग शुरू किया व अपनी रंगसंगति को अधिक आकर्षक बनाया। वे अन्ततक फाव अंकनपद्धति से पर्याप्त निष्ठावान रहे।

□□□

7
घनवाद

1907 में घनवाद का उदय हुआ, 1914 तक विभिन्न अवस्थाओं को पार करते हुए वह विकसित हुआ, उसको बहुत अनुयायी मिले और 1925 तक उसने कलाक्षेत्र में सबसे सामर्थ्यशाली एवं प्रेरणादायक कलाशैली के रूप में कार्य किया। वास्तुकला, उद्योग-कला, विज्ञापन, शिल्प, हस्तकला, अलंकरण आदि सभी मानवीय निर्माणक्षेत्रों पर उसने जो प्रभाव छोड़ा वह अब तक दृढ़मूल है। 1912 तक घनवाद पैरिस के कलाक्षेत्र में सीमित था। योरप के मध्य में स्थित पैरिस कला व संस्कृति का केन्द्र माना जाता; वहाँ ज्ञानार्जन, आर्थिक सफलता या मान्यता प्राप्त करने के हेतु देशविदेशों से कलाकारों, साहित्यिकों एवं कलाप्रेमियों का आनाजाना रहता। अल्पकाल में ही घनवाद ने सबको प्रभावित किया और उसका अन्य देशों में प्रचार होकर उसको अन्तरराष्ट्रीय वाद का स्थान प्राप्त हुआ जो किसी भी अन्य वाद से अधिक अवधि तक टिका रहा।

घनवाद को जन्म देने में कौनसी प्रेरणाएँ कारण हुईं यह प्रथम देखना होगा। 1904 से लेकर फाव चित्रकारों ने उन्मुक्त होकर, विशुद्ध रंगों व गतिमान सरलीकृत स्पष्ट रेखाओं का प्रयोग करके चित्रण किया; वान गो की भावनाप्रधान शैली, गोग्वें का आलंकारित्व व नवप्रभाववाद के रंगों की चमक का फाववाद समन्वित रूप था। 1906 में मातिस ने 'जीवन का आनन्द'[1] चित्रित करके फाववाद को अन्तिम रूप प्रदान किया। आकारों के सरलीकरण व माध्यम के विशुद्ध प्रयोग के फाववाद के विचार घनवाद के प्रणेताओं के सम्मुख थे व इसके अतिरिक्त वे अफ्रीकी नीग्रो कला व वन्य जमातियों की कला से परिचित हो गये थे; फाववाद व नीग्रो कला से घनवाद को काफी प्रेरणा मिली। नीग्रो कलाकृतियों के अनोखे सौन्दर्यगुणों को प्रथम मातिस, व्लामैंक व देरें ने परखा व उनके द्वारा पिकासो व ब्राक नीग्रो कला की ओर आकृष्ट हुए और वे नीग्रो कलाकृतियों का संग्रह करने लगे। 1905, 1906 व 1907 में सेजान की कृतियों की प्रदर्शनियाँ हुईं व 1907 में उनका एमिल बर्नार से हुआ पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ जिसमें सेजान के कला-विषयक विचार व्यक्त किये थे। सेजान की चित्र प्रदर्शनियाँ एवं उनके विधान "प्रकृति को वृत्तचिति, गोल व शंकु के आकारों में देख कर चित्रित करना चाहिये" ने घनवादी चित्रकारों को रचना पर बल देकर चित्रण करने का नया दृष्टिकोण मिला व घनवाद के विकास में गति आ गयी।

किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात होगा कि पिकासो के चित्रों में गतित्व व कल्पनारंजना पर बल है जबकि ब्राक के चित्रों में नियन्त्रण व स्थायीभाव के साथ रंगसंगति व आकारों के आलंकारित्व का विचार किया है। घनवाद के प्रारम्भिक काल में दोनों ने प्रत्यक्ष वस्तु या प्राकृतिक दृश्य के अन्तर्गत आकारों का विश्लेषण करके घनवादी चित्ररचनाएँ की हैं; अतः इस काल के घनवाद को 'विश्लेषणात्मक घनवाद'[6] कहते हैं। वस्तुओं के घनत्व की चित्रों में रक्षा की है एवं कई जगह ज्यामितीय मूल आकारों की सहायता से अतिशयोक्त रूप देकर घनत्व को बढ़ावा दिया है। अवकाश के शून्यत्वरूप को हटा कर उसको भी क्षेत्रों के विभाजन द्वारा रचनात्मक अस्तित्व प्रदान किया है। चित्ररचनाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वृत्तचिति, गोल व शंकु की सहायता से नयी स्वयंपूर्ण, स्वतन्त्र दुनिया का निर्माण हुआ है। छोटे बच्चे जैसे लकड़ी के गुटकों से मकान, पुल आदि बनाते हैं उसी तरह पिकासो व ब्राक ने घनवादी चित्ररचनाएँ की हैं; किन्तु वे केवल निरुद्देश्य रचनाएँ नहीं हैं; उनमें वास्तविक रूप के विश्लेषण से चित्रकार की वैयक्तिक धारणाओं को जीवित रखा है एव त्रिमितियुक्त जड़सृष्टि का द्विमितियुक्त पृष्ठभूमि पर सफल अंकन करने की समस्या का प्रतिभापूर्ण हल है। इस सम्बन्ध में पिकासो का निम्न विधान महत्वपूर्ण है, "राफेल के चित्रों में नाक का उभार नापा नहीं जा सकता। मैं चाहता कि हूँ कि मैं ऐसे चित्र बना सकूं जिसमें यह सम्भव हो"।

1909 में पिकासो ने अपना चित्र 'तीन स्त्रियाँ' पूर्ण किया जो 'आविन्यों की स्त्रियाँ' का विकसित रूप है। 1910 तक पिकासो व ब्राक के चित्रों में स्थानांतर, पारदर्शकता व पुनर्रचना के प्रयत्न नहीं थे। 1910 में उन्होंने इस दिशा में क्रांतिकारी निर्णय लिये और अब घनवादी चित्रकार वस्तु के मूल भिन्न आकारों को अपने विचारानुसार चित्रक्षेत्र में कहीं भी अंकित कर सकते एवं वस्तु को पारदर्शक मानकर एक वस्तु के आरपार दूसरी वस्तु को चित्रित कर सकते। पिकासो व ब्राक मूर्तिकार की तरह वस्तु का चारों तरफ से निरीक्षण करके मूल सरल आकारों में विभाजन करते एवं उन आकारों की पुनर्रचना करते; वस्तुओं के भिन्न दिशाओं व दृष्टिकोणों से दृश्य प्रभावों को एक साथ अंकित करके उसकी समग्र रचना और आकार-विशेषताओं का परिचायक चित्र बनाते। इससे चित्रकला को रचनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक महत्त्व प्राप्त हुआ एवं वह समय—गतित्व की प्रणाली से मुक्त होकर स्थायित्व की प्रणाली में सम्पन्न हो गयी। इस समय गणितशास्त्र में भी समय-अवकाश-सातत्य[8] के सम्बन्ध में नया सिद्धान्त प्रस्थापित किया जा रहा था जो घनवाद के रचना-सिद्धान्त के अनुकूल था। घनवाद व गणितशास्त्र ने एक ही समय दृश्य वास्तविकता को अस्वीकार कर रचना एवं समीकरण के सूत्रों द्वारा उसके नित्य अखण्डित रूप का आविष्कार किया।

कुछ विद्वानों ने घनवाद को—विशेषतः प्रारम्भकालीन जब उसमें अफ्रीकी मूर्तिकला, कांगो व आइवरी कोस्ट के नकाब आदि से प्रेरणा लेकर कलानिर्मिति हो

रही थी—आदिम प्रेरणाओं का पुनर्जागरण[9] माना है। इस तरह का आन्दोलन समकालीन साहित्य व संगीत में भी हो रहा था; स्ट्राविन्स्की की संगीत-रचनाएँ 'अग्नि-पक्षी' (1910) व 'वसंत-पूजा' (1912)[10] इसके समुचित उदाहरण है जिनमें आदिवासियों के संगीत के समान जोश व उत्कट स्वरविसंवादित्व है। कवि टी. एस. एलियट ने अपने काव्य 'वीरान भूमि'[11] में आधुनिक सभ्य मानव की अतृप्त मानसिक अवस्था का वर्णन किया है व उसमें उसकी तुलना आदिवासी समाज की धार्मिक प्रथाओं से परिशासित श्रद्धालु जीवन से करके आत्मिक पुनरुज्जीवन का मार्ग बतलाया है। फ्राइड ने मनोविश्लेषण करके सिद्ध किया कि आधुनिक मानव के मानसिक जीवन व आंतरिक आकांक्षाएँ उसके आदिवासी बंधुओं से भिन्न नहीं हैं।

1910 से नये दृष्टिकोण को लेकर बनाये गये चित्रों में अधिकतर वस्तुचित्र व व्यक्तिचित्र है जिनमें से ब्राक के 'वायोलिन व जलपात्र' (1910) एवं पिकासो के 'वायोलिन-वादक' (1911) 'कानवाइलेर का व्यक्तिचित्र' (1910) व 'आम्ब्राज वोलार का व्यक्तिचित्र' (1910) विशेष प्रसिद्ध है। पिकासो के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र की तुलना सेजान के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र से करने पर सेजान से प्रेरणा पाकर पिकासो ने उसके आगे कितने क्रांतिकारी कदम उठाये, इसकी स्पष्ट कल्पना आती है। घनवादी पद्धति से पिकासो के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र से वोलार के सादृश्य व व्यक्तित्व को सरलता से पहचाना जा सकता है यद्यपि पिकासो के चित्रण का मुख्य उद्देश्य था आकार-रचना न कि व्यक्तिसादृश्य। घनवाद के प्रारम्भिक काल के चित्रविषय थे प्राकृतिक दृश्य, किन्तु ब्राक व पिकासो ने देखा कि मानवनिर्मित ज्यामितीयता-प्रधान वस्तुएँ घनवादी चित्रण के लिये अधिक समुचित विषय हो सकते हैं। 1910–11 के काल में उन्होंने घनवादी चित्र बनाये उनके विषय अधिकतर वायोलिन, वाद्ययंत्र, मेज, कुर्सी, जलपात्र, कपतश्तरी जैसी वस्तुएँ एवं चित्रकार के परिचित व्यक्ति थे। मानवनिर्मित वस्तुओं का मूल आकारों में सरलता से विश्लेषण किया जा सकता था। ब्राक व पिकासो में घनिष्ट सम्पर्क था और अंकनपद्धति सम्बन्धी या रचनासम्बन्धी नयी कल्पना आदि विचारों का उनमें आदान-प्रदान होता रहता। आकारों के सामर्थ्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उन्होंने चमकीले रंगों को छोड़कर भूरे रंगों का प्रयोग किया। वस्तु के चारों ओर के दृश्य प्रभावों को एकत्रित करने के अपने सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने व्यक्तिचित्रों में सम्मुख मुखाकृति को पक्षीय मुखाकृति[12] के साथ चित्रित किया; इसी पद्धति में अधिक परिवर्तन करके बाद में पिकासो ने द्विप्रतिम-मानवाकृतियों[13] के चित्र बनाये। द्विप्रतिम मानवाकृति की कल्पना सेजान के मस्तिष्क में नहीं थी किन्तु उन्होंने वस्तुचित्रण में उसी दिशा की ओर कदम रखा था; वस्तुचित्रों में उन्होंने शीशी की डाट के न दिखायी देनेवाले ऊपरी वृत्ताकार भाग को एवं गिलास के किनारे को दीर्घवृत्ताकार चित्रित किया है। उनके सवाचश्म शीर्षचित्रों में चेहरे का

दूर का हिस्सा अनैसर्गिक रूप से चौड़ा बनाया है जिसके पीछे गोलाई का प्रभाव दिखाने का उद्देश्य था। अब ज्ञात हुआ है कि आत्मचित्रण करते समय सेज़ान अपने सामने तीन दर्पण एक दूसरे के साथ उचित कोण में रखते थे जिससे चित्र में घनत्व का प्रभाव दिखाने में मदद मिल सके। जैन-पुस्तक-शैली के चित्रों में पक्षीय मुखाकृति में नाक के ऊपर दूसरी आँख अंकित करने का क्या अभिप्राय था यह निश्चित नहीं कहा जा सकता किन्तु उसको हम द्विप्रतिम-मानवाकृति-चित्रण का आरम्भिक चरण मान सकते हैं। 1910–11 के पिकासो व ब्राक के घनवाद को 'परिसीमित घनवाद'[14] कहते हैं क्योंकि इसमें चित्रातर्गत आकार ठोस किन्तु चारों ओर से बन्द व सीमित दिखायी देते हैं। शुरू के कुछ चित्रों में वस्तुसादृश्य है किन्तु बाद में बनाये गये चित्रों में चित्रविषय को पहचानना मुश्किल पड़ता है; चित्रक्षेत्र में इतस्ततः बिखरे हुए वस्तुओं के भिन्न अंगों से वस्तुओं के बारे में निर्णय लेना पड़ता है–कहीं कान की आकृति चित्रित है तो कहीं बालों का हिस्सा, कहीं कोट के बटन तो कहीं वायोलिन की नोक। घनवादी चित्र में यदि वस्तु के प्रतिरूप या सरूप को देखना चाहेंगे तो कलाकृति के रसग्रहण में असफल रहेंगे; घनवादी कृति स्वतन्त्र विचार से की गयी रचनासृष्टि है न कि वस्तुसृष्टि का प्रत्याभास; वह चित्रकार की व्यक्तिगत प्रतिभा, रसिकता व रचना-कल्पना से प्रत्यक्ष सम्पर्क रखती है। घनवादी चित्र की निर्मिति में चित्रकार पूर्ण रूप से आंतरिक प्रेरणा पर निर्भर रहता है एवं उस पर बाह्य दृश्य-सृष्टि के रूप का बंधन नहीं रहता; बाह्य रूप केवल आंतरिक प्रेरणा को जागृत करने का कार्य करता है। धीरे-धीरे पिकासो व ब्राक ने आकारों के घनत्व की जगह समतलत्व पर ध्यान केन्द्रित करके स्थानांतर की कल्पना का विकास किया और उनकी कलाकृतियों में वस्तुसादृश्य नाममात्र रहा।

1909 तक ब्राक व पिकासो के घनवाद को कोई अनुयायी नहीं मिले। 1909 में फर्नां लेजे ने सेज़ान के निर्दिष्ट मार्ग से चलकर अपने चित्र 'पुत्र' व 'जंगल में विवस्त्र मानव'[15] बनाये। उनके चित्रों में नली के समान आकारों का प्राचुर्य था; अतः उनको घनवादी कहने के बजाय 'नलीवादी'[16] कहते थे। पिकासो के साथ कादाके में उनके मित्र देरें रहते थे जो शुरू में फाववादी चित्रण करते थे; सेज़ान के प्रभाव में आकर उन्होंने भी कुछ समय तक घनवादी चित्रण किया। 1909 में ग्लाइवेर ग्लेज़े, मेंजिजे, अबें, पिकाबिया व ल्होत, सेज़ान के कलाविषयक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए घनवाद की ओर अग्रसर हुए। 1910 में पोलिश चित्रकार लुई मार्कुसिस ने घनवाद के सिद्धान्तों के अनुसार सुन्दर रंगसंगतियुक्त व कुछ आलंकारिक चित्ररचनाएँ कीं। उसी साल से रोजे द ला फ्रेस्नाय, मार्सेल द्यूशां, फर्नां लेजे व ह्वान ग्रीस ने घनवाद का अनुयायित्व स्वीकारा।

ब्राक व पिकासो के चित्रों के समतल आकारों का महत्व बढ़ने ही वस्तुसादृश्य समाप्त सा हो गया। 1911 से ब्राक ने चित्ररचना में अक्षरों को समाविष्ट करना शुरू किया। गोथिक चित्रकला, चीनी चित्रकला, एवं भारतीय जैन पुस्तक-शैली में

चित्रक्षेत्र के अन्तर्गत अक्षरों को अंकित करने की प्रथा थी। पॅरिस के जलपानगृहों की खिड़कियों के कांचों पर लिखे हुए अक्षरों के आकारसामर्थ्य को देखकर ब्राक को उस दिशा में प्रयोग करने की प्रेरणा मिली थी। अक्षरों को चित्ररचना में स्थान दिये जाने से मानव निर्मित आकारों का वास्तविक आकारों से समन्वय होकर, चित्रकला विशुद्ध सर्जन के ध्येय की ओर एक चरण आगे बढ़ी; कल्पित व अकल्पित आकारों के संयोग से चित्र में प्रतियथार्थ का भाव पैदा हुआ। इसके पश्चात् लकड़ी या संगमरमर के बाह्य सतहों का अनुकरण; समाचारपत्रों के शीर्षकों का चित्र में समावेश वगैरह चित्रान्तर्गत प्रयोग स्वाभाविक क्रम में ही थे। वस्तु के सम्पूर्ण आकार का चित्रण करने के बजाय उसके किसी विशेषतादर्शक अंग को प्रतीक रूप में चित्रित किया जाने लगा एवं चित्रकला वास्तविक बन्धन से मुक्त होकर, चित्ररचना में सर्जनात्मक सरलता आ गयी। कलाकृति द्वारा मस्तिष्क में निर्माण किया गया वस्तु का सूचक रूप प्रत्यक्ष रूप से विविध व भावपूर्ण—अतः अधिक आत्मीय व प्रभावी होता है। 1912 से घनवादी चित्रकारों ने कपड़ा, दीवार-कागज, समाचारपत्र, ताश, बेंत की जाली, माचिस वगैरह वस्तुओं के टुकड़ों को चित्रक्षेत्र में चिपका कर ऊपर से सांकेतिक रेखाओं व रंगों की सहायता से चित्ररचनाएं शुरू की, व आधुनिक कला में 'कोलाज' पद्धति[17] का जन्म हुआ। पिकासो के चित्र 'बेंत की कुर्सी पर वस्तुसमूह' (1912) घनवाद की प्रथम कोलाजकृति है। उसी साल ब्राक ने दीवार-कागजों को चिपका कर अपना चित्र 'फलों की थाली व गिलास' पूर्ण किया; दीवार-कागज पर लकड़ी के रेशों का परिणाम दिखाया है व परम्परागत पद्धति से मेज का हूबहू चित्रण करने के बजाय उसका सूचक रूप से उल्लेख किया है। इस प्रकार वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से चित्र में समाविष्ट करके कोलाज कृतियों द्वारा घनवादी चित्रकार अधिक वस्तुनिष्ठ बन गये। कोलाज पद्धति से पृष्ठभूमि की बुनावट को कलात्मक महत्त्व प्राप्त हुआ। चित्र की पृष्ठभूमि में वस्तु की बाह्य सतह का प्रत्यक्ष अस्तित्व होने से चित्र को स्पर्शीयता का मूल्य प्राप्त हुआ जैसे कि कोमल, कठोर, मुलायम, खुरदरा वगैरह—व वस्तुसादृश्य का उच्चाट होने पर भी चित्रकला में वस्तुनिष्ठ गुणों का महत्त्व बढ़ कर वह जड़वादी बन गयी। स्पर्शीयता के गुण में विविधता लाने के हेतु घनवादी चित्रकार रंग के साथ बालू, रेती, लकड़ी का बुरादा आदि पदार्थों को पट पर चिपकाते या रंगों में मिलाते। चित्रकला के माध्यम सम्बन्धी कल्पना में मौलिक परिवर्तन हुआ। अब वस्तुसादृश्य[18] के निर्माण के हेतु चित्रण किये जाने के बजाय चित्ररचना के हेतु वस्तुओं का प्रयोग होने लगा। 'विश्लेषणात्मक घनवाद' में वस्तुरचना का मूल आकारों में विश्लेषण करके चित्ररचना की जाती थी; अब 'संश्लेषणात्मक घनवाद'[29] में भिन्न कल्पित आकार व पदार्थों के टुकड़ों से नवीन काल्पनिक रचना की जाने लगी जिसमें कभी वस्तु का सांकेतिक रूप भी दृष्टिगोचर होता।

1912 तक विश्लेषणात्मक घनवाद का पूर्ण विकास हो चुका था। 1911 में सलो द प्रॅदेपादा' में हुई प्रदर्शनी में दर्शक घनवाद से काफी परिचित हो चुके थे। कानवाइलेर ने संग्राहकों में घनवाद का प्रचार किया। गियोम अपोलिनेर ने लेखों द्वारा घनवाद के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। मेंजिजे व ग्लेजे ने विश्लेषणात्मक घनवाद के सिद्धांतों को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया।

परिवर्तनशीलता की स्वाभाविक कला प्रवृत्ति के अनुसार अब विश्लेषणात्मक घनवाद को नयी दिशा मिलना अपरिहार्य था। प्रतिभासम्पन्न घनवादी चित्रकार अब विचार करने लगे कि विश्लेषणात्मक घनवाद के विपरीत पद्धति में कार्य करने से कलाकृति का निर्माण अधिक स्वतन्त्रता से किया जा सकता है व ऐसी कृतियां अधिक मौलिक हो सकती हैं। इन विचारों से प्रेरित होकर घनवादी चित्रकारों ने विश्लेषणात्मक पद्धति को छोड़कर, संश्लेषणात्मक प्रयोग शुरू किये जिसमें पिकासो, ब्राक व हुवान ग्रीस का योगदान महत्वपूर्ण था। विश्लेषणात्मक घनवाद की मंद रंगसंगति से कुछ घनवादी चित्रकार असन्तुष्ट थे; वे फाव तथा नाबि रंगों की चमक व घनवाद की ठोस रचना का मिलाप करना चाहते थे, और इस दृष्टि से संश्लेषणात्मक घनवाद बड़ा उपयुक्त था। इसके अतिरिक्त—जैसे कि ह्वान ग्रीस ने विधान किया था—विश्लेषणात्मक घनवाद में चित्रांतर्गत भिन्न वस्तुओं के आकारों का एकदूसरे से सुसगत समन्वय करना कठिन था यद्यपि चित्रकार के व्यक्तित्व के अनुकूल मूल आकारों की पुनर्रचना कठिन नहीं थी। इन सब समस्याओं का हल करने के उद्देश्य से समतल कल्पित आकारों की योजना व कोलाज-पद्धति के प्रयोग हुए जिनके फलस्वरूप संश्लेषणात्मक घनवाद का जन्म व विकास हुआ। संश्लेषणात्मक घनवाद में समतल आकारों की योजना के साथ छटाओं द्वारा उनमें स्थानभेद दिखाया जाने लगा। जड़-पदार्थों के टुकड़ों से आत्मीयतापूर्ण रचना-सौंदर्य का साक्षात्कार होते ही चित्रकारों ने वस्तु के बाह्य सादृश्य में सौंदर्य की खोज करना छोड़ दिया; ऐसे टुकड़ों में उन्होंने आत्माओं के अस्तित्व को अनुभव किया व उन टुकड़ों की सुसंगतिपूर्ण रचना से नयी सचेत सृष्टि को बनाया। 1912 से 1914 तक कोलाजपद्धति की रचनाएं प्रचुर मात्रा में हुई जो मौलिक गुणों से परिपूर्ण हैं। 1912 में 'सेक्शिओं दोर'[20] प्रदर्शनी में घनवादी एवं रचना के ध्येय से प्रेरित हुए चित्रकारों की कलाकृतियां प्रदर्शित हुई। इस महत्वपूर्ण प्रदर्शनी ने बीसवी शताब्दी की कला को नया रचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया। 1913 व 1914 में पैरिस के बहुसंख्य कलाकार घनवादी शैली में कलानिर्मिति करते थे। हालैंड, इङ्गलैंड, जर्मनी, रशिया व अमेरिका में घनवादी कृतियां प्रदर्शित की गयीं जिससे वहां के तरुण कलाकारों पर घनवाद का प्रभाव पड़ा व उसका संसार में काफी प्रसार हुआ।

कुछ विद्वानों ने घनवादी कलाकृति की तुलना समकालीन साहित्यांतर्गत नव-विचारों से की एवं घनवाद की समस्यावच्छेद[21] की कल्पना को नोनयुक्ति-

डियन[22] ज्यामिति व समय की चतुर्थ मिति से स्पष्टीकरण करने के भी प्रयत्न किये; किन्तु स्वयं पिकासो ने घनवाद की परिभाषा की है "रूप से सम्बन्धित कला; व जब रूपनिर्मिति हो जाती है तब वह निजी चैतन्य से जीवित रहती है"[23] उसी प्रकार पिकासो ने स्पष्ट इन्कार किया है कि घनवाद में विषय वस्तु का विश्लेषण करने का कोई प्रयत्न या संशोधन का उद्देश्य है जो उनके विचार से कला के मुख्य दोष है; वे आगे कहते है "गणित, मनोविज्ञान, संगीत, वास्तुशास्त्र आदि भिन्न शास्त्रों के सिद्धांतों से घनवाद के स्पष्टीकरण के जो प्रयत्न हुए हैं उनको कपोलकल्पित साहित्य से अधिक महत्व नही है व उनसे लोगो की घनवाद के विषय में दिशाभूल मात्र हुई है"[24]।

घनवाद की समयावच्छेद की कल्पना का अनोखा प्रयोग ग्लेजे, मेंजिंजे व देलोने की कलाकृतियों में देखने को मिलता है। इन्होंने न केवल वस्तु के भिन्न दृश्यो को एक साथ चित्रित किया है बल्कि जो वस्तुएं एकदूसरे से पर्याप्त दूर हैं व एक साथ कभी नहीं दिखाई दे सकती उनको भी एकसाथ चित्रित किया है। घनवाद के इस रूप को 'कलाव्यापी घनवाद'[25] कहते हैं; मेंजिंजे का चित्र 'नीला पक्षी' इसका प्रशंसनीय चित्र है।

1914 तक घनवाद के सभी सिद्धांत प्रयोगान्वित होकर उनको अन्तिम रूप प्राप्त हो चुका था व उसके पश्चात् घनवादी कृतियां अधिक स्पष्ट, रंगसंगति में चमकीली व ज्यामितीयता में कठोर होती गयी और उनको स्फटिकीय रूप प्राप्त हुआ। ह्वान ग्रीस की इस काल की कृतियां सबसे अधिक तर्कनिष्ठ है। पिकासो के चित्र 'पाइप व गिलास का वस्तुचित्र' (1918) व ग्रोस चित्र 'तुरेन का आदमी' (1918)[26] इस दृष्टि से प्रशंसनीय है। 1921 में पिकासो ने 'तीन वादक'[27] शीर्षक के दो भिन्न चित्र बनाकर संश्लेषणात्मक घनवाद को चरमसीमा तक पहुंचाया। ये चित्र संश्लेषणात्मक घनवाद की उत्कृष्ट कृतियां मानी जाती है।

1914 के बाद दुनिया के सभी विकसित देशों में घनवादी कलाकृतियाँ बनने लगी एवं 1925 तक घनवाद निश्चल हुआ। घनवादी चित्रकार भी अनुभव कर रहे थे कि घनवाद विकास की अंतिम सीमा को पार कर चुका था और अब निर्माण के अन्य क्षेत्रों में उसका उपयोग होना बाकी था। मूर्तिकार जाक लिपशिट्स ने ग्रीस व अन्य घनवादी कलाकारों को सैद्धांतिक भूमिका छोड़ कर प्रत्यक्ष उपयुक्तता की दिशा में कार्य करने की सलाह दी। घनवाद के प्रणेता पिकासो ने 1925 में 'तीन नर्तक'[28] चित्र बना कर घनवाद से विदा ली और इसके साथ ही घनवादी आन्दोलन समाप्त हुआ यद्यपि बीसवी शताब्दी की कला व निर्माणक्षेत्र पर वह अमिट प्रभाव छोड़ गया।

1907 से 1925 तक की घनवादी कलाकृतियों के परिशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि घनवादी कलाकारों की विचारधाराओं में आपस में कुछ भिन्नताएं थी। पिकासो, ब्राक व ग्रीस की कृतियों से अन्य घनवादी कलाकारों की कृतियां

दर्शन में स्पष्ट रूप से भिन्न है। ग्लेजे, ला फ्रेस्नाय, ला फोकोनिय, मेंजिजे, ल्होत व बहुत से घनवादी चित्रकार पिकासो व ब्राक की स्वयंपूर्ण, वस्तुनिरपेक्ष रचना-सौंदर्य की मूलभूत कल्पना को ठीक तरह समझ नहीं पाये; उनकी कलाकृतियों में वस्तुसादृश्य से एकनिष्ठ रहने के प्रयत्न है।

घनवाद के सभी विद्वान् अभ्यासकों का मत है कि घनवाद का मूलभूत दृष्टिकोण यथार्थवादी था। अभिव्यंजनावाद या अतियथार्थवाद से तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि घनवाद केवल जड़वाद से सीमित था एवं उसमें मानवीय भावनाओं का अभाव था। अतः घनवाद का सत्यरूप समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि उसके पूर्वगामी कलाकारों की जड़सृष्टि के बाह्य रूप के बारे में क्या धारणाएं थी, उन्होंने उसको किस ढंग से चित्रित किया एवं घनवादी चित्रकारों ने उनकी धारणाओं व अंकनपद्धतियों में क्या परिवर्तन किये। घनवाद में जीवनसम्बन्धी कोई दार्शनिक विचार नहीं थे; उसका संशोधन वस्तु सृष्टि के नेत्रपटलीय प्रभाव तक सीमित था। ग्लेजे व मेंजिजे की पुस्तक 'घनवाद'[29] व अपोलिनेर की पुस्तक 'घनवादी चित्रकार'[30] दोनों में कुर्बे को घनवाद का जन्मस्थान माना है। वह एक दृष्टि से समुचित है क्योंकि कुर्बे कला को प्रतीकात्मकता, एवं साहित्यिक, ऐतिहासिक, नैतिक व धार्मिक कल्पनाओं के बंधनों से-जिनका प्राचीन काल से कला दासत्व करती आयी-यथासंभव मुक्त करना चाहते थे। वे कलाकारों का लक्ष्य जड सौंदर्य पर केंद्रित करना चाहते थे।

कुर्बे के पत्र के शीर्षनामे में अंकित हुआ करता, 'गुस्ताव कुर्बे, ध्येय व धर्म मुक्त, निर्गुण चित्रकार,' जो उनके नितान्त जड़वादी होने का प्रमाण है। उनकी कलात्मक एकरूपता या सर्जन की स्वाभाविकता के संबंध में उनके मित्र का कथन है, "वे इस तरह चित्रनिर्मिति करते जैसे कि सेब का वृक्ष सेब पैदा करता है"। उनकी जडवादी मनोरचना के कारण ही वे प्राकृतिक दृश्य, विवस्त्र नारी-शरीर-जो सर्जनशील प्रकृति का प्रतीक है—निद्रा, मृत्यु जैसे विषयों को पसंद करते। अपने स्वतंत्र विचारों के अनुसार चित्रण करने में कुर्बे पूर्णरूप से सफल नहीं हुए जिसका कारण शायद उनका विद्यार्थीदशा में किया अकादमीक अध्ययन हो सकता है; उन्होंने प्रसंगवशात् अपने चित्रों में दृश्य सौंदर्य के अतिरिक्त मानवीय कल्पनाओं को भी स्थान दिया है व उनके विवस्त्र स्त्री के चित्रों में कहीं आदर्श सौंदर्य की सूक्ष्म झलक दिखायी देती है। कुर्बे के पश्चात् माने, प्रभाववादी चित्रकार व सेजान ने जड़ सौंदर्य के चित्रण की दिशा में काफी प्रगति की जिसका प्रारंभ माने ने किया। सेजान ने अपना मत व्यक्त किया कि "माने के साथ चित्रकला को नयी अवस्था प्राप्त हुई"। गोग्वें ने कहा "चित्रकला का प्रारंभ माने से हुआ"।

कुर्बे ने ऐसे विषयों को चुना जिनमें बाह्य सौंदर्य का आकर्षण था और जिनका प्रतीकात्मक महत्व नहीं के बराबर था। सेजान ने वस्तुओं व प्राकृतिक दृश्यों के आकार-सौंदर्य की ओर ध्यान देकर चित्रण किया एवं व्यक्तियों को भी

निर्विकल्प भाव से निर्जीव वस्तुओं के समान चित्रित किया। इस प्रकार बाह्य जड सौंदर्य से वशीभूत पाश्चात्य कलाकार उसके मूलाधार तत्वों व उसके मस्तिष्क पर होने वाले परिणामों के बारे में विचिकित्सावृत्ति से संशोधन करने में उद्यत हुआ। घनवादी कलाकारों ने इसी दिशा में वस्तुनिष्ठ सौंदर्य से आरंभ करके वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य की ओर मार्गक्रमण किया। दृश्य सौंदर्य के मूलतत्त्वों का आविष्कार करके उनके विशुद्ध प्रयोग से घनवादी कलाकारों ने नयी सौंदर्यसृष्टि रचायी। जड़ वस्तु के बाह्य सौंदर्य के विश्लेषण में पिकासो व ब्राक ने आत्यंतिक दृष्टिकोण अपना कर कलाकृति में प्रत्यक्ष वस्तु का अंतर्भाव किया।

विंडम लुइस ने घनवादियों के जडवादी दृष्टिकोण का निषेध करते हुए लिखा "एक प्रकार से घनवाद इस विचार का समर्थन है कि आज का मानव भावनाहीन हो गया है व उसके आत्मिक मूल्यों का स्थान भौतिक दृष्टिकोण ने ले लिया है। घनवाद की कोलाज-पद्धति 19 वी सदी के नैसर्गिकतावाद का एक विकृत रूप मात्र है" । किन्तु इसके विरोध मे सॅम हंटर ने लिखा है "इसमें कोई संदेह नहीं है कि घनवाद बुद्धिनिष्ठ है; किन्तु बौद्धिकता व यांत्रिकता या प्रतिभाशून्य निर्मिति बिलकुल असमान बातें है। ब्राक व पिकासो की बुद्धिनिष्ठ रचनाओं के पीछे सौंदर्य का आदर्श है जिससे श्रेष्ठ ऐंद्रिक अनुभूति व रचनासामर्थ्य से परिपूर्ण अपूर्व सृष्टि का निर्माण हुआ है"।

रोजर फ्राय ने सेजान की कला व 1910 तक के घनवाद की तुलना आरी बर्गसों के कुछ दार्शनिक विचारों से एवं 1913-14 काल के पिकासो व ब्राक के घनवाद की तुलना हुसेर्ल के 'दृश्य के ऐंद्रिय परिणाम' संबंधी विचारों से की है। बर्गसो ने अपनी पुस्तक 'सर्जनशील उत्क्रांति'[31] मे अनुभूति में समय के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि समय दृश्य परिणाम को स्मृतिरूप बना कर ज्ञान में परिवर्तित कर देता है। घनवादी कलाकारों ने भी 1910 तक, दृश्य परिणाम के स्थान पर, स्मृतिजन्य ज्ञान पर निर्भर रह कर चित्रण किया। हुसेर्ल ने वस्तु के ऐंद्रिय ज्ञान का विश्लेषण करके 'कार्टेशियन के चिंतन'[32] पुस्तक में लिखा है कि वस्तु के परिचय के लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि नेत्रपटलीय परिणाम में उसके महत्वपूर्ण अवयवों का समावेश हो और यह कोई जरूरी नहीं है कि उसमें कोई विशिष्ट हूबहू या आदर्श रचना हो। यह विचार अपोलिनेर के विचार से मिलता है। अपोलिनेर के विचार से "यदि हम कुर्सी के आवश्यक अंगों को एक साथ देख रहे है तो हमको कुर्सी का ही बोध होगा, उन अंगो को हम किस दिशा में या किस रचना के अंतर्गत देख रहे है यह विचार गौण है"। पिकासो ने 1910 में लिओ स्टाइन से कहा था 'सिर का अर्थ है, नेत्र, नाक, होठ; उनको हम कैसे भी इधर-उधर रखेंगे तो भी वह सिर ही होगा"। घनवाद की समकालीन साहित्यिक विचारक्रांति से समानता दिखाने के भी प्रयत्न हुए है।

घनवाद केवल स्वयंसीमित कलाशैली नहीं था। उसने पथप्रदर्शन का महत्वपूर्ण कार्य किया और उससे प्रेरणा पाकर भविष्यवाद, सुगैलवाद, सर्वोच्चवाद, वस्तुनिरपेक्षवाद वगैरह वादों ने जन्म लिया। आधुनिक युग में कलात्मक निर्माण-क्षेत्रों में जो नवीन आकार-रचनाएं प्रतीत होती हैं उन सब का उद्‌गम घनवाद द्वारा प्रस्थापित रचना-सिद्धांत है। घनवाद की बीसवीं शताब्दी को सबसे महत्वपूर्ण देन है रचनासम्बन्धी सिद्धांत। घनवाद ने एक अभूतपूर्व मौलिक रचनाशास्त्र का आविष्कार किया जिसने भवन, औद्योगिक वस्तुएं, कपड़े, अलंकार, बरतन, विज्ञापन, फर्नीचर आदि के कलात्मक निर्माण पर अपरिमित प्रभाव डाला। कई जैसे अभिव्यंजनापूर्ण अतियथार्थवादी चित्रकार ने घनवाद के कुछ सिद्धांतों को अभिव्यक्ति के सामर्थ्य के पोषक माना। स्वयं पिकासो ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय, तानाशाही के निषेध में बनाये गये अपने प्रसिद्ध चित्र में घनवादी आकारों व रचना सिद्धांतों का सहारा लिया।

संक्षेप में घनवाद ने कला से परम्परागत आत्मिक व प्रतीकात्मक मूल्यों को हटा दिया, वस्तुसादृश्य के बंधन से जड़-सौंदर्य को मुक्त किया एवं नये रचनाशास्त्र को जन्म देकर आगामी अवकाश-युग के अग्रदूत का कार्य किया।

घनवादी कलाकारों में से पिकासो, ब्राक, लेजे व ह्वान ग्रीस ने घनवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया व ख्याति प्राप्त की; अतः उनके वैयक्तिक कलाकार्य का अध्ययन आवश्यक है।

ह्वान ग्रीस (1887–1927)

होसे विक्टोरियानो गोन्थालेथ ने जो ह्वान ग्रीस नाम से प्रसिद्ध हुए-घनवाद के सिद्धांतों का सबसे अधिक कट्टरता से पालन किया; अतः वे "घनवादियों में सबसे अधिक घनवादी"[33] माने गये। उनका जन्म 1887 में माद्रिद में हुआ व 1906 में उन्होंने पैरिस में उसी मकान में चित्रकलाकक्ष ले लिया जिसमें पिकासो रहते थे। इस समय पिकासो अपना विख्यात चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां' बनाने में व्यस्त थे। ह्वान ग्रीस की कला के विकास पर पिकासो के कलात्मक प्रयोगों का जरूर प्रभाव पड़ा होगा। माद्रिद में ही ह्वान ग्रीस युगेंटस्टिल शैली व तुलूज लोत्रेक की कला से प्रभावित हुए थे और 1910 तक की उनकी कलाकृतियां उन्हीं प्रभावों से सीमित रहीं। 1911 से उन्होंने घनवादी चित्रण शुरू किया और 1913 तक घनवादी अंकनपद्धति पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त किया। ब्राक व पिकासो के घनवाद से ग्रीस का घनवाद वास्तुकला के स्थापनसौंदर्य के अधिक निकट है एवं अधिक ज्यामितीय है; वे कहते "सेज़ान वास्तुकला की ओर बढ़े; मैंने वास्तुकला से आरंभ किया। मैं वृत्तचिति को शीशी में रूपांतरित करता हूं"।[34] पिकासो, ब्राक व ग्रीस की घनवादी कलाकृतियों के मनोवैज्ञानिक प्रभावों में कुछ स्पष्ट भेद हैं; पिकासो में चमत्कृति है, ब्राक में काव्य तो ग्रीस में बौद्धिकता। अत्यन्त तर्कनिष्ठ होने के कारण ग्रीस को कभी 'बौद्धिक सिद्धांतों के व्यापारी' तो कभी 'गतिनीर

कलाकार' सम्बोधित किया गया। पिकासो भी उनको सबसे बुद्धिनिष्ठ घनवादी चित्रकार मानते थे। इससे यह समझना नहीं चाहिये कि वे प्राकृतिक सौंदर्य के आकर्षण के परे थे। असल में उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य को अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से ग्रहण किया था। उनका चित्र विधान उनकी विश्लेषणबुद्धि की पराकाष्ठा का परिचायक है "मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये किन्तु मुझे क्या नहीं करना चाहिये यह मैं भलीभांति समझ गया हूँ"। आत्यंतिक तार्किक होने के कारण ब्राक के साथ उनके मित्रतापूर्ण वादविवाद होते रहते। जब एक दफा ब्राक ने विधान किया "कील, कील से नहीं बनायी जाती बल्कि लोहे से बनायी जाती है"; तब ग्रीस ने प्रत्युत्तर दिया "मेरी मान्यता इसके विरुद्ध है। कील, कील से ही बनायी जाती है। यदि कील की कल्पना बनाने वाले के मस्तिष्क में नहीं होती तो उससे कील बनने के बजाय हथौड़ी या और कोई चीज बन जाती।"

ग्रीस के प्रेरणास्थान थे सेजान व सोरा, और वे दोनों का बहुत आदर करते; किन्तु ग्रीस ने उनकी कला का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि सारासार-चिकित्सा करके उनकी कला के आधारभूत तत्वों को अपनाया।

ग्रीस ने अपनी चित्रणपद्धति के बारे में स्पष्टोक्तिपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं: वे कहते "मेरे चित्र केवल विशुद्ध आकार-रचनाएं हैं व उनमें जो वस्तुसादृश्य दिखायी देता है वह चित्रण करते करते निर्माण हो गया। चित्रण का प्रारम्भ मैंने वस्तुसादृश्य की कल्पना से कभी नहीं किया"। संश्लेषणात्मक घनवाद का भी यही विकासक्रम है। वस्तुनिरपेक्ष रचना से प्रारम्भ करके वस्तुसादृश्य का निर्माण करने की अपनी पद्धति को ग्रीस 'गणित को मानवतावादी रूप देना—चित्रकला की वस्तुनिरपेक्ष पद्धति'[55] कहते। 1915 से 1919 तक बनाये ग्रीस के कुछ चित्रों में इतनी अत्यधिक बौद्धिकता आ गयी है कि ये चित्र कुछ अधिक यांत्रिक पद्धति के एवं कृत्रिम दिखायी देते हैं। ऐसे ही चित्रों से प्रेरणा पाकर ज्यानेरे व ओज़ांफा ने विशुद्धवाद को जन्म दिया।

संश्लेषणात्मक घनवाद को विकास की चरम सीमा तक पहुंचाने का कार्य करके ग्रीस ने कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। पिकासो ने उनकी तर्कनिष्ठता की प्रशंसा करते हुए कहा था "जो चित्रकार वह क्या कर रहा है इसका संपूर्ण ज्ञान रखता है, उसकी कृतियां देखने में बड़ा अनोखा आनन्द मिलता है"[26]।

ग्रीस ने संश्लेषणात्मक घनवाद की भूरे व हल्के रंगों की संगति को अस्वीकार किया। चमकीले रंगों के प्रयोग एवं ज्यामितीय आकारों की स्पष्टता व सामर्थ्य से ग्रीस के चित्रों को स्फटिकों के समान पारदर्शकता, व तेज प्राप्त हुए।

फर्नां लेजे (1881–1955)

फर्नां लेजे का जन्म नार्मंदी के आर्जातां गांव में हुआ। आयु के सोलहवें साल में वास्तुकला के अध्ययन के लिये वे ब्रितनी के एक वास्तुकार के कार्यालय में नौसिखिये के रूप में काम करने लगे। 1900 से 1902 तक उन्होंने पेरिस में मानचित्रकार की नौकरी की। एक साल की सैनिक सेवा के बाद उन्होंने चित्रकला का अध्ययन आरम्भ किया। कुछ साल तक उन पर मातिस व सेजान की कला का काफी प्रभाव था। वास्तुकला के अध्ययन के कारण सेजान की कला ने उनको आकृष्ट किया था। किन्तु उनका कलात्मक व्यक्तित्व इतना पृथक् था कि वे किसी बाह्य प्रभाव के आगे नहीं झुके व उन्होंने सेजान के प्रभाव को भी ऐसी नयी दिशा में मोड़ दिया कि उनकी कला पिकासो, ब्राक व ग्रीस की कला से बिलकुल भिन्न प्रतीत होती है।

कुछ समय तक उनका घनवादी कलाकारों से संपर्क रहा व 1910 से उन्होंने घनवादियों की प्रदर्शनियों में भाग लिया। अतः उनके उस काल के चित्र घनवादी कहलाते हैं। यद्यपि उनमें घनवाद के सिद्धान्तों का अनुसरण बहुत सीमित है व जैसे हम पहले देख चुके हैं, उनको 'घनवादी' कहने के बजाय 'नलीवादी' कहते थे। 1910 में बनाये उनके चित्र 'जंगल में विवस्त्र मानव' व 1913 में बनाये चित्र 'आकारों का विरोध'[37] स्पष्ट रूप से स्मारकीय दर्शन के व वास्तुकला से प्रभावित है। रंग संबंधी वैज्ञानिक सिद्धान्तों का वे विश्वास नहीं करते व आकारों के सामर्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य से ही उन्होंने रंगों का प्रयोग किया। उनके गहरी व सामर्थ्यपूर्ण रेखा से अंकित आकारों में वस्तुनिष्ठता नहीं है। पूर्ण काल्पनिक ज्यामितीय आकारों द्वारा उन्होंने वस्तुओं की ओर संकेत किया व सेजान के उपदेश—'वर्तुचिति गोल व शंकु से चित्रण करो'—का शब्दशः पालन किया। सेजान के प्रसिद्ध चित्र 'लाल जाकिट पहने हुए लड़का' में लड़के के कंधे का जोड़ बिलकुल यंत्र समान बना है; उसका अनुसरण कर के लेजे ने ऐसी यांत्रिक मानवाकृतियां चित्रित की जिनके जोड़ ही नहीं है। उनके चित्रों में वृक्ष के तने पाइप जैसे, फूल लोहे की पत्तियों जैसे व बादल धातु के गोले जैसे दिखायी देते हैं।

घनवादी चित्रों के समान लेजे के आकार परस्परासीन[38]—एक दूसरे पर चढ़ाये हुए—नहीं है बल्कि यंत्र के पुर्जों के समान एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। समय के साथ उनकी मानवाकृतियां व पृष्ठभूमि की वस्तुएं अधिक यंत्र समान बनती गयीं और रंगसंगति अधिक चमकीली हो गयी एवं संपूर्ण चित्र ऐसे दिखायी देने लगे जैसे कि नलियों, चक्रों, स्प्रिंग आदि पुर्जों को जोड़ कर बनाये यंत्र। संयुक्त-राष्ट्र-परिषद् के सभा-भवन में उन्होंने जो आलंकारिक भित्तिचित्रण किया वह पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष है। उन्होंने कई सार्वजनिक स्थानों का भित्तिचित्रण किया।

1923–24 में बनाये गये चित्रपट 'यंत्रों का समूह नृत्य'[39] के निर्माताओं में लेजे भी थे। इस चित्रपट में कप, तश्तरियां, चायदान, चम्मच, छुरी वगैरह

भोजनकक्ष की वस्तुएं व कुछ यत्र के पुर्जे आदमियों के समान नृत्य, अभिनय आदि क्रियाओ मे व्यस्त हुए चित्रित किये हैं एव मानवनिर्मित वस्तुएं यदि सजीव होकर क्रियाशील होंगी तो उस अनोखी दुनिया का दर्शक पर कैसा चमत्कृतिपूर्ण प्रभाव पडेगा यह इस चित्रपट से विदित होता है। 1931 में जब लेजे पहली बार अमेरिका गये तब वहा की गगनचुंबी वास्तुकला, यान्त्रिक दृश्यो व शहरी व्यस्त जीवन का उन पर अपूर्व प्रभाव पड़ा। वापस लौटने पर उन्होंने पॅरिस-ऑपेरा के नृत्य नाटक के लिए साजसज्जा का काम किया। 1937 मे उन्होने पॅरिस की विश्व-प्रदर्शनी के लिए विशाल भित्तिचित्र बनाया। 1940 से 1945 तक वे अमेरिका में रहे और वहा के यांत्रिक जीवन को उन्होंने चित्रित किया जिसम साइकिल सवार, कसरत का काम करने वाले आदि लोगो के चित्र प्रसिद्ध हैं। पॅरिस लौटने पर उन्होंने नाटकगृहों, नृत्यगृहो एव सार्वजनिक स्थानो की साजसज्जा एवं कपडो, मिट्टी के बर्तनों व रंगीन काचचित्रों की पूर्व कल्पनायें बनायी। साजसज्जा के कार्य के अतिरिक्त उन्होने चित्रण भी किया। 1955 मे इस स्वतंत्र प्रतिभा के कलाकार का देहांत हुआ।

जार्ज ब्राक (1882–1963)

जार्ज ब्राक का जन्म पॅरिस के निकटवर्ती गांव आर्ज्यांति में 1882 में हुआ। उनके पिता व दादा घरों को रंगने सजाने का काम करते व फुरसत में बार्बिजां शैली के चित्र बनाते। 1980 मे ब्राक परिवार ल आव्र रहने गया। बचपन में ब्राक की शालेय अध्ययन या कला में विशेष अभिरुचि नही थी और वे समुद्र के किनारे जा कर घंटों बिताते, जिस अनुभव के बारे में उन्होंने बाद में लिखा "वहा मैं अनत को अनुभव किया करता"।

कुछ समय तक ल आव्र म गृहो की साजसज्जा करने वाले एक कलाकार से काम सीखने के बाद ब्राक ने पॅरिस जाकर उसी काम का विशेष अध्ययन करके साजसज्जा का अधिकारपत्र प्राप्त किया। बचपन मे सीखे हुए साजसज्जा के काम का उनकी कला एव घनवाद के विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। 1903 से उन्होंने दो साल तक अकादेमी युंबेर [40] में व कुछ समय तक एकोल द बोजार में लियो बोन्ना के कलाकक्ष में कला का अध्ययन किया। लूव्र संग्रहालय जाकर वे महान् कलाकारो की कृतियों का अध्ययन करते जिनमें से पुसें व कोरो की कृतियां उनको बहुत पसन्द थी। ल्युक्सेम्बुर संग्रहालय में–जहाँ केयबोत का प्रभाववादी चित्रों का संग्रह रखा गया था–वे प्रभाववादी चित्रों का अध्ययन करने जाते। प्रभाववादी चित्रों मे से वे विशेषतया मोने व रेन्वार् के चित्रों से आकर्षित हुए थे व सेजान की कला उनको आजीवन प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बनी रही। ब्राक के इस काल के चित्रों मे विशेष प्रतिभा का कोई प्रमाण नही मिलता; इन चित्रों में प्रभाव-वादी सिद्धान्तों का पालन था व ये चित्र बाद मे ब्राक ने नष्ट कर दिये।

1905 में सलों दोताान में आयोजित फाव प्रदर्शनी ने उनकी कला को नव-जीवन प्रदान किया। मातिस व देरें का अनुकरण करके उन्होंने आवेशपूर्ण अंकन-पद्धति में, विशुद्ध रंगों का प्रयोग करके, कुछ चित्र बनाये जिनके मुख्य विषय थे विवस्त्र मानवाकृतियाँ, गृहान्तर्गत दृश्य, प्राकृतिक दृश्य व वस्तु-समूह। इनमें से सात चित्र 1906 की सलों द अँदेपादां में प्रदर्शित किये गये। उसी साल उन्होंने ओथोन फ्रिस के साथ में फाव पद्धति के कुछ प्रकृति-चित्र बनाये व 1907 में भूमध्य सागरीय प्रदेश में लेस्ताक गाँव के प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित किया। अब उनके चित्र प्रभाववाद से पूर्ण भिन्न और फाववादी दिखायी देने लगे; किन्तु ब्राक के फाववाद में व्लामँक व देरें के भावनाओं के जोश को संयम व नियोजन से नियंत्रित किया था व उनके चित्र प्रसन्नता के भाव लिये हुए थे। ये सब चित्र बिक गये। ब्राक के मतानुसार ये उनके प्रारंभिक सर्जनपूर्ण चित्र थे।

1907 में ब्राक ने सेजान के चित्रों की प्रदर्शनी देखी और उससे उनकी फावनिष्ठा को धक्का पहुँचा। उसी साल अपोलीनेर ने उनको पिकासो से परिचित कराया व उन्होंने पिकासो का चित्र 'आविन्यों की स्त्रियाँ' देखा। पिकासो ने नीग्रो कला के स्वाभाविक आकार सौंदर्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया। 'विवस्त्र आकृति' (1908) ब्राक का पहला घनवादी चित्र था। अब फिर लेस्ताक जा कर ब्राक ने घनवादी पद्धति के प्रकृति-चित्र बनाये जिनको देखकर वोक्सेल ने उस शैली को 'घनवादी' नाम से सर्वप्रथम संबोधित किया।

घनवाद का जन्म व विकास, पिकासो वा ब्राक के संयुक्त प्रयत्नों का फल था; किन्तु दोनों के उद्देश्यों में मौलिक अन्तर था। इस मौलिक भिन्नता के कारण पिकासो के चित्रण में रचनाकौशल व आश्चर्यभाव पर बल है जबकि ब्राक के चित्रण में काव्यात्मक सौंदर्य का सुरचित दर्शन है। पिकासो की कृतियों में मूर्तिकला के समान घनत्व का दर्शन है जबकि ब्राक की कृतियों में रंगमगति का सौंदर्य है एवं दर्शन में वे चित्रकला से एकनिष्ठ हैं। पिकासो के चित्रों का प्रभाव मनोवैज्ञानिक है जबकि ब्राक के चित्र अधिक वस्तुनिष्ठ व आलंकारिक हैं।

प्रकाश व अवकाश को जड़ रूप दे कर उनको रचना के अंगों में सफलता-पूर्वक अन्तर्भूत करना ब्राक का महत्त्वपूर्ण आविष्कार था। ब्राक ने प्रकाश व अवकाश को भी साकार सौंदर्य प्रदान किया; उनकी दृष्टि में वस्तुओं के बीच का रिक्त अवकाश रचनासौंदर्य के निर्माण में उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि वस्तुएँ। ब्राक व पिकासो ने ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों के स्थान पर रचना के सर्जनशील तत्वों को किस तरह प्रस्थापित किया यह हम पहले देख चुके हैं। ब्राक के फाव काल के चित्रों के विषय अधिकतर प्रकृति-दृश्य थे; घनवादी चित्रण के लिये उन्होंने वस्तु-समूहों को विषय के रूप में चुना। उनके वस्तुचित्रों में अधिकतर वाद्ययंत्र, समाचार-पत्र, भोजनगृह की सुपरिचित वस्तुएं चित्रित की गयी हैं जिनसे दर्शक सहवासजनित स्नेह व स्पर्शसुख की सुलभता से अनुभव करता है। वस्तुओं

के मानवनिर्मित ज्यामितीय आकार घनवादी रचना के लिये बड़े उपयुक्त होते हैं। ब्राक जीवननिष्ठ कलाकार थे और जब उनकी घनवादी कलाकृतियों को वस्तु-निरपेक्ष शैलियों का जन्म हुआ इसमे कोई सदेह नही है किन्तु ब्राक के घनवाद का लक्ष्य था घरेलू जीवन का प्रसन्नतापूर्ण दर्शन और इस दृष्टि से वे नाबि चित्रकारों के अधिक निकट है। आश्चर्य भाव बढाने के उद्देश्य से उन्होंने चित्र में अक्षरों का समावेश करना आरंभ किया व बाद में प्रत्यक्ष वस्तुओं को चित्रक्षेत्र में चिपका कर चित्ररचनाए की। कलाकृति में कोलाज का प्रयोग करने का श्रेय ब्राक को ही है। कोलाज पद्धति से उनकी रचनाएं अधिक भौतिक बन गयी। घनवाद की मंद रगसगति में नैसगिक चमक आ गयी एव प्राकृतिक अवकाश का पूर्ण लोप हो गया। संश्लेषणात्मक घनवाद से पिकासो को रचना-कौशल का मौका प्राप्त हुआ तो ब्राक काव्यात्मक सौंदर्य व आलंकारिकत्व की ओर बढ़े।

प्रथम विश्वयुद्ध की सैनिक सेवा के पश्चात् उन्होंने पुनश्च घनवादी चित्रण प्रारम्भ किया। उनकी कला का पूर्ण विकास हो चुका था और उसमें सशोधनवृत्ति नही रही थी; अब उन्होने कला को मानवतावादी रूप देने के प्रयत्न किये एव इस विचार से उनकी कला की तुलना शार्दें की कला से की जाती है।

1918 मे बनाये उनके चित्र 'वादक'[41] में संश्लेषणात्मक घनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है किन्तु उसमें वास्तविकता से सम्पर्क रखने के प्रयत्न भी हैं। ब्राक अनुभव कर रहे थे कि प्रयोगों द्वारा घनवादी रचनाशास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था और वास्तविकता के सौंदर्य की उपेक्षा करके केवल रचना की दिशा में अधिक प्रयोग करते रहने में कला के यांत्रिक बनने का धोखा था। अतः उन्होंने केवल कलात्मक प्रयोग करना छोड़ दिया और आसपास की दुनियां के नैसर्गिक सौन्दर्य की पुनरानुभूति घनवादी चित्रण से किस तरह की जा सकती है इसका वे विचार करने लगे और अन्त तक उसी दृष्टिकोण को सामने रखकर चित्रण किया। उन्होंने मानवाकृतियो एव प्राकृतिक दृश्यों के भी कुछ चित्र बनाये किन्तु उनको जीवन का सच्चा सौंदर्य मूक व अचल वस्तुसमूहों में ही दिखाई दिया। आत्मीयता से बनाये उनके वस्तुचित्रों मे जीवन का सौंदर्यपूर्ण काव्य साकार हो उठा है, अतः उनको 'चित्रकाव्य' नाम समुचित है। घनवादी रचनात्मकता होते हुए वस्तुचित्र नैसर्गिक आकर्षण से परिपूर्ण हैं। ब्राक के वस्तुचित्रों का यह गुण समय के साथ अधिक प्रभावी बना व शार्दें के बाद इतने आकर्षक वस्तुचित्र किसी भी अन्य चित्रकार ने नही बनाये।

1929 के बाद उन्होंने नार्मंदी के सागरतटों के कई प्रकृतिचित्र बनाये। कालिमा छाये हुए आसमान में ठोस आकार के बादलों, गहरे रंग के सागर किनारों पर छोड़ी हुई नावों व खडी काली चट्टानों पर चमकती सूर्यकिरणों से चित्रांतर्गत वातावरण गूढतापूर्ण बन गया है। सभी वस्तुएं स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिये हुए व ठोस हैं। चित्रो पर घनवादी रचनात्मकता का प्रभाव स्पष्ट है।

1922 से ब्राक ने कानेफोरस[42] ऋतु व सम्पन्नता के देवता—की चित्र-मालिका बनायी। इन चित्रों में घनवाद का नाम ही नहीं है; चित्र आलंकारिक शैली के हैं और उन पर ग्रीक कला का स्पष्ट प्रभाव है; देवता की आकृति मूर्ति के समान ठोस व स्मारकोचित है। यही ठोसपन उनके बाद में बनाये उभारदार शिल्पो मे एव 1952 में बनाये शिल्पचित्र 'सूर्य का रथ'[43] मे हैं। चित्रों के विषय प्राचीन किन्तु अंकनपद्धति व दर्शन आधुनिक हैं। ब्राक की बनाई हुई घोड़ों की शिल्पाकृतियो मे पौराणिक कल्पना का सामर्थ्य व घनवाद का रचना सौंदर्य एक साथ प्रतीत होते हैं।

1931 व 1938 के बीच ब्राक ने बहुत से वस्तुचित्र बनाये जो उनके द्विविध व्यक्तित्व के प्रमाण है। कुछ वस्तुचित्र आलंकारिक व रचनात्मक हैं तो कुछ वस्तुचित्रो मे वस्तुओं के नैसर्गिक आकर्षण का आत्मीयतापूर्ण दर्शन हैं। 'मेंडोलिन व वस्तुएं' (1935), 'गोलमेज पर वस्तुसमूह'[44], 'लालमेजपोश पर वस्तुसमूह' (1936) ये पहले प्रकार के उदाहरण है तो 'संगमरमर का मेज' (1925), 'चिमनी व वस्तुसमूह' (1927)[45] 'बिलियर्ड का मेज' (1945) ये दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। ब्राक के पिता व दादा साजसज्जा का काम करते थे एव ब्राक की निजी कला का आरम्भ भी साजसज्जा के कार्य से ही हुआ था; अतः कोई आश्चर्य नही है कि उनकी कला में चमकीली व सुन्दर रंगसंगति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था।

1938 के पश्चात् ब्राक ने वस्तुचित्रण में आलंकारित्व व रचना के प्रभाव को कम कर दिया और वस्तुओं के नैसर्गिक आकर्षण पर बल देकर वस्तुचित्रों को अभिव्यक्तिपूर्ण बनाने के प्रयत्न किए, परिणामस्वरूप ब्राक के चित्र कुछ धार्मिक, रहस्यपूर्ण व अधिक प्रभावी बन गए। ब्राक का चित्र 'अहकार'[46] (1938) इस विचार से अभ्यसनीय है। चित्र ने मानव की खोपडी व त्रास का प्रतीकात्मक प्रयोग है, चित्र अभिव्यक्तिपूर्ण होते हुए उसके सौंदर्यात्मक प्रभाव मे कोई न्यूनता नही है। उनके 'चित्रकला-कक्ष'[47] के कई चित्र रहस्यपूर्ण वातावरण से ओतप्रोत है, इन चित्रो का आरम्भ 1948 में हुआ एव इनमे चित्रकार के कार्यकक्ष के अन्तर्गत सफेद पक्षी को उड़ते हुए चित्रित कर वातावरण मे गूढता का निर्माण किया है।

हर तरह के वस्तुचित्रों से ब्राक का जड वास्तविकता के बाह्य सौंदर्य का आकर्षण छिपा नहीं रहता। उनके वस्तुचित्रो मे जगह-जगह मार्बल की चमकीली रंगबिरंगी सतहें; दीवारकागजो का सुन्दर अलंकरण, लकडी के रेशों का लहरों के समान मनोहर गतित्व वगैरह का प्रयोग है। ब्राक एक ऐसे चित्रकार थे जो जड वास्तविकता के सौंदर्य से मुग्ध हो गये थे।

1936 के करीब ब्राक ने वस्तुसमूह के साथ मनुष्याकृतियों का अनोखे ढंग से मिलाप करना आरम्भ किया जिसके 'द्वंद्वगान'[48] (1937), 'मेंडोलिन-वादिका'

(1937) व 'ताश का खेल' (1942)[49] प्रसिद्ध उदाहरण है। इन चित्रों को मानवचित्र कहना अनुचित होगा क्योंकि पृष्ठभूमि के आलंकारित्व व वस्तुसमूह की रचनात्मकता के सामने मानवाकृतिया कागज की काटी हुई आकृतियां जैसी प्रतीत होती है। मानवाकृतियो को हलके व गहरे रंगों के क्षेत्रों मे विभाजित कर चित्र के सम्पूर्ण रचनात्मक प्रभाव में एकरूप कर दिया है।

ब्राक ने मूर्तिकला में भी कुछ प्रयोग किए और उसके कारण को स्पष्ट करते हुए बताया "इससे कलाकार चित्रकला के अधीन नही होता व अधीनता से मुक्त रहना कलाकार के लिए आवश्यक है"। 1920 मे बनायी 'खडी महिला' शिल्प पर घनवाद का प्रभाव है। उनके घोड़ों व मछलियों के शिल्प समतल व रेखात्मक है और उनमे आधुनिक ढग का आलंकारित्व है।

1937 में उनको 'कार्नेजी पुरस्कार' प्राप्त हुआ व 1948 मे 'वेनिस-द्विवार्षिक' का सर्वोच्च पुरस्कार[50] मिला। 1956 मे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उनको 'सम्माननीय डाक्टर' की उपाधि से विभूषित किया।

उनके अन्तिम चित्रो में आसमान् मे उडती हुई दो या तीन चिडियो या घोंसले को लौटती हुई मादा चिडिया को चित्रित किया है। चित्रों में पराकाष्ठा का सरलीकरण है व चित्र गूढ व प्रभावपूर्ण बन गये है। 1963 में घनवाद के इस महान् प्रणेता की मृत्यु हुई।

पिकासो को कलात्मक प्रयोग करके नवनवीन आविष्कार करने में आनन्द मिलता जबकि ब्राक वास्तविकता के सौन्दर्य को भुला कर केवल 'कला के लिये कला' के ध्येय के पीछे भाग नही सकते थे। बचपन में वे सागरी दृश्य को घंटों तक देखते रहते व उसी तन्मयता का परिचय हमको उनके चित्रो से भी मिलता है। ब्राक व पिकासो की तुलना करते हुए कलासमीक्षक युद्द ने लिखा है "कलात्मक एकता को एक ने (ब्राक ने) सूक्ष्मग्राही सौन्दर्य-संवेदनाक्षमता का व दूसरे ने (पिकासो ने) असाधारण रचनादृष्टि का योगदान किया"[51]। सौन्दर्यवादी होते हुए ब्राक अध्ययन व शास्त्रशुद्धता का महत्त्व जानते थे एवं कहते "मैं ऐसे नियम को पसन्द करता हूँ जिससे भावना का समुचित पथप्रदर्शन होता है"[52]। उनकी कला मे सौन्दर्य के गूढ सामर्थ्य का शास्त्रीयता से सुयोग्य समन्वय है। उन्होने अपने कलासम्बन्धी विचारो को निम्न शब्दो में स्पष्ट किया "किसी भी वस्तु को विशिष्ट सत्य मे सीमित नहीं रखना चाहिये, जैसे कि पत्थर किसी दीवार का हिस्सा हो सकता है, भयकर हथियार हो सकता है, खेलने की गोली हो सकता है, पवित्र मूर्ति हो सकता है ......या कोई अन्य वस्तु हो सकता है। मेरे लिये वस्तुएँ इतना ही महत्त्व रखती हैं कि मैं उनमे आपस में, या उनमें और मुझमे कोई आन्तरिक सुसंवादित्व को अनुभव करता हूं। ......ऐसी अवस्था मे बौद्धिक विचार नष्ट हो जाते हैं—यह एक अतीव शातिप्रद अवस्था है—और सब कुछ सरल सुसम्भव व सुयोग्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक क्षण साक्षात्कार का क्षण बनता है।........यही काव्य है।........मुझे स्पष्ट

का 'आन्वियों की स्त्रियाँ' सबसे प्रसिद्ध चित्र है। पिकासो के नीग्रो काल के चित्रों में रॅम्बो की घोषणा 'आदिम मानो' का प्रत्यक्ष रूप में कलात्मक अनुकरण करके कलाकारों को आह्वान किया है। आदिमवाद का पिकासो के लिये केवल सौन्दर्यात्मक या सांस्कृतिक महत्व नहीं था। आदिमवाद से पिकासो को अपनी सहजवृत्तियों द्वारा सर्जन करने का संदेश मिला।

1908–1909 के करीब पिकासो ने सेजान से प्रभावित होकर फ्रेल व ग्रोर्ता में ज्यामितीय नियमबद्धता से युक्त प्रकृतिचित्र बना कर विश्लेषणात्मक घनवाद को प्रकट रूप से आरम्भ किया। अब उनकी कला में नीग्रो कला के आवेश व सरलीकरण का स्थान घनवादी रचनात्मकता ने ले लिया। 1912 में कोलाज पद्धति का आविष्कार होकर घनवाद की विश्लेषणात्मक पद्धति पीछे रह गयी व संश्लेषणात्मक घनवादी चित्र बनने लगे। इस पद्धति के पिकासो के चित्रों में 'वायोलिन' (1913), 'आराम कुर्सी पर बैठी महिला' (1913), 'गिटार, खोपड़ी व समाचारपत्र' (1914)[62] प्रसिद्ध हैं।

1915 से पिकासो ने नवशास्त्रीयतावादी शैली के कुछ रेखाचित्र बनाये जिनमें अँग्र के समान रेखाकनशैली के वोलार व अपोलिनेर के व्यक्तिचित्र हैं। वैसे देखा जाये तो घनवाद भी शास्त्रीय शैली था, अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि पिकासो व घनवादी चित्रकारों को दाविद् व अँग्र की कलाकृतियाँ बहुत पसन्द थीं। 1917 में पिकासो का ज्यों कावतो से परिचय होकर उन्होंने कावतो के समूहनृत्य 'कवायत'[63] के लिये रंगमंच की साजसज्जा की, एवं पृष्ठभूमि के पर्दे चित्रित किये। 1916 में पिकासो द्यागिलेफ के समूहनृत्य के लिये रंगमंच की सजावट व पर्दे तैयार करने को रोम गये थे जहां उनका नर्तिका ओल्गा से परिचय होकर 1918 में विवाह हुआ। इटाली की यात्रा में देखी हुई फ्लोरेन्स, नेपल्स व पाम्पेई के उत्खनन में प्राप्त प्राचीन शास्त्रीय कलाकृतियों व ओल्गा के ग्रीक-आदर्शवत् सौन्दर्य के परिणामस्वरूप उनके 'शास्त्रीयतावादी काल'[64] का आरम्भ हुआ और उन्होंने स्मारकीय शैली के, मूर्ति समान ठोसपन लिये हुए, ग्रीक कला से प्रभावित चित्र बनाये जिनमें 'माता व बालक' (1922); 'श्वेतवस्त्र पहिने हुए स्त्री' (1921), 'पनघट पर तीन स्त्रियाँ' (1921)[65] बहुत प्रसिद्ध हैं। नवशास्त्रीयतावादी एवं शास्त्रीयतावादी चित्रण के साथ पिकासो घनवादी चित्रण भी कर रहे थे और उन्होंने वाद्ययन्त्रों से युक्त वस्तुचित्र व 'तीन वादकों'[66] के चित्र बनाये।

1924 में पिकासो अतियथार्थवाद के प्रणेता व साहित्यिक आन्द्रे ब्रेतों से परिचित हुए। पिकासो ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उन्होंने न कभी अतियथार्थवादी कलाकृतियाँ बनायीं न उनके अनियन्त्रित स्वयचालन के तत्त्व का विश्वास किया; किन्तु अतियथार्थवाद के अंतर्मन की काव्यमयता, काल्पनिक सृष्टि एवं गूढ़ अंतःसृष्टि के दार्शनिक तत्त्वों ने उनकी कला पर जरूर प्रभाव छोड़ा। 1925 के करीब पिकासो ने प्रतिमारूप एवं द्विप्रतिम आकृतियों[67] को चित्रित किया जो अतियथार्थवाद

के विचारों के अनुसार है और आन्द्रे ब्रेंतो जिसको 'प्रकपनकारी सौन्दर्य'[68] कहते उसके उदाहरण है। पिकासो के वैवाहिक जीवन का यह काल पारिवारिक संघर्षों में से गुजर रहा था एवं हो सकता है कि इसी कारण पिकासो ने अन्तर्मन की खोज की आवश्यकता को महसूस करके, अस्वस्थ मनःस्थिति में अतियथार्थवादी प्रभाव से युक्त चित्र बनाये हो या दृश्य आकारों की केवल ज्यामितीय सौन्दर्यात्मक रचना करने के बजाय अपनी चित्र विषय के प्रति आत्मिक भावनाओं के अनुकूल अभिव्यक्तिपूर्ण रचना करने के प्रयत्न किये हों। उनके अतियथार्थवादी चित्रण का आरम्भ 'तीन नर्तक' (1925)[69] चित्र से हुआ जिसमें नर्तकों की आकृतियां बहुत ही बेतुकी चित्रित की है व उनके आकारों में अनोखा असह्य दर्द है जैसे कि वे 'अन्तकाल का नृत्य'[70] नाच रहे है। उनके अतियथार्थवादी चित्रों से ऐसे प्रतीत होता है कि उन्होंने वस्तुनिष्ठ रचनात्मकता के घनवादी ध्येय को छोड़ कर आतरिक विह्वल मानसिक अवस्था को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। फिर भी इस काल के चित्रों में 'स्वप्न'[71] (1932) जैसे अपवादमात्र चित्र में विश्राम व शाति के भाव हैं।

1934 से पिकासो के जीवन में फिर प्रसन्नता छा गयी व उन्होंने मारी तेरेस, दोरा मार व अपने बच्चो के कई चित्र बनाये जो ऐंठनदार व द्विप्रतिम होते हुए प्रसन्नता लिये हुए हैं व रचना व रंगसगति की दृष्टि से बहुत ही आकर्षक हैं। इस काल में उन्होंने अपने बच्चों के कुछ नैसर्गिकतावादी पद्धति के चित्र भी बनाये।

पिकासो की अतियथार्थवादी एव घनवादी शैलियो का भावनापूर्ण उत्कर्ष उनके 1937 में बनाये विश्वविख्यात चित्र 'ग्वेर्निका'[72] मे देखने को मिलता है। यह विशाल चित्र (11½'×25½') उन्होंने पॅरिस की प्रदर्शनी के स्पॅनिश विभाग मे रखने के लिये बनाया व उसके लिये कई रेखाचित्र व अभ्यासचित्र बनाये। चित्र करीब एक ही नीले रंग मे बनाया है व चित्र का विषय है जर्मन तानाशाही आक्रामकों द्वारा किया गया स्पेन के सीमावर्ती गाँव ग्वेर्निका का ध्वस। घनवादी आकारो का पर्याप्त सरलीकरण करके चित्र बनाया गया है और ये आकार—बैल, रोती हुई स्त्री, घोड़ा वगैरह—उनकी पुरानी चित्रमालिकाओं मे से लिये गये हैं, जिनको हम उनके चित्र 'साड से लड़ाई' (1934), 'मूर्तिकार का कार्यकक्ष' (1933), 'मिनोतोरमाशिमा' (1935)[73] में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इन आकारो का प्रतीकात्मक महत्त्व है और उसके संदर्भ में पिकासो ने कहा था, "यहाँ बैल का चित्रण तानाशाही के प्रतीक-रूप मे नही किया है बल्कि वह पाशवी अत्याचार व अन्याय का प्रतीक है" घोड़ा जनता का प्रतीक है"" ग्वेर्निका का चित्रण प्रतीकात्मक है"। यह प्रतीकात्मकता हमको पिकासो के व्यक्तिचित्रों में भी देखने को मिलती है जिनमें बाह्य रूप की अपेक्षा व्यक्ति के अंतर्मन का दर्शन कराने के प्रयत्न हैं। 'ग्वेर्निका' पिकासो की कला का परमोत्कर्ष बिन्दु है और उनके सभी कलात्मक प्रयोगो का उसमे सार है। यह एक सोच-समझकर बनाया गया सामाजिक महत्त्व का चित्र है व इसमे युद्ध की निघृणता व विनाशकारी तत्वों को समाज के सम्मुख रख कर निर्भत्सना की

है। इस चित्र का सामाजिक महत्त्व के अतिरिक्त व्यक्तिगत महत्त्व भी है क्योंकि इसमें पिकासो की कला के विकास का इतिहास है जिसका प्रारम्भ उनके 'नीले काल' व विश्लेषणात्मक 'घनवाद' से हुआ। इस चित्र को लेकर पिकासो ने कलाकार के सामाजिक कर्तव्य के बारे में जो विचार व्यक्त किये है वे अवश्य मननीय हैं, वे कहते है, "आपकी कलाकार के बारे में क्या धारणाएँ है ? क्या वह एक ऐसा बुद्धिहीन प्राणी है, जो केवल आंखो से देख सकता है यदि वह चित्रकार है, जो केवल कानों से सुनता है यदि वह संगीतकार है, जिसकी सब शक्ति केवल दिल में ही है यदि वह कवि है, या जिसके पास शक्तिशाली स्नायुओं के अतिरिक्त और कोई साधन सम्पत्ति नहीं है यदि वह मुष्टियोद्धा है ? इसके विपरीत उसके राजनैतिक विचार भी होते है। जिस समाज के कारण कलाकार को इतना अनुभूतिपूर्ण जीवन प्राप्त होता है उस समाज के प्रति निष्कर्तव्य होकर स्वान्तःसुखाय कलासाधना करते रहना कलाकार के लिये कैसे सम्भव है ?" 'ग्वेर्निका' को चित्रित कर पिकासो ने आधुनिक कलाकारों को एक तरह से संदेश दिया है कि "कला के लिये कला' केवल अर्धसत्य है और उसको मानवीय जीवन के सम्पूर्ण सत्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। 'ग्वेर्निका' द्वारा पिकासो ने उच्चभ्रू समीक्षकों व आत्मसंतुष्ट प्रतिष्ठित कलाप्रेमियों के भ्रममूल दृष्टिकोण का भंडाफोड़ करके स्पष्ट किया है कि कला का सामाजिक महत्त्व भी होता है। 'ग्वेर्निका' का चित्रण ऐसे समय हुआ जब आधुनिक कलाकार पराकाष्ठा को आत्मनिष्ठ बनता जा रहा था। 'ग्वेर्निका' ऐतिहासिक चित्रण का आधुनिक रूप है। 1946 मे बनाया पिकासो का चित्र "जीवन का आनन्द' अभिव्यक्ति मे ग्वेर्निका से बिलकुल भिन्न है, विषय हर्षपूर्ण है, व चित्र का दर्शन व रंगसंगति प्रसन्न है। 1952 मे पिकासो ने वालोरी के गिरजाघर मे "युद्ध' व 'शांति'[74] जैसे परस्परविरोधी विषयो पर दो विशाल भित्तिचित्र बनाये। 1950 व 1960 के बीच पिकासो ने देलाक्रा का चित्र 'अल्जियर्स की स्त्रियां'[75] वेलास्केस का चित्र 'राजकन्या व दासियां'[76] व माने का चित्र 'तृण पर भोजन' को आधार के रूप में लेकर उन प्रसंगों पर अपने ढंग की चित्रमालिकाएँ बनायी। उन्होंने यूनेस्को के पेरिसस्थित भवन को विशाल भित्तिचित्र से सजाया। 1973 मे बीसवी सदी के इस महान कलाकार का निधन हुआ।

पिकासो एक उच्च कोटि के आधुनिक मूर्तिकार भी थे। उनकी उत्कृष्ट मूर्तियों में से 'मजाकिया' (1905), 'मुर्गा' (1932), 'धातु की रचना' (1930), 'बिल्ली' (1941), "भेड़वाला आदमी' (1943), व 'बकरी'[77] ये मूर्तियां बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने एनग्रेविंग व लियोग्राफी का भी काम किया व उनकी सेरेमिक्स की कृतियां बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

पिकासो ने स्वयं को किसी पूर्वनिश्चित धारणाओं के बंधन से सीमित नहीं रखा और आसपास की विशाल बहुरंगी दुनिया से निरन्तर प्रेरणा लेकर सर्जनपूर्ण कलाकृतियों को जन्म दिया। पिकासो ने अपने एक मित्र से कहा था, "मैं शैलीविहीन

चित्रकार हूं"[78]। मारिग्रो दे मिकेलि ने पिकासो के बारे में लिखा है, "पिकासो की कला के चैतन्य व परिवर्तनशीलत्व के पीछे मुख्य रहस्य यह है कि वे संसार व मानवजाति के प्रति भावनात्मक ग्रहण में अत्यधिक तत्पर थे व उनमें सूक्ष्म संवेदनशीलत्व था"[79]। गर्ट्रूड स्टाइन ने उनके बारे में लिखा है "....पिकासो जड़सौंदर्य से इतने मुग्ध थे कि आत्मा का विचार तक करने को उनको समय नहीं था"[80] जबकि मोरिग्राक लिखते हैं "पिकासो आत्मा का असाधारण द्वेष करते थे"[81]।

पिकासो ने अपनी कला के सम्बन्ध में जगह-जगह जो विधान किये हैं उनके जरिये भी उनकी कला का रसग्रहण किया जाना चाहिये। उनके अपने मित्रों से प्रकट किये कलासम्बन्धी विचार आधुनिक कला का सत्यस्वरूप समझने की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है। पिकासो ने कहा था "मेरी समझ में नहीं आता कि आधुनिक कला में संशोधन का कोई महत्त्व है। मेरे विचार से कला के संदर्भ में 'संशोधन' कोई अर्थ नहीं रखता; अकल्पित लाभ यही कला में सब कुछ है।[82] जीवन का अर्थ प्राप्त करने के उद्देश्य से एकाग्रचित्त हुए मार्गस्थ का अनुसरण करने को कोई उत्सुक नहीं रहता; किन्तु जिसको कुछ आकस्मिक लाभ होता है, अब वह किसी भी चीज का क्यों न हो, कम से कम लोगों में औत्सुक्य पैदा करता है यद्यपि वह शायद लोगों की प्रशंसा का पात्र नहीं होता"। पिकासो के उपरिनिर्दिष्ट विधान से, हम समझ सकते हैं कि वे इतने पराकाष्ठा के जड़वादी क्यों थे। पिकासो ने अन्तिम विश्लेषण करके कला के सारतत्त्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "अन्त में सबका मूल प्रेम है; अब उसका साक्षात्कार आपको किसी भी रूप में हो। वास्तव में इन चित्रकारों की आँखें निकाल देनी चाहियें जैसे गोल्डफिंच पक्षी की निकाल देते थे जिससे कि वह अधिक मधुर स्वरों में गा सके"[83]। पिकासो के इस विधान से संत कवि सूरदास की जीवनी कहानी की याद आती है।



8
अभिव्यंजनावाद

कलाकार जब बाह्य रूप की उपेक्षा करके विषयवस्तु के प्रति निजी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से कलानिर्मिति करता है तब ऐसी कला को अभिव्यंजनावादी कला कहते है। बीसवी शताब्दी में अभिव्यंजनावादी कला का उत्थान जर्मनी में हुआ और उसकी तुलना गोथिककला की गूढ़ भावनात्मकता से की जा सकती है। अभिव्यंजनावादी कला में कलाकार मानवीय शरीर एव वस्तु के नैसर्गिक रूप को अपनी भावनाओं के अनुकूल विकृत या ऐंठनदार रूप में बनाते है; रंगसंगति में आकर्षकता का विचार नही होता एव प्रायः भावनाओं के पोषक गहरे एवं विरोधी रंगों का प्रयोग होता है; अंकनपद्धति के आधार कौशल, अध्ययन एवं नियन्त्रण न होकर सहजप्रवृत्ति व भावनोद्वेग होते हैं। प्रभाववाद इसके बिलकुल विपरीत है और उसमें वास्तविकता के बाह्यसौन्दर्य का विचार है। अभिव्यंजनावाद आत्मनिष्ठ कला है एवं उसका प्रेरणास्रोत है कलाकार का अहंकार।

अभिव्यंजनावादी कला में योरपीय मानव की बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल की कठिन व समस्यापूर्ण मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक स्थिति का तीव्र व परिणामकारक दर्शन है। फ्रान्स एव जर्मनी दोनो देशो में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप एव युद्ध की आशंका से जनित विकारग्रस्त मनोवृत्ति संस्कृति, कला व साहित्य पर आघात कर रही थी। फ्रान्स से भी जर्मनी के सामने अधिक समस्याएँ थी। फ्रेंच कलापरम्परा के बुद्धिवाद व तर्कनिष्ठा की परिणति घनवादी व उत्तर-घनवादी शैलियों में हुई किन्तु जर्मन कला भिन्न दिशा में अग्रसर हुई। तत्वज्ञान व गूढ़वाद के प्रति स्वाभाविक रुचि होने के कारण जर्मन विचारकों व कलाकारों में औद्योगिक विकास व यान्त्रिक मानवीय जीवन के प्रति घृणा पैदा हुई और प्रतिक्रिया के रूप में आंतरिक गूढ़ एव पारलौकिक अनुभूतियो की कल्पना द्वारा खोज शुरू हुई। फ्रेंच कलाकार जड़सौन्दर्य की बौद्धिक विचिकित्सा में व्यस्त हुए किन्तु जर्मन कलाकारो ने मानव के आंतरिक जीवन को प्रकाशित करने के उद्देश्य से, प्रतीकात्मक रंगों में, भावनाओं द्वारा विकृत आकारो की नयी चित्रसृष्टि का निर्माण किया व भ्रममूल बाह्यसौन्दर्य का पर्दाफाश किया।

फ्रेंच फाववाद की आलंकारिक ऐंठन व घनवाद के आकारों के पृथक्करण से जर्मन अभिव्यंजनावाद की आंतरिक व्याकुलता व गूढ़ आत्मिक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से भिन्न है यद्यपि अभिव्यंजनावाद के विकास में फाववाद व घनवाद बहुत

प्रेरणादायक रहे। इस भिन्नता के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कारण है जिन सबका विवरण यहां असम्भव है किन्तु उनमें सबसे प्रबल कारण था 19वीं सदी के जर्मन समाज के न्यायनिष्ठुर शास्त्रपरिपालन व कठोर नियमन दमन[1] के विरोध में व्यक्तिस्वातंत्र्य का आन्दोलन।

चित्रकार बॉकलिन, फायरबाख, विलगेर व मारीस के पलायनवादी रोमांसवाद के प्रतिक्रियास्वरूप होडलर व मुंख ने साधारण मानव के हताश आंतरिक जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया, काटे कोल्वित्स ने समाजवादी यथार्थवाद को अपनी कला का ध्येय बनाया व अंत में इसका विस्फोट अभिव्यंजनावादी कला के रूप में हुआ। यह एक ऐसी पीढ़ी थी जो भौतिकवाद के भविष्य के बारे में आशंकित थी। फ्रेंच दार्शनिक आंरी बर्गसां की पुस्तक 'सर्जनशील उत्क्रांति'[2] में प्रकाशित विचारों का जर्मन भाषा में विडेलबाट व सिम्मेल ने प्रचार किया व उसका जर्मन कलाकारों पर अनोखा प्रभाव पड़ा। बर्गसां ने सहजज्ञान से सर्जन करने पर बल दिया था—"जब हम बाह्य बंधनों से मुक्त होकर कार्य करते है तब सर्जन होता है";[3] इस विचार ने कठोर शास्त्रीय बंधनों से मुक्ति पाने को कलाकारों को उद्यत किया। विल्हेल्म वोरिंगेर ने 'सारतत्व व तादात्म्य'[5] पुस्तक में प्रकाशित निजी विचारों से उनका समर्थन किया।

दोमीय व रूओ को छोड़ फ्रेंच चित्रकार वास्तविकता के बाह्यसौंदर्य पर लुब्ध थे और उन्होंने उसके रंगबिरंगे मनोहर रूप को चित्रित किया; इसके विपरीत जर्मन चित्रकारों ने संसार के आंतरिक सत्य की खोज करने के प्रयत्न किये और उनको वहां दुःख, निराशा व मृत्यु के अलावा आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दी। शायद हो सकता है कि किन्हीं भौगोलिक कारणों से अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति योरप के उत्तरी प्रदेश में ही प्रबल रही हो जिसके कारण वहीं वान् गो, मुंख, होड्लर, एन्सोर, कान्डिन्स्की, कोकोश्का जैसे महान् अभिव्यंजनावादी चित्रकारों का जन्म हुआ। वान गो, होडलर, मुंख व एन्सोर अभिव्यंजनावाद के पूर्वकाल के कलाकार थे व उनकी कला ने पश्चात् आये अभिव्यंजनावादी कलाकारों के लिये पथप्रदर्शन का कार्य किया।

फर्डिनांड होडलर (1853–1918)

होडलर जन्म से स्विस थे व उसका जन्म बर्न में हुआ। उन्होंने जिनिवा की चित्रशाला में कला का प्रारम्भिक अध्ययन कर के यथार्थवादी शैली में परिचित दृश्यों को चित्रित किया। स्विस लोगों के परिश्रमी किन्तु निराशामय, समर्पित जीवन को परिणामकारक ढंग से चित्रित करने के उद्देश्य से उन्होंने स्पष्ट, सामर्थ्यपूर्ण एवं कुछ आलंकारिक व समतल आकारों का प्रयोग किया। 1889 की पैरिस की अन्तरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में उनका चित्र 'कुश्तीगीरों का जुलूस'[5] पुरस्कृत हुआ व प्युवि द शावान ने उसकी बहुत प्रशंसा की। इस समय सन्देहग्रस्त

धर्मनिष्ठा व रहस्यवाद से उनकी मानसिक अवस्था विकसित थी व उस पर निराशा की कालिमा छाई हुई थी जिसका दर्शन उनके चित्र 'रात' में होता है। 1891 में वे कुछ समय तक पॅरिस में रहे व वहाँ उन पर गोगँ व नवप्रभाववादी चित्रकारों का काफी प्रभाव पड़ा। उसके पश्चात् वे प्रतीकात्मक आलंकारिक शैली के चित्र बनाने लगे और उनको विश्वास हुआ कि मानव को पुनश्च आध्यात्मिक आदर्शवाद पर श्रद्ध होना आवश्यक है। उन्होंने यथार्थवाद को पूर्णरूप से छोड़ दिया और मानव की मानसिक अवस्था को विषय के रूप मे चुना व उनकी भव्य मानवाकृतियों को निराला अर्थ प्राप्त हुआ। इस काल के चित्रों में से 'जीवन से संत्रस्त' (1891) 'वंचित आत्माएं' (1892) 'विल्यम टेल'[6] ये चित्र प्रसिद्ध हैं। आलंकारित्व व अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी कला जर्मन युगेंटस्टिल से मिलतीजुलती है। 1897 की म्यूनिक प्रदर्शनी में उनको सुवर्ण पदक से पुरस्कृत किया गया। सौंदर्यात्मक गुणों पर्याप्त विकास होने के कारण उनकी कला जर्मन कलाकारों को उतनी प्रेरणादायक नहीं रही जितनी कि मुंख की।

एडवार्ड मुंख (1863–1944)

19वी शताब्दी के अन्त मे जब प्रतीकवाद से सभी सर्जनशील प्रभावित थे, एडवार्ड मुंख ने ऐसी कलानिर्मिति की जिसमें उस काल की प्रमुख विचारधाराओं का समुचित प्रतिबिंब है व जिसमें मानव की आत्मिक आवश्यकताओं व भौतिकवाद के बीच के संघर्ष का परिणामकारक दर्शन है। अतः मुंख की कला समकालीन मानवीय वैचारिक जीवन का समुचित प्रतिनिधित्व करती है। अभिव्यंजनावादी कलाकार की कला का जन्म उसके जीवन के प्रति आत्मीयता में होता है; उसकी कला उसके जीवन के प्रति धारणाओं का दर्पण होती है। अतः अभिव्यंजनावादी कलाकार की कला का अध्ययन उसके जीवनचरित्र का अध्ययन किये बिना नहीं किया जा सकता एवं ऐसा अध्ययन अपर्याप्त होगा।

1889 मे सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त करके मुंख पॅरिस गये। पॅरिस में वान गो की आत्मिक अभिव्यक्ति, गोगँ का आलंकारिक प्रतीकवाद, सोरा की नियमबद्ध वैज्ञानिक अंकनपद्धति व तुलुज लोत्रेक का गतिपूर्ण रेखांकन वगैरह भिन्न-तत्वों ने उनको आकृष्ट किया। 1892 में हुई उनकी चित्रप्रदर्शनी से बर्लिन में हलचल मची और वहा के युवा कलाकारो को उससे नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। 1893 में उनका बर्लिन में ही म्येरग्राफे बीरबोम, श्रोरबार्ट व होल्त्स से परिचय हो गया। 1894 में म्येरग्राफे ने 'एडवार्ड मुंख की कला' नाम की पुस्तक प्रकाशित की एवं बर्लिन के नवकलाकार उनको कलाशास्त्रविद् के रूप में पहचानने लगे। 1896 में पॅरिस लौट कर वे मालार्मे व उनको 'मक्युर द फ्रांस'[7] संस्था से सम्बन्धित प्रतीकवादी कलाकारमंडल की 'चर्चाओं में सम्मिलित हुए। चित्रकारों से भी उनकी साहित्यिकों के साथ अधिक घनिष्ठ मित्रता थी। उन्होंने पॅरिस की वानुंबो कलावीथिका में 'जीवन की चित्रावली'[8] नाम का विशाल प्रतीकात्मक भित्तिचित्र प्रदर्शित

किया व उसी समय स्ट्रिडबर्ग ने 'रिव्यु ब्लांश' पत्रिका में मुंख पर एक प्रशसापूर्ण लेख प्रकाशित किया। फिर बर्लिन जाकर उन्होंने राइनहार्ट के निर्देशन मे अभिनीत इब्सेन के नाटक 'भूत'[9] के लिये पर्दों का चित्रण किया। इस प्रकार वे बर्लिन, पैरिस व ओस्लो के बीच भ्रमण करते रहे।

एक जगह से दूसरी जगह इसी तरह भ्रमण करते रहने से उनके स्वभाव में अजीब द्वंद्वात्मकता पैदा हुई; एकांत-प्रियता व भ्रातृभाव, भौतिक जीवन का आकर्षण व स्वप्निलवृत्ति, ऐसे विरोधी तत्त्वों के बीच संघर्ष बढ कर उनकी आंतरिक शांति नष्ट हो गयी व उनके चित्रों में भी यह संघर्ष प्रतीत होने लगा। 19वी शताब्दी के अन्त के करीब योरपीय मानव का आन्तरिक जीवन इसी सन्देहावस्था मे नष्टभ्रष्ट हो गया था जिसका परिणामकारक दर्शन मुंख के चित्रो में मिलता है। 1908 में मज्जातंतु की दुर्बलता से पीडित होकर वे नार्वे जाकर रहे। अब उनके वैचारिक दृष्टिकोण की चंचलता नष्ट हो गयी व उनकी कला मे एक नयी अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हो गयी जो मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। उत्तरी योरप के लेखक इब्सेन, स्ट्रिडबर्ग, कीर्केगार्ड, जाकोबसेन व ब्रान्डिस ने योरपीय समाज के विचारो को मनोवैज्ञानिकता की ओर मोड़ दिया व कला के क्षेत्र में यही कार्य मुंख ने किया। मुंख के चित्रो मे अतर्मन की आवाज है और उसमें बाह्य रूप का कोई महत्त्व नही है। उनके चित्र 'यौवनप्राप्ति'[10] में किशोरी के शरीरसौन्दर्य का चित्रण नही है बल्कि उसकी आशंकित मानसिक अवस्था का चित्रण है। उनके चित्र 'आवाज'[11] को भी हम यथार्थवादी दृश्य-चित्र नही मान सकते; उसमे आतंकित निसर्ग का प्रतीकात्मक अभिव्यजनावादी चित्रण है जिस सम्बन्ध मे मुंख ने लिखा है "मैंने महसूस किया है कि निसर्ग से कोई महाकरुण आवाज निकल रही है"। उन्होंने जीवन को अंतःचक्षु से देखा व उनको बाह्य रूप के अन्तर्गत हृदयभेदक सत्य का दर्शन हुआ जो अन्तर्मन की सूक्ष्मग्राही कल्पना व सहजस्फूर्त विचारो से ही हो सकता है। मुंख मे कवि व कलाकार दोनो की आत्माओं का सहअस्तित्व दिखाई देता है।

मुंख के चित्रों में निराशा व भयानकता के भाव छाने के कुछ सामाजिक कारण भी है। वह समय ऐसा था कि जीवन की पुरानी निष्ठाएं टूट रही थी व सब को विवशता के अतिरिक्त मानवीय जीवन में कोई अर्थ दिखायी नही दे रहा था। इसी काल ने रहस्यवादी चित्रकार ओदिलों रेदो व जेम्स एन्सोर एव, कुबिन जैसे उपहासवादी चित्रकारों को जन्म दिया था। मुंख के बचपन मे ही दुर्भाग्य व मृत्यु ने उनका पीछा। उम्र के पाचवें साल मे उनकी माताजी की व कुछ समय बाद उनकी प्रिय भगिनी की मृत्यु हुई। उनके धार्मिक वृत्ति के पिता ने सैनिक-चिकित्सक की नौकरी छोड कर गरीबो की सेवा व परमेश्वरभक्ति शुरू की। मुंख के कई चित्रों में मृत्यु के सामने मानव की विवशता का चित्रण है, जिसके 'बीमार लड़की', 'मृत्यु का कमरा', 'मृत्युशय्या', 'मृत माता', 'मृत्यु'[12] आदि उदाहरण हैं।

1889 में उन्होंने लिखा था "हमें पढ़ते हुए आदमियों व बुनाई करती हुई महिलाओं का चित्रण बन्द करना चाहिये। हमको ऐसे जीवित आदमियों का चित्रण करना है जो सांस लेते है, भावुक है, दुःखी होते है व प्रेम करते हैं। मैं ऐसे चित्रों की मालिका बनाऊंगा। इन चित्रों में पवित्रता का दर्शन होगा"। वे कहते थे "मुझे जो दिखायी दे रहा है उसको मैं चित्रित नही करता बल्कि मैं उसी को चित्रित करता हू जो मैंने देखा है"। उनके चित्रों मे भूत व भविष्य, वर्तमान मे मिलकर, चिरन्तन सत्य का दर्शन कराते हैं जिसको हम पवित्र सत्य[13] कह सकते हैं। एकाकी, भयग्रस्त व व्याकुल होकर मुंख ने निसर्ग व मानव को चित्रित किया जिसमें निसर्ग को आतंकित व मानव को मनोवैज्ञानिक अवस्था में विह्वल दिखाया है। अपने लक्ष्य की पूर्ति मे मुंख ने रेखा व रंगों का, संगीत के समान प्रतीकात्मक प्रयोग किया जिसके उनके चित्र 'आवाज' व 'बसन्तऋतु की शाम' परिणामकारक उदाहरण है। इन चित्रों में ऐंठनदार रेखाओं से मानवाकृतियों को चित्रित करके काले व विशुद्ध रंगों द्वारा भयानक वातावरण का परिणाम दिखाया है। चित्रों में मानवाकृतियां भूतों के समान भयप्रद दिखाई देती हैं। सेजान के आकार भौतिक जड़ सौन्दर्य से युक्त है तो मुंख के आकार आत्मिक जगत् की प्रतिमाएं है। जिसके संदर्भ में वेर्नेर हापटमन ने लिखा है "सेजान के लिये बाह्यरूप, भौतिक सृष्टि की आत्मा का प्रतिरूप था जबकि मुंख के लिए बाह्यरूप, आत्मिक सृष्टि का मूर्त प्रतिरूप था।........ प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिखाई देने वाले मार्गों से हम उसी दुनियां में प्रवेश पाते है—जो है मानवीय अभिव्यक्ति की दुनिया"।

जेम्स एन्सोर (1860–1949)

जब कलाकार की आत्मिक मूल्यों पर श्रद्धा नष्ट हो जाती है या उसको जबरदस्त धक्का पहुंचता है तो उसकी कला पर उसका क्या परिणाम होता है इसका उत्तरी योरप की 19वी शताब्दी के अन्तिम काल की कला समुचित उदाहरण है। ऐसी परिस्थिति मे वान गो को आत्मसमर्पण करना पड़ा व मुंख मानसिक सन्तुलन खो बैठे।

जेम्स एन्सोर भी एक ऐसे चित्राकार थे जो, इन दोनों के समान, मानव-जीवन की निरर्थकता को देखकर मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त थे; किन्तु उनके चित्रों में, उन दोनों के विपरीत, दुःख व निराशा के स्थान पर ऊपरी तौर से हास्य-कर मानवाकृतियो द्वारा जीवन के मानव-निर्मित मूल्यों का उपहास किया है व निराशा की जगह निर्भयता है। उन्होंने मृत्यु की कल्पना का भी मजाक उड़ाया। एक तरह से हम उनको 'तबीअतदार अभिव्यंजनावादी' कह सकते हैं। उधर मृत्यु ने भी उनका काफी मजाक उड़ाया; प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान उनकी मृत्यु की तीन से भी अधिक बार घोषणाएं हुईं व अपने ऊपर प्रकाशित मृत्यु-लेख पढ़ कर उनका मनोरंजन हुआ; व 90 वर्ष की आयु में हुई उनकी शांतिपूर्ण मृत्यु से कुछ दिन पहले भी इसी तरह की अफवाह फैल गयी थी।

जेम्स एन्सोर का जन्म 1860 में ओस्टेंड में हुआ। आयु के 17वें साल में उन्होंने ब्रसेल्ज की चित्रशाला में अध्ययन आरम्भ किया, किन्तु दो साल बाद वे ओस्टेंड लौटे व उसके पश्चात् अपनी आयु की लम्बी अवधि में और कहीं नहीं गये। तरह-तरह की रंगबिरंगी कलाकृतियों, स्मृतिचिन्हों, काच के गोलों व चित्र-विचित्र अलंकरणों से सजी हुई वस्तुओं से परिपूर्ण अनूठे घरेलू वातावरण में उन्होंने मानवों के हास्यास्पद निरर्थक विचारों व व्यवहारों का कल्पनातिरंजित चित्रण किया। उन्होंने अपने ध्येय के बारे में लिखा है, "काली ज्वालाओं के झंडे लहराती हुई मेरी स्वप्न की नाव में सवार होकर मैं उस प्रदेश की ओर जा रहा हूं *जहाँ दिखावटी कल्पना-जगत् के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।*" जीवन के प्रति अश्रद्ध होते हुए भी एन्सोर अपने ध्येय की पूर्ति में व्यंग्यात्मक चित्रण निरंतर एकाग्रता से करते रहे व अहंकार के वश होने के लिये मानवजाति की कटु आलोचना की। व्यंग्यात्मकता के विचार से एन्सोर की कला होगार्थ व रोलेंडसन की कला से भी बॉश व ब्रयूगेल की कला के अधिक निकट है। 'सावली महिला'[15] जैसे कुछ चित्रों में निराशा के भाव भी है। 1883 के करीब उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति में परिवर्तन आ गया। उन्होने 'क्रुद्ध नकाब'[16] चित्र में आदमियों के चेहरों को नकाबों में रूपायित किया, व 1884 के बाद भूत-प्रेतों, कंकालों या नकाबों को आदमियों की जगह चित्रित कर के मानव को अहंकार का क्रूर उपहास किया। 'राक्षसों से संत्रस्त चित्रकार'[17] मे शीर्षक के चित्र में उन्होंने स्वयं को छोटे रूप में चित्रित कर के आसपास की विचित्र आकृतियां उनको डराती हुई चित्रित की हैं। वेर्नेर हाफ्टमन के अनुसार एन्सोर की कला-कृतियां उनके आंतरिक मानसिक संघर्ष की प्रतिक्रिया थी, व मन ही मन वे मानवजाति से घृणा करते थे। 1884 के बाद प्रभाववाद के अध्ययन के कारण उनकी रंगसंगति अधिक चमकीली हो गयी। 'चरवाहों की भक्तिपूजा,' 'येरुशलेम प्रवेश', 'ईसा का आत्मसमर्पण,' 'उत्थान',[18] जैसे ईसा के जीवन की घटनाओं के चित्र भी उपहास से ओतप्रोत हैं। उनका सब से विख्यात चित्र है 'ईसा का ब्रसेल्ज मे प्रवेश'[19]। यदि ईसा ब्रसेल्ज में प्रवेश करेंगे तो उनका वहाँ किस तरह स्वागत होगा इस अनोखी कल्पना ने एन्सोर को घेर लिया व इस आडम्बरपूर्ण प्रहसन जैसे चित्र का निर्माण हुआ, जिसमें बुद्धिपूर्ण व्यंग्यात्मक कथन, उच्च कोटि का कौशल व चमकीली रंगसंगति का समिश्रण है। इस चित्र में भी मानवों के अभद्र व्यवहार, मूर्खतापूर्ण विचार व उनकी दिखावटी प्रदर्शनवृत्ति के आंतरिक विरोध को स्पष्ट करने के हेतु उन्होंने जनसमूहांतर्गत व्यक्तियों के चेहरों की जगह नकाबों को चित्रित किया है।

अभिव्यंजनावाद के पूर्वचिन्ह फाववाद के आवेशपूर्ण रेखांकन विशुद्ध रंगों का काल्पनिक प्रयोग, आकारों का सरलीकरण तथा वान गो के अभिव्यक्तिपूर्ण चित्रण में दृष्टिगोचर हुए। अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने विशुद्ध रंगों का प्रयोग फाववाद से सीखा व आदिम आकारों का प्रयोग घनवाद व नीग्रो कला से सीखा; अतः फ्रेंच

फाववाद व जर्मन अभिव्यंजनावाद के दृश्य रूपों में घनिष्ठ समानता है। कार्ल शिफलेर ने शास्त्रशुद्ध कला से बरोक कला की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए लिखा "जब हिंस्र पक्षी आसमान में स्वच्छन्द उड़ान भरता है तब उसकी गतिविधि शास्त्र-शुद्ध होती है; जब वह शिकार पर कूद पड़ता है या घायल होकर पंख फड़फड़ाता है तब उसकी क्रिया बरोक या रोमांचकारी होती है"। बरोक को कलाशैली की अपेक्षा एक मानसिक प्रवृत्ति समझना अधिक योग्य है। शास्त्रशुद्ध कला में संतुलन व सुसंगति के तत्त्व मुख्य होते है जबकि बरोक में भावनाओं की अभिव्यक्ति के सामने रचना, संयोजन वगैरह शास्त्रीय नियमों की उपेक्षा की जाती है। स्ट्रिगोस्की के अनुसार बरोक कला में गोथिक दृष्टिकोण का पुनरुत्थान है। बरोक कला गोथिक कला के पदचिन्हो पर चलती है तो अभिव्यंजनावाद बरोक कला का अनुगामी है।

आदिम कला की भांति अभिव्यंजनावाद का जन्म परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भय व दु:ख में हुआ था। अभिव्यंजनावादी कलाकारों को पुराने कलाकारो में से जर्मन कलाकार ड्यूरर, क्रानाख़,ग्र्यूनेवाल्ट फ्लेमिश कलाकार बॉश, ब्रूगेल, इटालियन कलाकार सिन्योरेली, तुरा, क्रिवेली, स्पेनिश कलाकार गोया, एल्ग्रेको आदर्श थे। आधुनिक कलाकारो में से दोमीए की कला में अभिव्यंजनावाद के चिह्न सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुए। वान गो ने अपने भाई थियो को पत्र में लिखा था "मैं लाल व पीले रंगों से मानव के दु:ख को साकार करना चाहता हूँ" व इन शब्दो से अभिव्यंजनावाद की सर्वसामान्य परिभाषा उचित रूप में स्पष्ट की। जर्मनी, फ्लेन्डर्स व बेल्जियम के बाहर, घनवाद के प्रभाव से, अभिव्यंजनावाद का प्रसार नही हो पाया, किन्तु जर्मन लोगों की परंपरागत प्रवृत्ति व संस्कृति अनुकूल होने के कारण वहाँ अभिव्यंजनावाद काफी प्रभावशाली रहा।

अठारहवी व उन्नीसवी शताब्दियो मे फ्रेंच कला का जर्मन कला पर बड़ा प्रभाव था और जर्मन कलाकारों मे फ्रेंच कला को आदर्श मान कर उसका अनुसरण करने की सरासर प्रवृत्ति थी। फ्रेंच कलाक्षेत्र मे जो नये परिवर्तन होते उनका कुछ समय में ही जर्मन कला मे अनुसरण होता। 18वी शताब्दी में विंकेलमान के विचारों से प्रेरित होकर जर्मनी मे शास्त्रीयतावादी शैली का पुनरुत्थान हुआ और वह फ्रेंच नवशास्त्रीयतावादी शैली के काफी निकट आ गयी। 19वी शताब्दी के जर्मन चित्रकार रिख्टेर, श्विंड, बॉकलिन, श्लिगेर, फायरबाख व मारीस ने फ्रेंच प्रभाववाद से मुक्त होकर अपनी सर्जनात्मक अनुभूतियों को कल्पना से चित्रित करना आरम्भ किया व इन चित्रकारो का रोमांसवादी दृष्टिकोण जर्मन अभिव्यंजनावाद के विकास में बहुत सहायक रहा। कुर्बे के प्रभाव से जर्मनी मे मेंत्सेल व लाइब्ल ने वस्तुनिष्ठ नैसर्गिकतावादी चित्रण आरम्भ किया व फ्रेंच प्रभाववादियों का अनुसरण करके लीबेरमन, स्लेवोट व कोरिंट प्रभाववादी शैली के चित्र बनाने लगे। फ्रेंच कला का अनुसरण होते हुए भी इन चित्रकारों—विशेषतः स्लेवोट व कोरिंट—की कृतियों में भावनापूर्ण आत्मनिष्ठा प्रबल थी। समाजवादी सहानुभूति

के चित्रकार कार्टे कोलिवित्स व फ्रित्स उडे के यथार्थवादी चित्रों में भी अभिव्यंजनावादी झलक स्पष्ट है यद्यपि उन्होंने सामाजिक दुःस्थिति पर प्रकाश डालकर उसकी निंदा करने के साधन के रूप मे अपनी कला को कार्यान्वित किया था।

फ्रान्स मे आर्नु वो—या जर्मनी मे युगेंटस्टिल—शैली जब प्रचलित हुई तब अभिव्यंजनावाद के बीजारोपण के लिये अनुकूल वातावरण मिला। आर्नु वो एक अंतरराष्ट्रीय कलाशैली थी व उसका प्रसार म्यूनिक, पैरिस, बार्सेलोना वगैरह योरप के सभी प्रमुख शहरो मे होकर वास्तुकला, विज्ञापनकला, हस्तकला, काष्ठकला, फर्नीचर आदि निर्माणकलाओ पर उसका प्रभाव पड़ा। इस शैली का उद्गम इंगिलश प्रिराफेलाइट आंदोलन, बिअर्डस्ली के रेखाचित्र व जापानी चित्रकार होकुसाई व हिरोशिगे की कलाशैलियो में हुआ था और उसका नाबि चित्रकारो व तुलुज लोत्रेक पर बडा प्रभाव पड़ा था।

आर्नु वो शैली के अतिरिक्त डच चित्रकार वान गो, फ्रेंच चित्रकार गोगँ, बेल्जियन चित्रकार एन्सोर, नार्वेयन चित्रकार मुंख व स्विस चित्रकार होडलर की कला ने अभिव्यंजनावाद को प्रेरणा देकर सामर्थ्य प्रदान किया। जेम्स एन्सोर का चित्र 'ईसा का ब्रसेल्ज में प्रवेश'[29] स्पष्ट रूप से अभिव्यंजनावादी है किन्तु जर्मन अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने उसको बहुत समय तक देखा भी नही था। नार्वेयन चित्रकार मुंख काफी समय तक जर्मनी में रहे व उनकी गूढ़ वातावरण से परिवेष्टित व अंतर्मन की संवेदनाओं से उत्स्फूर्त कृतियो ने जर्मन चित्रकारों को नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

मातिस व किर्शनेर, ब्राक व फ्रान्स मार्क, लेजे व श्लेमेर की कलाकृतियों की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि फ्रेंच कला में आलंकारित्व, रचना, सुन्दर रंगसंगति आदि विशुद्ध कलात्मक गुणो के विकास पर ध्यान दिया जाता था जबकि जर्मन कला में मनोवैज्ञानिक अतृप्ति, काव्य, रोमांचकारिता, रहस्य वगैरह मानवीय तत्त्वों की, आत्मिक अनुभूति के विविध पहलुओ द्वारा, अभिव्यक्ति की उत्कंठा रहती थी। वेर्नेर हाफ्टमन ने इस मौलिक भिन्नता को निम्न शब्दों में, संक्षेप में स्पष्ट किया है "हम फ्रेंच व जर्मन कलात्मक दर्शन की भिन्नता को दो निम्न शब्दो में व्यक्त कर सकते हैं; 'आलंकारिक' के विरोध में 'कथनात्मक'[20]—यदि हम इन शब्दों का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते है।"

आधुनिक कला में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर जो विचारों का आदान-प्रदान होता आ रहा है उससे 'विविधता में एकता' का हमको प्रमाण मिलता है व कवि ज्यां जोरे ने मानवता के बारे मे जो सदिच्छा व्यक्त की थी उसकी सफलता का कम से कम आधुनिक कला एक संतोषप्रद उदाहरण है; उन्होंने लिखा था "संसार के सभी देशों के लोग गुलदस्ते के फूलों के समान रंग व सुगन्ध में भिन्न किन्तु गुलदस्ते के समूचे सौन्दर्य के अविभाज्य अंग होने चाहिये"।

जर्मन अभिव्यंजनावादी कला का विकासक्रम आधुनिक फ्रेंच कला के विकासक्रम से अधिक जटिल है व उसमें सुसूत्रता नहीं है। आधुनिक फ्रेंच कला का आरम्भ देलाक्रा व कुर्बे से हुआ; उसको माने व प्रभाववादी चित्रकारों ने विशुद्ध अंकनपद्धति द्वारा सामर्थ्यवान् बनाया; सोरा, सेजान, वान गो व गोग्वें ने,नये क्रांतिकारी विचारों को प्रदान किया व वह फाववाद आदि शाखाओं, उपशाखाओं में विकसित हुई। इसमें तर्कशुद्ध क्रम है, एक के पीछे दूसरा चरण अपरिहार्य रूप से अपनाया गया है। जर्मन कला के विकास में यह सरल क्रमबद्धता नहीं है। हान्स फ्रॉन मारीस ने सेजान के समान इटालियन पुनर्जागरणकालीन शास्त्रीय कलाकारों को आदर्श मान कर, निसर्ग का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके, कलानिर्मिति की व कला में कल्पना व प्रत्यक्ष निरीक्षण के सहयोग की अनिवार्यता पर बल दिया; इसके विपरीत बॉकलिन की कला रहस्यपूर्ण रोमांचकारी चित्रण से ओतप्रोत है। बॉकलिन ने रंगों का अभिव्यक्ति के अनुकूल प्रतीकात्मक प्रयोग करके प्रकृति की गूढ़ शक्तियों का काव्यपूर्ण चित्रण किया; क्लिंगर व फ्रान्स फॉन श्टुक ने उनका अनुसरण किया। फॉन श्टुक की शैली पर युगेंटस्टिल का भी प्रभाव था व उनकी कला ने म्यूनिक जेचेसिग्रोन की प्रस्थापना में कलाकारों को प्रोत्साहन दिया। 1895 से फॉन श्टुक म्यूनिक अकादमी में अध्यापक थे व क्ले व कान्डिन्स्की उनके शिष्य थे। रोमांसवादी कलाकारों के अतिरिक्त जर्मनी में विल्हेल्म लाइब्ल जैसे नैसर्गिकतावादी चित्रकार भी थे व उनकी नैसर्गिकतावादी कला की परिणति जर्मन प्रभाववाद के जन्म में हुई जिसके प्रमुख चित्रकार थे माक्स लीबेरमन, स्लेवोट व कोरिंट। जर्मन प्रभाववाद के प्रमुख प्रेरणास्रोत थे योंकिंड व डच बाह्य स्थान चित्रणीय शैली यद्यपि उसके विकास में फ्रेंच प्रभाववाद काफी सहायक रहा।

1898 में 'युगेंट' नाम की पत्रिका का म्यूनिक में प्रकाशन शुरू हुआ व उसने युगेंटस्टिल शैली की मुखपत्रिका का कार्य किया। यह शैली फ्रेंच आर्नुवो शैली के समरूप थी और निर्माणकलाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन करना उसका ध्येय था। इसके अतिरिक्त नवप्रभाववाद, तुलुज लोत्रेक व फ्रेंच नाबि कलाकारों से जर्मन कला को काफी प्रेरणा मिली। नार्वेयन चित्रकार मुंख स्विस चित्रकार होडलर व बेल्जियन चित्रकार एन्सोर जर्मन अभिव्यंजनावादी कला के निकटवर्ती प्रेरणास्रोत थे।

19वीं शताब्दी के जर्मन रोमांसवाद का दर्शन मुख्यतः काव्यमय व कल्पनारम्य वातावरण से परिवेष्टित प्रकृति-चित्रों में मिलता है। 1890 में उत्तरी जर्मनी में वोर्प्स्वेड व दक्षिण जर्मनी में डाखो नाम के गावों में चित्रकारों के मंडलों ने रोमांचकारी प्रकृतिचित्रण शुरू किया जो जर्मन अभिव्यंजनावाद को जन्म देने में काफी सहायक रहा।

जर्मन व फ्रेंच चित्रकारों के दृष्टिकोणों में उपरिनिर्दिष्ट भेद विद्यमान होते हुए फ्रेंच फाववाद से जर्मन अभिव्यंजनावाद ने काफी प्रेरणा पायी व अपनाई।

के विशुद्धीकरण में उसको फाववाद से सहायता मिली; विशुद्ध रंगों के प्रयोग, आकारों के सरलीकरण व माध्यम के स्वाभाविक गुणों के विकास पर दोनो मे समान रूप से बल दिया गया था। जर्मन अभिव्यंजनावादी ब्रू्युके चित्रकार किर्शनेर, हेकेल व श्मिट-रोटलुफ की तुलना फाव चित्रकार मातिस, व्लामँक व वान डोंजेन से करने पर अंकनपद्धति की ये समानताएँ स्पष्ट हो जाती है। फाव चित्रकारो के समान जर्मन अभिव्यंजनावादी चित्रकारो को वान गो व गोग्वँ से नया विशुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ था। जर्मन चित्रकार पॅरिस जाकर वहां के चित्रकारों की कला का अध्ययन करते व फ्रेंच चित्रकारो—वान गो, गोग्वँ, सेजान, सोरा, मातिस, वान डोन्जेन आदि की कलाकृतियो की जर्मनी प्रदर्शनिया होती। इस प्रकार के आदान-प्रदान का जर्मन अभिव्यंजनावाद पर बहुत प्रभाव पड़ा व वह विकास के पथ पर अग्रसर हुआ।

जर्मन अभिव्यंजनावादी आन्दोलन के मुख्य रूप से ब्रू्युके चित्रकार-मंडल, ब्लौ राइटेर मंडल एवं चित्रकार कोकोश्का, बेकमन, पौला मोडेरसोन बेकेर, होफेर, रोल्फ्स, माइटनेर ये आधारस्तम्भ थे। अभिव्यंजनावाद के प्रारम्भिक प्रयोग में नवयथार्थवाद[22] का जन्म हुआ।

1905 में हेकेल, ब्लेयल, किर्शनेर व श्मिट-रोटलुफ ने मिल कर ड्रेस्डेन में ब्रू्युके चित्रकार मण्डल की प्रस्थापना की। ये चित्रकार किर्शनेर व हेकेल के कार्यकक्षो में मिलकर काम करते। गोग्वँ के समान वे चित्रण के अतिरिक्त काष्ठखुदाई करते व मूर्तियाँ भी बनाते। वान गो व गोग्वँ के समान वे 'कलाकार भ्रातृमंडल' की कल्पना से प्रेरित थे। 1906 में मास्स पेश्टाइन, एमिल नोल्डे, क्युनो आमिएट व गालेन-कालेला ब्रू्युके मण्डल मे शामिल हुए। 18 महिने बाद नोल्डे ने मण्डल छोड़ दिया व कुछ समय बाद पेश्टाइन ने बर्लिन जाकर स्वतन्त्र 'नाय जेचेसिओन'[23] मण्डल प्रस्थापित किया। 1913 तक ब्रू्युके मण्डल ने अपने सदस्यो की स्वतन्त्र रूप से एवं अन्य चित्रकारो के साथ कुछ प्रदर्शनियाँ की। 1913 में म्यूनिक मे आयोजित प्रदर्शनी के बाद आतंरिक झगड़ों के कारण उसका विसर्जन हुआ।

'ब्लौ राइटेर' मण्डल का जन्म 1912 में हुआ व 1914 का विश्वयुद्ध शुरू होते ही वह समाप्त हो गया। 1896 में रशिया से कान्डिन्स्की, यालेन्स्की व मारिआने फॉन वेरेफ्किन कला के अध्ययन के लिए म्यूनिक आये। कान्डिन्स्की ने बर्लिन मे 'नाय जेचेसिओन' मण्डल के साथ व पॅरिस में 'सोसिएते नाशनाल द बोजार' व 'सलो दोतान' मे अपने चित्रो को प्रदर्शित किया। कान्डिन्स्की के आगमन से म्यूनिक के कलाक्षेत्र में काफी चेतना आ गयी। 1910 में एक नये मण्डल[24] की प्रस्थापना करके वेरेफ्किन, मुंटेर, एर्बस्लो व कानोल्ट के साथ उन्होने अपने चित्रो की प्रदर्शनी की। उसके बाद फ्रान्ट्स मार्क, कार्ल होफेर व ल फोकोनिए उनके मण्डल मे शामिल हुए व दूसरी प्रदर्शनी में फाव चित्रकारों, घनवादी चित्रकारों व ओगुस्ट माके की कृतियों को भी प्रदर्शित किया गया। 1912 मे 'ब्लौ राइटेर' नाम से यह

मण्डल प्रसिद्ध हो गया। 'ब्लौ राइटेर'[25] कान्डिन्स्की के एक चित्र का शीर्षक था व उसी नाम से उस मण्डल ने एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। मण्डल की टानौसेर कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी में कान्डिन्स्की, काम्पेन्डोक, मार्क, माके, दुनिय रूसो व रॉबर देलोने के चित्र दिखाये गये। उनकी खुदाईकार्य की प्रदर्शनी में क्ले के चित्र रखे गये थे। इसके अतिरिक्त 'ब्लौ राइटेर' मण्डल ने ड्रेस्डेन के ब्र्युके कलाकार, बर्लिन के 'नाय जेचेसिय्रोन' कलाकार व पॅरिस के कलाकार मालेविच, ब्राक, पिकासो, आर्प व ला फ्रेस्नाय को निमन्त्रित करके एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया। कान्डिन्स्की ने 'कला में आत्मिकता'[26] नाम से निबन्ध प्रकाशित करके अपने मण्डल के कलात्मक ध्येय का स्पष्टीकरण किया।

'अभिव्यंजनावाद'[27] शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में कुछ निश्चित कहना कठिन है। हेर्वार्ट वाल्डेन के प्रयत्नों से बर्लिन में आयोजित प्रदर्शनी में 'अभिव्यजनावादी' शब्द का विशेष रूप से प्रयोग किया गया व जिन कलाकृतियों में आदर्शवाद, यथार्थवाद व प्रभाववाद के अतिरिक्त क्रांतिकारी तत्त्व दृष्टिगोचर हो रहे थे उन सबको 'अभिव्यजनावादी' नाम प्रदान किया गया। बुखाइम के अनुसार 'अभिव्यंजनावादी' शब्द का प्रयोग प्रथम पौल कासिरेर ने किया। जब उनको बर्लिन में आयोजित 'नाय जेचेसिय्रोन' की प्रदर्शनी में पेश्टाइन के चित्र के संदर्भ में पूछा गया "क्या यह चित्र प्रभाववादी है?" तब उन्होंने जवाब दिया "नहीं, यह 'अभिव्यंजनावादी' है"। फाव चित्रकारों के समान अभिव्यजनावादी चित्रकारों का जर्मनी में काफी विरोध हुआ। समीक्षकों ने घोषित किया कि ये चित्रकार फ्रेंच चित्रकारों का अंधानुकरण कर रहे हैं व इनमें देशभक्ति की भावना नहीं है। वास्तव में जर्मन अभिव्यंजनावाद व फ्रेंच फाववाद में योरप के भिन्न देशों के कलाकारों के दृष्टिकोणों की एकता पर बल दिया जा रहा था और उसमें ध्येय या विचारों की संकुचितता का या अनुसरण का नाम ही नहीं था। जर्मनी में हो रही अभिव्यजनावादी क्रांति में हेकेल की कला का रूप फाव था, फाइनिंगेर की कला पर घनवाद का प्रभाव था, कान्डिन्स्की की कला वस्तुनिरपेक्षता की ओर अग्रसर थी, क्ले की कला में वैयक्तिक आंतरिक अनुभूति का दर्शन था व नोल्ड की कला में भावनोत्कट उन्मुक्त रंगांकन था। ब्र्युके कलाकारों से ब्लौ राइटेर कलाकार अधिक क्रांतिकारी विचार के थे। पेश्टाइन, कार्ल होफेर व पौला मोडेरसोन बेकेर की कला में कुछ बौद्धिक नियमन व रचनाकौशल के तत्त्व थे। किर्शनेर व श्मिट-रोटलुफ पर घनवाद का सीमित प्रभाव था। फ्रांस मार्क, माके व काम्पेन्डोक ने घनवाद से आगे निकलकर कृत्रिम प्रकाश, काल्पनिक अवकाश व विचित्र आकारों की एक निराली वैयक्तिक दुनिया का दर्शन कराया। फ्रान्स मार्क की चित्रसृष्टि पूर्ण रूप से काल्पनिक है तो माके की चित्रसृष्टि वास्तविकता से कुछ सादृश्य रखे हुए है। पॅरिस के चित्रकारों में से जैसे पिकासो स्पेन से, मोदिल्यानी इटाली से, शागाल सुटिन रशिया से आये हुए थे उसी प्रकार अभिव्यंजनावादी कलाकारों में विदेशों से आये हुए कलाकार थे। जर्मन

अभिव्यंजनावादी कलाकारों का पैरिस के कलाकारों से विचारों का आदानप्रदान होता व एकदूसरे की कलाकृतियों का अध्ययन करके वे उससे लाभ उठाते। सुरीलवाद के मूल रंगों के सिद्धान्तों से वे प्रभावित थे व चित्रकला की संगीत व काव्य से घनिष्ठ समानता के बारे में उनको विश्वास था। वे दोनों में रुचि रखते व उनका अध्ययन करते।

अंकनपद्धति की समानता के बावजूद फ्रेंच फाववाद व जर्मन अभिव्यंजनावाद में दृष्टिकोणों का मौलिक भेद था; फाववाद में दृश्य रूप पर बल था जबकि अभिव्यंजनावाद में कलाकार की विषयवस्तु के प्रति भावनाओं को महत्त्व था। किन्तु उन्मुक्त अंकनपद्धति व भावनोत्कटता के कारण मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य व चित्रकार के व्यक्तित्वदर्शन के विचारों से दोनों समान रूप से प्रभावी है। दोनों ने परम्परागत नियमों को ठुकरा कर सहजप्रवृत्ति द्वारा भावनापूर्ण अंकन व चित्रकार के स्वातंत्र्य पर बल दिया। व्लामेंक ने कहा "सहजवृत्ति कला का आधार है" व नोल्डे ने घोषित किया "सहजप्रवृत्ति ज्ञान से दस गुना महत्त्व रखती है"। सहजप्रवृत्ति से दृश्य ज्ञान को नया अर्थ प्राप्त होता है। वेर्नेर हाफ्टमन ने लिखा है "अब मानव दृश्य ज्ञान को विशेष महत्त्व नहीं देता; उसके मन पटल पर जो प्रतिमाएँ उभरती है उनको महत्त्व है। निसर्ग एक बहाना मात्र है व अब यह विचार जोर पकड़ रहा है कि निसर्ग को कला से हटाया जा सकता है"। कान्डिन्स्की के विचारों के अनुसार कलाकार को एक ही नियम का बन्धन होता है व वह है 'आंतरिक आवश्यकता'[28]।

उपरिनिर्दिष्ट विशेषताओं का विचार करने से स्पष्ट है कि असल में 'अभिव्यंजनावाद' केवल कलात्मक आन्दोलन नहीं था न उसके पीछे किसी विशिष्ट ध्येय से प्रेरित कलाकारों के संगठन के सामूहिक प्रयत्न थे; बल्कि यह एक रोमांचकारी प्रवृत्ति था जिसका उद्‌गम कलाकार के अदमनीय व्यक्तित्व व अहंकार होते है। अभिव्यंजनावादी कला निर्मिति का मुख्य उद्देश्य था कलाकार के अहंकार की पूर्ति व उसके आत्मिक खोजकार्य में मापन के रूप में सहकार्य। अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम तीव्र आंतरिक अनुभूति में होने के कारण अधिकतर अभिव्यंजनावादी कलाकार मज्जातंतु के दौर्बल्य से पीडित थे। वान गो, किर्शनेर, मुंख, पार्से व सुटिन विचित्र मानसिक आशंकाओं से आजीवन व्यथित रहे; उनमें से चारों ने आत्महत्या के प्रयत्न किये व तीन उसमें सफल हुए। यह प्रवृत्ति अधिकतर योरप के उत्तरी भाग में प्रबल थी। इन चित्रकारों ने सामाजिक या नैतिक दृष्टिकोण से जीवन का विचार नहीं किया, बल्कि उनकी अभिव्यक्ति सम्बन्धी समस्यायें पूर्णतया वैयक्तिक व भयग्रस्त थी। अहंभाव से पीड़ित होने से इन चित्रकारों को आत्मचित्र बनाने का बड़ा शौक था। वान गो, मुंख, किर्शनेर, कोकोश्का वगैरह चित्रकारों के कई आत्मचित्र है जिनमें आन्तरिक खलबली का तीव्र दर्शन है। ये चित्रकार वैयक्तिक काल्पनिक सृष्टि में मग्न रहते व उनको सर्वत्र दुःख, विपन्नावस्था,

अन्याय व मृत्यु का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देता। अतः उनकी मनोवृत्ति में आशंका, विप्लव व निराशा को स्थान मिलकर वे बाह्य सृष्टि को भी उसी दृष्टिकोण से देखते व उनकी कलाकृतियाँ घृणा, उपहास व निराशा के भावों से ग्रस्त होतीं। वे मानवाकृतियों व आसपास के वातावरण को ऐंठनदार विकृत रूप देकर चित्रित करते जिससे उनकी अभिव्यक्ति परिणामकारक होती। अब कुछ प्रमुख अभिव्यंजनावादी कलाकारों का वैयक्तिक रूप से विचार करना होगा।

पौला मोडेरसोन वेकेर (1876–1907)

पौला मोडेरसोन ने कला की आरम्भिक शिक्षा प्रथम बर्लिन में व उसके पश्चात् वोर्प्स्वेड में माकेनसेन से प्राप्त की। वोर्प्स्वेड कलाकारों की कला के समान उनकी कला काव्यमय है। मोडेरसोन का रिल्के व कार्ल हाप्टमन जैसे साहित्यिकों से परिचय था, समकालीन जर्मन आध्यात्मिक विचारों से वे प्रभावित थीं व उसका उनकी कला पर स्पष्ट प्रभाव था। उनकी कला में आंतरिक विचार व आत्मिकता है किन्तु निसर्ग के चिन्मय जीवन के प्रति वे अधिक संवेदनशील थीं। असाधारण भावुकता के कारण उनके चित्र अभिव्यंजनात्मक बने। अपनी दैनंदिनी में उन्होंने लिखा है "मेरे अंतर्मन में भावनाओं का जो मधुर स्पंदन चलता है उसको यदि मैं साकार कर सकूं तो मुझे कितनी प्रसन्नता होगी"। उनकी निजी कला का यही ध्येय था जिसके कारण उनकी कलाकृतियाँ सादगी लिये हुए किन्तु महान् बन गयी हैं। महान् आदर्शों के सैद्धान्तिक प्रदर्शन से वे अलिप्त रहीं। सुलभ अंकनपद्धति, सरलीकृत आकार व सौम्य मनोहर रंगसंगति उनकी कला की विशेषताएँ हैं; कलात्मक प्रदर्शन का न उनमें प्रयत्न है न उनमें कोई वैचारिक सन्देश है। उन्होंने निसर्ग को अपनी भावनाओं के दर्पण में प्रतिमित किया। कुछ समय बाद उन्होंने निसर्ग-चित्रण छोड़ दिया व 1902 में उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में लिखा "चित्रकला में निसर्ग को कोई विशेष महत्त्व नहीं है। निसर्ग के सान्निध्य में आप जो अनुभव करते हैं उसको वास्तविक अर्थ में चित्रित करना चाहिये। वैयक्तिक अनुभूति को प्रमुख स्थान है उसको रंगों व आकारों में सफलता से अंकित करने के बाद मैं चित्र में ऐसे तत्त्वों का अंतर्भाव करती हूं जिससे चित्र अधिक नैसर्गिक दिखाई दें"। उनके इस ध्येय की पूर्ति में वोर्प्स्वेड का वातावरण सहायक होने की कोई सम्भावना नहीं थी; अतः 1900 में पेरिस जाकर वे कुछ समय तक वहां रहीं। वहाँ बेता के प्रकृति-चित्रकार कोते व सिमों एवं कृषिजीवन के चित्रकार मिले के चित्र उनको बहुत पसन्द आये। 1906 में वे जब फिर पेरिस आयीं तब उनको गोगँ व सेजान के कलासम्बन्धी विचारों की सयुक्तिकता एवं उनकी कलाकृतियों की महानता का ज्ञान हुआ और उनकी निजी कला में अधिक स्वतन्त्रता आ गयी किन्तु सौन्दर्यात्मक गुणों का विकास करने के पीछे उन्होंने मानवता का त्याग नहीं किया। वाल्देमार जार्ज के अनुसार, सेजान व गोगँ के अतिरिक्त पौला की कला पर पर्शियन लघुचित्रशैली व भारतीय अजन्ता कला का स्पष्ट प्रभाव है। आधुनिक भारतीय कला में अमृता

हीरगिल का जो स्थान है वैसा ही स्थान जर्मन अभिव्यंजनावादी कला में पौला का है। दोनों की चित्रकला का तुलनात्मक अध्ययन बोधप्रद है। दोनो की अल्पायु मे मृत्यु हुई। पौला के प्रसिद्ध चित्रो मे 'राइनेर मारिया रिल्के का व्यक्तिचित्र', 'आत्मचित्र' व कृषकों के चित्र है। अपनी छोटी सी आयु मे उन्होने जो कुछ चित्र पूर्ण किये उनसे उनके मौलिक कलात्मक व्यक्तित्व का परिचय होता है। उत्तर जर्मनी के चित्रकारो में पौला मोडेरसोन ने सर्वप्रथम व स्वतन्त्र रूप से अभिव्यजनावादी चित्रण का नया मार्ग अपनाया।

एमिल नोल्डे (1867–1956)

नोल्डे की कला में विशुद्ध मूल रगों के भावनोद्दीपन के सामर्थ्य को क्रियान्वित किया है। रंगों के इस सामर्थ्य का साक्षात्कार उनको संदिग्ध मानसिक अवस्था में व क्रमशः हुआ, और इस मानसिक प्रक्रिया में उनको कठिनाइयो व संघर्षों से सामना करना पड़ा। 1898 में उन्होने हॉल्त्सेल–जो स्वयं विशुद्ध रंगों व सरलीकृत आकारों के कलात्मक सामर्थ्य के बारे में शोध कर रहे थे–के मार्गदर्शन में कला की शिक्षा प्राप्त की। इस समय उन पर डाखो चित्रकारों का प्रभाव था। 1906 मे ब्रूके चित्रकारों ने नोल्डे को निमन्त्रित किया एवं एक साल तक वे उस मण्डल के सदस्य रहे। उनका 1906 में मुंख से व 1911 में एन्सोर से परिचय हुआ किन्तु इन सम्पर्कों के बावजूद उनकी कला का मौलिक व एकांत स्वरूप अबाधित रहा।

आरम्भिक काल में रेम्ब्रांट, गोया व दोमीय, नोल्डे के आदर्श चित्रकार थे। इन चित्रकारों की कला के मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य व अभिव्यक्ति से प्रभावित थे। बचपन के चित्रो में भी नोल्डे चित्रविषय को स्वभावविशेषताओं पर बल देकर चित्रण करते। कला की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये सेंट गॅल के औद्योगिक डिजाइन विद्यालय में अध्यापक रहे। इस काल में उन्होंने किसानों के कई चित्र बनाये जिनमें सादृश्य के अतिरिक्त किसानो की ऐंठनदार ऊबड़-खाबड़ शरीराकृतियों को अतिशयोक्त अतिमानवीय रूप मे चित्रित किया है। इन चित्रों को हम व्यंग्यचित्रों में शामिल नही कर सकते क्योंकि इनमे शारीरिक की अपेक्षा आंतरिक स्वभावविशेषताओं की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। 1896 में बनाये उनके रेखाचित्रों—'गुफानिवासी स्त्री', 'आलसी', 'सामर्थ्य का नकाब'[29] वगैरह—में भी शारीरिक की अपेक्षा आत्मिक गुणों का दर्शन अधिक प्रभावपूर्ण है। 1894 में चित्रित किये प्रकृतिदृश्यों में पौराणिक कल्पनावाद है; स्विटजर्लैंड के पहाड़ों को काल्पनिक मानव रूप मे चित्रित कर शीर्षकों द्वारा कल्पना को स्पष्ट किया है जैसे कि 'युवती', 'भिक्षु', 'जंगली' वगैरह। इन चित्रो में उन्होंने वहाँ के निवासियों की उन पहाड़ों के बारे में प्रचलित कल्पनाओं को साकार किया है।

1900 में जब वे पॅरिस गये थे तब माने के रंगांकन की विशुद्धता व दोमीय की अभिव्यंजनात्मक शैली से वे प्रभावित हुए। 1906 में संग्राहक ओस्टौस ने नोल्डे को वान गो, गोग्यं, मोने व समकालीन फ्रेंच चित्रकारो की कृतियाँ दिखायीं

प्रेरणा पाकर वे विशुद्ध रंगों में चित्रण करने की दिशा में आत्मविश्वास के साथ अग्रसर हुए और उन्होंने फूलों व बगीचों के चमकीले रंगसंगति के चित्र बनाये जिनमें उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की झलक भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। मुंश, वान गो व एन्सोर की कलाकृतियों में उन्होंने अभिव्यक्ति की समानता को अनुभव किया व उनसे निजी अभिव्यक्ति को सुदृढ़ व परिणामकारक बनाने में उनको सहायता मिली। नोल्डे की कला में मानवीय जीवन की आदिम प्रेरणाओं को धार्मिक निष्ठा के साथ चित्रित किया है; 1909 से लेकर 1911 तक उन्होंने इस दर्शन के जो चित्र बनाये उनमें 'अन्तिम भोजन', 'साक्षात्कार'[30] आदि ईसा के जीवन के चित्र प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् उन्होंने मानव-चित्रण किया जिसमें मानवाकृतियों को उनके स्वाभाविक सहजप्रवृत्तिजन्य ऐन्द्रिय सामर्थ्य के साथ, प्रतीकात्मक रंगों का प्रयोग करके चित्रित किया है; मुक्त तूलिकापचालन व गतिपूर्ण वक्र रेखाओं से ये चित्र सचेत बन गये है।

नोल्डे की कला निसर्ग के विरोधी नहीं है किन्तु उसमें निसर्ग के बाह्य रूप का चित्रण नहीं है बल्कि उसकी आतंरिक प्रेरणाओं को कलात्मक अनुभूतियों द्वारा, माध्यम का सचेत प्रयोग करके, समरूप में चित्रित किया है जिससे दर्शक जीवन की आधारभूत प्रेरणाओं के अस्तित्व को स्वयं अनुभव कर लेता है। इस सम्बन्ध में वेर्नेर हाफ्टमन ने लिखा है "नोल्डे के लिये वही सत्य था जो दृश्य वास्तविकता के पीछे छिप कर, उसके द्वारा निजी अस्तित्व का साक्षात्कार कराता है। मस्तिष्क की कल्पना से ही निसर्ग को अर्थ प्राप्त होता है"। नोल्डे की कला में मानवीय आदिम प्रेरणाओं का साकार दर्शन है व इसी कारण क्ले उनको 'पाताल-लोक का देव'[31] कहते। नोल्डे क्ले को 'तारों भरे विश्वमण्डल में उड़ने वाली तितली'[32] कहते क्योंकि क्ले के चित्रों द्वारा दर्शक परीकथा के समान काल्पनिक व स्वर्गिल दुनिया में प्रवेश पाते हैं। बाह्य दर्शन में भिन्नता होते हुए नोल्डे व क्ले दोनों ने मानव के आंतरिक जीवन को ही चित्रित किया है। नोल्डे की कला के विरोध में मातिस की कला की तुलना की जा सकती है जिसमें बाह्य सौन्दर्य व रचना के अतिरिक्त कोई आंतरिक गुण नहीं है व जो सर्वसाधारण रूप से फ्रेंच कला की विशेषता रही। फ्रेंच व जर्मन कला में यह जो प्रमुख भिन्नता है उसको ध्यान में रख कर हम समझ सकते हैं कि सोएरलान्ट ने नोल्डे को 'जर्मन राष्ट्रीय कला का प्रणेता'[33] क्यों माना व वेर्नेर हाफ्टमन ने उनकी कला को 'फाववाद की पूर्णरूप से जर्मन आवृत्ति' क्यों माना। 1912 में नोल्डे ने 'पुनरुत्थान', 'सपत्नीक सैनिक' ये चित्र, ईसा के जीवन पर नौ वेदी-चित्र व 'साता मारिया इजिप्सियाका' का त्रिपट[35] बनाये। अपने चित्रकारी जीवन में उन्होंने पॅरिस, लंदन तथा जापान, चीन आदि विदेशों की यात्राएँ की। नात्सी सरकार ने उनकी कला को 'भ्रष्ट कला'[36] नाम देकर, उनके 1052 चित्र जब्त किये व उनके चित्रण पर प्रतिबन्ध लगाया। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् वे श्लेस्विग-होल्स्टाइन संस्था में अध्यापक नियुक्त किये गये।

ख्रिस्टियन रोल्फस (1849–1938)

नोल्डे की कला में काव्य का जो प्रभाव है वह रोल्फस की कला में नही है क्योंकि रोल्फस ने वातावरण की चचलता की उपेक्षा नही की बल्कि प्रभाववादी चित्रकारो के समान इन्द्रधनुषी रगाकन से चित्र क्षेत्र को सचेत बनाया। भावनाओं की अभिव्यक्ति के पीछे वे रगसगति की मोहकता व दृश्य के काव्य को भूल नही सके।

तीस साल तक उन्होने वाइमार में प्रकृति चित्रण किया। 1900 के बाद उनको मोने, सोरा, वान गो व गाग्वँ की कलाकृतियों को देखने का मौका मिला। मोने के 'रुग्रा के गिरजाघरो' की चचल अकनपद्धति व वान गो की अभिव्यंजना का उनके सोएस्ट शहर के दृश्यचित्रों पर स्पष्ट प्रभाव है।

एर्न्स्ट लुडविक किर्शनेर व ब्र्यूके चित्रकार :—

ब्र्यूके कलाकार-मण्डल के सस्थापक थे किर्शनेर, हेकेल व श्मिट-रोटलुफ। 1904 मे ड्रेस्डेन टेक्नीकल विद्यालय के विद्यार्थी होने के कारण उनमें घनिष्ठ मित्रता थी। नीत्शे के दर्शन से प्रभावित होकर सामाजिक क्राति करने के उद्देश्य से उन्होंने चित्रकला को माध्यम के रूप मे चुना। वान गो व गोग्वँ के समान 'कलाकार भ्रातृ-मण्डल' की कल्पना से प्रेरित होकर इन तीनों कलाकारो ने 1905 में 'फ्रीडरिश्टाट क्वार्टर' मे मोची की खाली हुई दुकान में जगह लेकर, एक साथ रहकर कलानिर्मिति प्रारम्भ की। इस समय योरप के सभी विचारक्षेत्रो में क्राति के विचार से प्रेरित नवयुवको के मण्डलो की प्रस्थापना होकर नवीन विचारों का प्रसार हो रहा था। तीनो कलाकारो मे से किर्शनेर सबसे बुद्धिमान, उत्साही व क्रांतिवादी थे। 1904 में किर्शनेर ने नवप्रभाववादियो की प्रदर्शनी देखी व विशुद्ध रंगाकन में प्रयोग करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त गोथिक कला, मेलेनेशियन आदिवासी कला, क्रानाख की कला व मध्ययुगीन जर्मन कला के प्रभाव से उनकी कला में समतल विशुद्ध रगो व सरलीकृत आकारों ने प्रवेश किया। अब बोनार, वीयार व पुर्गेटस्टिल का अनुसरण छोड़कर तीनो चित्रकार वान गो के समान बाह्य रेखा से अकित सरलीकृत आकारों व विशुद्ध रगों के समतल क्षेत्रों मे चित्रण करने लगे। 1907 के करीब ब्र्यूके चित्रकारों की निजी शैलियाँ काफी विकसित हो चुकी थी एव इसी समय उन पर फाववाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने लगा। तीनों की कलाकृतियों मे इतनी समानता आ गयी कि वैयक्तिक सूक्ष्म भेदो से ही उनके उस समय के चित्रों को हम पृथक् रूप से पहचान सकते है। किर्शनेर सवेदनाशील व अशांत थे, श्मिट-रोटलुफ में जोश व स्पष्टता के गुण थे तो हेकेल मे काव्यदृष्टि थी। 1905 में उन्होंने अपने मण्डल को नाम दिया 'ब्र्यूके' जिसके उद्देश्य का श्मिट-रोटलुफ ने स्पष्टीकरण किया "ब्र्यूके का उद्देश्य सभी क्रातिकारी व प्रक्षोभक तत्वों को आकर्षित करना है"[37]। उन्होंने नोल्डे को निमन्त्रित किया और 1906 मे नोल्डे, माक्स पेश्टाइन व कुनो आमिएट मण्डल के सदस्य बन गये। 1908 में फाव चित्रकार वान डोन्जेन व 1910 में ओटो मुएलेर ब्र्यूके के सदस्य बने। ब्र्यूके मण्डल की प्रथम प्रदर्शनी को और किसी ने

विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु 1906 में हुई दूसरी प्रदर्शनी की काफी आलोचना हुई।

फाव चित्रकारों के समान ब्र्युके चित्रकारों के विषय मुख्यतया वास्तविकता से लिये गये थे जैसे कि विवस्त्र स्त्री, वस्तुसमूह, प्राकृतिक दृश्य आदि। अभिव्यक्तिपूर्ण बनाने के हेतु वे नैसर्गिक आकारों को ऐंठन देकर अंकित करते एवं प्रेरणा के लिये सहजप्रवृत्ति, आदिमकता व उन्मुक्त मानसिक अवस्था पर निर्भर रहते। आरम्भिक काल में ऐंठनदार रेखा से अंकित आकारों व विशुद्ध रंगों की योजना को अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन माना जाता था और उसको परिणामी बनाने के लिये ब्र्युके चित्रकारों ने प्रभाववादी अंकनपद्धति का अभिव्यंजनावादी दिशा में विकास किया व वैयक्तिक धारणाओं के अनुकूल निजी शैली को सुनिश्चित रूप दिया।

1910 से ब्र्युके चित्रकारों में से एक-एक करके कई सदस्य बर्लिन पहुँचे। बर्लिन में पेश्टाइन ने नोल्डे व अन्य तरुण चित्रकारों के सहयोग से 'नाय जेचेसिओन' मण्डल की प्रस्थापना की जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रभाववादी सिद्धान्तों के विरोध में कला के मूलाधार तत्वों व सहजप्रवृत्ति द्वारा कलानिर्मिति करने को प्रोत्साहन देना था। किर्शनेर, हेकेल व श्मिट-रोटलुफ 'नाय जेचेसिओन' में शामिल हुए जहाँ ओटो मुएलेर ने उनको डिस्टेंपर का प्रयोग करना सिखाया। किन्तु ब्र्युके मण्डल के विशुद्ध रूप व उद्देश्यों को भ्रष्टता से बचाने के हेतु उन तीनों ने 'नाय जेचेसिओन' मण्डल का त्याग किया। 1912 में बर्लिन की 'गुर्लिट वीथिका' में हुई प्रदर्शनी में व कलोन में हुई 'सोंडरबुंट' प्रदर्शनी में ब्र्युके चित्रकारों ने सामूहिक रूप से भाग लिया। अब तक उनके सदस्यों ने वैयक्तिक शैली के विकास की दिशा में काफी प्रगति की थी, उनके रेखांकन अधिक संवेदनाशील, अवकाश अधिक विभक्त व आकार अधिक कोणदार बन गये थे; रंगसंगति में विशुद्ध रंगों के स्थान पर कुछ हलके व कुछ गहरे रंगों का मिश्रित प्रयोग शुरु हुआ था व चित्ररचना पर घनवाद का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी छा रहा था। इस प्रकार भिन्न तत्वों का प्रवेश होते ही ब्र्युके मण्डल के सदस्यों की वैयक्तिक विशेषताएँ स्पष्ट हो गयी। 1913 में किर्शनेर के पत्रक 'क्रोनिक डेर ब्र्युके'[38] से अन्य सदस्यों ने असहमति व्यक्त की व मण्डल का विसर्जन हो गया।

ब्र्युके मण्डल के निर्देशन का कार्य मुख्य रूप से किर्शनेर ने किया। युगेंटस्टिल के आरम्भिक प्रभाव से मुक्त करके उन्होंने ब्र्युके मण्डल के कलाकारों को सोरा, वान गो, गोग्वें व मुंख की कला के महत्त्व को स्पष्ट किया व अन्त में उनकी कला को आदिम कला व गोथिक कला के समान सरलीकृत रूप प्रदान किया। उनका मुख्य लक्ष्य था कला के मूलतत्वों का आविष्कार करके उनके द्वारा कला को अभिव्यक्ति का साधन बनाना। उन्होंने तुरन्त पहचाना कि कला में मानवीय भावनाओं को महत्त्व है, अतः उन्होंने अपनी कला में बाह्य रूप को गौण स्थान दिया जिससे उनकी कला को काव्य के समान भावनोद्दीपन का सामर्थ्य प्राप्त हुआ। उन्होंने देखा कि अपनी कलात्मक ध्येयसिद्धि के लिये फाव कलाकारों के समान समतल रंगाकार

एवं स्पष्ट व सरलीकृत वाह्यरेखा का प्रयोग आवश्यक है; अतः उन्होंने उन तत्वों का सयोजनपूर्वक अपितु भावनापूर्ण प्रयोग किया। 1907 तक वे फावकला से प्रभावित थे किन्तु उनकी कलाकृतियाँ फावकला के समान केवल बाह्य सौन्दर्य से सीमित नहीं थी बल्कि उनमे मनोवैज्ञानिक सूचकता का सामर्थ्य भी था; उनमें मानवीय भावनाओं को जागृत करने का एवं दर्शक को आत्मिक अनुभूति प्रदान करने का सामर्थ्य था।

1911 में वे जब बर्लिन गये तब वहाँ के शहरी वातावरण मे उनको मानसिक अशांति व गतित्व के तत्वो को पोषक विषय मिले। यहाँ के उनके चित्रो में भ्रष्ट व विफल शहरी जीवन व उसकी निरर्थक कृत्रिमता का प्रभावी दर्शन है; इन चित्रो में रास्तों में घूमती हुई प्रदर्शनवृत्ति महिलाओ व शृंगार करती हुई महिलाओं के चित्र प्रसिद्ध है। दुर्बल शरीरों को अत्यधिक वस्त्रालंकारों मे सजाने की–जीवन की सार्थकता से सम्बन्ध न रखने वाली–महिलाओं की इस प्रदर्शनवृत्ति का किर्शनेर ने परिणामकारक व कटु उपहास किया है; एक तरह से किर्शनेर ने विकृत शहरी जीवन का चित्रकला द्वारा मनोविश्लेषण किया है। मुंख, एन्सोर व वान गो के समान किर्शनेर को भी मज्जातंतु के दौर्बल्य से पीड़ित होकर 1914 में चिकित्सालय में भरती होना पड़ा।

हेकेल ने प्रारम्भ मे किर्शनेर का अनुयायित्व किया। रंग व रेखा के स्वाभाविक गुणो का विकास करने के फाव सिद्धान्तों का उन पर प्रभाव था, किन्तु स्वाभाविक सयमशीलवृत्ति के कारण फाव उन्मुक्तता को उनकी कला में सीमित स्थान था। उनकी सबसे जोशपूर्ण कृतियो मे भी विचारनिष्ठ सयम का प्रभाव है। उनकी कृतियों में नाटकीय आत्मप्रदर्शन नहीं है। 1914 के पश्चात् वे पूर्व एशियाई कला के समान प्रसन्न व कुछ नियन्त्रणपूर्ण चित्रण करने लगे। उन्होंने हलकी बाह्य रेखा से अंकित व हलकी रगसगति में कई प्रकृति-चित्र बनाये।

ब्रुके के चित्रकारो में से कार्ल शिमट-रोटलुफ बौद्धिकता से घृणा करते एवं सब से आवेशपूर्ण चित्रण करते। उन्होंने 1906 में नोल्डे के साथ व 1907 में हेकेल के साथ चित्रण किया और उन दोनों ने विशुद्ध रंगों के समतल प्रयोग मे प्रभाववादी अंकनपद्धति को नयी दिशा में किस प्रकार मोड़ दिया यह देखा। नीग्रो कला के अध्ययन से उन्होंने आकारो को सरलता व आदिम सामर्थ्य प्रदान किये। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उन्होंने अपनी रंगसंगति को अधिक सौम्य बनाया व आकारो की कठोरता को कम किया।

माक्स पेश्टाइन (1881–1955) की शैली आलंकारिक थी व उसमें किर्शनेर की भावुकता व बुद्धि का प्रभाव नही था। सुदूर के वन्य प्रदेशों के प्राकृतिक दृश्यो को उन्होंने आलंकारिक ढग से चित्रित किया। 1914 में उन्होंने पालाऊ द्वीपों की यात्रा की थी।

ब्रूके चित्रकारों में से, ओटो मुफलेर की शैली स्पष्ट रूप से वैयक्तिक है। उनके पिता के खानदान में अच्छे विद्वान् व धार्मिक पुरुषों ने जन्म लिया था किन्तु उनकी माता एक घुमक्कड़ जाति की लड़की थी। मुफलेर स्वयं शरीर से दुर्बल थे व अदृश्य शक्तियों व जादूटोना का विश्वास करते थे। मुएलेर की कलासृष्टि सौम्य व प्रशांत सौन्दर्य से ओत-प्रोत है; उसमें वनों, तालाब के किनारों पर मानवाकृतियों, झोंपड़ियों व विवस्त्र स्त्रियों का चित्रण है जिनके द्वारा हम किसी अनोखी काल्पनिक पौराणिक दुनिया में प्रवेश पाते हैं। उनकी कला पर 1896 में ड्रेसडेन अकादेमी में किये अध्ययन, युगेंटस्टिल शैली व बॉकलिन के प्रभाव थे। 1910 तक उनकी कलाशैली का पूर्ण विकास हो चुका था व अभिव्यंजनावादी झलक होते हुए उसमें शास्त्रीयतावादी कला के आकारों की नियमबद्धता थी। 1919 से वे ब्रेस्लौ की अकादेमी में अध्यापक थे। उनकी आयु की उत्तरकालीन कृतियां दुःख व निराशा से भरी हुई है और सही अर्थ में अभिव्यंजनावादी बन गई हैं। 1930 में उनकी मृत्यु हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रूके एवं अन्य अभिव्यंजनावादी चित्रकारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया व उनकी अभिव्यक्ति को नया रूप प्राप्त हुआ। हेकेल व श्मिट-रोटलुफ ने अपनी शैलियों को अधिक सुसूत्र बनाया; हेकेल ने धार्मिक अभिव्यक्ति के साथ यथार्थ सौन्दर्य की ओर ध्यान दिया व श्मिट-रोटलुफ भी प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित हुए। रुग्णालय से मुक्त होने के बाद किर्शनेर स्विटजर्लैंड के पहाड़ी झोंपड़ी में रहने लगे। पहले की निराशा का स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध आशावादी नवजीवन ने ले लिया एवं उन्होंने वहां के पहाड़ी दृश्यों, किसानों व प्राकृतिक सौंदर्य का प्रसन्नतापूर्ण चित्रण किया। उन्होंने लिखा है "सरलीकृत विशाल आकारों व स्पष्ट रंगों से मेरी भावनाओं व अनुभूतियों को व्यक्त करना मेरा प्रारम्भ से ही ध्येय रहा व अभी मेरा यही ध्येय है। मैं जीवन की सम्पन्नता व आनन्द, मानवीय प्रेम व द्वेष दोनों को चित्रित करना चाहता हूँ"। 1921 से 1925 तक का काल किर्शनेर की कला में सर्जनपूर्ण रहा; प्रकृति के सम्पर्क में उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों व सीधेसादे कृषक जीवन के कई चित्र बनाये। मानसिक स्वास्थ्य का लाभ होने से उनके रंगों में सौम्यता व चित्रान्तर्गत वातावरण में प्रसन्नता आ गयी व सुस्थापित अवकाश के अन्तर्गत नैसर्गिक वस्तुओं के मूल आकारों का स्वाभाविक सौंदर्य प्रकट हो गया। कुछ साल बाद मज्जातन्तु-दौर्बल्य के आक्रमण के चिह्न पुनश्च दिखायी देने लगे। जर्मनी में तानाशाही सरकार ने अत्याचार शुरू किये व उनकी कला का उपहास किया। परिणामस्वरूप निराश हो कर उन्होंने 1938 में आत्महत्या की। बाह्य सादृश्य के अंतर्गत लिये हुए मूल आकारों के सौंदर्य का परिणामकारक दर्शन किर्शनेर की कला की महानता है।

'ब्लौ राइटेर' मंडल व उनके सदस्य चित्रकार :

1909 मे कान्डिन्स्की ने म्यूनिक मे एक नवकलाकार-मंडल[39] की स्थापना की व उसके उद्देश्यों को निश्चित रूप दे कर जर्मन कलाक्षेत्र म नवीन विचार-प्रवाहों को जन्म दिया। किन्तु इस मंडल के सदस्यों की वैयक्तिक विचारधाराओं तथा उनकी शैलियों मे आपस म भिन्नताएं थी और बहुत से सदस्य कान्डिन्स्की के मौलिक विचारों को समझ नहीं पाये। 1910 मे फान्त्स मार्क, माके व क्ले मंडल में सम्मिलित हुए किन्तु यालेन्स्की के साथ, उसी मंडल के अंतर्गत, उनका एक नया गुट बन गया। ये सभी सदस्य स्वतंत्र व्यक्तित्व लिये हुए प्रतिभासपन्न चित्रकार थे एवं आपस में चर्चा कर के निजी धारणाओं को प्रतिम रूप देना चाहते थे।

1910 मे कान्डिन्स्की ने अपने विचारो को शाब्दिक रूप देना शुरू किया। 1912 मे उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'कला मे आत्मिकता' प्रकाशित हुई। कान्डिन्स्की समकालीन विचार क्षेत्र मे बढ़ते हुए भौतिकवाद के प्रभुत्व से सामना कर के कला को भौतिकवाद से मुक्त करना चाहते। मातिस ने रगों को वस्तुसादृश्य के दासत्व से मुक्त किया था और पिकासो ने आकारो को नैसर्गिक रूप के बधन से मुक्त किया था; कान्डिन्स्की को इसमे कला के उज्ज्वल भविष्य के चिह्न प्रतीत हुए एव उन्होने लिखा "ये ऐसे चिह्न है जो कला की महानता की ओर सकेत कर रहे है" और उन्होंने निर्णय दिया "रगों व आकारो की सुसगति का एक ही आधार हो सकता है-मानव की आत्मा से उद्देश्यपूर्ण सपर्क; विशुद्ध रगो व आकारों के अभिव्यक्ति-पूर्ण नादनिनाद से चित्रकार को वस्तु के आतरिक सगीत को व उससे मानव की आत्मा में निर्मित भावतरगो को साकार करने का साधन प्राप्त होता है। सगीत के समान,—बाह्य नैसर्गिक रूप-सादृश्य के बधन से पूर्ण मुक्त कर के-रेखा व रगों जैसे कला के मूलतत्वो द्वारा आत्मिक अनुभूति को विशुद्ध रूप में चित्रित किया जा सकता है। कलाकार के लिये एक ही विचार महत्व रखता है- वह है आतरिक आवश्यकता।" 1910 में कान्डिन्स्की ने अपना पहला वस्तुनिरपेक्ष चित्र बनाया। 1912 तक उन्होंने रंगों की दुनिया मे मग्न होकर उसमे उनको जो विश्वमडलीय आकार दिखायी दिये उनको व अपनी कल्पना-सृष्टि को पट पर उतारा।

अब मंडल के सदस्यों ने कला के विषयक्षेत्र से दृश्य वास्तविक सृष्टि को हटा दिया और आत्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति के ध्येय से प्रेरित होकर चित्रण शुरू किया जिससे उनकी कला को नया धार्मिक रूप प्राप्त हुआ। किन्तु यह धार्मिक दृष्टि किसी विशिष्ट साम्प्रदायिक धर्म से सलग्न नहीं थी; उनका दृष्टिकोण व्यापक था व उसकी एक ही श्रद्धा थी- विशाल आत्मिक जीवन की महानता। थिओसोफी, ब्लावाट्स्की, श्टाइनेर व पौर्वात्य धर्मग्रन्थों का अध्ययन शुरू हुआ, जिसके उद्देश्य के बारे मे फान्त्स मार्क ने लिखा है "हमारा ध्येय था हमारे समय के अनुकूल प्रतीकों का निर्माण, जिनसे भविष्य के आत्मिक धर्म की वेदी को सजाया

जा सके"। फ्रान्त्स मार्क बायबल के आधुनिक दर्शन के चित्र बनाने का विचार कर रहे थे; कान्डिन्स्की ने ईसा के जीवन की 'अंतिम भोजन' घटना को चित्रित किया व कुछ चित्रों मे देवदूतों की आकृतियों का समावेश किया।

1911 की नव-कलाकार मंडल की तृतीय प्रदर्शनी में कान्डिन्स्की के चित्र 'अंतिम भोजन' पर मतभेद हुए व कान्डिन्स्की, मार्क, कुबिन व गाब्रिएल मुंटेर मंडल से पृथक् हो गये। उसी साल उन कलाकारों ने उसी कलावीथिका टानोवेर मे अपनी प्रदर्शनी का आयोजन किया व इस प्रकार 'ब्लौ राइटेर' मंडली की प्रस्थापना हुई। प्रदर्शनी मे फ्रान्त्स मार्क, माके, मुंटेर, काम्पेन्डोंक आदि समान विचारों के चित्रकारों के अतिरिक्त, फ्रान्स के चित्रकार रॉबर देलोने व आंरी रूसो के चित्र भी प्रदर्शित हुए थे जिनका, कान्डिन्स्की के विचारानुसार, आधुनिक कला के महान् प्रणेताओं में स्थान था। 'ब्लौ राइटेर' ने एक ग्राफिक कला की प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें फ्रेंच घनवादी कलाकारों, ब्रूके कलाकारों व रशियन आधुनिक कलाकारों की कृतियां रखी गयी। 1912 मे चित्रप्रदर्शनी का आयोजन होकर वह जर्मनी के भिन्न शहरों में दिखायी गयी।

'ब्लौ राइटेर' कोई सुगठित संस्था नही थी। वह केवल समान विचारों के कलाकारों का भ्रातृमंडल था जिसमें कान्डिन्स्की, मार्क, माके व यालेन्स्की प्रमुख थे। 'ब्लौ राइटेर' (नीला घुड़सवार) कान्डिन्स्की के एक चित्र का शीर्षक था व उसी नाम से मार्क व कान्डिन्स्की ने एक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित की थी जिसने आधुनिक कलाविषयक विचारों को प्रदर्शित किया था। उस पत्रिका में माके, बुर्ल्युक व शोनबर्ग के लेख थे। मार्क ने जर्मन कलाक्षेत्र में हुए ब्रूके, नाव ज़ेचेसिओन आदि प्रयत्नों की समीक्षा करके निर्णय दिया कि अब कलाकारों में विचार-परिवर्तन आवश्यक है; केवल अंकनपद्धति में नवीन प्रयोग करने से विकास नहीं होगा। कुछ लेखों में रशियन आधुनिक कला, घनवाद व देलोने की चित्रण-पद्धति का विवरण था। कान्डिन्स्की ने अपने 'आंतरिक आवश्यकता' के सिद्धान्त के आधार पर घोषित किया "भविष्य की कला घनिष्ठ यथार्थवाद वस्तुनिरपेक्षता व घनिष्ठ यथार्थवाद के बीच दोलायमान रहेगी"[40]। घनिष्ठ यथार्थवाद के उदाहरण के रूप में उन्होंने आंरी रूसो की कला का प्रमाण दिया।

'ब्लौ राइटेर' कलाकार समान विचारों से एकत्रित हुए थे व उन्हीं विचारों मे एकनिष्ठ रह कर उन्होने कला का विकास [illegible] किन्तु उनमे से प्रत्येक कलाकार की ऐसी मौलिक विशेषता थी उस [illegible] ी को पृथक् कर

फ्रान्स मार्क (1880–1916)

फ्रान्स मार्क की कला समग्र चराचर सृष्टि में गूढ़ आत्माओं का दर्शन कराती है। सभी वस्तुओं, प्राणियों व वनस्पतियों में मार्क ने उनके अस्तित्व को अनुभव किया व धार्मिक निष्ठा से उस अनुभूति को चित्रित किया। विद्यार्थी अवस्था में ही वेदान्ती बनने की वे महत्त्वाकांक्षा रखते थे। 1900 से वे म्यूनिक अकादेमी के विद्यार्थी थे किन्तु वहाँ के नैसर्गिकतावादी अध्ययन से वे असन्तुष्ट थे। 1903 में जब उन्होंने पैरिस की यात्राएँ की तब उनको प्रभाववाद व नाबि कला का ज्ञान हुआ। 19वीं शताब्दी के अन्तकालीन व्याकुल सामाजिक मनोविज्ञान के वे शिकार थे और उस असह्य मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने कला का सहारा लिया। उन्होंने एक पत्र में लिखा था "मैं चाहता हूं कि चित्रकला मुझे मेरी आतंकित अवस्था से मुक्त करे"। 1907 में वे फिर पैरिस गये जहां वान गो के चित्रों के अध्ययन से वे मार्गदर्शन चाहते थे। उसी साल उन्होंने कला की परिभाषा की "कला में अपने स्वप्नों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है"। चराचरसृष्टि की एकता व प्रेम मार्क का स्वप्न था व उसी को उन्होंने कला द्वारा साकार किया। मार्क के चित्रों में ऐसे चित्र बहुसंख्य हैं जिनमें प्राणिमात्र, वनस्पति सृष्टि में एकरूप होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो बैठे हैं। मूक प्राणियों व वनस्पतियों के एकात्म व लयबद्ध जीवन का सहानुभूतिपूर्ण दर्शन मार्क की कला का मूलाधार था और उसको वे 'कला का सजीवीकरण'[41] कहते।

1910 में उनका ऑगुस्ट माके से परिचय हुआ। गोगँ व मातिस की कला के परिशीलन से माके को विशुद्ध रंगों के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ एवं उन्होंने मार्क को उससे अवगत कराया व मार्क विशुद्ध रंगों के प्रतीकात्मक प्रयोग करने लगे। उसी साल उनकी कान्डिन्स्की से मित्रता हुई। 1911 में मार्क ने प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठभूमि पर जानवरों के चित्रों की मालिका बनायी जिसमें से 'लाल घोड़े' चित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। उन्होंने प्रकृति व जानवरों को प्रतीकात्मक रंगों में अंकित किया व उनमें आत्मिक सामर्थ्य प्रदान करने के उद्देश्य से उनके आकारों का घनवादी पद्धति से सरलीकरण किया; इस पद्धति को वे 'आतरिक गूढ़ रचना'[42] कहते। आतरिक जीवन पर निष्ठा होने के कारण मार्क घनवाद के रचनात्मक सौंदर्य के ध्येय के आगे देलोने के भुरीलवाद की ओर बढ़े। उन्होंने कलाकार के कर्तव्य के बारे में लिखा है "........ जिन नियमों का पूरे संसार पर अधिष्ठान है उन नियमों की खोज, व्यक्तित्व के ऊपर उठकर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश"। 1912 में वे देलोने से मिलने पैरिस गये व दोनों घनिष्ठ मित्र हुए। उसी साल उन्होंने म्यूनिक में हुई भविष्यवादी कला की प्रदर्शनी को देखकर घनवादी चित्रण से गतित्व के परिणाम को अंकित करने की पद्धति को सीखा। इस प्रकार फाववाद, घनवाद, भविष्यवाद व कान्डिन्स्की मार्क की कला के विकास में सहायक हुए। 1912-13 में बनाये उनके चित्र 'नीले घोड़ों का मीनार', 'जानवरों के भविष्य',

'जंगल में हिरन'[52] उनकी पूर्ण विकसित शैली के सुन्दर उदाहरण है एवं उनमे स्फटिकीय पारदर्शकता लिये हुए वातावरण के अन्तर्गत जानवरो व वनस्पतियो के एकात्मक रूप को चित्रित किया है। कला के ध्येय के संदर्भ मे उन्होंने लिखा है "......अविनाशी आत्मा की प्राप्ति के लिये तड़प, अशाश्वत ऐंद्रिय जीवन से मुक्ति-इसी मानसिक अवस्था में कला का जन्म होता है"।

कान्डिन्स्की से प्रोत्साहन पाकर मार्क ने 1913 मे वस्तुनिरपेक्षता की ओर कदम उठाया किन्तु उनके वस्तुनिरपेक्ष चित्रो में भी सृष्टि का अप्रत्यक्ष आभास है व चराचर की एकात्मता की प्रतीति है। 1916 मे द्वितीय विश्वयुद्ध के रणक्षेत्र पर उनकी अकाल मृत्यु हुई।

औगुस्ट माके (1887–1914):—

फ्रान्त्स मार्क के समान, माके की कला कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन में व घनवाद, भविष्यवाद व देलोने के सुरीलवाद के अध्ययन के साथ विकसित हुई; किन्तु मार्क से माके की रुचि भिन्न थी और वे वास्तविक सृष्टि के बाह्य सौंदर्य से लुब्ध थे।

माके का प्रारंभिक अध्ययन 1904-1906 तक ड्यूसेलडार्फ अकादेमी मे व 1907 में कोरिंट के मार्गदर्शन में बर्लिन में हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने पेरिस की यात्राएँ की जिससे मातिस व गोग्वें की कला से परिचित होकर उनको विशुद्ध रंगो के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ। किन्तु 'ब्लो राइटेर' कलाकारो से सम्पर्क होने के बाद ही वे अपनी भावनाओं को समुचित रूप मे साकार करने मे सफल हुए। मार्क व कान्डिन्स्की के समान वे भावनाविवश नही थे। मार्क से उनकी इतनी ही समानता थी कि वे दृश्य सौंदर्य के काव्य से मोहित थे। 1912 में वे पेरिस में देलोने से मिले व उनको दृश्य सौंदर्य को विशुद्ध रंगों व घनवादी रचना द्वारा चित्रित करने का साधन प्राप्त हुआ।

भविष्यवादी चित्रकारों के समान, माके समय व स्थान की दृष्टि से भिन्न दृश्यो को एक ही चित्र मे समाविष्ट करते, व इटालियन भविष्यवादी चित्रकारो के समान उन्होंने रास्तो के चित्र पर्याप्त मात्रा मे चित्रित किये जिनमें दूकानो की दर्शन-खिडकियों के सामने निरीक्षण करती हुई युवतियो के चित्र हैं।

बाह्य प्रभावों के बावजूद, माके की कला में मौलिक गुण हैं और उनके चित्र उनकी असाधारण काव्यमय वृत्ति एवं विशुद्ध रंगो व सरल आकारों के द्वारा सौंदर्य के प्रति उत्कट संवेदना-शीलत्व व स्वतंत्र व्यक्तित्व के साक्ष्य हैं। 1914 मे उन्होंने पौल क्ले के साथ ट्यूनिशिया की यात्रा की। अफ्रीका के चमकीले रंगों व प्रखर प्रकाशयुक्त वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने वहां के कई रंगचित्र व प्रकृति-चित्र बनाये जिनमें हमको सुखपूर्ण प्रसन्न मानवीय जीवन व काव्यमय प्रकृति का दर्शन होता है। प्रथम विश्वयुद्ध मे इस महान् कलाकार की अल्पायु में मृत्यु हुई।

आलेक्सेय फॉन यालेन्स्की

युवावस्था के प्रारम्भ मे यालेन्स्की रशियन सेना मे अधिकारी थे । वे फुरसत मे चित्रण करते व चित्रकार रेपिन के विद्यालय में चित्रकला का अध्ययन करने जाते। 1896 मे जब वे म्यूनिक गये थे उनकी कान्डिन्स्की से मित्रता हुई । पेरिस की यात्राओं मे वे सेजान व वान गो से मिले किन्तु मातिस ने उनको सबसे अधिक प्रभावित किया । मातिस के विस्तृत क्षेत्रो व विशुद्ध समतल रगो के अभिव्यक्ति के सामर्थ्य को देखकर उन्होने उन कलातत्वो को साधन के रूप में अपनाया व वस्तुचित्र, प्रकृतिचित्र व व्यक्तिचित्र बनाये । विशुद्ध चमकीले रगो के प्रयोग व स्पष्ट बाह्य-रेखा से उनकी कला दृश्य प्रभाव म व गूढवादी दृष्टिकोण से लोक-कला के सदृश बन गयी । 1905 मे वे पो आवा के चित्रकारो से परिचित हुए व उन्होंने ब्रितनी मे चित्रण किया । उनके कहे अनुसार उसी समय से वे सतोषजनक चित्रण करने लगे– "तब से मैं जिसको अनुभव कर रहा था न जिसको मैं केवल आखो से देख रहा था– उसको चित्रित करने मे सफल हो गया" । मातिस की अकनपद्धति एव गोर्ग के सिद्धान्तो से सहायता लेकर उन्होने अपनी कला को विशुद्ध रूप प्रदान किया । कान्डिस्की के मार्गदर्शन से उन्होने काफी लाभ उठाया किन्तु उन्होंने कान्डिस्की के समान, पूर्णरूप से वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कभी नही किया । व्यक्ति, वस्तु एवं प्राकृतिक दृश्य उनके चित्रविषय थे, व चमकीले रग व स्पष्ट बाह्य-रेखा उनके साधन थे ।

1917 से उन्होने चित्रविषय के रूप में मानवशीर्ष को चुना और अपनी सबसे परिणामकारक कृतियो की रचा । ये मानवशीर्ष व्यक्तिचित्र नही है बल्कि काल्पनिक, आत्मिक अनुभूति से भावदर्शी व रचनावादी पद्धति से अकित किये मानवशीर्ष हैं व उनके पीछे गहरी धार्मिक निष्ठा सर्जनशील है । ये चित्र रशियन प्रतिमाचित्रो के समान पवित्र व उदात्त दर्शन से ओतप्रोत है । यालेन्स्की ने इन चित्रो द्वारा सिद्ध किया कि आधुनिक अकनपद्धतियों व आकार कल्पनाओं की सहायता से धार्मिक अनुभूतियो को प्रभावी रूप मे चित्रित किया जा सकता है । कान्डिन्स्की क्ले फाइनिंगेर के साथ उन्होंने 'चार नीले'[65] मडल की प्रस्थापना की व 1924 से 192 तक चितनशील कलानिर्मित की ।

पोल क्ले (1879–1940)

1911 में पोल क्ले 'ब्लौ राइटेर' मंडल में सम्मिलित हुए । उससे पहले भी क्ले ने चित्रकला को संगीत के समान विशुद्ध रूप देने की आवश्यकता को पहचाना था किन्तु कान्डिन्स्की के विचारो से परिचय होते ही उन्होंने देखा कि कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन निजी कला के विकास में बहुत सहायक हो सकते हैं । विशुद्ध रंगों व स्पष्ट रेखाओं से काल्पनिक सृष्टि का निर्माण करने को कला का ध्येय या व उसकी सफलता के लिये उन्होंने वास्तविकता के बाह्य सौंदर्य की उपेक्षा की व उसके पीछे छिपी हुई अंतःसृष्टि का–जो फ्राइड के [illegible] से भी अटल सत्य थी

आविष्कार किया। क्ले को सत्य का दर्शन अतर्मन में हुआ। 1909 में उन्होंने लिखा था "...... सृष्टि के प्रत्यक्ष निरीक्षण से चित्रकार की रगों के प्रति भावना व प्रतिक्रिया अधिक महत्त्व रखती है"।

क्ले का जन्म 1879 मे बर्न मे हुआ। उनके पिता जर्मन संगीतकार थे व माता ने फ्रांस में संगीत का अध्ययन किया था। इस प्रकार जर्मन व फ्रेंच दोनों सस्कृतियो का क्ले पर प्रभाव था व संगीतमय वातावरण मे उनका बचपन बीता। वे स्वय उत्कृष्ट वायोलिन-वादक थे एवं संगीत का उनकी कला के विकास की दिशा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बचपन मे ही उनकी चित्रकला, संगीत व काव्य मे रुचि थी। 1898 में वे म्यूनिक गये, जिस समय वहां युगेंटस्टिल व नैमित्तिकतावाद का जोर था। 1602 से 1906 तक वे बर्न में रहे। इस काल में उन्होंने एचिंग द्वारा अनोखी प्रतिमानुप आकृतियो को चित्रित करके मनोवैज्ञानिक चित्रण को आरम्भ किया। होडलर, रेदों, गोया व ब्लेक के चित्रों को देखकर उनको विश्वास हुआ कि आतरिक सृष्टि को प्रभावी ढग से साकार करने का चित्रकला एक उत्कृष्ट माध्यम हो सकती है। 190‧ मे वे फिर म्यूनिक गये जहां उन्होंने एन्सोर की ग्राफिक कृतियां देखी व उनका यह विश्वास दृढ हो गया। 1908 में ही उनको वान गो के चित्र देखने का मौका मिला व विशुद्ध रगों से युक्त निर्भीक तूलिका सचालन के अभिव्यक्ति के सामर्थ्य की उनको प्रतीति हो गयी। 1909 म देखे सेजान के चित्रों से भी उन्होंने रगो के अपार सामर्थ्य को अनुभव किया। किन्तु 1911–12 में कान्डिन्स्की, मार्क व देलोने से हुए सम्पर्क से ही उनकी कला के विकास को स्वतन्त्र व सुनिर्णीत दिशा प्राप्त हुई। कान्डिन्स्की ने उनको रगो के मौलिक सौन्दर्य से परिचित कराया व मार्क ने अतःसृष्टि के सत्य एकात्म स्वरूप के विचार को चेतना देकर, उनके कलात्मक ध्येय को सुदृढ कराया।

आरम्भिक काल मे अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के हेतु क्ले रेखाकन पर अनिवार्य रूप से बल देते परन्तु धीरे-धीरे उनको ज्ञात हुआ कि रंगों का प्रयोग भी अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकता है; अब क्ले ने रगो का आकृति ढांचे के अन्तर्गत प्रयोग शुरू किया। रगो के सामर्थ्य को पहचानने मे कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन के अतिरिक्त, देलोने के सुरीलवाद के अध्ययन से क्ले को बहुत लाभ हुआ; यह अध्ययन उन्होंने 1912 मे पेरिस जाकर देलोने के कार्यकक्ष मे किया।

1901 मे क्ले ने इटाली की यात्रा की। आरम्भ से ही क्ले कला में नियमबद्धता व परम्परा के विरोधी थे व स्वतन्त्र रूप से पूर्ण व्यक्तिगत कल्पना से अतःसृष्टि को चित्रित करने की आकांक्षा रखते। उनका पक्का विश्वास था कि कला के मूल स्रोतों का उद्गम जीवन की गहरी अनुभूतियों मे ही है। 1903 मे उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में लिखा "सर्जनशील अभिव्यक्ति की प्रमुख शर्त यह है कि रचनाकार को जीवन का पूर्ण ज्ञान हो गया हो। ....चित्रण में महान् विचारों का होना विशेष महत्त्व नहीं रखता, बल्कि सच्ची अनुभूति को ही महत्त्व है।.......

इन्द्रियों को सचेत रखना चाहिये जिससे जीवन के विरोधी तत्वों का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाये; उस ज्ञान को आत्मसात् करने के लिए उसका चरम सीमा तक अनुसरण करना चाहिये।.......ज्ञान का विकास स्वाभाविक ढग से होना चाहिये; उसको सूत्रों मे नही बांधा जा सकता। .. मैं बच्चे के समान अनभिज्ञ होना चाहता हूँ....तब मैं अंकनपद्धति के बारे में कुछ विचार किये बिना कुछ बन सकूंगा....कुछ छोटीसी कृति, जल्द व सक्षेप में"। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि क्ले नियमो व सूत्रो से घृणा करते व पूर्ण रूप से सहजज्ञान से अंतर्मन की प्रेरणाओं द्वारा चित्रण करना चाहते। उनकी निष्ठा थी कि पूर्ण सत्य या 'सत्य सत्य'[46] अतःदृष्टि मे ही छिपा रहता है।

1902 से 1906 तक वे म्यूनिक मे रहे और इस काल मे उन्होने ग्राफिक कृतियाँ बनायी जिनमे व्यग्योक्ति व उपहास के भावो को जागृत करके निराशा पर आवरण डालने के प्रयत्न किये है। अंकनपद्धति के विचार से ये कृतियाँ प्रभुत्वपूर्ण है। उन्होने कलाविद्यालयीन नैसर्गिकतावादी ढग से भी कुछ व्यक्तिचित्र बनाये। हॉफमन, पो, गोगोल व बोदेलेर जैसे लेखको के साहित्य के अध्ययन से एव गोया, ब्लेक, रेदों, कुबिन व एन्सोर जैसे चित्रकारों की कलाकृतियो के परिशीलन से इस काल मे क्ले ने अपनी कला की नीव मजबूत की। म्यूनिक में वान गो, सेजान, मातिस, पिकासो व मुंख की प्रदर्शनियों को देख कर क्ले को रगो के स्वाभाविक प्रभाव व भावनोद्दीपन के सामर्थ्य की प्रतीति हो गयी किन्तु 1912 तक उनकी कृतियो मे रगो को विशेष स्थान नही था और तब तक उन्होने अपनी अधिकतर कृतियाँ काले व श्वेत प्रभाव मे ही चित्रित की। 1912 में वे दूसरी बार पेरिस गये जहाँ उनको सेजान, मातिस व घनवादी चित्रकारो की कृतियाँ देखने का मौका मिला व तब रगो के काव्य को वे पूर्ण रूप से समझ गये। उसी साल उन्होने 'ब्लो राइडेर' की प्रथम प्रदर्शनी में भाग लिया। 'ब्लो राइडेर' व कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन से उनकी कला को नयी चेतना मिली किन्तु वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य उनकी कला का ध्येय कभी नही हुआ। 1914 में उन्होने मार्क के साथ ट्यूनिशिया की यात्राएँ की। यहाँ उन्होने जलरगो में दृश्य-चित्र बनाये जिनमे कल्पनाशक्ति का मुक्त सचार है, व संयोजन व आकारो पर घनवाद का प्रभाव है। इन चित्रो के साथ क्ले की कला मे रगो ने प्रवेश किया; उन्होने अपने यात्रावर्णन मे लिखा है "रंगो ने मुझे बन्दी किया है; मैं रगो के साथ एकरूप हो गया हूँ"। उत्तरी-अफ्रीका की इस यात्रा से रगों के प्रति उनका आकर्षण बढ कर उनकी कल्पनाशक्ति को एक नया माध्यम प्राप्त हुआ एव उन्होने पहली बार चमकीले जलरंगो मे काल्पनिक रोमाचकारी दृश्यचित्र बनाये जिनमे परीकथाओ या अरेबियन नाइट्स के समान अद्भुत वातावरण का प्रभाव है।

क्ले एक ऐसे चित्रकार थे जो दृश्य, श्रव्य या ऐन्द्रिय ज्ञान को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा रूपातरित करते, जो उनके विचारों से अन्तिम सत्य का साक्षात्कार करने का एकमेव मार्ग था। इसके बारे मे उन्होंने लिखा है "निसर्ग के गर्भ मे-जहाँ सृष्टि

का आदिम साम्राज्य फैला हुआ है–विश्व की कुंजी सुरक्षित है; किन्तु वहाँ हर कोई पहुँच नही सकता। हर आदमी को अपने दिल की आवाज सुननी होगी। अपना धड़कता हुआ दिल आदिम के मूल स्रोत का अतर्भेद करना चाहता है। इस क्रिया को हम स्वप्न, कल्पना या मायाभ्रम कुछ भी समझें; उसका तभी महत्त्व है जब वह उचित लचीले माध्यम के जरिये साकार होता है"। इस विधान से स्पष्ट है कि क्ले सचेतन व अचेतन को समान महत्त्व देते थे।

क्ले ने चमकीले रगों की सुसगत रचना व ज्यामितीय आकारों एव गतिपूर्ण रेखाओं का भावनात्मक प्रयोग करके कल्पनाचित्रों का निर्मिति शुरू की। उन्होंने कला के गणितीय तत्त्व की ओर ध्यान दिया और वस्तुनिरपेक्ष गुणों का कलाकृति मे अधिक से अधिक विकास करने के प्रयत्न किये। इसके विपरीत कभी उन्होंने कलाकृति मे कल्पना को स्वाभाविक ढंग से विकसित होने दिया; आकस्मिक अनपेक्षित प्रभावों से कलाकृति को भावनापूर्ण बनाया व उनके चित्र ऐसे दिखायी देने लगे जैसे कि उनके अन्तर्मन के बगीचे मे अपने आप खिले हुए फूल। उनके काल्पनिक चित्रों का सर्जन इतना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि उन्होंने ये चित्र बनाये है ऐसे समझने की अपेक्षा हम अधिक उचित रूप से यही कह सकते है कि उनके अतर्मन की दुनिया चित्ररूप लेकर प्रकट हो गयी है।

1911 के करीब उनकी कलाशैली निश्चित रूप प्राप्त कर चुकी थी और तब से वे अपने बनाये हुए चित्रों की सूची रखने लगे। उन्होने अपने जीवनकाल में करीब 9000 कलाकृतियों का निर्माण किया जिनमे से प्रारम्भिक काल में बनायी कृतियाँ अधिकतर रेखाचित्र हैं व धीरे-धीरे उनका स्थान तैलचित्रों व अन्य माध्यमों मे बनाये चित्रों ने ले लिया।

1914 मे उनके परममित्र मार्क की रणक्षेत्र पर मृत्यु होने से उनको गहरा धक्का पहुँचा। उन्होंने अपनी दैनंदिनी मे लिखा है "ससार मे भयानकता जैसी बढ़ती जाती है वैसी कला अधिक वस्तुनिरपेक्ष बनती जाती है, जबकि ससार में शांति प्रस्थापित होने से यथार्थवादी कला का निर्माण होता है"[17]। उनका यह विधान वस्तुनिरपेक्ष कला के जन्म व विकास को समझने की दृष्टि से मार्गदर्शक है। 1916 में मार्क की युद्ध में मृत्यु हुई। दोनो परम मित्रों की वियोग-यातनाओं ने उनकी स्मृति को अन्त तक विकलित किया। उनकी कला में मृत्यु की क्रूरता का कई जगह परिणामकारक चित्रण है। 1921 में वाल्टेर ग्रोपियस के निमन्त्रण पर वे वाइमार में 'बौहौस' कलासंस्था मे अध्यापक के रूप मे काम करने लगे व 1930 तक उसी स्थान पर रहे। यहाँ पुनर्जागरणकालीन निर्माणशालाओं के समान वातावरण में चित्रकार, मूर्तिकार व वास्तुकार सहयोग की भावना से कार्य करते। यहाँ क्ले ने विद्यार्थियों के लिए कला के मूलतत्त्वों को सक्षेप मे लिख कर 'अध्यापनशास्त्र की अध्यापपुस्तिका'[18] नाम से पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किया। 'सर्जनशील विचारप्रणाली'[19] शीर्षक से प्रकाशित हुए निबन्ध में उन्होंने लिखा है "सर्जन-प्रेरणा

अचानक ज्योति के समान सचेत होती है व हाथों द्वारा पट पर उतरती है व फैलती जाती है ...फिर वापस आकर अपने उद्गमस्थान आँख व मन में विलीन हो जाती है"। 'आधुनिक कला पर'[50] निबन्ध में उन्होंने कलाकार को वृक्ष की उपमा देते हुए लिखा है "कलाकार में ऐसी उत्कृष्ट दिग्दर्शन-शक्ति है कि वह विविध अनुभूतियों व घटनाओं को सुरचित रूप दे सकता है . निसर्ग व जीवन में यह जो दिग्दर्शन-शक्ति है उसकी तुलना मैं वृक्ष की जड़ से करूँगा।....जड़ के द्वारा सारतत्त्व कलाकार में उतरता है व उसमें से उसकी आँख तक पहुँचता है। वृक्ष के तने के समान सारतत्त्व से ओतप्रोत कलाकार अपनी कल्पना को, वृक्ष के फल व फूलों के समान कृतियों में उतार देता है। वह बहुत ही विनम्रता से कार्य करता है व शिखर पर दिखायी देने वाला सौन्दर्य उसका निर्माण नही है; वह केवल उसके द्वारा शिखर तक पहुँच कर विराजमान होता है"।

क्ले का विश्वास था कि कलासर्जन के पीछे वैज्ञानिक सुसूत्रता है एवं उस विश्वास को उन्होने शब्दो द्वारा सैद्धान्तिक रूप दिया। क्ले का स्पष्ट मत था कि कला मे प्रयत्न व परिश्रम को कोई स्थान नहीं है किन्तु उन्होने अतियथार्थवाद के इस सिद्धान्त को नही स्वीकारा कि अचेतन की स्वयंचालित क्रियाओं से कलाकृति का निर्माण हो सकता है। उनकी धारणा थी कि सर्जनक्रिया अतिजटिल है एवं उसमें निरीक्षण, चिन्तन व अकनपद्धति द्वारा कला के मूल तत्त्वों पर प्रभुत्व आवश्यक है।

क्ले के चित्र उनके विचारो की सत्यता के सुन्दर परिचायक हैं। उनके 'सितारों की ओर', 'कुल्हाडी से काटा हुआ शीर्ष' व 'अवकाश मे वस्तुसमूह'[51] चित्रों मे ज्यामितीय आकारो का कल्पना के साथ सयुक्त प्रयोग है; रगसगति आकर्षक व योजनापूर्ण होकर उसमे भावनोद्दीपन का सामर्थ्य है। 'पीले पक्षियोंवाला [illegible] चित्र', 'नाविक सिदबाद' व 'निवास आर'[52] चित्रो मे परीकथा के [illegible] जादूनगरी के दर्शन के साथ चित्रकार के सयोजन, रेखांकन व [illegible] चित्ताकर्षक रगसगति की योजना के कौशल से भी दर्शक परिचित होता है। [illegible] उपज', 'बगीचे का नक्शा' व 'चरागाह'[53] में वनस्पतिजीवन का [illegible] तो 'नट' व 'लाल पोशाकवाले नर्तकों का नृत्यनाट्य'[5] मे नटों व नर्तकों के [illegible] का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। क्ले की असाधारण अन्तर्भेदी प्रतिभा [illegible] इसमें है कि उनकी काल्पनिक परीकथाओं के समान अद्भुत चित्रसृष्टि [illegible] सृष्टि के आन्तरिक तत्त्वों का सूक्ष्मबुद्धि से प्रकटीकरण किया है। [illegible] प्रतिभा के कारण क्ले कला के इतिहास में अमर हुए व उनका [illegible] पर काफी प्रभाव पड़ा। किन्तु उनकी कला की सर्जनात्मक [illegible] से वैयक्तिक थी कि उनकी कला का बाद मे कोई भी [illegible] कर पाया।

क्ले की कलाशैली जैसी स्वतन्त्र व वैयक्तिक है उसी प्रकार उनके चित्रों के विषय भी पूर्ण रूप से उनकी निजी कल्पना के आविष्कार हैं। क्ले की बहुरंगी चित्रसृष्टि की विविधता को देख कर आश्चर्य होता है। उन्होंने संसार के विभिन्न अनुभवों को स्वतन्त्र संवेदनाशील व्यक्तित्व के द्वारा ग्रहण किया और असाधारण कल्पनाशक्ति से उनको रूपायित किया। किन्तु उनकी चित्रसृष्टि को काल्पनिक सृष्टि कहना अनुचित होगा क्योंकि अनैसर्गिक रूप में चित्रित की गयी उनकी चित्रसृष्टि में निसर्ग के आंतरिक सत्य का अधिक निकट दर्शन है जो हमें नैसर्गिकतावादी कलाकृतियों में नहीं मिलता। उनके रेखांकित आत्मचित्र 'विचारमग्न'[55] में उनकी अंतर्मुखवृत्ति का जो परिणामकारक दर्शन है वह हमें उनके छायाचित्र में दिखायी नहीं देता। यही बात उनके 'शहर की मंत्रणा', 'परिवार की सैर', 'खोज का स्थान'[56] आदि चित्रों के बारे में कही जा सकती है। निसर्ग के जन्म-विकास-विनाश के तत्वों का साक्षात्कार करने में उनके चित्र जितने सफल हुए उतने निसर्ग के बाह्य रूप का हूबहू अंकन करके बनाये गये नैसर्गिकतावादी चित्र नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में गेर्आर्ट श्मिट के विचार माननीय हैं "क्ले की सृष्टि में मानवीय शरीरों एवं चेहरों का विभिन्न भावों के साथ दर्शन है; मछलियों से लेकर हाथियों तक सभी प्राणिमात्र को यहाँ देख सकते हैं; यहाँ हर प्रकार के फल, फूल, पौधे व वनस्पतियाँ हैं; भिन्न भौगोलिक रूपों के यहाँ दृश्य चित्र है; प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं, घरों के अन्तर्भागों एवं बाह्य दर्शनों व विविध प्रकार के वाहनों को आप यहाँ देख सकते हैं। क्ले की कला में, भूत, वर्तमान व भविष्य, सब का समावेश है। भूतल के प्राणियों, मानवों व वनस्पतियों की सृष्टि को अपर्याप्त मान कर क्ले ने ऐसी सृष्टि का निर्माण किया जिसमें दिखायी देने वाले अनोखे प्राणियों, मानवों व वनस्पतियों को आप प्रत्यक्ष सृष्टि में नहीं देख सकते; किन्तु उनकी कल्पनासृष्टि के बाह्य रूप को छोड़ कर यदि हम उनकी चित्रित वस्तुओं के घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध का विचार करेंगे, उनके वैचित्र्यों, उनकी स्वभाव विशेषताओं, उनकी बदलती हुई अवस्थाओं, उनके जन्म, विकास व विनाश, उनके अस्तित्व व भाग्य के अर्थ को समझने का प्रयत्न करेंगे तो ज्ञात होगा कि क्ले की कला द्वारा हमें सृष्टि के आंतरिक रहस्यों का आविष्कार होता है"।

भिन्न विषयों को लेकर क्ले ने उनको विविध रूपों में अंकित किया किन्तु दर्शक महसूस करता है कि जहाँ, जिस भाव से—स्नेह, उपहास या भय—व जिस रूप में विषय-वस्तु को क्ले ने चित्रित किया है वही समुचित है। क्ले ने भिन्न माध्यमों व पद्धतियों को—सूचीकला, पच्चीकारी, रंगीन कांचचित्र, दीवारपर्दा वगैरह—प्रयोगान्वित किया व स्वाभाविक सरलता व पूर्ण प्रभुत्व से कलानिर्मिति की।

क्ले ने ऐन्द्रिय ज्ञान के पीछे छिपे आत्मिक रूप को पहचाना और वैयक्तिक प्रतीकों में, काल्पनिक रूप में पुनश्च साकार किया। उनकी यह सर्जनक्रिया पूर्वोक्त से आत्मिक साधना थी एवं इस विचार से वे पश्चिमी कलाकारों से पूर्वीय कलाकारों

के अधिक निकट थे। उनकी कला की तुलना रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला से करना विशेष रूप से उद्बोधक है। अंकनपद्धति व माध्यम में उन्होंने स्वयं को सीमित नहीं रखा, एवं दृश्य, श्रव्य व स्पर्शीय, सभी अनुभूतियों को समान रूप से साकार किया क्योंकि सर्जनक्रिया की मौलिकता उनकी सर्वव्यापी श्रद्धा थी।

क्ले ने आधुनिक कलाकारों को अंतर्मन की कल्पनाशक्ति व आंतरिक प्रेरणाओं पर निर्भर रह कर एवं माध्यम के स्वाभाविक वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य का विकास कर के कलानिर्मिति करने का संदेश दिया जो आधुनिक कला के विकास में बड़ा सहायक हुआ यद्यपि अतीव आत्मनिष्ठ होने के कारण उनकी कला का अनुसरण अन्य कलाकारों के लिये असम्भव था।

डेर श्टुर्म व ओस्कर कोकोश्का :

समकालीन बौद्धिक व कलात्मक विचारप्रवाहों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से हेर्वार्ट वाल्डेन ने 1910 में 'डेर श्टुर्म'[57] पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्रिका ने जर्मन अभिव्यंजनावादी कला के विकास में काफी सहायता की। वाल्डेन का कोकोश्का से विएना में परिचय हुआ व वे उनको बर्लिन ले आये। कोकोश्का 'श्टुर्म' पत्रिका के लिये हर सप्ताह एक व्यक्तिचित्र बनाते। ये व्यक्तिचित्र अभिव्यंजनावादी शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उस पत्रिका में एक साल बाद ब्रूके चित्रकारों की व दो साल बाद 'ब्लौ राइटेर' चित्रकारों की कलाकृतियाँ प्रकाशित हुई। कान्डिन्स्की के प्रारम्भिक वस्तुनिरपेक्ष रेखाचित्र, पॉल क्ले के रेखाचित्र, मार्क के आलोचनात्मक लेख, भविष्यवादी कलाकारों के घोषणापत्र की पुनरावृत्ति एवं देलोने व लेजे के संदेश प्रकाशित हुए। 1912 में वाल्डेन ने पत्रिका से संलग्न कला-वीथिका की संस्थापना की जहाँ नवीन कलाकारों की कृतियाँ प्रदर्शित होने लगी। 1913 में फ्रेंच सलों दोतान का अनुकरण करके वसंत-प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् श्टुर्म का स्वतन्त्र दृष्टिकोण नष्टप्राय-सा हो गया। श्टुर्म की वजह से अभिव्यंजनावादी चित्रकार कोकोश्का जर्मन कलाक्षेत्र में तुरन्त ख्यातनाम हुए।

ओस्कर कोकोश्का (1886–1980) ने 1904 में विएना के 'प्रयुक्त कला विद्यालय'[58] में कला की शिक्षा प्राप्त की। उस समय वहाँ युगेंटस्टिल का प्रभाव था। 1908 में उनकी 'स्वप्नमग्न लड़के'[59] ग्रंथिक से लियोग्राफ्स की मालिका प्रकाशित हुई जिस पर क्लिम्ट व बियर्डस्ली का प्रभाव था। किन्तु 1907 में बनाये हुए उनके व्यक्तिचित्र व वस्तुचित्र पूर्णतया स्वतन्त्र शैली के थे। उनके व्यक्तिचित्रों में चित्रविषय की व्यक्तिविशेषता की अपेक्षा चित्रकार की आत्मिक अभिव्यक्ति पर अधिक बल था। ये चित्र चित्रकार की मानसिक अवस्था के दर्पण हैं और उनमें चित्रित व्यक्ति के बारे में कोई निर्णय लेना मुश्किल है। कोकोश्का के राइनोल्ट, त्रोस व आडोल्फ लुस के व्यक्तिचित्रों से स्पष्ट है कि चित्रकार ने अपने मनोविज्ञान के अनुकूल, चित्रित व्यक्तियों को अवस्थांतरित किया है एवं वे सब चित्रकार के महत्वपूर्ण

अनुशासन के पराधीन दासमात्र हैं। अभिव्यक्ति के आवेश से कोकोश्का के व्यक्ति-चित्रों की रेखाओं को असाधारण ऐंठन व गतित्व प्राप्त हो गये है। 1909 व 1910 में कोकोश्का ने स्विट्जरलैंड जाकर प्रथम बार प्रकृति-चित्रण किया। प्रकृति-चित्रों में भी उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य व काव्य की पूर्ण उपेक्षा करके, अभिव्यजनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। कोकोश्का ने स्वयं कहा था "चित्रकला की केवल तीन मितियाँ नहीं होतीं, बल्कि चार होती है; चतुर्था मिति है, मेरी आत्मा का प्रकटीकरण"[60]। उनकी कला मे प्रतीत आतरिक व्याकुलता का कारण जैसे वैयक्तिक था वैसे उसमें समकालीन वैचारिक अशाति की प्रतिध्वनि भी थी जिससे वे पुस्तकों, नाटकों व मासिकपत्रिकाओं से परिचित हुए थे। साहित्यिकों में से दोस्तोयेव्स्की व स्ट्रिडबर्ग एव चित्रकारों में से लुलुज लोत्रेक व होडलर उनके प्रिय कलाकार थे। उनसे कोकोश्का का विश्वास हुआ कि कला के द्वारा सुप्त भावनाओं व आतरिक विचारों को प्रभावी रूप में व्यक्त किया जा सकता है एवं उसमें प्रतिक्रियाओं को जागृत करने का सामर्थ्य है।

बर्लिन आने के बाद उन्होंने जो व्यक्तिचित्र बनाये उनमे व्यक्तियों की स्वभाव-विशेषताओं का भी दर्शन है जिसका 'इवेत स्विल्देर का रेखाचित्र'[61] उत्कृष्ट उदाहरण है। 1910 से 1914 तक उन्होंने लिथोग्राफ्स की मालिका में कई पुस्तक-चित्र बनाये जिनमें उनकी आतरिक व्यथा व आत्मपरीक्षण के भाव स्पष्ट हैं। उनकी कलाकृतियों से उनके वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का कई जगह स्पष्टीकरण किया जा सकता है। कोकोश्का की कला प्रदर्शनवृत्ति के पीछे बहुधा उनका आत्मपरीक्षण का हेतु मूल कारण था।

1911 में वे वापस विएना गये जब तक उनकी कला सौन्दर्यात्मक गुणों व प्रभावी मानवतावादी अभिव्यक्ति को प्राप्त कर चुकी थी। अब उनके चित्रों में केवल आतरिक व्यथा का दर्शन ही नहीं अपितु रंगों के स्वाभाविक सौन्दर्य व माध्यम का लचीलापन व व्यक्तिचित्रों में मानवीय स्वभाव विशेषताओं का प्रभाव दृष्टिगोचर हो गये; 1912 में बनाया 'दो व्यक्तियों का चित्र'[62] इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस चित्र मे–चित्रकार स्वयं एव आमा मालेर–दोनों के चेहरों पर भिन्न व्यक्तिवदर्शी भाव है; रंगसंगति, सयोजन व तूलिकासचालन के विचार से चित्र श्रेष्ठ है। इसके बाद उन्होंने अपना प्रसिद्ध चित्र 'आंधी'[63] बनाया जिसमे उन्हीं दोनों को अधिक नाटकीय ढंग से चित्रित किया है।

1919 मे वे ड्रेस्डेन अकादेमी में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ उन्होंने कई व्यक्तिचित्र बनाये किन्तु अब उनके सम्मुख कलात्मक ध्येय था। उसी साल चित्रित 'नीले पोशाकवाली महिला'[64] रंगसगति में आकर्षण व रूपात्मक रंगाकन की अनुभूति के उद्देश्य से बनाया गया। यह चित्र एक गुड़िया को देखकर बनाया गया जिससे स्पष्ट है कि वे कला के मानवतावादी दृष्टिकोण से मुक्त होना चाहते थे। उसी प्रकार उनके चित्र 'संगीत का सामर्थ्य'[65] को उन्होंने चमकीले हुए,

लाल व जामुनी रंगो मे गतिपूर्ण तूलिकासंचालन से चित्रित किया । ड्रेस्डेन-काल में उन्होंने प्रकृतिचित्रण पर विशेष ध्यान नही दिया यद्यपि उन्होने ऊँचाई के दृष्टिकोण से शहरों, नदी किनारो, पहाड़ों व बादलो से युक्त आसमान के विशुद्ध रंगो में कुछ चित्र बनाये ।

1924 में ड्रेस्डेन छोड कर उन्होने फ्रान्स, स्पेन, इटाली, इंग्लैंड, इजिप्त आदि विदेशों की यात्राएँ की और वहाँ के प्रमुख व प्रसिद्ध शहरों के आधुनिक ढंग के दृश्यचित्र बनाये जिससे वे काफी ख्यातनाम हुए । इन दृश्यचित्रो मे स्थानों की भौगोलिक विशेषताओ व सामाजिक जीवन का परिणामकारक दर्शन है । यात्राओ मे उन्होने कुछ विदेशी जाति-विशेषताओ के निर्देशक व्यक्तिचित्र भी बनाये । 1934 मे उन्होने प्राग को निवासस्थान बनाया किन्तु 1938 में हुए नात्सी आक्रमण से उनको इंग्लैंड भागना पड़ा और वे लन्दन मे रहने लगे ।

प्रकृति व मानव का आतंरिक भावदर्शन कोकोश्का की कला का लक्ष्य था; उसकी पूर्ति मे उन्होने उन्मुक्त होकर माध्यम का अभिव्यक्तिपूर्ण प्रयोग किया व ऐसी कृतियो का निर्माण किया जो अपने ढग की उत्कृष्ट अभिव्यंजनावादी कला-कृतियाँ मानी जाती हैं ।

कान्डिन्स्की (1866–1944)

कान्डिन्स्की वस्तुनिरपेक्ष कला के महान प्रणेताओं में से थे । बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से योरपीय कलाकार एक ऐसी मंजिल की ओर मार्गक्रमण कर रहे थे जहाँ कला वस्तुसृष्टि के दृश्य रूप के बंधन से मुक्त हो जाती है एवं चित्रण का वस्तुसादृश्य का उद्देश्य समाप्त हो जाता है । इस मार्गक्रमण में कान्डिन्स्की ने सिद्धान्तों व प्रात्यक्षिक प्रयोगों द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान किया ।

कान्डिन्स्की का जन्म मास्को में हुआ । विद्यार्थी-अवस्था में उन्होंने कानून, राजनीतिक अर्थशास्त्र व सांख्यिकी का अध्ययन किया । आयु के 29वें साल मे उन्होंने प्रभाववादी चित्रकारों की प्रदर्शनी देखी व वकालत छोड़कर चित्रकला का अध्ययन शुरू किया । 1896 मे वे म्यूनिक गये व प्रथम आटोन आझ्बे से व बाद मे श्टुक से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की । 1900 से उन्होंने युगेंटस्टिल व प्रभाववाद से संमिश्रित शैली में चित्रण शुरू किया । 1902 में वे कुछ समय तक पैरिस में रहे व उसके पश्चात् ट्यूनिशिया व इजिप्त में रहे । 1906 में वे फिर एक साल तक पैरिस मे रहे । बोन्नार, वीयार, वान गो, सिन्याक, सेजान व मोने के उत्तरकालीन चित्रों के प्रभाव को क्रमशः आत्मसात् करके 1908 के करीब वे फाव पद्धति के चित्र बनाने लगे जिनमें वस्तुसादृश्य की अपेक्षा रंगो की चमक, स्वच्छंद तूलिकासंचालन व गतिपूर्ण बाह्यरेखा आदि विशुद्ध कलात्मक गुणो पर अधिक बल दिया है । बावारिया की लोककला व रशियन लोककला के चमकीले अलंकरण के प्रभावों से उनको विशुद्ध दृष्टिकोण प्राप्त हुआ । नके इस काल के काल्पनिक चित्रों की चमकदार रंगसंगति के सामने प्रेक्षक वि भूल जाता है ।

कान्डिन्स्की की आरम्भ से ही धारणा थी कि रंगों द्वारा संगीत के समान वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्यपूर्ण रचना की जा सकती है। आरम्भ में वे संगीतकार बनना चाहते थे एवं यह बात उनकी कलात्मक अभिरुचि की दिशा पर काफी प्रकाश डालती है। एक रोज उन्होंने जब बाहर से आकर अपने कार्यकक्ष में प्रवेश किया तब उनको तिपायी पर एक बहुत ही सुन्दर चित्र दिखायी दिया जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। वास्तव में, वह उन्हीं की कलाकृति थी, जो बाहर जाते समय वे भूल से उलटी रख गये थे। इस आकस्मिक घटना से उनको विश्वास हुआ कि सौन्दर्यात्मक गुणों के विकास के लिये चित्र में किसी वस्तु का दर्शन आवश्यक नहीं है, बल्कि वस्तु-सादृश्य के प्रयत्नों में चित्र के विशुद्ध कलात्मक गुणों को हानि पहुँचती है। 1910 में उन्होंने अपना प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्र बनाया; किन्तु इस चित्र में भी कुछ अस्पष्ट वस्तुसाहचर्य है।

1910 में उन्होंने 'कला में आत्मिकता' नामक पुस्तक लिखी जो वस्तुनिरपेक्ष कला एवं अभिव्यंजनावादी कला के अध्ययन में बहुत महत्त्व रखती है। इस पुस्तक का प्रमुख सिद्धान्त यह है कि "रंगों व आकारों की सुसंगति का आधार मानवीय आत्मा से सोद्देश्य सम्पर्क ही हो सकता है"[66]। इस विचार से कलाकार की सर्जनक्रिया से वास्तविकता को पूर्ण रूप से हटाना अनिवार्य नहीं है। कान्डिन्स्की के 1910 से 1912 तक बनाये चित्रों में भी वस्तुओं का अस्पष्ट आभास है। 1912 के बाद ही वे अपने चित्रों में वस्तु-सादृश्य को पूर्णतया हटा सके। 1910 में वे अपने चित्रों को केवल 'संयोजन'[67] शीर्षक देकर प्रदर्शित करने लगे। 19,2 में कान्डिन्स्की ने घनवाद, भूरीतवाद व भविष्यवाद के आकारों व रचना के तत्वों को अपनी कृतियों में स्थान देना शुरू किया एवं वे पूर्णतया वस्तुनिरपेक्ष बन गयीं। किन्तु कान्डिन्स्की की वस्तुनिरपेक्ष कृतियों में भी ऐसी आत्मिकता है कि उनको वस्तुनिरपेक्ष कृतियां कहने के बजाय 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजना'[68] कहना अधिक उचित होगा। 'कला के आत्मिक तत्त्व' के बारे में उन्होंने लिखा है "कला के दो तत्त्व है — आंतरिक व बाह्य; जो आन्तरिक है वह है कलाकार की आत्मिक भावना। आंतरिक तत्त्व का होना अनिवार्य है नहीं तो कलाकृति एक कपटमात्र रह जाती है। आंतरिक तत्त्व से कलाकृति का रूप निश्चित किया जाता है"। उनके विचारों के अनुसार आत्मिक को रूप में प्रदर्शित करने में वास्तविक रूप का होना आवश्यक नहीं है।

कान्डिन्स्की ने कलात्मक प्रेरणाओं का निम्न वर्गीकरण किया है: बाह्य वस्तुसृष्टि से प्राप्त प्रेरणा—'प्रभाव'[69], अन्तर्मन से उत्स्फूर्त प्रेरणा—जो आत्मक है—'स्वयस्फूर्त'[70] व क्रमश: विकसित आत्मिक प्रेरणा—जिसका पुन पुनः साक्षात्कार होता है और जो बुद्धि से सम्पर्क रखती है—'रचना'[71]; तीनों प्रकार की प्रेरणाओं से सर्जनक्रिया सचेत होती है। पहले प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने 1910 तक चार

शैली के चित्र बनाये, दूसरे प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने 1910 से 1921 तक वस्तु-निरपेक्ष अभिव्यंजनावादी चित्र बनाये व तीसरे प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने 1921 के बाद रचनात्मक वस्तुनिरपेक्ष चित्रों की निर्मिति की।

1914 में कान्डिन्स्की मास्को गये और 1918 में उनकी मास्को अकादेमी में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हुई। 1921 में वे फिर बर्लिन गये जहाँ वे वले के साथ बौहौस मे प्राध्यापक रहे। यहां उन्होंने वृत्त, वर्ग, त्रिभुज वगैरह ज्यामितीय आकारों से वस्तुनिरपेक्ष रचनाएं कीं। कान्डिन्स्की के ये चित्र रचनावादी कला से मिलतेजुलते हैं किंतु उनमें रचनावाद का आलंकारित्व, औचित्य या उपयुक्ततावादी महत्व नहीं है; उनका एक ही लक्ष्य है-सर्जन के आत्मिक तत्वों का दर्शन।

दोनों विश्वयुद्धों के बीच के काल में कान्डिन्स्की ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियों का निर्माण किया जो वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद व रचनावाद के सिद्धान्तों के अनुसार अद्वितीय मानी जाती है।

1925 में उन्होंने 'बिन्दु व रेखा से समतल'[72] नाम का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा जिसमें रचना के सिद्धान्तों का विवरण है। इसमें भी उन्होंने 'अतार्किक व आत्मिक' के आधारभूत तत्वों के महत्व को स्पष्ट करके लिखा है "आधुनिक कला का जन्म तभी होगा जब हस्ताक्षर प्रतीकों का स्थान ग्रहण कर लेंगे।"[73] कान्डिन्स्की ने वस्तुनिरपेक्ष को प्रतीक का महत्व देकर योरपीय कलाकारों को मूल-भूत क्रान्तिकारी विचार प्रदान किया।

अभिव्यजनावाद का उत्तरकाल :—

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् की विप्लवित परिस्थिति में जर्मन कला में श्टुर्म के समान अभिव्यंजनावादी अभिव्यक्ति की सम्भावना थी; किंतु सामाजिक परिस्थिति इतनी अनपेक्षित रूप से कठिन हुई कि उसके दबाव से कलाकारों ने अतमुंख वृत्ति छोड़कर सामाजिक दृष्टिकोण अपनाया। विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन सामाजिक व नैतिक अधःपतन से निराशा का वातावरण फैल गया, कलाकारों ने उसके लिये उत्तरदायी सत्ताधारी वर्ग की कटु आलोचना शुरू की व पीड़ित वर्ग के दुःखों का परिणामकारक चित्रण किया; अभिव्यजनावादी कला को नयी समाजोन्मुख दिशा मिली। जी. एफ. हार्टलौब ने इस नयी प्रवृत्ति को 'नव यथार्थवाद'[74] नाम दिया। इस प्रवृत्ति के कलाकारों की 1925 में मानाइम कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी अन्य प्रमुख शहरों में भी दिखायी गयी। फ्रान्स रोह ने 'उत्तर अभिव्यंजनावाद'[75] पर पुस्तक लिखकर समकालीन नवीन कलाप्रवाह को 'जादूमय यथार्थवाद'[77] नाम दिया। उत्तर-अभिव्यंजनावाद में आरम्भ से ही दो स्पष्ट रूप से भिन्न दृष्टिकोण प्रतीत हुए। ग्रोस, ओटो डिक्स वगैरह चित्रकारों ने व्यंगोक्तिपूर्ण क्रांतिकारी सामाजिक दृष्टिकोण अपना कर अभिव्यजनावादी शैली की कलानिर्मिति की जो 'यथार्थ अभि-व्यंजनावाद'[77] नाम से प्रसिद्ध हुई; कानोल्ट, श्रिम्फ व मेन्से ने नैसर्गिकतावादी

पद्धति की रोमांचकारी कलाकृतियो द्वारा समकालीन मानव की विह्वल मानसिक अवस्था को प्रकाशित किया।

गेओर्ग ग्रोस (1893–1959) ने सामाजिक दृष्टिकोण के यथार्थ अभिव्यंजनावाद को आरम्भ किया। दादावाद व भविष्यवाद से प्रभावित उनकी कलाकृतियों में अराजक व विनाशक तत्त्वों का दर्शन एव कला के परम्परागत नीति-नियमों की उपेक्षा थी; किंतु यथार्थ-अभिव्यंजनावाद का लक्ष्य सामाजिक था जबकि दादावाद एक विनाशवादी प्रवृत्ति मात्र था।

1915–16 मे ग्रोस के रेखाचित्र प्रकाशित हुए जिन पर पास्केँ, क्लिम्ट, कोकोश्का व सबसे अधिक क्ले का प्रभाव था। ग्रोस को सहजसिद्ध चित्रकला, बाल-चित्रकला व मूत्रालयो की दीवारो पर अंकित अश्लील चित्रो का स्वाभाविक रेखांकन बहुत पसंद था और वे वैसा ही सरल, स्वाभाविक रेखांकन करना चाहते। एक ही चित्र मे भिन्न घटनाओं को सम्मिलित करना उन्होने भविष्यवाद से सीखा जिससे वे शहर के कार्यव्यस्त यान्त्रिक जीवन को सफलता से अंकित कर सकते और जिसके 'कवि पानिज्जा की शवयात्रा' (1917), 'जर्मनी-जाड़े की कहानी'[78] वे उनके चित्र परिणामकारक उदाहरण हैं। 1920 में ग्रोस ने दादावाद की मोताज-पद्धति के साथ रेखांकन का सम्मिश्रण करके चित्र बनाये। ग्रोस ने अपने समय की त्रुटियों, असफलताओं व निद्य व्यवहारों की अभिव्यंजनावादी चित्रण व रेखांकन द्वारा प्रभावी आलोचना की।

ओटो डिक्स (1891–1969) एक अन्य ख्यातिप्राप्त चित्रकार थे। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के रणक्षेत्र पर हुए भयंकर मानवसंहार को अपनी आँखो से देखा जिससे उनकी कल्पनाशक्ति आजीवन व्यथित रही। उनको सब जगह दुःख, आतंक व विनाश दिखाई देते। ऐसी मानसिक अवस्था में कला के सौन्दर्यात्मक गुणो का विचार मन में नही आ सकता था। वे दादावाद से भी प्रभावित थे एव रौद्र तथा बीभत्स रसों के निर्माण के लिए दादा मोंताज-पद्धति का प्रयोग करते; रंगीन कागज के टुकड़ों, कांचों, मणियो पुराने चित्रो आदि को चिपका कर वे घृणाजनक रचनाओं का निर्माण करते। मानव-शरीरो को भूत-प्रेतो के समान भयानक रूप में अंकित कर के उन्होंने वेश्यागृहों के भीतरी दृश्यो व व्यक्तियो के चित्र बनाये। मृत शरीरों, कंकालो व खून-कीचड़ से लथपथ रणक्षेत्र की खाइयों के एग्रेविंग्ज को उन्होंने 'युद्ध (1924) शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया।

कानोल्ट व श्रिम्फ के नैसर्गिकतावादी चित्रण मे मानवाकृतियों को आकारों मे ठोस किंतु आंतरिक मानसिक अवस्था से व्याकुल चित्रित किया है।

माक्स बेकमन (1884–1950):–विश्वयुद्ध के पश्चात्कालीन मानव की आन्तरिक अवस्था का सबसे परिणामकारक चित्रण बेकमन ने किया। उनकी कला को अभिव्यंजनावादी रूप प्राप्त होने का प्रमुख कारण युद्धजनित परिस्थिति था। प्रारम्भ में उन्होंने 'बर्लिन जेचेसियोन' पद्धति के प्रभाववादी चित्र बनाये किन्तु

शीघ्र ही ग्रोस के समान यथार्थ-अभिव्यंजनावाद को निजी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल अनुभव करके अपनाया। युद्धजनित परिस्थिति द्वारा वास्तविकता के सत्यस्वरूप को उन्होंने निकट से देखा।

बेकमन की कला में केवल मानवीय दुःखो की आत्मिक अभिव्यक्ति नही है, अवकाश की अनन्त गहराई में, वस्तुओ के स्पष्ट व्यक्तित्वदर्शी आकारो मे उनको आध्यात्मिक अनुभूति हुई। उनके लिये अनन्त अवकाश अज्ञात शक्ति का निवास-स्थान था। ऐसे निराकार अवकाश मे साकार वस्तु का, निर्गुण मे सगुण का, व अनिश्चित में सुनिश्चित का स्थापन समस्यापूर्ण आत्मिक सर्जनक्रिया था जिसकी केवल सौदर्यात्मक गुणो के विचार से कार्यसिद्धि नहीं हो सकती थी। इस विचार से बेकमन आत्मतत्ववादी चित्रकार थे। बेकमन के लिए चित्रकला श्रद्धायुक्त साधना थी। बेकमन कहते "मेरे उदात्त आतरिक गणित द्वारा अवकाश की कल्पना व वस्तुजगत् के दृश्यप्रभाव को रूपांतरित करना मेरा स्वप्न है"। वे यह भी कहते "यदि हम अदृश्य का साक्षात्कार करना चाहते है तो हमको दृश्य की अन्तिम गहराई तक पहुँचना होगा"।

बेकमन की कला में विषय का भावदर्शन बहुत ही महत्त्व रखता है; वे केवल आलकारिता या 'कला के लिए कला' के स्पष्ट विरोधी थे। उनके द्वारा चित्रित मानवाकृतियां रचनावादी सर्जन के लिए बहानामात्र नही थीं; वे मानव-जीवन के आतरिक रहस्य की ओर सकेत करती है। कहानी या प्रसंग को चित्रित करने के बहाने से वे मानवजीवन के अन्तःस्वरूप का रूपकात्मक प्रकटीकरण कराना चाहते। अन्य अभिव्यजनावादी चित्रकारो के समान कटुता, आतक या निराशा के भाव उनकी कला में नहीं है। उनकी कला मे आत्मिक खोज का नैष्ठिक दर्शन है।

आरम्भ में प्रभाववादी चित्रण करने के बाद बेकमन ने अभिव्यंजनावादी शैली का विकास किया जिसका 1920 मे बनायी लिथोग्राफ्स की मालिका 'शहरी रातें'[79] प्रारम्भिक उदाहरण है। 1917 मे उन्होंने 'रात' शीर्षक के चित्र में यथार्थ-अभिव्यजनावाद व अभिव्यजनावाद का संयुक्त प्रयोग करने का प्रयत्न किया। 1920 से उन्होंने वस्तुओ का प्रतीकात्मक प्रयोग करके, निजी कल्पनाशक्ति द्वारा आत्मिक जीवन को चित्रित करना शुरू किया। सर्कस के काल्पनिक चित्रो मे उन्होने मानव-जीवन के द्वंद्वात्मक रूप— प्रेम व घृणा, विवशता व अहंकार, पावित्र्य व अनीति को चित्रित किया। उनके चित्र 'सर्कस कारवां' (1940), 'कसरत' (1923)[80] विशेष प्रसिद्ध है। वे प्रत्येक वस्तु व मानवाकृति को कठोर रूप में चित्रित करके स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करते व सम्पूर्ण चित्ररचना में उसका यथोचित प्रस्थापन करते। उनके आकारों का ठोस व्यक्तित्व गोथिक कला एवं प्रसिद्ध चित्र 'आविग्नों पिएता'[81] का स्मरण दिलाते है। गोथिक कला बेकमन को बहुत प्रिय थी। 1923 के बाद उनके आकारों की कठोरता कुछ कम हो गयी व वे शास्त्रीयतावादी कला के निकट आ गये। 1928 से फ्रेंच कला के प्रभाव में आकर उन्होंने चमकीले रंगों का प्रयोग शुरू

किया। उनके पौराणिक विषयों के चित्रों में 'प्रस्थान' (1935), 'पर्सियस लिप्ट' (1941), 'ग्रोडिसिग्रस' (1943) व 'ग्रार्गोनाटस' (1950)[82] विशेष प्रसिद्ध हैं।

बेकमन ऐसे यथार्थवादी चित्रकार थे जिन्होने बाह्य यथार्थ का पर्दाफाश करके आंतरिक सत्य को प्रकाशित किया। वे अपनी कला के बारे में कहते "मैंने दुनिया की मेरी प्रतिमा को यथासम्भव चित्रित करने का प्रयत्न किया है।...... बाह्य दृश्य वास्तविकता का प्रेम व अपने अन्तर्गत रहस्य का खेल-इन्ही को ही महत्त्व है।

कार्ल होफेर (1978–1955)

होफेर की कला ने 1919 के पश्चात् बेकमन के समान यथार्थवादी दिशा अपनायी किन्तु उस पर इटाली के काव्यमय शास्त्रीयतावाद का भी प्रभाव था। 1903–1908 तक जहाँ वे रोम में रहे जहाँ वे हान्स फॉन मारीस की कला से प्रभावित हुए। 1908 से 1913 तक वे पैरिस में अध्ययन के हेतु रहे जहाँ उनकी कला पर सेजान की अकनपद्धति का अमिट प्रभाव पडा। तीन बरसों तक युद्धबन्दी रहने से उनका शुरू का आदर्शवाद नष्ट हो गया। उनकी शास्त्रीयतावादी कला में निराशावादी विचारों की स्पष्ट झलक है। 'ताश खेलनेवाले', 'खिड़की में युवती' व 'जल पर्यटक' इन विषयो को लेकर उन्होंने कई चित्र बनाये किन्तु उनकी मानवाकृतिया उदास व निरुत्साही प्रतीत होती हैं। होफेर की कला का प्रारम्भ शास्त्रीयतावादी आदर्शवाद से हुआ किन्तु जीवन के कटु अनुभवों से उनका आदर्शवादी स्वप्न नष्ट हुआ व उनकी शास्त्रीयतावादी आदर्श आकृतियों को अभिव्यजनावादी रूप प्राप्त हुआ।

बोहौस कलाकार

बीसवी शताब्दी की आधुनिक जर्मन कला के अन्तर्गत अभिव्यंजनावाद के अतिरिक्त एक ऐसा प्रवाह था जो वस्तुनिरपेक्षता की ओर अग्रसर था व उसका प्रमुख केन्द्र था 'बोहौस'[83]।

1919 में वाइमार कलासंस्था के प्रधानपद पर वाल्टेर ग्रोपियस नाम के वास्तुकलाकार की नियुक्ति हुई। उन्होंने संस्था को 'बोहौस' नाम दिया जिसका मध्ययुगीन कलाकारसंघ—जहाँ वास्तुकार के निर्देशन में चित्रकार व मूर्तिकार काम किया करते—की ओर संकेत था। चित्रकला, मूर्तिकला व वास्तुकला का समन्वय करके, स्वाभाविक व पोषक वातावरण में कलानिर्मिति करना बोहौस का प्रमुख उद्देश था; इसके अतिरिक्त सैद्धान्तिक विचार व प्रात्यक्षिक प्रयोग का समन्वय, माध्यम-केन्द्रित सर्जन, औद्योगिक व यांत्रिक विकास की सम्भावनाओ को ध्यान में रखकर कलानिर्मिति उसके अन्य उद्देश्य थे। 1919 में ग्रोपियस ने बोहौस का ध्येय घोषित किया "हम भविष्य का ऐसा भवन निर्माण करेंगे जिसमें वास्तुकला, चित्रकला व मूर्तिकला का सहयोग हो—लाखों शिल्पकारों से निर्माण किया महल जो स्वर्ग की ओर ऊंचा उठेगा—हमारी निष्ठा का स्फटिकमय प्रतीक"।

बोहौस में अन्य कलाध्यापको के साथ प्रारम्भ में चित्रकार फाईनिंगेर थे जो 'ब्लो राइटेर' मण्डल से आये थे। 1921 मे क्ले की नियुक्ति हुई एवं उनके

बाद ओस्कर श्लेमेर व कान्डिन्स्की वहा अध्यापक हुए। श्टुर्म का अभिव्यंजनावाद, होल्सेल के रंगों के सिद्धान्त, ब्लो राइटेर, डच 'डे'स्टाइल'[84] वगैरह विभिन्न प्रभाव वहा कार्यान्वित थे। वान डोसबुर्ग 'डे स्टाइल' सिद्धान्तों पर भाषण देने आते। नोम गाबो व लिसित्स्की ने उनको रशियन रचनावाद से परिचित कराया। योसेफ आल्बेर्स ने मूल ज्यामितीय आकारों के रचनात्मक प्रयोग किये। लास्लो मोहोली नागी ने कला में औद्योगिक परिकल्पना का महत्त्व बढ़ाया। किन्तु कला में उपयुक्ततावाद का प्रभुत्व बढ़ते ही बौहौस की सर्जनशीलता की मौलिक विशेषता समाप्त सी हो गयी। नात्सी सरकार ने कलात्मक अराजकता का आरोप लगा कर संस्था को बन्द कर दिया।

बौहौस से सलग्न चित्रकारों में से पौल क्ले व कान्डिन्स्की के अतिरिक्त ओस्कर श्लेमेर, फाइनिंगेर व आल्बेर्स आधुनिक कला में ख्यातनाम हुए।

ओस्कर श्लेमेर (1888–1943)

श्लेमेर की कला में ज्यामितीय रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान होते हुए रचनावादी कला के समान केवल आकारदर्शन नहीं है; उनके आकारों में भौतिक ऐंद्रिय व मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां हैं। वे कहते "विशेष रूप से जिन कलाकृतियों की निर्मिति बाह्य विषय की सहायता लिये बिना अपनी कल्पनाशक्ति व आत्मिक रहस्यवाद में होती है उनमें नियमबद्धता का होना अनिवार्य है"।

श्लेमेर की कला के पीछे शास्त्रशुद्ध अध्ययन था। 1910 में उन्होंने श्टुटगार्ट कलासंस्था में अध्ययन किया व होल्सेल के रंगों के सिद्धान्तों के अनुसार कलात्मक प्रयोग किये। विद्यार्थी अवस्था में ही उनकी मानव के आत्मिक जीवन के प्रति श्रद्धा हो गयी थी और उसको कला में प्रमुख स्थान होना वे आवश्यक मानते। इस विचार को दृढ़ करने में उनको ओटो मेयेर–जो स्वयं निष्ठावान गूढ़वादी थे–के कलासंबंधी विचार व प्रात्यक्षिक प्रयोग मार्गदर्शक रहे। उनके विचार से मानव प्राकृतिक व आत्मिक शक्तियों का संयोग है।

सेज़ान व मोगा की कला के अध्ययन से उनकी कला को सुगठित व रचनापूर्ण रूप प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में उन्होंने घनवाद की प्राथमिक शैली के अनुसार सरल ज्यामितीय आकारों से प्रकृति-चित्र, वास्तुचित्र व मानवचित्र बनाये। मानवचित्रण में उनकी विशेष अभिरुचि थी व गूढ़ अनुभूतियों को घनवादी रूप देकर वे आत्मिक व तात्त्विक तत्त्वों का संयुक्त दर्शन करना चाहते। मोंद्रियान के समान वे कला में आंतरिक सुसंगति चाहते किंतु उसके लिये वे मानव का प्रमुख तत्त्व के रूप में प्रयोग करना चाहते। मोंद्रियान ने जैसी आयताकारों से रचनाएँ की वैसी श्लेमेर ने मानवाकृतियों से की जिनमें मानव को उसके आत्मिक व शारीरिक अंगों के संयुक्त सामान्य रूप में दर्शाया है। उन्होंने मानवीय भावनाओं को भी गणितीय प्रमेयों के समरूप माना किंतु उनकी मानवाकृतियां प्राचीनप्रतिमाचित्रों के समान गूढ़ आत्मिकता लिए हुए हैं।

बोहौस में अध्यापन कार्य करते समय उन्होंने मानव को अभिप्राय के रूप में चुनकर विशाल भित्तिशिल्प बनाये। वे नृत्य व नाटक के शौकीन थे व उनके चित्रों की मानवाकृतियां भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि वे अवकाश के विशाल रंगमंच पर मूक-नाट्य अभिनीत कर रही हैं।

श्लेमेर ने मूर्तिमान ठोस व अचल मानवप्रतिमा का ऐसा निर्माण किया जो आत्मा के आंतरिक प्रकाश से प्रज्ज्वलित है। मानवप्रतिमा के बारे में उनके विचार है "प्रकृति व पुरुष के संयोग का प्रतीक–जिसका उद्गम प्रेम में है व दर्शन शक्ति में है"[85]। ऐसा है श्लेमेर का मानव।

ल्युनेल फाइनिगेर (1871–1956) :—

फाइनिगेर एक अन्य जर्मन कलाकार थे, जिनकी अंकनपद्धति घनवादी थी किंतु जिनकी कला का केवल रचनात्मक ध्येय नहीं था। उनके चित्रों के विषय मुख्य रूप से मध्ययुगीन गिरजाघरों व सागरकिनारों के दृश्य थे। शैली में घनवादी तर्कशास्त्र होते हुए उनके चित्रों में फ्रिडरिश के प्रकृतिचित्रों व गिरजाघरों के दृश्यचित्रों की रोमांचकारिता व काव्य हैं।

1911 में फाइनिगेर का देलोन से परिचय हुआ जिन्होंने उनको घनवादी शैली से काव्यात्मक चित्रण करने की संभावना पर विश्वास दिलाया और उनकी कला को सुरीलवाद के समान घनवादी रूप प्राप्त हुआ। फाइनिगेर की कला की मुख्य सर्जन प्रेरणा थी 'प्रकृति के आतरिक गूढ़ तत्त्व'[86]।

1919 में बोहौस आने के बाद उनकी कला को वास्तुसमान भव्यता प्राप्त हुई। उन्होंने भविष्यवादियों के समान अर्धपारदर्शक रंगों के प्रयोग से घनवादी अवकाश को स्फटिकीय रूप प्रदान किया। उनके गिरजाघरों के खड़े दृश्यों में ईश्वरीय उदात्त का दर्शन है तो सागर-किनारों के आड़े दृश्यों में अनंत विस्तार का।

1937 में नात्सी सरकार से उनकी कला को 'भ्रष्ट कला'[87] घोषित करके उनके चित्रण पर प्रतिबंध लगाये व वे फिर अमेरिका गये जहां से वे 1887 में अपने जर्मन मातापिता के साथ जर्मनी आये थे। उनकी कला में जर्मन अभिव्यंजनावाद व फ्रेंच घनवाद का मनोहर संगम है।

□□□

9
कुछ अप्रमुख वाद

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक के काल में योरोपीय कलाक्षेत्र में अपूर्व वैचारिक क्रांति होकर कला में भिन्न वादों ने जन्म लिया जिनमें घनवाद, फाववाद, अभिव्यंजनावाद प्रमुख थे; इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे आंदोलन हुए जिनसे आधुनिक कला को बहुरंगी रूप प्राप्त हुआ। इन आंदोलनों से निर्मित कुछ वादों का यहाँ विचार करेंगे।

भविष्यवादः—

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटाली की नवीन पीढ़ी ने योरोपीय विचार धारा से अपना सम्पर्क रखने के प्रयत्न शुरू किये। 1895 में 'वेनिस द्विवार्षिकी'[1] की प्रथम प्रदर्शनी में फ्रेंच, जर्मन, स्विस व आस्ट्रियन चित्रकारों की कलाकृतियाँ प्रदर्शित हुईं जिनसे योरोपीय प्रतीकवाद ने इटाली में प्रवेश किया। 1909 में हुई ट्युरीन अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी द्वारा इटाली के कलाकार औद्योगिक कला के नये आयामों से परिचित हुए। 1909 में सोफिची ने प्रभाववाद की प्रशंसा में लेख प्रकाशित करके इटाली के चित्रकारों को उनका अनुसरण करने का उपदेश किया व 1910 में उन्होंने फ्लोरेन्स में प्रभाववादी चित्रकारों एवं सेज़ान, वान गॉ, गोगँ, मातिस व पिकासो के चित्रों की प्रदर्शनी की। इस प्रकार योरोपीय कला के अंतर्गत हुई विचारजागृति के प्रति इटाली के नवकलाकार सचेत हो गये।

इटाली की आधुनिक कला का प्रारंभ भविष्यवाद से हुआ व उसके प्रणेता थे फिलिप्पो तोम्मासो मारिनेत्ति। उनका जन्म 1876 में इजिप्त में हुआ। उनके पिता एक सधन उद्योगपति थे। उनका अध्ययन फ्रान्स में सोर्बोन विश्वविद्यालय में हुआ व बहुत काल तक वे पैरिस में रहे जहाँ प्रतीकवादी साहित्य व नाट्य कला का उन पर प्रभाव पड़ा। 1905 में उन्होंने मिलान में 'पोइज़िया'[2] नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू करके प्रतीकवादी साहित्य का प्रसार किया।

1909 में मारिनेत्ति ने साहित्यिक भविष्यवाद का प्रथम घोषणापत्र तैयार किया जिसमें प्रगतिहीन परंपरागत विचारों से मुक्त होकर भविष्य की दिशा विकासशील होने की आवश्यकता पर बल दिया था। यह घोषणापत्र पैरिस के 'फिगारो'[3] पत्रिका ने प्रकाशित किया। मारिनेत्ति से प्रोत्साहन पाकर चित्रकार कारा, बोच्चियोनी व रुस्सोलो ने भविष्यवादी चित्रकला का

घोषणापत्र[4] 1910 में टुरिन में प्रकाशित किया जिस पर उन तीनों के अतिरिक्त ज्याकोमो बल्ला व जिनो सेवेरिनी के हस्ताक्षर थे। उस घोषणापत्र के बाद 'भविष्यवादी कला का पारिभाषिक घोषणापत्र'[5] प्रकाशित हुआ।

घोषणापत्रों के कुछ निम्न उद्धरणों से भविष्यवाद के सिद्धांतों की स्पष्ट कल्पना आ सकती है। उनमें आधुनिक यंत्रयुगीन जीवन के असीम गतित्व की प्रशंसा की थी एवं उसको प्रमुख स्थान देकर चित्रण करने का उनमें आवेश था। "हमारा निश्चित मत है कि एक नये सौन्दर्य ने दुनिया की शोभा बढ़ायी है; यह है गति का सौन्दर्य। 'सामोथ्रेस की विजय' शिल्पकृति से तेज चलती हुई मोटर-गाड़ी अधिक सुन्दर है"। "..........समय व अवकाश का कल ही अंत हुआ। अब हम निरपेक्ष में रह रहे हैं क्योंकि हमने सर्वव्यापी शाश्वत गति का आविष्कार किया है"। सौन्दर्य का निवासस्थान संघर्ष है। जिसमें आक्रामक शक्ति नही है वह श्रेष्ठ कलाकृति नही हो सकती"। भविष्यवाद के वैचारिक आदर्श थे-सकट से प्यार, आक्रामकता, युद्ध की प्रशंसा, देशभक्ति, जीवन के अन्यायों का औचित्य व गौरव। भविष्यवाद में इस प्रकार के विचारों का प्रमुख होने के कारण विश्वयुद्ध की पूर्वकालीन परिस्थिति में उसका प्रसार सरल था। 1912 में इटाली में आरंभ होकर शीघ्र ही योरप के सभी देशों में उसके सिद्धांत प्रसृत हुए। भविष्यवादी सभा-सम्मेलनों में अक्सर जोरशोर होता और मुक्तहस्त घूंसेबाजी व गालीगलौज में उसका अन्त होना।

भविष्यवादी चित्रकला की अंकनपद्धतियों के पीछे निम्न सिद्धांत थे "हमारे दृष्टिसामर्थ्य से हम एक्स-किरणों के समान पदार्थों के आरपार देख सकते हैं, अतः हमारे लिये सभी वस्तुएँ पारदर्शक है। गति की वजह से वस्तुएं हिलती हैं, आगे-पीछे होती हैं एवं एक दूसरे पर आ जाती हैं। रंग व प्रकाश से युक्त इन संवेदनाओं को चंचल रूपों में चित्रित करना होगा जिसके लिये विभाजनवाद व पूरकत्व के सिद्धान्त उपयुक्त है"। "प्रत्येक वस्तु गतिमान है, सब परिवर्तनशील अवस्था में हैं—जिसको कोई रोक नहीं है। नेत्रपटलीय प्रतिमा के दृष्टिसातत्य के नियम के कारण गतिमान वस्तुओं की नेत्रपटल पर निर्मित प्रतिमाएं अगणित बढ़ती जाती हैं व एक दूसरे में गूंथी जाने से अवकाश में चंचल लहरों के समान व अवकाश को काटती हुई प्रतीत होती हैं। अतः दौड़नेवाले घोड़े की चार टांगें नहीं होतीं बल्कि बीस होती है एवं उनकी गति आकार में त्रिभुजीय होती है"।

भविष्यवादियों की 1912 में हुई चलप्रदर्शनी योरप की सभी प्रमुख राज-धानियों में दिखायी गयी। उसकी विवरणपत्रिका में निम्न विचार थे "वस्तु या मानव को अचल स्थिति में चित्रित करना बुद्धिहीनता का लक्षण है। वस्तु के पीछे जो अदृश्य शक्ति है और जो वस्तु को चलाती है उसको भी चित्रित करना चाहिये"। भविष्यवाद के सिद्धांतों के अनुसार चित्रकार को दृश्य के केन्द्रस्थान में स्वयं को प्रस्थापित करके चित्रण करना चाहिये जैसे कि वह आगे और पीछे आ

रहे नाटक को देखकर चित्रित कर रहा है। भविष्यवादी चित्रकारों के लिये जलता-बुझता बिजली का बल्ब एवं दुःखी मानव समान महत्त्व रखते। 'भिन्न मानसिक अवस्थाओं में समयावच्छेदी दर्शन'[6] को भविष्यवादी चित्रकार कलाभिव्यक्ति मानते।

भविष्यवादी चित्रकारों के अनुसार गतित्व का निर्माण दो प्रकार से हो सकता है; रेखाओं की स्वाभाविक शक्ति से आकारों में 'निरपेक्ष गतित्व' आकर वे सचेत दिखाई देती है और दूसरे प्रकार का गतित्व गतिमान् वस्तुओं को चित्रित करने से प्राप्त होता है जैसे कि दौड़नेवाला घोड़ा—जिसकी उनके विचार से बीस टांगें होती है—घूमता हुआ पहिया-जिसके सभी आरे अंकित नहीं किये जाते।

भविष्यवाद का सबसे प्रमुख सिद्धान्त था 'समयावच्छेद'[7] जिसके अनुसार वे भिन्न समय के दृश्य प्रभावों को एक साथ चित्रित करते; इसके द्वारा वे ऐसे विषयों को चित्रित कर सकते जो पहले नहीं किये जाते। मानो वे ऐसी खिड़की में से देखकर चित्रण करते जो खुलते ही बाहरी रास्तों की सभी आवाजें, गतिविधियां, वस्तुसमूह एवं प्राणिमात्र एक साथ कमरे में घुस जाते; हां, उनके चित्रों का दर्शन ऐसा ही आंधीग्रस्त है।

भविष्यवादियों ने नवप्रभाववाद के रंगविश्लेषण का घनवाद के आकार-विश्लेषण के साथ संयुक्त प्रयोग किया। भविष्यवादियों ने वास्तविकता को नव-प्रभाववादी रंगों की चमकदमक के अन्तर्गत गला दिया और वस्तुओं के नैसर्गिक आकारों को घनवादी विभाजन करके फिर से शृंखलाबद्ध किया।

भविष्यवादी चित्रकारों की कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएँ थीं; कारा के आकारों में ठोसपन था, बोच्चिओनी की कला में बौद्धिक प्रदर्शन था, तो सेवेरिनी की कला में अलंकारित्व था।

प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होते ही भविष्यवाद हतप्रभ हो गया। बोच्चिओनी की युद्ध में मृत्यु हुई। युद्ध के पश्चात् मारिनेत्ति ने भविष्यवाद में चेतना डालने के असफल प्रयत्न किये। युद्ध व हिंसा के स्तुतिस्तोत्र गानेवाले भविष्यवाद को आखिर युद्ध ने ही नष्ट कर दिया। किन्तु गति के प्रभाव को अंकित करने के जिन नये तरीकों का भविष्यवाद ने आविष्कार किया वे आधुनिक यंत्रयुगीन जीवन के गतित्व का प्रभावी चित्रण करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। इंग्लिश चित्रकार नेविनसन ने भविष्यवादी शैली के बहुत चित्र बनाये। भविष्यवाद का अमेरिकन चित्रकार जोसेफ स्टेला व जॉन मॅरीन पर काफी प्रभाव था।

युंबर्तो बोच्चिओनी का जन्म 1882 में कालब्रिया में हुआ। वे स्वतन्त्रवृत्ति व साहसी थे। चित्रकार बनने की उनकी आकांक्षा का माता-पिता द्वारा विरोध होते ही वे घर छोड़ कर चले गये और ज्याकोमो बल्ला से कला की शिक्षा प्राप्त की। उनकी खलबली युक्त चित्ररचनाओं—उनके अनुसार मानसिक अवस्थाओं[8] के 'विदाई', 'जो रह रहे हैं', 'जो चले जा रहे हैं'[9] इस प्रकार के शीर्षकों में प्रतीत

चित्रों में गतित्व का दर्शन या तो ग्लेजे ने घनवादी शैली से प्रभावी भित्ति चित्रण की सम्भावना को प्रमाणित किया था। अबें ने नवीन वस्तुनिरपेक्ष प्रतीकों की निर्मिति के प्रयत्न किये थे। घनवाद के जन्म के पश्चात् हुई यह प्रदर्शनी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी कि इससे चित्रकारों का घनवाद की त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट होकर भिन्न उत्तर घनवादी आकार-सम्बन्धी वादों के विकास को सुनिश्चित दिशाएँ मिली व कला में वस्तुनिरपेक्षता का महत्त्व बढ़ता गया।

जाक वियों, सेजान के समान प्रभाववाद को ठोस रूप प्रदान करने के ध्येय से प्रेरित थे व वे आधुनिक चित्रकला को प्राचीन महान् परम्परा से मिलाना चाहते थे। देलोने व लेजे के समान, वे विशुद्ध रंगों के सौन्दर्य के प्रेमी थे व ग्रीस के समान, आकार-रचना के प्रयोगों में रुचि रखते। उन्होंने विशुद्ध रंगों के प्रयोग के साथ स्फटिकीय आकारों की रचना करके ऐसी सुन्दर कलाकृतियाँ बनायीं जिनमें संगीत के समान वस्तुनिरपेक्ष आनन्द की अनुभूति है। मादाम द स्ताल का वास्तुकलासम्बन्धी विधान 'वास्तुकला जमा हुआ संगीत है'[17] उनकी कलाकृतियों को समुचित रूप से लागू होता है। वियों ने जिस विषय को चुना—मानव, प्रकृतिदृश्य, वस्तुसमूह—उनको रंगों व आकारों की ज्यामिति में बन्दी करके काव्यपूर्ण दृश्य संगीत का निर्माण किया। उनकी चित्रसृष्टि ऐसी प्रतीत होती है जैसी स्फटिक में से दिखायी देने वाली रंगबिरंगी अनोखी परीसृष्टि।

मेंजिजे ने प्रारम्भिक काल में नवप्रभाववाद का अध्ययन किया। कला की सैद्धांतिकता पर उनकी निष्ठा थी; अतः उन्होंने कला में वास्तुकला, शास्त्रीय रचना व रंगों के सौन्दर्य पर बल दिया। शास्त्रीयतावादी दृष्टिकोण होने से स्होत की कला में ज्यामितीय आकार का स्पष्ट व प्रभावपूर्ण अन्तर्भाव है। देलोने, वियों, फ्रेस्नाय व ग्लेजे के साथ वे घनवाद में रंगों का प्रभाव बढ़ाने के पक्ष में थे। मार्कुसिस ने भी घनवाद को विशुद्ध रंगों के प्रयोग से चमकीला रूप प्रदान किया। मार्सेल द्यूशाँ का बुद्धिवादी दृष्टिकोण था किन्तु वे अपनी भावनाओं को चित्रकला से पृथक् नहीं रख सके। मानव-मन की दुर्बलताओं व चापल्य को वे भलीभाँति जानते व अपनी कलाकृतियों में उनको मुक्त स्थान देते। वे भविष्यवाद की ओर आकृष्ट हुए थे किन्तु उनको भविष्यवादियों का यथार्थ विषयों पर निर्भर रहना पसंद नहीं था और बाद में वे दादा आन्दोलन में शामिल हुए। सेक्सियों-दोर प्रदर्शनी में पिकाबिया ने 'संविन का जुलूस'[18] चित्र प्रदर्शित किया था। वे कलाकार के क्रांतिकारी निर्माण करने के अधिकार की निष्ठा से रक्षा करने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने कई चित्रों को असंतुष्ट होकर नष्ट कर दिया।

ऑर्फीवाद :—

1912 में भविष्यवादियों की प्रदर्शनी हुई जिसका किसी ने विशेष स्वागत नहीं किया। अपोलिनेर ने उसकी कठोर आलोचना की किन्तु मेंजिजे, मेंजे, पिकाबिया व द्यूशाँ को उसमें अपनी कलासम्बन्धी धारणाओं की पुष्टि मिली। गतित्व के परिणाम व समभावच्छेद के सिद्धान्त के अनुसार किये गये चित्रण ने उनको विशेष रूप

मे प्राकर्षित किया। समयावच्छेद की अस्पष्ट कल्पना विश्लेषणात्मक घनवाद में भी थी व उस दिशा में कला के विकास की सम्भावना पिकासो के सम्मुख थी। कुछ घनवादियों को घनवाद का स्थायित्व पसन्द नही था व वे उसको गतित्वदर्शी रूप देना चाहते। ये चित्रकार सेजान के रचना व आकारसम्बन्धी सिद्धान्तो के अतिरिक्त गोग्वँ, सोरा व नाबि कला के चमकीले रंगाकन की ओर आकृष्ट थे। इन चित्रकारों मे द्युशा, विमो व मार्सेल थे। वे आदर्श अनुपात का विश्वास करते व उनके विचार से अनुपात व मापतोल के नियमों को रंगाकन पर लागू किया जा सकता था व चित्रकला को सगीत के समान विशुद्ध (दृश्य वास्तविकता से निरपेक्ष) रूप दिया जा सकता था। फाव चित्रकारो के रंगो की चमक व सोरा के रंगविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तो मे वे प्रभावित थे किन्तु वे रंगो के स्वाभाविक सौन्दर्य व सुसगति के तत्त्वों को कार्यान्वित करके चित्रण करना चाहते जबकि सोरा नैसर्गिक रूप व प्रकाश के प्रभाव के समरूप चित्रण करने के उद्देश्य से रंगों की योजना करते थे। संक्षेप में वे फाव रंगो की चमक व घनवाद के आकारसौन्दर्य का मिलाप करना चाहते थे। सुरीलवाद भी एक ऐसा वाद था जिसमे रंगसौन्दर्य को प्रधान स्थान देकर घनवादी रचनाएँ की जाती थी और उसके प्रणेता थे रॉबर देलोने व अनुयायियो में कुपका, मॉर्गन रसेल, मॅक्डोनल्ड राइट, सोनिया टर्क आदि चित्रकार थे। इस वाद का उदय 1912 मे हुआ।

देलोने (1885–1941) ने 1911 से चमकीले रंगों के अनोखे प्रयोग से 'समयावच्छेदी खिड़कियां'[19] शीर्षक के चित्र बनाये। घनवादी चित्रण से विषयसूचक रूप, दूरदृश्यलघुता व गहराई को हटा कर उन्होने चमकीले रंगो की आकार रचना द्वारा बहुरंगी इन्द्रधनुषी दुनिया का इन चित्रों मे दर्शन कराया। नैसर्गिक रूप की जो कुछ सीमित सूचकता उनके चित्रो में अवशिष्ट है, उसमे विषय की ओर सकेत की अपेक्षा वस्तु के स्वाभाविक निरपेक्ष सौन्दर्यगुणो से चित्रण मे कलात्मक लाभ उठाने के प्रयत्न है। फाव चित्रों मे व देलोने की 'समयावच्छेदी खिड़कियों' मे पर्याप्त अन्तर है। फाव चित्रो मे वस्तु के नैसगिक रूप का ऐंठनदार सरलीकरण है तो देलोने के चित्रों में मूल आकारो का ज्यामितीय प्रयोग है। 'समयावच्छेदी खिडकियों' मे एफेल मिनार की ऊर्ध्व दिशा मे गतिमान वृत्ताकार रेखाओं का प्रयोग चित्र के वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य को बढ़ाने के उद्देश्य से किया है। इन ऊर्ध्वगामी गतिमान लयबद्ध रेखाओ मे देलोने को वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य की अनुभूति हुई। प्लेटो की विशुद्ध सौन्दर्य की परिभाषा को देलोने आदर्श मानते,-"सच्चा आनन्द सुन्दर रंगों से मिलता है व आकारों से ...... जैसे कि वृत्त, रेखाएँ, वर्ग आदि जो–किसी बाह्य कारण के बिना–स्वयमेव सुन्दर है"[20]। चमकीले रंग, ज्यामितीय आकार, लयबद्ध रेखाएँ वगैरह प्लेटो–कथित वस्तुनिरपेक्ष तत्त्वो का परिणामदायक दर्शन हमें देलोने के सुरीलवाद मे मिलता है। 'समयावच्छेदी खिड़कियाँ' शीर्षक दृष्यर्थी है व इन चित्र-रूप खिड़कियों को खोलकर देलोने ने निसर्ग व वस्तुनिरपेक्ष के सौन्दर्य का एक साथ

दर्शन कराया है। देलोने ने 'समयावच्छेदी विरोध'[21] के सिद्धान्तो से रंगों के विरोधो का स्पष्टीकरण किया है। एफेल मिनार, खेलकूद जैसे गतिपूर्ण रेखाओ से सचेत विषयो को चित्रित करने के पश्चात् देलोने ने सश्लेषणवादी दृष्टिकोण अपना कर चित्रो मे गतित्व का निर्माण करना शुरू किया। सुरीलवाद के गतित्व-दर्शन को देखकर बोच्चिओनी ने उसको भविष्यवाद के समरूप माना किन्तु सुरीलवाद व भविष्य-वाद में स्पष्ट अन्तर है; सुरीलवाद का जन्म रगों के ऐन्द्रिय परिणाम मे हुआ था जबकि भविष्यवाद का जन्म मानवजीवन की यन्त्रनिर्मित गति में हुआ था। कुछ वस्तुनिरपेक्ष चित्रकारों ने निसर्ग के अनुकरण के आरोप से बचने के लिये पूर्ण रूप से ज्यामितीय आकारो से कलाकृतियाँ बनायी किन्तु देलोने का उद्देश्य भिन्न था। वे प्रथम निसर्ग में वस्तुनिरपेक्ष आकारो को ढूंढते और बाद में उनके पृथक्करण से वस्तुनिरपेक्ष रचनाएँ करते। उनके कलात्मक दृष्टिकोण पर उनके निम्न विधान प्रकाश डालते है "रग चित्रविषय भी है व आकार भी है"[22], एव "जब तक कला *वस्तु के प्रभाव से मुक्त नही होती तब तक वह केवल वर्णनात्मक साहित्य मात्र है*"[23]। घनवादी, रचनाप्रधान बौद्धिकता से भी, रगसौन्दर्य के प्रति विमोह उनकी कला की आधारभूत सर्जनप्रेरणा था। व शेवरोल के समयावच्छेदी विरोधो के सिद्धान्तों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने एक पत्र के नीचे 'समयावच्छेदी देलोने'[24] नाम से हस्ताक्षर किया था। इस प्रकार देलोने के सुरीलवाद का आधारभूत तत्व था। वस्तु के निरपेक्ष आकारो व रगों का विशुद्ध सौन्दर्य। देलोने की रंगसगति के सुमधुरत्व की सगीत की स्वररचना से समरूपता को देखकर अपोलिनेर ने उनकी कला को नाम दिया 'सुरीलवाद'[25]।

1912 के पश्चात् देलोने ने 'तृतीय लय', 'समयावच्छेदी वृत्ताकार'[26] वगैरह वस्तुनिरपेक्ष चित्रमालिकाएँ बनायी जिनमे रगीन वृत्तो को चित्रित करके लहरों के समान गतित्व का परिणाम दर्शाया है। इस संदर्भ मे उन्होने लिखा है "हरेक को संवेदनाक्षम मार्ग प्राप्त हैं जिनसे वह देखता है कि दुनिया मे रंग हैं व रंगो से चंचल प्रभाव, ठोस रूप, गहराई, ओडनशील रचना चित्रित किये जाते हैं... सक्षेप मे, रगों मे *जान है, वे* सास लेते हैं...अब हम एफेल मिनार, रास्तो के दृश्य व बाह्य सृष्टि से विदा लेते है। हम पानी मे रगे हुए सेब नही चाहते; हम चाहते हैं आदमी के दिल की धड़कन"।

प्रभाववाद के उत्तरकाल मे रगो में सौन्दर्य को बढाने का जो कार्य बिन्दुवाद ने किया वही कार्य घनवाद के उत्तरकाल में सुरीलवाद ने किया। बिन्दुवाद के समान, केवल वर्णनपद्धति मे सीमित होने से सुरीलवाद जल्द समाप्त हुआ किन्तु आधुनिक कला का वस्तुनिरपेक्षता की दिशा मे विकास होने मे वह काफी सहायक रहा।

किरणवाद, सर्वोच्चवाद, रचनावाद, विशुद्धवाद व नवलचीलवाद :

ये सभी वाद तर्क कठोर रचना से सीमित व बुद्धिनिष्ठ थे। बाह्य नियमों के बंधन से मुक्त होकर निर्विरोध भावनापूर्ण सर्जन करने की अभिव्यञ्जनावादी प्रवृत्ति

को इनमें स्थान नहीं था। आकारों की स्पष्टता व शास्त्रशुद्ध नियमों का पालन इनके आधारभूत तत्त्व थे; सुव्यवस्थित अनुशासनपूर्ण क्रमबद्ध रचना इनकी कला-निर्मिति का लक्ष्य था। इन चित्रकारों की अंकनपद्धति सुसूत्र सुनिर्मिति व निर्मल थी; कलानिर्मिति का प्रत्येक चरण सावधानी से व विचारपूर्वक बरता जाता था। सुरीलवाद के समान, ये आधुनिक कलाप्रवाहों में से कुछ अप्रमुख प्रवाह हैं एवं आधुनिक कला के विकास में योगदान करने के बाद में ये उसी विशाल रूप में विलीन हो गये और उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट हो गया। इनका सबसे अधिक प्रभाव आधुनिक वास्तुकला, औद्योगिक परिकल्पना व निर्माण-कलाओं पर पड़ा। योरप व अमेरिका में जो सरलीकृत ज्यामितीय भवन-निर्माण देखने को मिलता है उसका उद्गम इन वादों से प्रस्थापित रचनासिद्धान्तों में ही है। सरल ज्यामितीय आकारों का शास्त्रशुद्ध समीपीकरण, आकारों का अवकाश से समुचित समन्वय व अवकाश में सुस्थापन, स्पष्ट व निर्मल समतल क्षेत्रों की योजना, अनावश्यक अंगों का उच्चाट, कार्यात्मकता पर बल आदि विचारों को निर्माण के आधारभूत तत्त्व बनाने का श्रेय इन्हीं वादों को है।

1910 के करीब पॅरिस के चित्रकारों का रशियन चित्रकारों पर प्रभाव बढ़ रहा था व वे घनवाद, फाववाद एवं भविष्यवाद की ओर आकृष्ट हो रहे थे और उनके सिद्धान्तों से लाभ उठाकर नयी दिशाओं में प्रयोगशील थे। इन प्रयोगों से नवनवीन वादों ने जन्म लिया जिनमें से एक वाद 'किरणवाद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वाद को जन्म देकर उसका विकास करने का कार्य मिखाइल लारियोनोव व उनकी पत्नी नातास्या ने किया। सिन्याक की व्यक्तिगत बिन्दुवादी अंकनपद्धति, सुरीलवाद व विश्लेषणात्मक घनवाद से आरम्भ करके लारियोनोव ने प्राकृतिक दृश्यों व मानवाकृतियों को किरणों के समान रेखाओं से अंकित आकारों में व धब्बों में विभाजित किया। भविष्यवाद के प्रभाव में आकर इन किरणों जैसी रेखाओं को वे तीव्र व स्पष्ट रूप में अंकित करने लगे व ऐसी रेखाओं को वे 'बलरेखाएँ'[21] कहने लगे। 1912 में उन्होंने चित्रों से वास्तुसादृश्य को पूर्ण रूप से हटा कर ऐसी वस्तु-निरपेक्ष कृतियाँ बनायी जो प्रकाशशलाकाओं से निर्मित रचनाएँ जैसी दिखायी देने लगी। कान्डिन्स्की की कलाकृतियों के साथ ये किरणवादी कृतियाँ वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रारम्भिक चरण थी। 1913 में किरणवाद का घोषणापत्र प्रकाशित करके लारियोनोव ने अभिव्यक्ति से रचना को व सापेक्ष से निरपेक्ष को अधिक महत्त्वपूर्ण जाहिर किया। किरणवाद अधिक काल तक जीवित नहीं रहा किन्तु उसका प्रकाश-शलाकासम प्रभाव रंगमंच की साजसज्जा में उपयुक्त सिद्ध हुआ। लारियोनोव व उनकी पत्नी ने रंगमंच की साजसज्जा का काम भी किया व दागिलेव के समूहनृत्य की परिकल्पनाएँ बनायी।

सर्वोच्चवाद का उदय 1913 में मास्को में हुआ व उसके प्रणेता थे कासिमीर मालेविच। उस वर्ष उन्होंने पूर्ण श्वेत पृष्ठभूमि पर एक काला वर्ग चित्रित कर के

में मिलती है जिनमें लकड़ी, काच, रस्सी वगैरह पदार्थों को लेकर पिकासो व ब्राक ने रचनाएँ की थी। 1912 में बोच्चियोनी ने स्पष्ट किया था कि केवल रंगों से या एक ही माध्यम से कलानिर्मिति करने की अपेक्षा यदि हम काच, लकड़ी, गत्ता, लोहा, सीमेंट, चमड़ा, कपड़ा, बिजली के लट्टू आदि विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करेंगे तो उसमें सर्जनपूर्ण निर्मिति की अधिक सम्भावना है; अवकाश में त्रिमितियुक्त कलाकृतियों का निर्माण कला का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। उन्होंने भविष्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार अवकाश में गतिमान घनरूप कलाकृतियों के निर्माण की भी कल्पना की थी। इन विचारों को 1911 में ही आर्किपेन्को ने प्रयोगान्वित किया था। लारियोनोव के शिष्य व्लादिमीर टाटलिन ने 1913 में वस्तुनिरपेक्ष घनरूप कलाकृतियों की निर्मिति की जिनमें इन विचारों के अनुसार काच, लकड़ी व धातु का प्रयोग था। 1914 में उन्होंने ऐसी कृतियाँ बना कर उनको डोरी से लटकाया। 1919 में उन्होंने इन विचारों को वास्तुकला में लागू करने के उद्देश्य से कुछ योजनाएँ तैयार की। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिकन कलाकार काल्डर ने टाटलिन के प्रयोगों का विकास कर चचल-कृतियों[34] को बनाया और वे चंचल-कृतियों के नवनिर्माता के रूप में ख्यातनाम हुए। टाटलिन के आन्दोलन को 1917 में नोम गाबो व आंटोन पेव्स्नर ने सहयोग देकर सामर्थ्यवान् बनाया। पेव्स्नर शुरू में चित्रकार थे एवं वे पैरिस में आर्किपेन्को से मिले थे। गाबो ने गणितीय सिद्धान्तों के अनुसार कुछ रचनाएँ की। 1915 से आरम्भ कर के उन दोनों ने जो रचनाएँ की उनमें शुरू में कुछ वस्तुसादृश्य था किन्तु बाद में वे पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष बन गयीं। रचनावाद में कलाकृति त्रिमितियुक्त होती थी एवं ऐसी कृति की निर्मिति कलाकार की व्यक्तिगत भावनाओं से मुक्त होकर, विशुद्ध रचना के सिद्धान्तों के आधार पर की जाती थी। रचनावाद के पीछे गणित व विज्ञान का शास्त्रीय सामर्थ्य था। 1922 में रशियन राज्यसत्ता के विरोध को देखकर कान्डिन्स्की व लिसित्स्की के साथ गाबो व पेव्स्नर भी रशिया छोड़ कर चले गये। रचनावाद ने आधुनिक मूर्तिकला को नया वस्तुनिरपेक्ष दृष्टिकोण व माध्यम का स्वातन्त्र्य प्रदान किया।

रचनावाद ने मूर्तिकला के क्षेत्र में जो कार्य किया वही कार्य डच 'दे स्टाइल' मण्डल व नवनवीनतावाद ने चित्रकला के क्षेत्र में किया। रशिया में जब वस्तुनिरपेक्ष रचनात्मक वादों का सामर्थ्य बढ़ रहा था, हालैंड के कलाक्षेत्र में 'दे स्टाइल' आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। पैरिस के चित्रकारों—मुख्य रूप से घनवादी चित्रकारों—से इस आन्दोलन ने प्रेरणा पायी व योरपीय विचारधारा ने यहाँ भी जागृति पैदा की। इस आन्दोलन के प्रमुख थे वान डोसबुर्ग व पियट मोंड्रियान। चित्रकला व मूर्तिकला का वास्तुकला व औद्योगिक कला से सम्पर्क प्रस्थापित कर के सब का समन्वित रूप में विकास करना 'दे स्टाइल' का ध्येय था। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये आकारों के ज्यामितीय सरलीकरण को उन्होंने अनिवार्य माना एवं औद्योगिक

कला व वास्तुकला के कार्यात्मकता व स्पष्टता के गुणों को सफलता के आवश्यक तत्त्व माना।

1910 से मोंद्रियान पॅरिस में रहते थे। 1914 में वे हालॅंड आ गये व विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से फिर पॅरिस नहीं जा सके। विश्लेषणात्मक घनवाद से प्रेरणा पाकर वे पानी की लहरों, वृक्षों जैसी वस्तुओं को खड़ी व आड़ी रेखाओं से ज्यामितीय रूप देकर चित्रित करते। 1916 में वान डोसबुर्ग व बार्ट वान डेर लेक उनके साथ काम करने लगे। 1917 में उन्होंने मूल रगों में, त्रिभुज, आयत वगैरह ज्यामितीय आकारों में चित्ररचनाएँ कीं। 1920 के करीब मोंद्रियान की कलाशैली को सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ व वे काले रंग की सकरी पट्टियों से चित्रक्षेत्र को विभाजित करके चित्रण करने लगे। इससे अधिक सरलीकृत आकार-रचना की कल्पना करना कठिन है। अपनी नयी शैली को मोंद्रियान ने नाम दिया 'नवलचीलवाद' जिसका प्रमुख रचनासिद्धान्त था 'विरोधों में सुसवादित्व';[35] इसका सबसे सरल उदाहरण है समकोण–जिसमें आड़ी व खड़ी रेखाओं के विरोध का सुसगत दर्शन है–अतः मोंद्रियान सदैव समकोण में मिलने वाली खड़ी व आड़ी रेखाओं का ही प्रयोग करते। उसी प्रकार वे रंगों को तेज व वर्णहीन वर्गों में विभाजित करके उनका विरोधी रूप में प्रयोग करने।

1921 में 'डे स्टाइल' मण्डल के वास्तुकारों ने अपने सिद्धान्तों को भवन-निर्माण में प्रत्यक्षित करना शुरू किया जिससे आधुनिक वास्तुकला का रूप ही बदल गया।

'डे स्टाइल' कलाकारों ने कठोर अध्ययन से सुसवादित्व के मूलभूत तत्त्वों का आविष्कार करके उनके द्वारा ऐसी वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों का निर्माण करना चाहा जो कलाकार की वैयक्तिक भावना या कल्पना पर निर्भर नहीं है, जिनके सौन्दर्य का उद्‌गम कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति या आकस्मिक घटना में नहीं है व जो सम्पूर्ण शाश्वत सत्य नियमों पर आधारित है। ऐसी कला में मनोरंजन, प्रतिपादन या व्यक्तिवाद को स्थान नहीं हो सकता; ऐसी कला का केवल सामाजिक ध्येय ही हो सकता है एवं उसकी पूर्ति में वास्तुकला, मूर्तिकला व चित्रकला का सहयोग आवश्यक था। इस ध्येय से कला व जीवन के बीच अन्तर न रह कर कला का पृथक् रूप नष्ट होगा एवं भावनाओं की संकुचित धाराओं से मुक्त होकर आतरिक संतुलन व सम्पूर्ण सुसवादित्व को अनुभव करेगा। डोसबुर्ग ने लिखा "भविष्य की कला बाह्य बधनों से मुक्त व प्रशांत होगी; सबसे अग्रिम व प्रमुख तत्त्व होंगे सत्य, कार्यात्मभाव व रचना—वैयक्तिक विचार की त्रुटियाँ नहीं होंगी"।

पियट मोंद्रियान (1872–1944) का जन्म हालॅंड के आमर्सफोर्ट नगर में हुआ। नियमबद्ध कलाविद्यालयीन अध्ययन के बाद क्रमशः प्रभाववाद व फाववाद का अध्ययन करके वे 1910 में घनवादी पद्धति का चित्रण करने लगे। 1911 में वे पॅरिस गये जहां वे 1914 तक रहे। इस काल में उन्होंने आधुनिक कला में हो

रहे आंदोलनों के परिशीलन से अपनी कला के सैद्धान्तिक विचार व अंकनपद्धति के आधार को मजबूत बनाया। उनके घनवादी चित्र विश्लेषणात्मक है। संश्लेषणात्मक पद्धति की ओर वे कभी आकृष्ट नहीं हुए। घनवाद के प्रारम्भिक प्रभाव के बावजूद उनकी कला का विकास पूर्ण स्वतंत्र रूप से हुआ और उसका मार्गदर्शन उनकी मौलिक प्रतिभा व निजी दार्शनिक विचारों ने किया। वे थिओसोफिकल सोसायटी के सदस्य थे व डच दार्शनिक शोनमाकर्स-जिनसे वे 1916 में परिचित हुए थे—के विचारों का उन पर बहुत प्रभाव था। शोनमाकर्स के विचार से कलाकार के लिए रचना के 'लचीले गणितशास्त्र'[36] के अपरिवर्तनीय आंतरिक नियमों का अनुशासन आवश्यक है : हमको निसर्ग की गहराई का अन्तर्भेद करना होगा जिससे हमको यथार्थ की आन्तरिक रचना के सत्य का ज्ञान हो जाये। मोंद्रियन ने भी नवलचीलवाद को निसर्ग की बहुरंगी जटिलता को लचीले तत्वों द्वारा सुनिश्चित रूप देने का साधन माना। उनके विचार से, गणित के समान, कला भी विश्वमंडलीय मूल तत्वों को प्रतिरूपित करने का निर्दोष व अचूक साधन है।

कान्डिन्स्की व मोंद्रियान को वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रणेता मानते हैं किंतु दोनों के विचारों में मौलिक भिन्नता है। कान्डिन्स्की ने कलाकार की 'आंतरिक आवश्यकता' को सर्जन का आदिम प्रेरणा-स्रोत माना है जबकि मोंद्रियान ने कलाकार के व्यक्तित्व को विशुद्ध निरपेक्ष गणितीय रचना-शास्त्र में बाधक तत्व माना है। अतः कान्डिन्स्की की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है आत्मिक अभिव्यक्ति तो मोंद्रियान की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है विशुद्ध स्वयंपूर्ण रचनासौंदर्य।

मोंद्रियान के 1906 में बनाये चित्र 'कुटिया का स्वचित्र' व 1911 में बनाये चित्र 'धूसर वृक्ष'[37] की तुलना यदि उनके 1915 में बनाये 'धन व ऋण चिन्हों की रचना' व 1942 में बनाये 'सरल रेखाओं की लय'[38] से करते हैं तो उनकी वस्तुनिरपेक्षता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

मोंद्रियान ने अपने कलाविषयक विचारों पर बहुत कुछ लिखा। उनके विचार से रेखा व रंग चित्रकला के मूल तत्व हैं और उनको वास्तुसादृश्य के बन्धन से मुक्त करके स्वतंत्र रूप से विकसित होने देना चाहिये। चित्रतल स्वभावतः समतल होता है अतः चित्रकला में घनत्व, दूरदृश्यलघुता जैसे बाह्य तत्वों का समावेश नहीं होना चाहिये। सम्पूर्ण दृश्य-जगत का आविष्कार सबसे सरल आकारों से ही होता है; अतः चित्रकला में आयत जैसे सरल आकारों की योजना अपरिहार्य है। मोंद्रियान से पूर्व इस प्रकार का सम्पूर्ण शास्त्रीय दृष्टिकोण सोरा ने अपनाया था किन्तु उन्होंने अपनी कला में वास्तविक आकार सादृश्य को हटाने के बजाय बटुलसी जैसे प्रतीकात्मक आकारों की योजना करके वस्तुनिरपेक्ष कलात्मक गुणों पर ध्यान केंद्रित किया था।

मोंद्रियान का ध्येय केवल कलाक्षेत्र तक सीमित नहीं था; उसका क्षेत्र जीवन-व्यापी था। वे कला के स्वतन्त्र अस्तित्व को ही अनावश्यक मानकर उसको जीवन से एकरूप करना चाहते। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "वस्तु-सादृश्य सौन्दर्य-भावना को हानि पहुँचाता है; अतः चित्रकला से वस्तु का उच्चाट करना चाहिये। कला के विचार से रचना एक सत्य है। नैसर्गिक रूप के समान वैयक्तिक भावना भी विशुद्ध रचनानिर्मिति को विघातक है। व्यक्तित्व के तत्व द्वारा कला में काव्यात्मकता का प्रवेश होता है जो सम्पूर्ण निरपेक्ष सौन्दर्य को हानिकारक है। वस्तु व मानवीय भावना विशुद्ध रचना की कला का निर्माण असम्भव कर देती है। जीवन के अंगप्रत्यंग में विशुद्ध सौन्दर्य का अन्तर्भाव होने से भविष्य में कला का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहेगा और हम उसकी आवश्यकता को महसूस नहीं करेंगे क्योंकि हमारे आसपास कलामय वातावरण होगा। जीवन में सुसंवादित्व का निर्माण करके कला लुप्त होगी"। एवं "कला के आंतरिक सम्पूर्ण सत्य को साकार करना है"। विशिष्ट में जब तक सम्पूर्ण का दर्शन नहीं होता तब तक मोंद्रियान संतुष्ट नहीं होते।

मोंद्रियान की उत्तरायु की कृतियों में कुछ साहचर्य-दर्शन के प्रयत्न हैं; जैसे कि उनके चित्र 'ब्राड्वे बुगि-वुगि'[39] में अमेरिकन जाज संगीत के समरूप दृश्य रचना करने के प्रयत्न हैं। मोंद्रियान, फ्रान्चेस्का, पुसें व सोरा की परम्परा के चित्रकार थे व उन्होंने प्लेटो की विशुद्ध सौन्दर्य की कल्पना का अपनी कला में चरम सीमा तक विकास किया।

आत्मतत्त्वीय चित्रण:—

आत्मतत्त्वीय चित्रण[40] में मानवीय गूढ़ अनुभूतियों का चित्रकला के माध्यम से परिणामकारक दर्शन कराने के प्रयत्न किये गये और चित्रकला को एक नया विषयक्षेत्र प्राप्त हुआ।

आत्मतत्त्ववादी चित्रकारों ने अनुभव किया कि निर्जीव वस्तुओं में भी ऐसा आत्मतत्त्व है जिसमें मानव की भावनाओं को व्याकुल करने का सामर्थ्य है। किसी कोने या अटाले में पड़ी पुरानी वस्तु को देख कर कभी अचेतन साहचर्य से प्रेक्षक की मानसिक अवस्था अकारण व्याकुल होती है; इस अवस्था में कोई आत्मिक अप्रकटकाव्य है जिसको दृश्य रूप में साकार करके पुनरनुभूत किया जा सकता है जैसे कि आत्मतत्त्ववादी चित्रकार दि किरिको ने लिखा है "ऐसी अवर्णनीय अवस्था की अनुभूति किसी चित्रित, कथित या कल्पित वस्तु के सम्मुख या पश्चात् हो सकती है"। किरिको के विचार से यदि किसी परित्यक्त या उपेक्षित वस्तु को उसके परित्याग के पोषक वातावरण से—जिसके कारण वह बिल्कुल अर्थहीन प्रतीत होती है—पृथक् करके नये या उससे असंबद्ध वातावरण में बिठाया जावे तो उस वस्तु के अस्तित्व को एक नई श्रेष्ठता, एक नया भावनोद्दीपन का सामर्थ्य प्राप्त होता है एवं उसके द्वारा कोई गूढ़ आत्मा भावनाओं को निःशब्द भाषा में

दर्शक से बोलने लगती है जो भाषा समझने में असमर्थ रहने से दर्शक की आत्मा व्याकुल हो उठती है। कारा ने इसी अनुभूति के संदर्भ में लिखा है, "बिल्कुल ही साधारण वस्तुओं में ऐसा सुलभ व सरल दर्शन है जो अस्तित्व की अदृश्य व उदात्त अवस्थाओं की ओर संकेत करता है; और यही है कला की गूढ़ महानता"। मांरी रूसो व नव-आदिमवादी चित्रकारों के समान, आत्मतत्ववादी चित्रकारों को आंतरिक मानवीय जीवनस्रोत का साक्षात्कार वस्तु जीवन में हुआ उसको उन्होंने चित्ररूप देना चाहा।

आत्मतत्ववादी चित्रकारों का कोई निश्चित प्रचारात्मक कार्यक्रम नहीं था एवं उन्होंने किसी कलाकार-मंडल की प्रस्थापना नहीं की। आत्मतत्वीय चित्रण की कल्पना का जन्म किरिको व कार्लो कारा के आकस्मिक परिचय में हुआ। 1917 में कार्लो कारा फेरारा के सैनिक-चिकित्सालय में मज्जातन्तु की दुर्बलता का इलाज कराने के लिए भरती हुए थे जहां उनका ज्योर्जिओ दि किरिको से परिचय हुआ। किरिको वहां 1915 से काम कर रहे थे। वैसे दोनों एक दूसरे को नाम से जानते थे। उस समय कारा भविष्यवादी चित्रण में व्यस्त थे और किरिको पेरिस के कला क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हुई एवं दोनों ने वहां के मठ में–जहां चिकित्सालय खोला गया था–महीनों तक चित्रण किया। किरिको के भाई आल्बर्तो साविनिओ जहां वैद्यकीय इलाज करा रहे थे। वे एक प्रसिद्ध गूढ़वादी कवि थे और उनके काव्य पर जर्मन गूढ़वाद का–जिसने नुविन, मेरिंक व काफ्का जैसे गूढ़वादी साहित्यकारों को जन्म दिया था–प्रभाव था। साविनिओ के काव्य से किरिको व कारा प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त विश्वयुद्ध की भीषणता का आत्मतत्ववाद पर परिणाम हुआ और उसमें शीर्षहीन मानवाकृतियों का चित्रण होने लगा। फेरारा का वातावरण भी गूढ़वादी विचारों का पोषक था। दोनों चित्रकार ज्योतो, उच्चेलो, मासाच्चिओ जैसे महान् इटालियन चित्रकारों की परम्परा के अभिमानी थे उनको भविष्यवादी चित्रकारों का पेरिस के चित्रकारों व घनवाद का अनुसरण पसंद नहीं था। कारा ने प्रारम्भ में भविष्यवादी चित्र बनाये थे किंतु वे भी भविष्यवाद से असंतुष्ट थे।

ज्योर्जिओ दि किरिको का जन्म 1888 में ग्रीस में हुआ व उन पर ग्रीक पौराणिक कथाओं का आकर्षण था। बाद में वे बर्लिन व म्युनिक के गूढ़ वातावरण में परिवेष्टित काल्पनिक दृश्यचित्रों से आकृष्ट हुए। असाधारण काव्यात्मक प्रतिभा के कारण पौराणिक कल्पनावाद से प्रारम्भ कर के धीरे-धीरे वे वास्तविक सृष्टि को अपने गूढ़वादी दृष्टिकोण से रूपांतरित करने लगे। नगरों के निर्मनुष्य रास्तों पर केवल सफेद मूर्तियों को चित्रित करके उन्होंने रहस्यमय वातावरण के चित्र बनाये। किरिको के गूढ़वादी काव्यात्मक चित्रण से प्रभावित होकर कारा ने भविष्यवाद का त्याग किया व दोनों के सहयोग से आत्मतत्वीय चित्रण का विकास हुआ।

आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने निसर्ग को बिलकुल नये दृष्टिकोण से देखा। निसर्ग के समूचे पचतत्त्वीय रूप का मनोहर ऐंद्रिय परिणाम प्रभाववाद का विषय था जबकि आत्मतत्त्वीय चित्रण का विषय था प्रत्येक वस्तु का स्वतंत्र आकार अस्तित्व व उसका मनोवैज्ञानिक परिणाम। आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने निसर्ग की सभी वस्तुओं को पृथक् व्यक्तित्व लिये हुए एवं गूढ़ मानवीय आत्मिक सबन्धों से सचेत देखा। किरिको ने लिखा है, "हम चित्रकला की वस्तुसृष्टि के आत्मिक मनोविज्ञान के दर्शन का साधन मानते है। चित्रक्षेत्र मे वस्तुओं व वस्तुओं को पृथक् करनेवाले अवकाश को पूर्ण सचेत करना यह नये खगोलशास्त्र का–जिनमें वस्तुएं भाग्य के गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी से जकड़ी हुई हैं–मूलाधार है।" कल्पनाशक्ति द्वारा किरिको ने एक नयी सचेत, आत्मतत्वीय सृष्टि को जड़ सृष्टि के अन्तर्गत देखा जो कारा के विचार से सत्यार्थ मे चित्रकार की यथार्थ सृष्टि है, """"जो आरम्भिक दृश्य परिचय की अवस्था की सृष्टि नही है बल्कि जिसका वस्तु के आकारदर्शन से घनिष्ठ सबध है, जो इतना प्रकाशमान् है कि वह यथार्थ को बन्दी कर लेता है। इस महान् रचनातत्त्व के बिना हमारा भौतिक जीवन खोखला व व्यर्थ है एवं उसकी सफलताएं दर्पोक्ति मात्र हैं"। किरिको ने इस सम्बन्ध के बारे मे लिखा है, "हमारे दैनंदिन जीवन का जपमाला-सदृश्य एक शृंखलाबद्ध तर्कशास्त्र बन जाता है जिसमे हम वस्तुओं के स्मृतिरूप सम्बन्धों को पुनः पुनः दोहराते रहते हैं। आदमी अपने कमरे में बैठा रहता है जहाँ आलमारी मे किताबें पड़ी हैं, पिंजड़े में पक्षी हैं वगैरह, व सब कुछ सामान्य सा प्रतीत होता है क्योंकि अपनी स्मृतियों की शृंखला के तर्कशास्त्र मे उसका सही हिसाब बैठता है; किंतु इस शृंखला की एक मात्र कड़ी भी जब किसी क्षण टूट जाती है तो न जाने किसी अज्ञात कारण से, कमरे में बैठा वही आदमी, पिंजड़े का पक्षी, वे किताबें निराला रूप धारण करते हैं। भय, विस्मय""किंतु दृश्य मे कोई अन्तर नही है, केवल मेरे दृष्टिकोण मे ही परिवर्तन है व हम वस्तुओं के आत्मतत्वीय सृष्टि में प्रवेश पाते है"। वस्तुओं को अपरिचित वातावरण मे रखने या जिन वस्तुओं से उनका, हमारी स्मृति में या विचारों में, साहचर्य नहीं है ऐसी वस्तुओं के साथ रखने से भी इसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक अवस्था का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार की धारणाओं से प्रेरित होकर आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने मूर्तियों, केलों जैसी वस्तुओं को रास्तों पर व मछलियों को रंगमंच पर स्पष्ट आकारों मे चित्रित कर के गूढ़ भावनाओं को जागृत किया व मनोसी मंत्रित सृष्टि का दर्शन कराया; पृष्ठभूमि को ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता से कठोर बनाया व वस्तुओं के मरलोहन ठोस रूप को अधिक स्पष्ट बनाने के उद्देश्य से अनैसर्गिक नाटकीय प्रकाश के अतर्गत गहरी छाया के साथ अंकित किया जिससे उनके चित्रों मे भयानक गहराई छा गयी।

ऐसी स्थायीरूप किंतु आत्मिक जीवन से ओतप्रोत जड़ वस्तुओं की दुनिया में जीवित चर प्राणियों का चित्रण अगवद्ध रहता और उनकी अनियमित गतिविधियां

दर्शक से बोलने लगती है जो भाषा समझने में असमर्थ रहने से दर्शक की आत्मा व्याकुल हो उठती है। कारा ने इसी अनुभूति के संदर्भ में लिखा है, "बिल्कुल ही साधारण वस्तुओं में ऐसा सुलभ व सरल दर्शन है जो अस्तित्व की अदृश्य व उदात्त अवस्थाओं की ओर संकेत करता है; और यही है कला की गूढ़ महानता"। मार्री रूसो व नव-आदिमवादी चित्रकारों के समान, आत्मतत्त्ववादी चित्रकारों को आंतरिक मानवीय जीवनस्रोत का साक्षात्कार वस्तु जीवन में हुआ उसको उन्होंने चित्ररूप देना चाहा।

आत्मतत्त्ववादी चित्रकारों का कोई निश्चित प्रचारात्मक कार्यक्रम नहीं था एवं उन्होंने किसी कलाकार-मंडल की प्रस्थापना नहीं की। आत्मतत्त्वीय चित्रण की कल्पना का जन्म किरिको व कार्लो कारा के आकस्मिक परिचय से हुआ। 1917 में कार्लो कारा फेरारा के सैनिक-चिकित्सालय में मज्जातन्तु की दुर्बलता का इलाज कराने के लिए भरती हुए थे जहां उनका ज्योर्जिओ दि किरिको से परिचय हुआ। किरिको वहां 1915 से काम कर रहे थे। वैसे दोनों एक दूसरे को नाम से जानते थे। उस समय कारा भविष्यवादी चित्रण में व्यस्त थे और किरिको पेरिस के कला क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हुई एवं दोनों ने वहां के मठ में–जहां चिकित्सालय खोला गया था–महीनों तक चित्रण किया। किरिको के भाई आल्बर्तो साविनिओ जहां वैद्यकीय इलाज करा रहे थे। वे एक प्रसिद्ध गूढ़वादी कवि थे और उनके काव्य पर जर्मन गूढ़वाद का–जिसने रुबिन, मॅरिक व काफ्का जैसे गूढ़वादी साहित्यकारों को जन्म दिया था–प्रभाव था। साविनिओ के काव्य से किरिको व कारा प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त विश्वयुद्ध की भीषणता का आत्मतत्त्ववाद पर परिणाम हुआ और उसमें शीर्षहीन मानवाकृतियों का चित्रण होने लगा। फेरारा का वातावरण भी गूढ़वादी विचारों का पोषक था। दोनों चित्रकार ज्योतो, उच्चेलो, मासाच्चिओ जैसे महान् इटालियन चित्रकारों की परम्परा के अभिमानी थे उनको भविष्यवादी चित्रकारों का पेरिस के चित्रकारों व घनवाद का अनुसरण पसंद नहीं था। कारा ने आरम्भ में भविष्यवादी चित्र बनाये थे किन्तु वे भी भविष्यवाद से असन्तुष्ट थे।

ज्योर्जिओ दि किरिको का जन्म 1888 में ग्रीस में हुआ व उन पर ग्रीक पौराणिक कथाओं का आकर्षण था। बाद में वे बॉकलिन व क्लिंगेर के गूढ़ वातावरण से परिवेष्टित काल्पनिक दृश्यचित्रों से आकृष्ट हुए। असाधारण काव्यात्मक प्रतिभा के कारण पौराणिक कल्पनावाद से आरम्भ कर के धीरे-धीरे वे वास्तविक सृष्टि को अपने गूढ़वादी दृष्टिकोण से रूपांतरित करने लगे। नगरों के निमनुष्य मार्गों पर केवल सफेद मूर्तियों को चित्रित करके उन्होंने रहस्यमय वातावरण के चित्र बनाये। किरिको के गूढ़वादी काव्यात्मक चित्रण से प्रभावित होकर कारा ने भविष्यवाद का त्याग किया व दोनों के सहयोग से आत्मतत्त्वीय चित्रण का विकास हुआ।

भावसृष्टि का आविष्कार करना चाहा। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "आधुनिक दार्शनिकों व कवियों ने कला को बंधमुक्त किया। सर्वप्रथम शोपेनहोर व नीत्शे ने जीवन की मूर्खता के आतरिक गहन अर्थ का हमें ज्ञान कराया व कला में उस मूर्खता को किस प्रकार रूपातरित किया जा सकता है इसका भी निर्देशन किया ..... निर्जीव पदार्थ के अपरिवर्तनीय प्रशांत सौन्दर्य की भयानक शून्यता में"। नीत्शे के प्रभाव से किरिको ने अचल वस्तुसृष्टि की रिक्तता के अंतर्गत गूढ आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार किया व उसको चित्रकला में प्रतिमित करके पुनरनुभूत किया। 1911 से 1915 तक वे पॅरिस में रहे। अपोलिनेर ने उनको पिकासो, देरें व अन्य फ्रॅंच कलाकारों से परिचित कराया किन्तु उसका उनकी कला पर कोई प्रभाव नही पड़ा। वे एकांत में चित्रण करते व प्राचीन इटालियन नगरों के अनैसर्गिक प्रकाश से युक्त काल्पनिक दृश्यचित्र बनाते जिनमें अनन्त अवकाश की गहराई में ऊंचे मीनारों, प्राचीन भवनो, बन्द दीवारघड़ियों, मूर्तियों, केले के गुच्छों, अदृश्य आकृतियों की छायाओं वगैरह अनोखे अंगो को ठोस रूप में, दूरदृश्यलघुता का कठोर पालन करके चित्रित करते; सब कुछ सुनसान व स्तब्ध दिखायी देता; दर्शक को आंतरिक चुभन व्यथित करती व यह जानने को वह बेचैन होता कि आखिर इस वीरान जादूनगरी में कौनसी गूढ आत्माएँ रहती है जो उसके साथ आंख-मिचौनी खेल रही है। ऐसे चित्रो में 'रास्ते का उदासीन व रहस्यपूर्ण दृश्य'[43]—जिसमें सुनसान रास्ते पर एक लडकी की छाया को पहिया चलाते हुए चित्रित किया है,—'कवि की संदेहावस्था'[44]—जिसमें विशाल प्राचीन वास्तु के मकान के आंगन में धड़ की सफेद शिल्पाकृति व केले का गुच्छा रखे हैं—प्रसिद्ध है। उनके चित्र 'भविष्यवेत्ता'[45] में दर्जी का मिट्टी का मॉडेल प्राचीन भवन के सामने रखे हुए श्याम पट पर खीची हुई ज्यामितीय गणिताकृति की ओर गौर से देखकर चिंतन करते हुए चित्रित किया है।

ज्योर्जिओ मोरांदी (1890–1964) किसी कलात्मक आंदोलन में शामिल नही हुए। प्रारम्भ में उन पर सेजान व घनवाद का कुछ प्रभाव था व वे वस्तु-चित्रण करते थे। 1918 में वे आत्मतत्त्ववादी चित्रकारों के संपर्क में आ गये। कला के अध्ययन के लिये वे कभी पॅरिस नही गये, न उन्होंने अपने कलासबंधी विचारों को शब्दरूप किया। अपना निवासस्थान बोलोन्या में रहकर उन्होंने अंत तक अनुराग व समर्पितवृत्ति से शीशियों, जलपात्रों व भिन्न आकारों के मिट्टी पात्रों के वस्तुचित्र बनाये जो कोमल रंगसंगति, लयबद्ध आकार व वास्तुशास्त्रीय रचना से एवं पृष्ठभूमि के वातावरण से गूढ व सचेत हैं।

□□□

चित्र के गूढ़भाव के लिए विघातक होती। आत्मतत्त्वीय चित्रों की गूढ़ आत्माओं के संचार से सचेत दुनिया, जीवित प्राणियों की गतिमान् अस्वस्थ दुनिया से पूर्ण निराली है एवं उसमें जीवित प्राणी को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता था। अतः आत्मतत्त्वीय चित्रण में मनुष्य के स्थान पर कठपुतलियों, मूर्तियों व कहीं मानवछायाओं को अंकित किया है व चित्रों में जादूनगरी का प्रभाव दिखाया है। मनुष्य की आंतरिक भावनाओं को वस्तुओं के प्रतीकात्मक जीवनदर्शन में प्रतिबिंबित किया है मानो दर्शक की आत्मा ही चित्रित वस्तुओं द्वारा अपने गूढ़ अस्तित्व का साक्षात्कार करा रही है।

आत्मतत्त्वीय चित्रकला के नये 'महत्तर यथार्थ'[81] संबंधी विचारदर्शन ने कुछ इटालियन कलाकारों को आकर्षित किया एवं आधुनिक इटालियन कला के विकास में योगदान करके उस पर अमिट प्रभाव छोड़ा। आधुनिक इटालियन कला के इतिहास में आत्मतत्त्ववाद का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंतर्राष्ट्रीय दादावाद, जर्मन जादूमय यथार्थवाद, फ्रेंच अतियथार्थवाद व इटालियन आत्मतत्त्ववाद 'महत्तर यथार्थ' की खोज में समान रूप से प्रेरित थे एवं उनके विचारदर्शन व रूप में घनिष्ठ समानता है। ज्योर्जियो मोरांदी 1918 में आत्मतत्त्वीय चित्रण शुरू किया एवं चिंतन व साधन से आत्मतत्त्वीय चित्रण के काव्यात्मक रूप का वैयक्तिक विशेषताओं के साथ विकास किया।

किरिको के अनुसार आत्मतत्त्वीय चित्रकला के नामकरण के निम्न कारण है, "पदार्थ का प्रशांत व इंद्रियातीत सौन्दर्य मुझे आत्मतत्त्वीय प्रतीत होता है; जो वस्तुएं रंगों की निर्मल चमक व आकारों की अचूक स्पष्टता से धुंधलापन व संदेह को दूर करती हैं वे भी आत्मतत्त्वीय हैं"।

शुरू से ही किरिको पुरातन वातावरण में पले। उनके इटालियन माता-पिता ग्रीस के वोलो नगर में जाकर बसे जहाँ किरिको का जन्म हुआ। उनको सनातन पद्धति की शिक्षा दी गयी; होमर, सार्केटिस व प्लेटो का उन्होंने विद्यार्थी अवस्था में गहरा अध्ययन किया। एथेन्स के पोलिटेक्निक विद्यालय में उन्होंने चित्रकला की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। 1906 में पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी माता वापस इटाली आ गयीं व उन्होंने किरिको को अधिक अध्ययन के लिए म्यूनिक भेजा। यहाँ विद्यालयीन अध्ययन से उनको विशेष लाभ नहीं हुआ। संग्रहालयों में जाकर उन्होंने बॉकलिन के चित्रों का अध्ययन किया व उससे उनकी कला को निश्चित मार्मिक दिशा मिली। स्वप्निल वृत्ति, स्मृतिव्याकुलता[82] व एकान्तप्रेम किरिको की स्वभावविशेषताएं थीं; अतः उनको क्लिंगेर व कुबिन के स्वप्निल दृश्य बहुत प्रिय थे। नीत्शे के अध्ययन से उनको ज्ञात हुआ कि एकान्तप्रेम में नीत्शे को इस कठोर संसार में भी जादूनगरी का दर्शन हुआ। नीत्शे से प्रेरणा पाकर उन्होंने बाह्य रूप की रिक्तता को अनुभव किया एवं उसकी आंतरिक गूढ़ काव्यमय

भावसृष्टि का आविष्कार करना चाहा। इस सदर्भ में उन्होने लिखा है "आधुनिक दार्शनिकों व कवियो ने कला को बंधमुक्त किया। सर्वप्रथम शोपेनहॉर व नीत्शे ने जीवन की मूर्खता के आतरिक गहन अर्थ का हमे ज्ञान कराया व कला मे उस मूर्खता को किस प्रकार रूपातरित किया जा सकता है इसका भी निर्देशन किया .... निर्जीव पदार्थ के अपरिवर्तनीय प्रशात सौन्दर्य की भयानक शून्यता मे"। नीत्शे के प्रभाव से किरिको ने अचल वस्तुसृष्टि की रिक्तता के अतर्गत गूढ आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार किया व उसको चित्रकला में प्रतिमित करके पुनरनुभूत किया। 1911 से 1915 तक वे पैरिस मे रहे। अपोलिनेर ने उनको पिकासो, देरें व अन्य फ्रेंच कलाकारो से परिचित कराया किन्तु उसका उनकी कला पर कोई प्रभाव नही पड़ा। वे एकात मे चित्रण करते व प्राचीन इटालियन नगरों के अनैसर्गिक प्रकाश से युक्त काल्पनिक दृश्यचित्र बनाते जिनमे अनन्त अवकाश की गहराई मे ऊंचे मीनारों, प्राचीन भवनो, बन्द दीवारघडियों, मूर्तियो, केले के गुच्छो, अदृश्य आकृतियो की छायाओ वगैरह अनोखे अगो को ठोस रूप मे, दूरदृश्यलघुता का कठोर पालन करके चित्रित करते; सब कुछ सुनसान व स्तब्ध दिखायी देता; दर्शक को आतरिक चुभन व्यथित करती व यह जानने को वह बेचैन होता कि आखिर इस वीरान जादूनगरी में कौनसी गूढ आत्माएँ रहती है जो उसके साथ आख-मिचौनी खेल रही हैं। ऐसे चित्रो मे 'रास्ते का उदासीन व रहस्यपूर्ण दृश्य'[43]—जिसमे सुनसान रास्ते पर एक लड़की की छाया को पहिया चलाते हुए चित्रित किया है,—'कवि की मदेहावस्था'[44]—जिसमे विशाल प्राचीन वास्तु के समान के प्रागन में धड़ की सफेद शिल्पाकृति व केले का गुच्छा रखे हैं—प्रसिद्ध है। उनके चित्र 'भविष्यवेत्ता'[45] मे दर्जी का मिट्टी का मॉडेल प्राचीन भवन के सामने रखे हुए श्याम पट पर खीची हुई ज्यामितीय गणिताकृति की ओर गौर से देखकर चिंतन करते हुए चित्रित किया है।

ज्योर्जिओ मोरांदी (1890–1964) किसी कलात्मक आदोलन में शामिल नहीं हुए। आरम्भ मे उन पर सेजान व घनवाद का कुछ प्रभाव था व वे वस्तु-चित्रण करते थे। 1918 में वे आत्मतत्त्ववादी चित्रकारो के संपर्क में आ गये। कला के अध्ययन के लिये वे कभी पैरिस नही गये, न उन्होंने अपने कलासबधी विचारो को शब्दरूप दिया। अपना निवासस्थान बोलोन्या मे रहकर उन्होंने अन्त तक अनुराग व समर्पितवृत्ति से शीशियों, जलपात्रों व भिन्न आकारो के मिट्टी पात्रों के वस्तुचित्र बनाये जो कोमल रंगसंगति, लयबद्ध आकार व वास्तुशास्त्रीय रचना से एवं पृष्ठभूमि के वातावरण मे गूढ व सचेत हैं।

□□□

चित्र के गूढ़भाव के लिए विघातक होती । आत्मतत्त्वीय चित्रों की गूढ़ आत्माओं के संचार से सचेत दुनिया, जीवित प्राणियों की गतिमान् अस्वस्थ दुनिया से पूर्ण निराली है एवं उसमें जीवित प्राणी को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता था । अतः आत्मतत्त्वीय चित्रण में मनुष्य के स्थान पर कठपुतलियाँ, मूर्तियों व कहीं मानवछायाओं को अंकित किया है व चित्रों में जादूनगरी का प्रभाव दिखाया है । मनुष्य की आंतरिक भावनाओं को वस्तुओं के प्रतीकात्मक जीवनदर्शन में प्रतिमित किया है मानो दर्शक की आत्मा ही चित्रित वस्तुओं द्वारा अपने गूढ़ अस्तित्व का साक्षात्कार करा रही है ।

आत्मतत्त्वीय चित्रकला के नये 'महत्तर यथार्थ'[41] संबंधी विचारदर्शन ने कुछ इटालियन कलाकारों को आकर्षित किया एवं आधुनिक इटालियन कला के विकास में योगदान करके उस पर अमिट प्रभाव छोड़ा । आधुनिक इटालियन कला के इतिहास में आत्मतत्त्ववाद का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । अंतर्राष्ट्रीय दादावाद, जर्मन जादूमय यथार्थवाद, फ्रेंच अतियथार्थवाद व इटालियन आत्मतत्त्ववाद 'महत्तर यथार्थ' की खोज में समान रूप से प्रेरित थे एवं उनके विचारदर्शन व रूप में घनिष्ठ समानता है । ज्योर्जिओ मोरांदी 1918 में आत्मतत्त्वीय चित्रण शुरू किया एवं चिंतन व साधन से आत्मतत्त्वीय चित्रण के काव्यात्मक रूप का वैयक्तिक विशेषताओं के साथ विकास किया ।

किरिको के अनुसार आत्मतत्त्वीय चित्रकला के नामकरण के निम्न कारण है, "पदार्थ का अज्ञात व इंद्रियातीत सौन्दर्य मुझे आत्मतत्त्वीय प्रतीत होता है; जो वस्तुएं रंगों की निर्मल चमक व आकारों की अचूक स्पष्टता से धुंधलापन व संदेह को दूर करती है वे भी आत्मतत्त्वीय है" ।

शुरू से ही किरिको पुरातन वातावरण में पले । उनके इटालियन माता-पिता ग्रीस के वोलो नगर में जाकर बसे जहाँ किरिको का जन्म हुआ । उनको सनातन पद्धति की शिक्षा दी गयी; होमर, साक्रेटिस व प्लेटो का उन्होंने विद्यार्थी अवस्था में गहरा अध्ययन किया । एथेन्स के पोलिटेक्निक विद्यालय में उन्होंने चित्रकला की आरंभिक शिक्षा प्राप्त की । 1906 में पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी माता वापस इटाली आ गयी व उन्होंने किरिको को अधिक अध्ययन के लिये म्यूनिक भेजा । यहाँ विद्यालयीन अध्ययन से उनको विशेष लाभ नहीं हुआ । संग्रहालयों में जाकर उन्होंने बॉकलिन के चित्रों का अध्ययन किया व उससे उनकी कला को निश्चित आत्मिक दिशा मिली । स्वप्निल वृत्ति, स्मृतिव्याकुलता[42] व एकांतप्रेम किरिकोकी स्वभावविशेषताएं थी; अतः उनको क्लिंगेर व कुबिन के स्वप्निल दृश्य बहुत प्रिय थे । नीत्शे के अध्ययन से उनको ज्ञान हुआ कि एकांतप्रेम से नीत्शे को इस कठोर संसार में भी जादूनगरी का दर्शन हुआ । नीत्शे से प्रेरणा पाकर उन्होंने बाह्य रूप की रिक्तता को अनुभव किया एवं उसकी आंतरिक गूढ़ काव्यमय

भावसृष्टि का आविष्कार करना चाहा। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "आधुनिक दार्शनिकों व कवियों ने कला को बंधमुक्त किया। सर्वप्रथम शोपेनहोर व नीत्शे ने जीवन की मूर्खता के आतरिक गहन अर्थ का हमें ज्ञान कराया व कला में उस मूर्खता को किस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है इसका भी निर्देशन किया .... निर्जीव पदार्थ के अपरिवर्तनीय प्रशात सौन्दर्य की भयानक शून्यता में"। नीत्शे के प्रभाव से किरिको ने अचल वस्तुसृष्टि की रिक्तता के अतर्गत गूढ़ आत्मतत्व का साक्षात्कार किया व उसको चित्रकला में प्रतिमित करके पुनरनुभूत किया। 1911 से 1915 तक वे पेरिस मे रहे। अपोलिनेर ने उनको पिकासो, देरें व अन्य फ्रेंच कलाकारो से परिचित कराया किन्तु उनका उनकी कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एकात मे चित्रण करते व प्राचीन इटालियन नगरों के अनैसर्गिक प्रकाश से युक्त काल्पनिक दृश्यचित्र बनाते जिनमें अनन्त अवकाश की गहराई मे ऊंचे मीनारों, प्राचीन भवनो, बन्द दीवारघड़ियो, मूर्तियो, केले के गुच्छो, अदृश्य आकृतियो की छायाओ वगैरह अनोखे अगों को ठोस रूप में, दूरदृश्यलघुता का कठोर पालन करके चित्रित करते; सब कुछ सुनसान व स्तब्ध दिखायी देता; दर्शक को आतरिक चुभन व्यथित करती व यह जानने को वह बेचैन होता कि आखिर इस वीरान जादूनगरी में कौनसी गूढ़ आत्माएँ रहती है जो उसके साथ आख-मिचौनी खेल रही हैं। ऐसे चित्रो मे 'रास्ते का उदासीन व रहस्यपूर्ण दृश्य'[43]—जिसमे सुनसान रास्ते पर एक लड़की को छाया को पहिया चलाते हुए चित्रित किया है,—'कवि की मदेहावस्था'[44]—जिसमे विशाल प्राचीन वास्तु के समान के आगन मे धड़ की सफेद शिल्पाकृति व केले का गुच्छा रखे हैं—प्रसिद्ध है। उनके चित्र 'भविष्यवेत्ता'[45] में दर्जी का मिट्टी का मॉडेल प्राचीन भवन के सामने रखे हुए श्याम पट पर खींची हुई ज्यामितीय गणिताकृति की ओर गौर से देखकर चिंतन करते हुए चित्रित किया है।

ज्योर्जिओ मोरांदी (1890–1964) किसी कलात्मक आंदोलन में शामिल नही हुए। प्रारम्भ मे उन पर सेजान व घनवाद का कुछ प्रभाव था व वे वस्तुचित्रण करते थे। 1918 में वे आत्मतत्ववादी चित्रकारों के संपर्क में आ गये। कला के अध्ययन के लिये वे कभी पेरिस नही गये, न उन्होंने अपने कलाविषयक विचारों को शब्दरूप किया। अपना निवासस्थान बोलोन्या मे रहकर उन्होंने अंत तक अनुराग व समर्पितवृत्ति से शीशियो, जलपात्रों व भिन्न आकारो के मिट्टी पात्रों के वस्तुचित्र बनाये जो कोमल रंगसंगति, लयबद्ध आकार व वास्तुशास्त्रीय रचना से एवं पृष्ठभूमि के वातावरण मे गूढ़ व सचेत हैं।

□□□

एवं बौद्धिक तत्वों को हटा कर कला की नयी परिभाषा तैयार करने की चर्चा शुरू हुई। यंत्रयुगीन आकारों के नवनिर्माण ने कलाकारों का ध्यान आकर्षित किया। भविष्यवादियों ने घोषित किया था कि तेज चलनेवाली गाड़ी 'सामोथ्रेस की विजय' शिल्पाकृति से अधिक सुन्दर है; देलोन को एफेल मीनार के विशाल रूप में उदात्त का दर्शन हुआ था; लेजे ने यंत्र के सर्वव्यापित्व को पहचान कर मानवाकृतियों को यंत्रसम चित्रित किया था; किंतु 'दादा' कलाकारों ने यंत्र के निर्माण में मानवजाति की गुलामी व उपहास के तत्व दिखायी दिये। उन्होंने चक्र, तार, यंत्र के पुर्जे आदि वस्तुओं से युक्त अनोखी, यंत्रसम किंतु पूर्ण अनुपयुक्त रचनाओं को चित्रित करके मानव की यंत्र की गुलामी का उपहास किया। इससे पहले फूलों, पौधों व प्राणियों के चित्रों से परिपूर्ण पुस्तकों से मानव का मनोरंजन होता था व अब उद्योगनिर्मित उपयुक्त वस्तुओं के सचित्र सूचीपत्रों में नवीन आरामदायक सुखसाधनों का वर्णन पढ़ कर मानव भविष्य की कल्पनानगरी के ख्वाब देखने लगा था; किंतु दादावादियों ने उसका भ्रमनिरास किया।

1911 में द्यूशा ने यंत्रसम आकृति को चित्रित करके उसको शीर्षक दिया 'कॉफी की चक्की'[5] इसके द्वारा जंगली जाति के क्रूर व भयानक देवताओं के पूजन से आधुनिक मानव की यंत्रपूजा की तुलना करके उन्होंने मानव की मूर्खता का उपहास किया था। 1912 में उन्होंने भविष्यवादियों के गतित्व के सिद्धान्त से प्रभावित होकर,अपना प्रसिद्ध चित्र 'जीने पर उतरती हुई विवस्त्र मानवाकृति'[6] बनाया। 1914 से उन्होंने 'बनीबनायी'[7] वस्तुओं को अपरिचित अनोखे वातावरण में रख कर व विचित्र काल्पनिक शीर्षक देकर कलाकृति के रूप में प्रदर्शित करना शुरू किया व अपनी उपहासगर्भ कला को नया मोड़ दिया। ऐसे वस्तुदर्शन से प्रेक्षकों में हंसी, क्रोध या भय की भावना का निर्माण होता व 'दादा' कला का उद्देश्य सफल होता। 1917 में हुई प्रदर्शनी में उन्होंने मूत्रपात्र पर 'आर मट' नाम से हस्ताक्षर करके 'फंव्वारा'[8] शीर्षक से उसको प्रदर्शित किया। द्यूशा की 'बनी बनायी कला' में प्रत्यक्ष कठोर वास्तविकता को नया अकल्पित अर्थ देने का सामर्थ्य था।

द्यूशा ने 'बनीबनायी' की परिभाषा की है—"ऐसी कलाकृति जिसका कोई कलाकार नहीं होता।"....मैं इसके द्वारा कलाकार को समाज के दिये गये देवता के समान स्थान से पदच्युत करना चाहता हूं।.........'बनीबनायी' का चुनाव आप नहीं करते, वह आपको चुनती है। जहां अच्छी या बुरी, रुचि का सवाल आता है वहां कला नहीं होती रुचि कला को दुश्मन है।" वे आगे कहते है, "व्युत्पत्ति के अनुसार 'कला' का अर्थ है 'करना'। अतः प्रत्येक व्यक्ति कलानिर्मिति करता है व सम्भव है कि भविष्य की सदियों में कलानिर्मिति होती रहेगी किन्तु उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देगा।.......मेरे प्रयत्न के विना कोई चीज संयोग से बनती है तो मुझे खुशी होती है।.......सब संसार संयोग पर आधारित है। जिस संसार में हम जीवित हैं उसकी घटनाओं की परिभाषा ही संयोग है।........फ्रेंच भाषा में

द्यूशा ने सहजज्ञान से तीन तत्वों को कला के मूलाधार माना एवं स्वाभाविक तरीकों से किन्तु निश्चय के साथ प्रयोग कर के उनको कलानिर्मिति में उपयुक्त सिद्ध किया। प्रथम, गतित्व के विचार से उन्होंने घनवाद के समसावच्छेद व भविष्यवाद के गतित्वदर्शी आकारों से आरम्भ करके चपल कृतियों की निर्मिति का; दूसरा, उपहास के विचार से उन्होने सहजसिद्ध या आकस्मिक तत्वों के अनपेक्षित परिणाम को कला में स्थान देना शुरू किया जिससे निरुद्देश्य सेलक्रीडन व परिहास कलानिर्मिति में अचेतन अनुभूतियों को साकार करने के प्रभावी साधन बन गये; तीसरा, विषयवस्तु के परिणामकारक दर्शन के विचार से उन्होंने वस्तु को प्रथम व्यग्यात्मक व बाद में पृष्ठभूमि से पृथक् व स्वतन्त्र रूप में अंकित किया और अन्त मे 'बनीबनायीवस्तु' को भी बुद्धि व कौशल से कलात्मक रूप प्रदान किया, और इस पद्धति को आधुनिक कला में 'महत्तर सत्य' के साक्षात्कार का एक महत्वपूर्ण तरीका माना गया है। ये तीनों विचार दादा रूपांकन पद्धति के बन गये।

1916 में पिकाबिया बार्सेलोना गये जहाँ उनको मारी लोरासँ व ग्लेजे मिले एवं उन्होने '391' नामक मासिक-पत्रिका का प्रकाशक शुरू किया। 1919 में पिकाबिया ज्यूरिख गये एवं न्यूयार्क व ज्यूरिख में स्वतन्त्र रूप से जन्मे दादा एकत्र आ गये और दादावाद का जर्मनी व फ्रान्स में अविलंब प्रसार हो गया।

1917 में ज्यूरिख ह्यूल्सेनबेक से वापस बर्लिन चले गये जहाँ जनता भूख, दुःख व राजनैतिक अस्थिरता से सत्रस्त थी। उन्होने दादा घोषणापत्र में जाहिर किया, "दादा' के साथ एक नये यथार्थ ने जन्म लिया है। जीवन में एकसाथ ध्वनि, रग व आत्मिक अनुभूतियों की अव्यवस्था प्रतीत होती है और उसको दादा ने अपरिहार्य अपरिवर्तित यथार्थ रूप में स्वीकारा है, जिसमें-हृदयभेदी करुण पुकार, दैनंदिन विवेक रहित जीवन के मनोविज्ञान का आतंक व पाशवी सत्य सब कुछ जैसे कि वैसे है।... ... दादावाद ने ही सर्वप्रथम जीवन के प्रति सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण को अस्वीकारा है और उसके लिये उसने नीति, सस्कृति व अंतर्मुखवृत्ति को कपोलकल्पित असत्य घोषणाओं को छिन्नविछिन्न किया है जो दुर्बल मानव के लिये एक बहाना मात्र है"। दादावाद का जर्मनी में शीघ्र प्रसार हुआ किन्तु जर्मन दादावाद का लक्ष्य मुख्य रूप से राजनैतिक उपहास था और उसके प्रमुख कलाकार थे ग्रोस। उनकी कला के कठोर रेखांकन, मोंताज कृतियां, घनवादी व भविष्यवादी अंकनपद्धतियों के प्रयोग व अभिव्यंजनावादी आवेश के लक्ष्य थे राजनैतिक गुटबाजी, सैनिकशाही व भ्रष्टाचार।

कलोन में मार्क्स एर्न्स्ट-जो शुरू में दर्शन के विद्यार्थी थे-पिकासो व कान्डिन्स्की से प्रभावित थे व अभिव्यंजनावाद का अध्ययन कर रहे थे। 1913 में उनका पिकाबिया से परिचय हुआ था। विश्वयुद्ध शुरू होने पर जब पिकाबिया कलोन आये तब मार्क्स एर्न्स्ट दादा आंदोलन में शामिल हुए एवं बार्गेल्ट के साथ उन्होंने कलोन में दादा कृतियों का निर्माण शुरू किया। द्यूशा की 'बनीबनायी'

की कल्पना उनको सबसे अधिक पसंद आयी। उन्होंने टेक्निकल रेखांकन की पुस्तकों में छपी आकृतियों को काट कर विचित्र राक्षसी आकृतियों की चित्रसृष्टि का निर्माण किया जिसमें उन्होंने आकस्मिक व अनपेक्षित के तत्वों को प्रयोगान्वित किया था। उन्होंने पुरानी मासिक पत्रिकाओं व विज्ञानसंबंधी पुस्तकों से रेखाचित्रों को टुकड़ों में काट कर उन टुकड़ों को पुनः एक साथ, भिन्न तर्कहीन क्रम में रख कर—जो पद्धति 'मोंताज'[15] नाम से प्रसिद्ध हुई—अद्‌भुत दर्शन की कृतियां निर्माण कीं, उदाहरण के लिये उन्होंने प्रकाशयंत्र को पेड़ पर चिपकाया व झिंगुर के खण्डचित्र को नाव पर चिपकाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष सृष्टि से आकारों को चुन कर उनकी पुनर्रचना से वे काल्पनिक सृष्टि का निर्माण करते। एर्न्स्ट की कोलाज-कृतियों से अतमंन व अचेतन प्रेरणाओं का कलात्मक महत्त्व बढ़ गया। 1922 में वे पॅरिस गये जहाँ उन्होंने अतियथार्थवाद के प्रहार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

1920 में कुर्ट श्विटर्स ने हानोवर में 'दादा' को एक निराले रूप में जन्म दिया जिसको वे 'मर्त्स' कहते। 'मर्त्स' एक अर्थहीन शब्द था व 'कोम्मर्त्स'[16] शब्द की योजना करके कोलाजकृति बनाते समय प्रारम्भ के अक्षर कट जाने से वह शब्द रह गया था। श्विटर्स की 'मर्त्स' कृतियों का उद्देश्य केवल रचनात्मक नहीं था। शुरू में वे प्रभाववादी चित्रण करते थे व कुछ समय तक उन्होंने अभिव्यञ्जनावादी चित्र बनायें। उसके पश्चात् पिकासो का अनुसरण कर के उन्होंने कोलाजकृतियां बनायीं व अन्त में दादा के कलाविरोधी अद्‌भुतवादी विचारों का कोलाजकृतियों में मिलाप करके उन्होंने नवीन ढंग की कृतियां बनायीं। कील, टिकट, बाल वगैरह वस्तुओं का संग्रह कर के वे उनसे चित्र रचना करते। उनके विचार से ऐसी रचना में ऐन्द्रजालिक परिणाम का निर्माण होकर वास्तविकता के पीछे सत्य से हम परिचित हो जाते हैं। वे अपनी रचनाओं को मर्त्स कविता, मर्त्स चित्र व मर्त्स कोलाज कहते। वे मानते कि जंगली जाति के देवता के समान उनकी मर्त्स कृति जीवन की शून्यता को अर्थ प्रदान करती है। अब उन्होंने पुरानी वस्तुओं के संग्रह के लिये एक मंदिर के समान विशाल गृह बनवाया जिसको वे 'मर्त्सबौ'[17] कहते; अपनी उर्वरित आयु में उन्होंने कई जगह 'मर्त्सबौ' बनवाये। सभी दादा कलाकारों में से श्विटर्स सबसे अधिक विचारशील व एकनिष्ठ थे। उनके कुछ 'मर्त्स बिल्ट' (मर्त्सबिल्ट=रद्दी चित्र)[18] आकार व रेखाओं के सौंदर्य व मनोहर रंगसंगति के उत्तम उदाहरण हैं।

1919 में त्सारा व पिकाबिया पॅरिस गये और वहाँ उन्होंने 'दादा' कार्यक्रम शुरू किया। वे 'साहित्य'[19] नामक मासिक पत्रिका से सम्बन्धित कवियों के मंडल में शामिल हुए जिसमें ब्रेतो, आरागो व सुपो प्रमुख थे। ये कवि त्सारा से अधिक विवेकशील थे; वे अन्तर्मन स्वाब की दुनिया व ऐन्द्रजालिक अनुभूतियों को कला द्वारा चित्रित करना चाहते एवं उसके लिये आकस्मिक घटनाओं, अचेतन क्रियाओं, विकृत प्रतिमाओं व प्रतीकों से सहायता लेते। अतः उनका दादा कलाकारों

से शीघ्र ही परिचय हुआ किंतु दादावाद का फ्रेंच कलाकारों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

कुछ बरसों तक दादा साहित्य व कला का घनिष्ठ सम्बन्ध था व उनके प्रसार व सफलता के दो प्रमुख कारण थे; प्रथम उनका बुद्धिवाद-विरोधी कार्यक्रम—कला को नष्ट करने के लिये कला—विश्वयुद्धजनित निराशा के वातावरण के अनुकूल था, और दूसरा, उनकी 'मन पूत समाचरेत्' पद्धति की पागल प्रदर्शनिया लोकविलक्षण व्यवहार, मनमौजी नृत्य वगैरह बातो ने समाज को परिस्थिति से बढ़े हुए मानसिक तनाव को हल्का करने का साधन प्राप्त हुआ। पिकासो व ग्रोस जैसे विचारक कलाकार भी दादावाद की ओर आकर्षित हुए थे किंतु कुछ समय में ही वे स्वतन्त्र विचार से स्थायी महत्व की कलाकृतियो का निर्माण करने के उद्देश्य से उससे पृथक् हो गए। आर्प व माक्स एर्न्स्ट जैसे बुद्धिमान् चित्रकार अपने दृष्टिकोण को सुनिश्चित रूप देने में व्यस्त हो गए एव कला का अन्त करने के उद्देश्य से जन्मे 'दादा' का अन्त हुआ।

दादा का परमोत्कर्ष उसकी 1920 में पैरिस में हुई प्रदर्शनी मे देखने को मिला; इसमें मूर्तियां व चित्र रखे गये, कविसम्मेलन हुए, सगीतसमारोह का आयोजन किया गया व सभी कार्यक्रम दादा सिद्धान्तो के अनुसार हँसी-मजाक, जोर-शोर व उपहास से ओतप्रोत थे। दूशा ने मोना लिसा की प्रतिकृति को होठो पर मूंछें चित्रित करके प्रदर्शित किया व उसको शीर्षक दिया 'ल्हूक'[20]। पिकाबिया ने एक चौखटे में खिलौने का बन्दर रख दिया और उसको शीर्षक दिया 'सेजान का व्यक्तिचित्र'। इस प्रकार दादा कलाकारो न सौंदर्य की परम्परागत कल्पनाओं व आधुनिक कला के महान् आदर्शों का उपहास किया। दादा का जन्म मानव-विकास यत्रयुग व शिष्टाचार की निंदा करने हेतु हुआ था। पिकाबिया की कृति 'कामुकता का प्रदर्शन'[21] इसी उद्देश्य से बनायी गयी थी और उसमे निरुपयुक्त यत्रसम रचना को चित्रित कर के यत्रयुग का उपहास किया था।

1922 में दादा कलाकारो का एक सम्मेलन हुआ जिसमे त्सारा व आंद्रे ब्रेतो ने एक-दूसरे का विरोध किया। ब्रेतो ने फ्रेंच कलाकार आरागो, सुपो व एल्वार व कुछ स्विस कलाकारो को अपने गुट मे शामिल किया व दो साल के अन्दर ही एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ जिसमे दादा के बुद्धिवाद-विरोधी विचारो के साथ, मानव के अन्तर्मन के आतरिक रहस्यो की खोज का उद्देश्य प्रमुख रूप मे सामने रखा गया; यह था अतियथार्थवाद।

अतियथार्थवाद :

दादा व भविष्यवाद के समान, अतियथार्थवाद में कलाकृति के सौंदर्यात्मक गुणो का कोई विचार नही था, न उसमे अकनपद्धति सम्बन्धी कोई निश्चित सिद्धात थे। उसने अन्तर्मन के अज्ञात यथार्थ का आविष्कार कर के कलाकारो को एक नया विषयक्षेत्र उपलब्ध कराया। सिग्मुंट फ्राइड के मनोविश्लेषण[22] सम्बन्धी विचारों

व अन्तर्मन के आविष्कार के नये तरीकों ने 1920 के करीब सभी विचारकों का ध्यान आकर्षित किया था; तर्कशास्त्र का सूत्रबद्ध क्रम अब भ्रममूल व मिथ्या प्रतीत हो रहा था। अतियथार्थवाद का दृष्टिकोण भी तत्सम था एवं उसके सभी कार्यक्रम उस दृष्टिकोण से निर्दिष्ट थे; उसने कला को अन्तर्मन की खोज का परिणामकारक साधन माना।

1924 में आन्द्रे ब्रेतो ने अतियथार्थवाद का प्रथम घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। संक्षेप में उसका निष्कर्ष था, "विशुद्ध, स्वयचालित मनोवैज्ञानिक क्रियाओं से भाषण, लेखन, चित्रण या अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों द्वारा विचारों को सत्य रूप में प्रकट किया जा सकता है। तर्कबुद्धि के बाह्य नियंत्रण से एवं सौंदर्यात्मक व नैतिक तथ्यों से मुक्त, स्वयपूर्ण विचार क्रियाओं पर भी यह सिद्धात लागू होता है। अब तक उपेक्षित क्रिया-साहचर्यों की श्रेष्ठ सत्यता का अतियथार्थवाद विश्वास करता है, स्वाब के निर्णायक सामर्थ्य व अचेतन विचार क्रिया के निष्काम क्रीडन का विश्वास करता है। इन्हो से जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का हल किया जा सकता है। ब्रेतों की धारणा थी कि बौद्धिक विचारक्रिया से मानवजीवन की संपूर्ण अनुभूति के अत्यल्प अंश का ही ज्ञान हो सकता है जिसको हम भूल से सम्पूर्ण सत्य मानकर चलते है। इसके अतिरिक्त कल्पना अनुमान व सहजज्ञान से हम आतरिक अनुभूति के व्यापक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं जो हमें तर्कबुद्धि के विरोध के बावजूद बार-बार बेचैन करती रहती है। कलाकारों व साहित्यकों को—जो सहजज्ञान व अन्तर्मन के स्वामी है—इस क्षेत्र मे प्रवेश करके उस पर प्रकाश डालना चाहिये। कुछ लोग कला को आकारसौंदर्य की निर्मिति मानते है किंतु यह अर्थहीन है; कला का मानव व मानवीय सत्य से प्रत्यक्ष सम्पर्क होना चाहिये। कलाकार इस सत्य को लिपिबद्ध करने का यंत्र मात्र है। तर्क, नीति, सौंदर्य वगैरह तत्वों से इस यंत्र की गति मे रुकावट पैदा होगी। यदि कलाकार योग्य तरीकों को अपनायेगा तो वह अन्तर्मन की खुली पुस्तक को सरलता से पढ़ पायगा। जीवन के आतरिक सारतत्व को गहन अनुभूतियों व उनके प्रति मानवीय प्रतिक्रियाओं को समझने के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अतियथार्थवाद प्रेरित था। इन अनुभूतियों का प्रकटीकरण भौतिक घटनाओं व ऐंद्रिय ज्ञान पर तार्किक विचार करने से नही हो सकता था; इसके लिए अन्तःचक्षु से देखना जरूरी था। प्राचीन काल से, आदिम लोगों ने अद्भुत घटनाओं की व्याख्या करने में मन्त्रतंत्र के प्रयोग मे एवं गुप्तविद्या मे इसी पद्धति को अपनाया एव मानवीय मन के गूढ़ सत्यों का परिचय किया। किंतु अतियथार्थवादी कलाकारों ने काफी आगे बढ़ कर स्पष्ट किया कि मानव के अन्तर्मन व यथार्थ के बीच गहरी खाई पार करने के साधन है,—कल्पना, अनुमान व सहजज्ञान। मनोरजन, सौंदर्यदर्शन या आत्मसतोष ये अतियथार्थवादी कला के उद्देश्य नही थे। ये कलाकार बाह्य यथार्थ के ऐंद्रिय ज्ञान को अस्वीकार कर,

अंतर्मुख होकर आत्मपरीक्षण करते व आंतरिक दुनिया के सत्यार्थ के आविष्कार में मग्न रहते। इस प्रकार अतियथार्थवाद में कलात्मक की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर अधिक बल था; वैज्ञानिक कल्पनाशक्ति अतियथार्थवादी काव्य का प्रमुख आधार थी व उसके द्वारा नये मानसिक क्षितिजों की खोज की जा रही थी।

अतियथार्थवादी कलाकार केवल अचेतन मन की क्रियाओं पर निर्भर रहते और उससे प्राप्त विरोधी प्रेरणाओं को एकात्म रूप देने के प्रयत्न करते व तर्कशास्त्रीय विरोधी तत्वों में—जैसे कि मृत्यु व जीवन, भूत व भविष्य, यथार्थ व काल्पनिक आदि–समन्वय करना चाहते। इस संदर्भ में आंद्रे ब्रेतों ने लिखा है "मेरा विश्वास है कि ये प्रत्यक्ष रूप से विरोधी अवस्थाएं—स्वप्न व जागृति–निरपेक्ष यथार्थ में यानी अतियथार्थ में एकरूप होंगी"[23]

अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अतियथार्थवादी कलाकारों को परंपरागत कला प्रेरणाओं को छोड़ना पड़ा और वे तनाव, नशा, मतिभ्रम, स्वयंचालित लेखन, मूर्च्छा, भयानक स्वप्न, पागलअवस्था, वायुप्रकोप, निद्राभ्रमण, सम्मोहन[24] जैसी असामान्य अवस्थाओं से चित्रण योग्य सामग्री प्राप्त करने लगे। एल्वार के अनुसार इन अवस्थाओं में बुद्धि के शुद्ध स्वतंत्र रूप व मूलभूत सामर्थ्य का सच्चा साक्षात्कार होता है। ऐसी तर्कबाह्य अवस्थाओं में, ऐंद्रिय ज्ञान की तार्किक सूत्रता के जाल से मुक्त होकर, अतर्क्य असाधारण व अद्‌भुत अनुभूतियों द्वारा मानव अज्ञात का दर्शन पाता है। रॅंबो के विचार से "......दीर्घ असाधारण अध्ययन से ऐंद्रियता से मुक्त होकर कवि भविष्यवेत्ता बन जाता है"। इसके अतिरिक्त, असंबद्ध या विरोध-भावयुक्त वस्तुओं या कल्पनाओं के साहचर्य से भी अतियथार्थवादी कलाकार अद्‌भुत प्रभाव का निर्माण करते। उन्होंने सामूहिक प्रयत्नों से सर्जन करने के भी प्रयत्न किये; जैसे कि एक व्यक्ति बहुत से शब्द लिख लेता जिनको पढ़ कर दूसरे व्यक्ति को जिन अन्य शब्दों का कल्पनाज्ञान होता वे शब्द लिखे जाते; व इस प्रकार से निर्मित स्वयचालित शब्दरचना से कोई तर्कशुद्ध विचार नहीं बनता किन्तु उससे अंतर्मन को प्रकाशित करने वाली शब्दरूप प्रतिमाएं अवश्य मिलतीं। इस पद्धति के सामूहिक प्रयत्नों से अतियथार्थवादियों ने कुछ उपन्यास लिखे। इसी के समान पद्धति से अतियथार्थवादी चित्रकारों ने सामूहिक चित्रण किया; कागज के एक हिस्से पर एक चित्रकार रेखांकन या रंगांकन करता व उसको ढक कर दूसरा चित्रकार कागज के शेष हिस्से में और कुछ बनाता व इस प्रकार से निर्मित कृति तर्कहीन किन्तु अद्‌भुत बनती। इन सभी पद्धतियों का एक ही लक्ष्य था—स्वयंप्रेरित सहजसिद्ध प्रतिमाओं व अज्ञात तत्वों को कला में बांधना।

इस प्रकार अतियथार्थवादियों ने नये सौंदर्यशास्त्र को जन्म दिया जिसके सूत्रधार थे कवि ब्रेतों, एल्वार व पियर रेवर्दी। 1924 में अतियथार्थवाद की मासिक पत्रिका 'अतियथार्थवादी क्रांति'[25] का प्रकाशन शुरू हुआ। 1929 में प्रकाशित द्वितीय घोषणापत्र में अतियथार्थवादी आंदोलन के उद्देश्यों को अधिक

स्पष्ट रूप दिया था। प्रतियथार्थवाद की प्रमुख प्रदर्शनियां 1936 में लदन में व 1947 में पेरिस में हुई। उसके पश्चात् प्रतियथार्थवाद, आंदोलन के रूप में, नष्ट हुआ यद्यपि वैयक्तिक रूप से, प्रतियथार्थवादी कृतियां बनती ही रहीं।

अतियथार्थवाद को आरम्भ में ही अनुयायी मिले। उनकी प्रथम प्रदर्शनी की सूची में पिकासो, मॅन रे आर्प, क्ले, एर्न्स्ट, दि किरिको के नाम थे। इनके अतिरिक्त, अतियथार्थवादी चित्रकार आन्द्रे मास्सों, मीरो व पियर रॉय ने विश्व-ख्याति प्राप्त की। 1926 में 'अतियथार्थवादियों की कलावीथिका' का उद्घाटन हुआ, जहाँ 1927 में इवे तान्गी के चित्रों की प्रदर्शनी हुई। 1930 में स्पेनिश चित्रकार सालवाडोर डाली अतियथार्थवादियों के मडल में शामिल हुए। इस आंदोलन में चित्रकारों व कवियों का घनिष्ठ सहयोग रहा। 1928 में कवि ब्रेतों ने 'अतियथार्थवाद व चित्रकार'[26] नाम की पुस्तक प्रकाशित की।

अतियथार्थवादी चित्रकारों में से मास्स एर्न्स्ट व डाली ने वस्तुसदृश आकारों के प्रयोग से अद्भुत सृष्टि का निर्माण किया जबकि हान्स आर्प, मास्सों व तान्गी ने अचेतन प्रेरणाओं से प्रभावित किंतु वस्तुनिरपेक्ष आकारसृष्टि को बनाया। अतियथार्थवादी चित्रकार, अचेतन क्रियाओं की सहायता के रूप में, कभी कोलाज-पद्धति, अनोखी वस्तुओं का चित्रक्षेत्र में समावेश, माध्यम का अप्रचलित ढंग से प्रयोग आदि तरीकों को अपनाने, माध्यम को फैलाना, दूर से फेंकना वगैरह प्रयोग करते।

'निर्जीव पर जीवित्व का आरोप'[27] अतियथार्थवाद की एक विशेषता थी जिससे निर्जीव वस्तुओं को नया व्यक्तित्व प्राप्त हो कर वे मूक भाषा में अनोखी भावनाओं को व्यक्त करती व जादूमय सृष्टिमय का निर्माण होता। अतियथार्थवादियों की अन्तर्भेदी शोधक दृष्टि को पत्थर, ठूठ व जड़ वस्तुओं में विचित्र प्राणियों का दर्शन होता व पुरानी दीवारों में अनोखी सृष्टि का परिचय होता। अनुभूत भावनाओं को जागृत करनेवाली 'लब्ध वस्तु'[28] को वे कलाकृति के रूप में प्रदर्शित करते। वस्तुओं के इन सुप्त मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य को प्रतियथार्थवादी तरीकों से उभार कर के बढ़ाया जाता। परिचित वस्तु को अपरिचित वातावरण में बाँध कर या भिन्न वस्तुओं की सामूहिक रूप से अतर्क्य रचना कर के नये प्रतियथार्थ वस्तु[29] का निर्माण किया जाता। सब तरह से वस्तु में जीवन-सचार होकर उसके अस्तित्व को नया मनोवैज्ञानिक अर्थ प्राप्त होता जिसको हम इंद्रजाल कह सकते हैं।

प्रतियथार्थ अनुभूति की निर्मिति दो प्रकार की प्रतिमाओं से हो सकती है। मानव-अन्तर्मन के स्मृतिपटल में कई प्रकार की प्रतिमाएं छिपी रहती हैं जो स्वप्न, मतिभ्रम, दृष्टिभ्रम जैसी अवस्थाओं में, किसी अज्ञात से मायी हुई जैसी साक्षात्कार कराती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब अनोखी निराली दुनिया के प्राणी हैं। कभी सामान्य वस्तुओं के यथार्थ रूप से भी निराले वातावरण के कारण या

अपरिचित साहचर्य ऐसी प्रतिमाएँ जन्म लेती है जिनसे अतियथार्थ अनुभूति की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में लोत्रेयमां ने लिखा है "वस्तु का सौंदर्य वही है जो शल्यचिकित्सक की मेज पर, सिलाई-मशीन का छाते के साथ समागम होने से प्रतीत होता है।" नोवालिस ने भी लिखा है "जब पूर्ण रूप से असबद्ध वस्तुएं एक ही समय, एक जगह आ जाती है या कुछ विचित्र समानताओं, चमत्कृतिपूर्ण संगतियों या अनोखे साहचर्यों का निर्माण होता है तब एक बात से कई स्मृतियाँ जागृत होती है एवं कई वस्तुओं मे उसी का ज्ञान होता है"। साल्वाडोर डाली के विचार से "बाह्यजगत् का यथार्थ, मन के यथार्थ का केवल स्पष्टीकरण व प्रतिमीकरण है"।

प्रतिमाओ की भिन्नता के अनुसार अतियथार्थवादी कला का वर्गीकरण किया जा सकता है। कुछ अतियथार्थवादी कलाकारो के चित्रो मे काल्पनिक अवकाश मे अद्भुत, भयानक या अनैसर्गिक आकारों की प्रतिमाएँ दिखायी देती हैं जैसे कि वास्तविक आकारो के विकृत रूपान्तर कर के ही उनको अद्भुत वातावरण में रखा गया हो; ऐसी प्रतिमाओ का दर्शन हमें मार्क्स एर्न्स्ट, साल्वाडोर डाली व इवे तान्गी के चित्रो मे मिलता है। इनके चित्र ऐसे दिखायी देते हैं जैसे कि किसी अद्भुत सृष्टि के—जो अनैसर्गिक होते हुए वस्तुसृष्टि से काफी समरूप हैं—छायाचित्र। इसको हम 'यथार्थ अतियथार्थवाद'[30] कह सकते हैं। कुछ अतियथार्थवादी कलाकारों की प्रतिमाए पूर्णरूप से काल्पनिक होती है व उनका जन्म मनोवैज्ञानिक स्वयचालित क्रियाओ मे होता है, ऐसे कलाकारो में मीरो, आन्द्रे, मास्सों आते हैं एवं उनकी कला को हम वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवाद'[31] कह सकते है। दोनो प्रकार की प्रतिमाए अक्सर समिश्रित अवस्था में देखने को मिलती है।

कुछ पूर्वगामी कलाकारो की कृतियो में हमे अतियथार्थ तत्त्वो का दर्शन मिलता है यद्यपि अतियथार्थवादी चित्रण को नियोजित सैद्धातिक रूप व महत्त्वपूर्ण शैली का स्थान बीसवी शताब्दी में ही प्राप्त हुआ। 15वी शताब्दी के चित्रकार जेरोम बॉश के चित्र-विशेषतया उनके चित्र 'सासारिक आनन्द का बगीचा'[32] अतियथार्थ प्रवृत्ति के समुचित उदाहरण हैं। गोया के कल्पनाचित्र 'पुत्रभक्षक शनि', 'जादूगरनियो का व्रतदिन'[33] वगैरह व ब्लेक की मतिभ्रमजनित कृतियो का जन्म भी ऐसी प्रवृत्ति मे ही हुआ।

कला के विकास में द्वंद्वात्मक प्रवृत्तिया प्रेरणाप्रद रहती है; एक प्रवृत्ति का लक्ष्य होता है सौदर्यदर्शन तो दूसरी का लक्ष्य होता है ज्ञानार्जन; इस दूसरी प्रवृत्ति ने अतियथार्थवाद को जन्म दिया और उसका लक्ष्य था मानव-अंतर्मन की खोज। अतियथार्थवाद केवल कलात्मक या साहित्यिक रचनायंत्रणा नही था बल्कि वह मानव-जीवन मे ज्ञानप्राप्ति व सफलता का साधन था। कुछ उत्साही व निष्ठावान् अतियथार्थवादी कलाकारों ने अपने दैनिक जीवन मे भी अतियथार्थवाद के सिद्धातो का अनुसरण किया। इनमे से साल्वाडोर डाली विशेष ख्यातिप्राप्त चित्रकार हैं। इन्होने अपने घर मे भी विचित्र वस्तुओ, काल्पनिक अनुपयुक्त साधन सामग्रियो व

भयानक चिन्हों से ऐंद्रजालिक वातावरण का निर्माण किया, रहन-सहन में अनोखे रीति-रिवाजों को अपनाया व स्वयं कुछ आदिम लोगों के समान व कुछ पौराणिक ढंग के कपड़े पहिनते। एक बार लन्दन में अतियथार्थवाद पर भाषण देने के लिये वे गोताखोर की पोशाक पहिन कर गये क्योंकि उनके विचार से अन्तर्मन के गहरे सागर में गहराई तक पहुँचने के लिये ऐसी पोशाक का होना अनिवार्य था। 'न्यूयार्क टाइम्स' के वार्ताहर की भेंट के समय वे भेड़ की खाल पहिने हुए थे।

साल्वाडोर डाली

साल्वाडोर डाली का जन्म 1904 में *बार्सेलोना* में हुआ। भविष्यवादियों के समयावच्छेद के सिद्धान्त से वे प्रभावित हुए किन्तु उनका प्रयोग उन्होंने गतित्व का परिणाम दिखाने में करने के बजाय एक साथ भिन्न काल्पनिक प्रतिमाओं व स्वप्नों को चित्रित करने में, एवं स्वप्न को यथार्थ दृश्य अनुभूति के साथ चित्रित करने में किया।

1924 में आत्मतत्त्ववाद के निर्जीव वस्तुओं को सचेत चित्रित करने की कल्पना से परिचित होने पर उनको अभिव्यक्तिसम्बन्धी एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। शुरू में वे मीरो के समान स्वयंचालित क्रियाओं द्वारा चित्रण करते थे किन्तु उससे असन्तुष्ट होकर वे अधिक परिणामकारक यथार्थ-अभिव्यंजनावादी प्रतिमाओं का काल्पनिक प्रयोग करने लगे। किरिको से उन्होंने वाग्नेर व नीत्शे के गूढ़वाद को समझा; किन्तु फ्राइड के अध्ययन से ही स्वप्न की कल्पनातरंगों के कलात्मक महत्त्व को उन्होंने पहचाना और उनकी अभिव्यक्ति को आंतरिक तीव्रता प्राप्त हुई। यथार्थ के पीछे छिपी हुई *घृणास्पद सत्य सृष्टि का उन्होंने खून, हत्या व सड़न को चित्रित* करके भयानक दर्शन कराया; इस दर्शन के चित्रों में 'जलता हुआ जिराफ' (1935) 'गृहयुद्ध की पूर्वसूचना' (1936)'[34] विशेष प्रसिद्ध हैं। उनका चित्र 'दृष्टिसातत्य'[35] उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचायक है; इस प्रसिद्ध चित्र में लचीली घड़ियाँ, कपड़ों के समान, पेड़ की टहनियों पर सूखने के लिये रखी हैं; उनके अन्दर कीड़े-मकोड़े उनको खाते हुए चित्रित किये हैं एवं एक अजीब मुँहवाला जानवर पास में ही पड़ा है। डाली के चित्रों में उनके असाधारण चित्रणकौशल व माध्यम प्रभुत्व का प्रमाण मिलता है। अचूक रेखांकन, आकारों का ठोसपन व मनोहर रंगसंगति की दृष्टि से उनकी प्राचीन डच चित्रकारों के समान निपुणता का चित्र 'ईसा का आत्मसमर्पण'[36] उत्कृष्ट उदाहरण है। मीरो, मासों व तांग्वी की अति-यथार्थ चित्रसृष्टि का उद्गम स्वयंचालित *क्रिया है जबकि डाली की कला के पीछे* योजना व अभ्यास का सामर्थ्य भी है। उन्होंने वैद्यकीय मनोविज्ञान का अध्ययन करके निश्चित किया कि सभी कलाकार मानसिक विकृति[37] से पीड़ित रहते हैं, इस विकृति का निर्माण बाह्य प्रभावों से होता है और अन्त में यह कलाकार का अपरिवर्तनीय स्वभाव बन जाती है। इस विकृति से सचालित सर्जनक्रिया को वे 'मनोविकृतिजनित-समालोचक-क्रिया'[38] कहते।

मावस एन्स्र्ट :

प्रतियथार्थवादी चित्रकारों में से मावस एन्स्र्ट ने बहुत ख्याति प्राप्त की एव यथार्थ-प्रतियथार्थवाद का आरम्भ उन्ही से हुआ। 1922 में वे पैरिस गये व वहां एल्वार के साथ उन्होंने काम किया। पुरानी किताबों से चित्रों को काटकर उन चित्रों के टुकड़ों को मनमाने चिपका कर उन्होंने अनोखे दृश्य-प्रभावों का निर्माण किया। मावर्स एन्स्र्ट का विश्वास था कि "दो प्रत्यक्ष रूप से असम्बद्ध तत्वों को दोनों से अपरिचित पृष्ठभूमि पर लाने से सबसे काव्यात्मक प्रेरणा की ज्योति प्रज्ज्वलित होती है"। इस विचार से उनको कोलाजपद्धति आदर्श प्रतीत हुई व उन्होंने उस पद्धति से कई बार कलाकृतियां बनायी। वे 50-60 वर्ष पुरानी मासिक पत्रिकाओं से विक्टोरियन काष्ठ की खुदाई की आकृतियों को काटते और उनके टुकड़ों को चिपका कर विचित्र राक्षसी आकृतियों को—जैसे कि जानवरों के शीर्षवाले पक्षी, चोंचवाले पुच्छधारी पशु वगैरह बनाते। इसमें 'यथार्थ का काल्पनिक से मिलाप'[30] करने के प्रतियथार्थवादी सिद्धांत का प्रयोग है। ब्रेतों, सुपो आदि प्रति-यथार्थवादी कवि व चित्रकारों की मासिक पत्रिका 'साहित्य' में उनके कलासम्बन्धी लेख प्रकाशित हुए।

लकड़ी की फर्श में दिखायी देने वाली विचित्र आकृतियों से प्रेरणा पाकर उन्होंने 1925 में फ्रोत्ताज-पद्धति का आविष्कार किया व उस पद्धति से चित्र बनाये। प्रथम उन्होंने लकड़ी की फर्श पर कागज रखके फ्रोत्ताजकृतियां बनायी। चित्रों के अद्भुत प्रभावों से प्रोत्साहित होकर उन्होंने लकड़ी के स्थान पर अन्य पदार्थों का उपयोग शुरू किया। फ्रोत्ताज-पद्धति में लकड़ी, ईंट व पत्थर जैसे पदार्थों की खुरदरी सतह पर कागज रखके उस पर पेन्सिल, कोयला या क्रेयान से रगड़ा जाता है जिससे कागज पर अनपेक्षित आकारों का निर्माण होता है। पृष्ठभूमीय विशेषता के कारण जो विचित्र आकार कागज पर उतरते उनसे आरम्भ होकर काव्यात्मक दृश्य सर्जन प्रेरणाएँ सामने आती—जैसे कि वनस्पति, सागर, वर्षा आदि—जिनके बारे में एन्स्र्ट ने लिखा है "रूपांतर व सूचकता के बाह्य कारणों से इन चित्रों में मूल पदार्थों का निजी व्यक्तित्व लुप्त होकर उनमें अनपेक्षित प्रतिमाओं का प्रादुर्भाव होता"। 1926 में मावस एन्स्र्ट ने इन चित्रों की मालिका को 'निसर्ग का इतिहास' नाम से प्रकाशित किया। निसर्ग में दृष्टिगोचर काल्पनिक आकारों से प्रेरित होकर एन्स्र्ट ने अपनी कला का आगे विकास किया। फ्रोत्ताज के समान पद्धतियों द्वारा वे नैसर्गिक आकारों को कागज पर उतारते व उस पर पूरक रंगांकन या रेखांकन करके अपनी कल्पना को सम्पूर्ण रूप में चित्रित करते। इस प्रकार उन्होंने काल्पनिक प्रागैतिहासिक कालीन जैसे घने जंगलों व वनस्पति सृष्टि के चित्र बनाये जिनमें पौराणिक देवताओं, राक्षसों व प्राणियों का आभासरूप अस्तित्व प्रतीत होता है। जंगलों के इन पौराणिक दृश्यों में सृष्टि की आंतरिक शक्तियों के अस्तित्व व संचार का परिणामकारक दर्शन है। पेड़ों के तनों, पत्तों, घास की पत्तियों को

अनोखे आकारों में अंकित करके, उनके बीच काल्पनिक जानवरों को चित्रित किया है। उन्होंने लोहे की पुरानी टूटी-फूटी जंग लगी हुई पत्तियों के ढेर को दृश्यचित्रण के विषय रूप में चुन कर निमनुष्य आधुनिक शहर के रूप में चित्रित किया।

1941 में वे अमेरिका गये व वहाँ प्रवाल, लावा, चट्टान आदि भूगर्भीय पदार्थों के शुष्क वनस्पतिहीन प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करके उनमें उन पदार्थों के रंगरूप से मिलतीजुलती काल्पनिक प्राणियों, राक्षसों व देवताओं की आकृतियाँ अंकित कीं। निसर्ग के समरूप काल्पनिक सृष्टि का निर्माण मॉक्स एर्न्स्ट की कला की निजी विशेषता थी।

इवे तांग्वी (1900–1955)

अतियथार्थवाद की प्रमुख दो अंकनपद्धतियाँ थीं; पहली से, छायाचित्रण के समान स्पष्ट व यथार्थ सृष्टि के समरूप आकारों का अंकन किया जाता था व दूसरी से धुंधले यथार्थ सृष्टि से भिन्न व काल्पनिक आकारों का अंकन किया जाता था। पहली पद्धति के उदाहरण हैं डाली व तांग्वी के चित्र; उनमें चित्रित वस्तुएँ काल्पनिक होते हुए ऐसी दिखायी देती हैं जैसे कि नैसर्गिक वस्तुओं को तोड़-मरोड़ कर बनायी हों—उदाहरण के लिये डाली की लचीली घड़ियाँ, मकड़ी की टांगों वाले हाथी व तांग्वी की काल्पनिक वनस्पति सृष्टि। ऐसी वस्तुओं को वे नैसर्गिकता-वादी ढंग से, छाया प्रकाश के प्रभाव के साथ ठोस रूप में अंकित करते। यह पद्धति अतियथार्थवाद के 'यथार्थ को काल्पनिक से संलग्न' करने के सिद्धान्त के अनुकूल थी।

तांग्वी स्वयंशिक्षित कलाकार थे। शुरू में उन्होंने व्यापारी जहाज पर काम किया। किरिको से प्रभावित होकर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से चित्रण शुरू किया। उनको विशाल अवकाश में चैतन्य का दर्शन हुआ; उस सर्वव्यापी चैतन्य की छाया में बिखरी हुई वनस्पतिसम छोटी-छोटी आकृतियाँ गूढ़ भावनाओं से उत्कंठित दिखायी दीं; मकड़ी के जालों के समान फैली हुई ज्यामितीय रेखाकृतियों में मंत्रसामर्थ्य का दर्शन हुआ; व इन सबको उन्होंने परिणामकारक ढंग से चित्रित किया। अवकाश की चिन्मयता का साक्षात्कार कराने के लिये ऐसी अनैसर्गिक वस्तुओं का अन्तर्भाव आवश्यक था; नैसर्गिक वस्तुओं से यह कार्य नहीं हो सकता था। इन वस्तुओं का जन्मस्थान था कलाकार का अन्तर्मन। किन्तु काल्पनिक रूप में चित्रित की गयी ये वस्तुएँ साहचर्यभाव से पूर्ण नैसर्गिक प्रतीत होती हैं। क्योंकि इनके निर्माण में वे ही नैसर्गिक आंतरिक प्रेरणाएँ कार्यान्वित थीं जो प्रत्यक्ष निसर्ग में कार्य करती हैं। तांग्वी की कुकरमुत्ते के रूप वनस्पतिसृष्टि बाषका के परिभाषित 'स्वयं-आविष्कृत वस्तुसृष्टि'[42] का प्रतिबिम्ब है। तांग्वी के चित्र अतियथार्थवादी दर्शन के स्वप्निल भूचित्र हैं जिनके अनैसर्गिक अवकाश व सन्धिप्रकाश में दिखायी देने वाली छायाओं के अनोखे प्रभाव से दर्शक को जादूगरी का दर्शन होता है।

आंद्रे मास्सों : (ज. 1896.)

अतिययार्थवाद के एक सिद्धान्त के अनुसार "निष्काम विचारों के क्रीडन द्वारा सर्वशक्तिमान–सर्वज्ञ–स्वप्न अपना परिचय कराता है"; और इसका प्रात्यक्षिक प्रयोग आंद्रे मास्सों के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों में–जिनमें स्वयचालित क्रिया सचेतन मन से मुक्त होकर प्रेरणा का कार्य करती है–एव स्पैनिश चित्रकार मीरो के चित्रों में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

मास्सो ने ब्रसेल्ज तथा पैरिस के कलाविद्यालयों में अध्ययन किया। अतियथार्थवादियों की प्रथम प्रदर्शनी में उनके कुछ चित्र दिखाये गये और 1928 तक उनका अतियथार्थवादी आन्दोलनों से घनिष्ठ सम्पर्क रहा। उनके 1924 में प्रदर्शित चित्रों पर घनवाद का प्रभाव स्पष्ट है किन्तु चित्र केवल रचनात्मक नहीं हैं–इनमें जगल, कब्रस्तान वगैरह स्थानों के दृश्यचित्र हैं बल्कि गतिपूर्ण रेखाएँ आंतरिक पीडन से व्याकुल हैं। ग्रीस से प्रभावित होकर उन्होंने सुरचित समतलों में चित्रण शुरू किया किन्तु उससे उनके चित्रों की अभिव्यजना को कोई हानि नहीं पहुँची। 1930 के करीब उन्होंने अतियथार्थवादी स्वयचालित क्रिया द्वारा निर्मित किन्तु घनवाद के अभ्यास से प्रभावित चित्र बनाये जो उनकी विकसित शैली के उदाहरण है।

होन मीरो (ज. 1893) का प्रारम्भिक शिक्षण बार्सेलोना के कलाविद्यालय में हुआ। वे प्रथम फाववाद व उसके बाद घनवाद की ओर आकृष्ट हुए थे। 1919 में वे पैरिस व बार्सेलोना के बीच आतेजाते रहे। इन दिनों वे घनवाद को आत्मसात् कर रहे थे; उन्होंने अपने गाँव के खेतों व आस-पास के दृश्यों के मनोहर चित्र बनाये जिनमें प्रत्येक वस्तु को–पौधा, फूल, बगीचा आदि—स्पष्ट आकार में चित्रित करके अदभुत वातावरण का निर्माण किया व इन भूचित्रों को बाह्य रूप से भिन्न काव्यमय दर्शन प्राप्त हुआ है। 1923 में मीरो की काव्यमय दृष्टि ने नैसर्गिक सौन्दर्य को अपर्याप्त महसूस किया व उन्होंने निसर्ग-रूप-सादृश्य का परित्याग कर के काल्पनिक दृश्य-चित्रण आरम्भ किया; 'जोता हुआ खेत'[43] (1923) के चित्र से उनकी नयी शैली का आरम्भ होता है। इनमे फिर वही देहाती वातावरण का प्रभाव है किन्तु निर्जीव वस्तुओं को भी जीवधारियों के सदृश चित्रित करके प्रत्येक वस्तु को अपनी कहानी सुनाने का मौका दिया है; यहाँ फूल को आँख है, पेड़ को कान है व स्थान-स्थान पर विचित्र आकारों के काल्पनिक प्राणियों से व गतिमान आकृतियों से चित्र सचेत है।

अतियथार्थवाद का ज्ञान होने से मीरो की कला के स्वाभाविक विकास में गति आ गयी। कान्डिन्स्की की कला से उनको वस्तुनिरपेक्ष आकारों के सूचकता के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ है। 1924 में उन्होंने ज्या आर्प के चित्रों को देख कर 'आकस्मिक लब्ध-वस्तु'[44] के काव्य को अनुभव किया। किन्तु क्ले की कला के कल्पनाक्रीडन का मीरो पर सब से अधिक प्रभाव पड़ा व वे अपनी जादूनगरी सदृश

चित्रसृष्टि के निर्माण में अधिक निष्ठा से व्यस्त हुए। 1924 में उनकी मास्सों से मित्रता हुई और उनके द्वारा अतियथार्थवादी चित्रकारों से परिचय हुआ किन्तु यथार्थ-अतियथार्थवाद की ओर मीरो आकृष्ट नहीं हुए। अचेतन में सुप्त प्रतिमाओं को स्वयचालित क्रियाओं द्वारा साकार करने की अतियथार्थवादी पद्धति को उन्होंने बहुत उपयुक्त माना व उसको घनवादी आकारसौन्दर्य व रचनातत्त्वों से समन्वित कर के बहुरंगी कलानिर्मिति की जिसमें अतियथार्थवादी कल्पनासृष्टि के काव्य व घनवादी सौन्दर्यदर्शन का मनोहर संगम है व जिसके बारे में वेर्नेर हाफ्टमन ने लिखा है "मीरो ने घनवादी लचीले रचनासौन्दर्य के आगे बढ़ कर दृश्य काव्य की अनुभूति प्राप्त की।"

1929 व 1931 के बीच के काल में मीरो के आकार अधिक वस्तुनिरपेक्ष बन गये; किंतु आकारों के सूचक सामर्थ्य व दृश्य काव्य को वे त्याग नहीं सकते थे। वे पूर्ण रूप से वस्तुनिरपेक्ष चित्रकार कभी नहीं बने किंतु वस्तुनिरपेक्ष कला के आकार-सौंदर्य, रंगसंगति के मनोहारित्व व रचनाकौशल के गुणों से उनकी कलाकृतियां ओतप्रोत हैं। मीरो ने काल्पनिक अवकाश में ऐसे आकारों को चित्रित किया जो अनैसर्गिक होते हुए सूर्य, चंद्र, सितारे, स्त्री, चिड़िया आदि जैसे दिखायी देते हैं व दर्शक अद्भुत विश्वमंडलीय सृष्टि में प्रवेश पाता है—उदाहरण के लिये उनके प्रसिद्ध चित्र 'चांदनी रात में स्त्रियां व पक्षी' (1949) व 'सूर्य के सामने कुत्ता व आकृतियां' (1949)[45] देखिये। उन्होंने ऐसे काल्पनिक आकारों को भी चित्रित किया जो कीड़े, मकोड़े व विचित्र जानवरों के समान दिखायी देते हैं—इसके उदाहरण हैं 'भांड का महोत्सव' (1924), 'मातृत्व' (1924)[46] मीरो के मानवों व जानवरों की आकृतियों के अंकन में पौराणिक कल्पनावाद के अनुसार रूपांतर किया है व नैसर्गिक शरीररचना के नियम उन पर लागू नहीं होते। शिरिको के विधान, "मैं स्त्री के चित्रण को प्रारंभ करता हूं व अंत में शेर बन जाता है" मीरो की कला को समुचित रूप से लागू होता है। अतियथार्थवादी चित्रकारों में से मीरो एक ऐसे चित्रकार हैं जिन्होंने अंतर्मन की खोज के पीछे रचनातत्त्वों व कला के सौंदर्यात्मक गुणों को खोने नहीं दिया। उनकी रंगसंगतियां बहुत ही आकर्षक होती हैं व आधुनिक चित्रकला के महान रंगकारों में—मातिस, क्ले, लेजे—उनका स्थान है। उनकी कलाकृतियों को देख कर कहा जा सकता है कि "चित्रण केवल कला नहीं है बल्कि वह एक अन्वेषणपद्धति भी है जो हमसे छिपी हुई सौंदर्य व कल्पना की दुनिया का आविष्कार करती है।"

पियर रॉय ने प्रारंभ में वास्तुकला का अध्ययन किया व बाद में छायाचित्रण पद्धति से ऐसे अतियथार्थवादी चित्र बनाये जिनमें अंकित वस्तुओं का प्रत्यक्ष रूप से आपस में कोई संबंध नहीं है किंतु सब को एक साथ देखने पर दर्शक के मस्तिष्क में कुछ अवर्णनीय गूढ़ भावनाएं जन्म लेती हैं। उदाहरण के लिये उनके चित्र 'सूर्यप्रकाश की बचत'[47] में एक घड़ी को रिबन से लटका कर उसके साथ दो गेहूँ को बालियां

व राबिन पक्षी के अंडे बाध लिये है व इन सब के पीछे पृष्ठभूमि के रूप में हृदय-स्पंदन-आलेख को चिपकाया है।

अमेरिकन कलाकार आर्थर डोव के चित्रों के प्रतीकात्मक प्रभाव उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति के परिचायक हैं। ख्याति प्राप्त अतियथार्थवादी चित्रकार पावेल-च्छेलिश्च्ट्र प्रसिद्ध चित्र 'आंखमिचौनी'[48] मे वृक्ष के ठूंठ को नीचे पैर सदृश व ऊपर हाथ सदृश चित्रित किया है व निकट से देखने पर उसकी संपूर्ण आकृति मे बच्चों की कई मुखाकृतियां दिखायी देती है। मॅन रे ने छाया-चित्रण-छपाई मे प्रयोग कर के प्रभावी अतियथार्थ कृतियां बनायी व नयी छायाचित्रण पद्धति का आविष्कार किया जो 'रेयोग्राफी'[49] नाम से प्रसिद्ध है व जिसमे असबद्ध वस्तुओं को एक ही छाया-चित्र कागज पर छाप कर दृष्टिभ्रम सदृश परिणाम का निर्माण किया जाता है। दोमिंग्वेज के आविष्कृत स्वयचालित चित्रण पद्धति में-जो 'देकालकोमेनिया[50] नाम से प्रसिद्ध है-समतल पृष्ठभूमि पर रगो को लगा कर उसको अन्य पृष्ठभूमि पर दबाया या रगडाया जाता है जिसमे अकल्पित प्रभावो का निर्माण होता है। पालेन ने 'धुआं चित्रण'[51] का आविष्कार किया; वे कागज पर स्याही को रख कर, उसको घुमाते या हिलाते जिससे धुआंधार मे से निकलती हुई आकृतियो के सदृश अद्भुत प्रभाव का निर्माण होता।

इस प्रकार अतियथार्थवादियो ने भिन्न प्रकार पद्धतियों द्वारा अतर्मन की गूढ शक्तियों को जागृत करके सूचक प्रतिमाओं का निर्माण किया। 1938 में हुई पॅरिस की आंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी मे आश्चर्यजनक प्रभावों को निर्माण करने की अनेक पद्धतियां दर्शकों के सामने आयी। बेल्जियन चित्रकार रने माग्रिट व पोल डेल्वो ने फ्लेमिश नैसर्गिकतावादी पद्धति से असबद्ध वस्तुओं को एक साथ अंकित करके काम-पीडित अंतर्मन का चित्रण किया। माग्रिट ने सर्जन-क्रिया के बारे में लिखा है :"यदि वस्तु के अस्तित्व के रहस्य को समझना है तो उसके भौतिक रूप से सर्जनक्रिया को आरंभ करना अपरिहार्य है" ।

श्रेष्ठ कला के रूप मे अतियथार्थवाद का क्या स्थान है इस संबध मे मतभेद है किंतु इसमे कोई सदेह नही है कि अतियथार्थवाद से आधुनिक कलाकारों को सहजप्रवृत्ति व अंतर्मन की प्रेरणाओं पर निर्भर रह कर सर्जन करने का जो संदेश मिला उसका वस्तुनिरपेक्ष कला के विकास पर भी प्रभाव पड़ा एव कई नयी अंकन-पद्धतियो का आधुनिक कला को लाभ हुआ।

अतियथार्थवाद के जन्म से सदियों पहले भी कुछ चित्रकारों ने स्वप्निल प्रतिमाओं द्वारा चित्रण करके अद्भुत चित्रसृष्टि का निर्माण किया था। आर्चिम्बोल्दो की द्विप्रतिम कला कृतियां, फ्युसेलि के भयानक स्वप्न ब्लेक का ईश्वरीय साक्षात्कार, बॉश की मायानगरी ग्रूनेवाल्ड की परीकथाएं व ब्रूगेल की नशाबाजो की दुनिया इसके उदाहरण हैं। फ्रेंच चित्रकार ओदिलों रेदो, रशियन चित्रकार मार्क शागाल व इटालियन चित्रकार किरिको निकटकालीन पूर्वगामी चित्रकार हैं

जिनकी कलाकृतियों में अतियथार्थवाद के तत्वों का स्पष्ट दर्शन है। रैदों के एचिंग्ज ग्राफिक्स् व रेखाचित्रों में गूढ सृष्टि का अंतर्भेदी चित्रण है। मार्क शागाल एक मौलिक प्रतिभा के चित्रकार थे और उन्होंने अपनी शैली का विकास समकालीन आंदोलनों से पृथक् रह कर किया यद्यपि उनकी कल्पनारम्य कलाकृतियों का प्रभाव अतियथार्थ से मिलताजुलता है। पेरिस में ऐसे ही कुछ और कलाकार थे जिनकी कला को किसी भी वाद में समुचित रूप में नहीं बिठाया जा सकता व जो 'शापित चित्रकार[52] के रूप में प्रसिद्ध हुए थे।



11
कुछ शापित चित्रकार[1]

फ्रेंच कला के रचनासौंदर्य व प्रयोगवादी दृष्टिकोण से योरप के सभी देशों के कलाकार प्रभावित थे एव पैरिस न केवल फ्रान्स का कलाकेन्द्र था बल्कि वहा सभी देशों के कलाकार व कला के विद्यार्थी कलाध्ययन करने को आते और फ्रेंच कलाकारो को भी उनसे नये दृष्टिकोणों व विचारो का लाभ होता। कुछ विदेशी कलाकारो ने पैरिस को ही अपना निवासस्थान बना लिया। स्पेन से आये हुए पिकासो, मीरो व डाली विश्वविख्यात चित्रकार बने; जर्मन कलाकार मार्क्स एर्न्स्ट व पौल क्ले को यही प्रेरणा मिली; डच चित्रकार मोंद्रियान रशियन चित्रकार शागाल व सुटिन, इटालियन चित्रकार मोदिल्यानी ने पैरिस को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना।

विदेश से आये हुए कलाकारो की कला मे अक्सर अपने देश की लोक-सस्कृति का प्रभाव प्रतीत होता जिसकी रक्षा कर के उन्होंने पैरिस के कलाक्षेत्र मे विशेष मान्यता प्राप्त की थी। उनमे आपस मे घनिष्ठ सपर्क रहता व उनकी कृतियो में कलात्मक प्रयोगो की अपेक्षा अपने देश के रीतिरिवाजों व विचारदर्शन का प्रभाव बलवत्तर होता; स्वदेशस्मृतिजन्य व्याकुलता, एकातवास निर्मित असहाय-भाव व अज्ञात के प्रति जिज्ञासा व तड़प हुआ करती जो ज्यू सस्कृति की विशेषताएँ थी व जिनका काफ्का के साहित्य मे प्रभावी वर्णन है। उनकी कला की विशेषताएँ थी स्वप्निल वातावरण, नैसर्गिक आकारों का रूपान्तर व आतरिक सत्य का दर्शन। उनकी सर्जन-प्रेरणाएं थी भावना व काव्य।

विदेश से आये हुए कलाकारों मे से कुछ कलाकारो का एक स्वतत्र गुट सा था। उनमें कलासबधी विचार की कोई समानता नही थी। उनमे एक ही समानता थी कि वे स्वच्छंद मनमाना जीवन पसंद करते व उनकी कला मे स्वदेश सस्कृति की झलक प्रतीत होती। अतः उनकी कला को किसी वाद से सीमित नहीं रखा जा सकता।

ये विदेशी कलाकार पैरिस के कलाक्षेत्र मे सबसे परिचित थे और जब 1923 मे मार्क शागाल रशिया से पैरिस वापस आये तब उनका एक स्वतत्र मडल सा बन गया जिसमें शागाल के अतिरिक्त सुटिन, बल्गेरियन चित्रकार ज्यूल पासें, पोलिश चित्रकार म्वास किस्लिंग व इटालियन चित्रकार मोदिल्यानी शामिल थे। जापानी चित्रकार फुजिटा भी उनसे मिलते रहते। ये सब पैरिस के 'काफे द्यू दोम'[2]

में रात को मिलते व चर्चा विनोद करते यद्यपि उनमें कलाविषयक विचारों की कोई समानता नहीं थी। उनमें फ्रेंच चित्रकार उत्रिलो जो स्वतंत्र रूप से चित्रण करना पसन्द करते–शामिल थे।

मार्क शागाल का जन्म 1887 में विटेब्स्क गांव की ज्यू बस्ती में हुआ। ज्यू लोगों के दुःखदारिद्र्यपूर्ण जीवन व रीतिरिवाजों का शागाल पर परिणाम होकर उन्होंने शुरू में उनके जीवन का रेखाचित्रण किया। 1907 में सेंट पीट्सबर्ग के किसी साधारण कलाविद्यालय में उन्होंने अध्ययन किया। उनके प्रारंभकालीन चित्रों में सहजसिद्ध कला के गुण है। इन चित्रों में गाव के काव्यमय दृश्य है जिनमें छतपर बैठे हुए वादक, शराबी सैनिक, मेहतर जैसे प्रातिनिधिक व्यक्तियों को स्थान स्थान पर अंकित किया है व लोक–जीवन को दृश्य कहानी का रूप दिया है।

1920 में एक उदार दाता ने उनको अधिक अध्ययन के लिये आर्थिक सहायता की व वे पॅरिस जा कर उस बस्ती में रहने लगे जहां मोदिल्यानी, सुटिन व लेजे के कलाकार्यकक्ष थे। उनका ब्लेज साग्द्रार अपॉलिनेर व मावस याकोव से परिचय हुआ। उनकी मौलिक कल्पनाशक्ति की सब ने प्रशंसा की। पॅरिस के कला आलोचकों के अनुसार उनकी कला फ्रेंच कला के समरूप थी; ओदिलों रेदों के समान उनकी कला में कल्पना को प्रमुख स्थान था; आकारों के विभाजन व रंगों के चमकीलेपन पर घनवाद व सुरीलवाद का प्रभाव था; रंगांकनपद्धति प्रभाववाद से मिलती-जुलती थी; व रूसो के समान वे वस्तुओं के मूल आकारों का स्पष्टीकरण करके चित्रण करते। किंतु ये सभी प्रभाव उनके लिये केवल साधन थे; उनकी कला पूर्णरूप से मौलिक थी व 'गृहवियोग'[3] का आर्त दर्शन उसका लक्ष्य था।

देलोनें के परिचय से उन पर सुरीलवाद का प्रभाव पड़ा। सुरीलवाद के चमकीले रंगांकन व वस्तुनिरपेक्षता के गुण रशियन लोककला के सदृश थे व परीकथासम वातावरण के काल्पनिक दृश्यों को चित्रित करने के लिए बहुत उपयुक्त थे। सुरीलवाद से परस्परावृत्त समतलों[4] पर विभिन्न स्मृतियों को चित्रित करना सरल था व उसके समयावच्छेद के सिद्धान्त के अनुसार शागाल भिन्न घटनाओं को एक साथ चित्रित कर सकते थे।

शागाल के चित्र पारदर्शक समतलों की रचना हैं व उन समतलों पर उन्होंने अपनी विगत जीवन की स्मृतियों को चित्रित किया है जिनके बारे में उन्होंने कहा था "मेरे चित्र कथा-साहित्य नहीं हैं; वे मेरी आतंरिक प्रतिमाओं की–जिन्होंने मुझे अपना दास बनाया है—रंगीन रचनाएं हैं"। उन्होंने वास्तविक आकारों का विभाजन नहीं किया बल्कि भिन्न स्मृतिरूप आकारों को सम्मिलित किया। रशियन गांव के मकान, गिरजाघर, ग्वालिन, किसान, ग्रामनिवासी वगैरह स्मृतियों की माला बनाकर उन्होंने केलिडोस्कोपीय[5] बहुरंगी चित्ररचनाएं की। रचना की आवश्यकतानुसार उन्होंने कभी वस्तुओं व मानवों को उलटी स्थिति में भी चित्रित

किया किन्तु रचना से उन्होने काव्यात्मक दर्शन पर अधिक ध्यान दिया । उनके बारे मे वेर्नेर हाफ्टमन ने लिखा है "वे मुख्य रूप से यथार्थवादी हैं जो अतस्फूर्त कथन के उत्साह के आवेग मे कवि बन गये हैं" । कथनात्मक चित्रण को प्रभावी बनाने के हेतु उन्होंने अनोखे सयोजन का आविष्कार किया; कभी गाय व बछिया को छत के ऊपर चित्रित किया, तो कभी ग्वालिन को देवता के समान आसमान में उड़ते हुए चित्रित किया जिससे उनके यथार्थ चित्रण को स्वप्निल रूप प्राप्त हुआ। अभिव्यक्ति की दृष्टि से शागाल की कला मे कुछ अभिव्यजनावादी तत्त्व भी हैं। 1917 मे उन्होने ल्युनाकार्स्की की सहायता से विटेब्स्क मे कलासंस्था खोली । 1919 में वे मास्को गये व वहाँ यिद्दीश नाटकगृह की साजसज्जा का काम किया। 1922 मे वे बर्लिन गये; यहाँ उन्होने आत्मचरित्र लिख कर उसको एचिंग्स से चित्रित किया । 1923 में वोलार ने उनको गोगोल की पुस्तक 'मृतात्माए'[6] के कथाचित्रण का कार्य सौंपा । रशिया के निवास में उनकी कला से स्वप्निल कल्पना का प्रभाव कम होकर, उन्होने अपने गाव के दृश्यों व पत्नी बेल्ला के साथ बिताये सुखी जीवन के चित्रण को अपनी कला का लक्ष्य बनाया । 'सैर'[7] नामक चित्र में वे अपनी पत्नी के साथ घूमने के लिए निकले हैं व उनकी प्रिय पत्नी, परी के समान, आसमान में सानद उडती हुई चित्रित की है। 'प्रेमियो का निसर्ग'[8] चित्र में फूलदान मे सजाये हुए फूलो मे दोनों को आलिंगनावस्था मे चित्रित किया है। अपने वैवाहिक जीवन का इतना अत्यानन्द व उत्साह से ओतप्रोत कल्पनारम्य चित्रण अबतक किसी चित्रकार ने नही किया यद्यपि रेम्ब्राट का, अपनी पत्नी को गोद म लेकर, हाथ मे मद्यचषक उठाए हुए, बनाया यथार्थवादी आत्मचित्र इसी प्रेमभावना व आत्मसन्तोष का एक अपवादमात्र पूर्वगामी उदाहरण है। 1939 तक उन्होने 'मृतात्माएँ', 'फातेन की कहानियां'[9] व 'बायबल' इन तीनो का कथाचित्रण पूर्ण किया जिसके लिए उन्होंने सीरिया, पॅलेस्टाइन, हालॅड व स्पेन की यात्राए कीं। 1941 मे वे अमेरिका गये जहा 1944 मे उनकी प्रिय पत्नी की मृत्यु हुई व उनकी कला पर उदासीनता छा गयी ।

पॅरिस मे कई वर्षों तक रहने पर भी उनकी कला की आत्मा मुख्य रूप से कवि की ही रही व फ्रेंच कलाकारो के समान उन्होने रचनासौंदर्य से सम्बन्धित कोई नये प्रयोग नही किये । उनकी कलाकृतियां उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति की परिचायक है किन्तु उनको अतियथार्थवादी कलाकारो मे सम्मिलित करना उचित नही है क्योकि उनका कल्पना का आधार विगत जीवन की स्मृतियाँ था जबकि अतियथार्थवादी कल्पना का आधार मतिभ्रम व स्वप्न थे।

आमेदिओ मोदिल्यानी (1884-1920):

दृश्य सौंदर्य का भावनापूर्ण काव्यमय चित्रण मोदिल्यानी की कला का लक्ष्य था एव उसके लिये उन्होंने विवस्त्र कोमल स्त्रीशरीरों व व्यक्तियो को चित्र-

विषय के रूप में चुना। कहानी, स्मृतिरूप प्रतिमाएँ व कल्पना ये शागाल की कला के तत्त्व मोदिल्यानी की कला से परे थे।

मोदिल्यानी ज्यू थे व उसका उनको सच्चा अभिमान था। वे इटाली के निवासी थे उन पर वहाँ के रहनसहन व विचारों का अमिट प्रभाव था। उनकी उदासीन एकांतप्रिय किन्तु काव्यमय वृत्ति दूसरों से सच्ची सहानुभूति की आशा रखती थी और उनके व्यक्तिचित्र उनकी इस मानसिक अवस्था के दर्पण हैं। इसी विफल मानसिक अवस्था की अनुभूति की तीव्रता से उनकी जीवनज्योति अकाल में बुझ गयी।

मोदिल्यानी परम सवेदनशील व बुद्धिमान थे एवं उनमें आकर्षक शरीर-सौंदर्य था। अपनी अपार भावुकता को उन्होंने शराब में दबाना चाहा। आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्होंने दूसरों से प्यार के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहा और इसी धुन में उन्होंने कलात्मक प्रयोगों की ओर ध्यान भी नहीं दिया। वे अपने परिचित व्यक्तियों व मॉडेल्स के लगातार चित्र बनाते रहते व उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को अपनी भावना के दर्पण में रूपान्तरित करके प्रतिमित करते। तुलुज लोत्रेक के समान, उन्होंने अविरत परिश्रम करके कलाकृतियाँ बनायी। चित्रण द्वारा किये व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य था अपनी विवशता व अकेलेपन का दर्शन।

वेनिस के कलाविद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् वे 1906 में पेरिस गये जहाँ उनका पिकासो व उनके आसपास एकत्र हुए कलाकारों व साहित्यिकों से परिचय हुआ। इसी काल में उनकी कला को विकसित रूप प्राप्त हुआ। मातिस व रोदें से उनको रेखासौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त हुआ व तुलुज लोत्रेक से उनकी कला को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मिला। पिकासो की नीले व गुलाबी काल की कृतियों से उनको विश्वास हुआ कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के मानव-चित्रण से भी उदास किंतु काव्यात्मक अनुभूति प्राप्त की जा सकती है; पिकासो की इस काल की कृतियों ने मोदिल्यानी की कला की नींव मजबूत की। घनवाद के विश्लेषणात्मक प्रयोगों का उन पर कोई असर नहीं हुआ यद्यपि नीग्रो कला के आदिम व सरल आकारों के सामर्थ्य से वे प्रभावित हुए थे। 1909 में याकुबी के प्रोत्साहन से उन्होंने कई मूर्तियाँ बनायी जो दर्शन में आदिम देवताओं की मूर्तियों के समान हैं।

1909 में उन्होंने सेज़ान की बर्नेमजोन में हुई प्रदर्शनी को देखा व तब से वे सेज़ान के चित्र 'लाल जाकिट वाला लड़का'[10] को एक आदर्श चित्र मानने थे। इस चित्र से उनको ज्ञात हुआ कि कलात्मक गुणों के विकास के लिये या भावनाओं की अभिव्यक्ति के हेतु चित्रकार स्वतन्त्र विचार से आकारों को विकृत या ऐंठनदार बना सकता है। कुछ समय तक सेज़ान का अनुसरण करने के पश्चात् उनकी पूर्ण रूप से वैयक्तिक शैली विकसित हुई व उन्होंने उस शैली में 1914 से 1920 तक

कई व्यक्तिचित्र बनाये। इन चित्रों का रेखांकन बहुत ही नियंत्रणपूर्ण है व समतल आकारों का रंगांकन मनोहर है किंतु सब से प्रभावी है चित्रित व्यक्तियों के चेहरों पर अंकित काव्यमय भावप्रदर्शन। चित्रित व्यक्तियों के आत्मिक भावसौन्दर्य को उन्होंने गहरी सहृदयता से अनावृत किया है। जीवन की विविध अनुभूतियों से निर्मित समर्पणवृत्ति का उनके व्यक्तिचित्रों में बहुत ही परिणामकारक दर्शन है।

उनके विवस्त्र स्त्रीशरीर के चित्र लयबद्ध रेखा सौन्दर्य व कोमल स्त्रीशरीर के नैसर्गिक आकर्षण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और प्रथम उन्ही से ही वे प्रसिद्ध हुए। मोदिल्यानी ने आधुनिक कला को कोई नया विचार प्रदान नहीं किया किंतु उन्होंने यही सिद्ध किया कि यदि कलाकार किसी कलाविषय से सचमुच अनुरक्त है तो वह अपार दृश्य सौन्दर्य व भावनाओं के काव्य की निर्मिति कर सकता है।

1914 में बीआट्रिस हेस्टिंग्ज नामक कवियत्री से उनका घनिष्ठ संपर्क हुआ व उसका उनकी कला पर काफी प्रभाव पडा। बीआट्रिस हेस्टिंग्ज ने उनको आत्म-परीक्षण की सलाह दी व उसी दिशा में भावनापूर्ण खोज मे व्यस्त रहने से वे कभी उत्साह से कार्य करते तो कभी निराश होकर शराबपान करके बेहोश हो जाते। कुछ कला समीक्षक उनकी कला पर बोतिचेली मातेन्या का प्रभाव देखते है। कैसे भी हो मानवस्वभाव का आन्तरिक दर्शन उनकी कला का भावनात्मक ध्येय था। अविरत परिश्रम, शराब व भावनाओं की तीव्र अनुभूति मे उनका शरीर जल्द ही थक गया व 1920 मे उनकी मृत्यु हुई। वे कहते भी थे कि "मुझे अल्प किन्तु भावनोत्कट जीवन चाहिये" और उनका जीवन ऐसा ही रहा। अपने विचारों के अनुसार अल्प समय मे ही जीवन को तीव्रता से अनुभूत करके उन्होंने इस ससार से विदा ली।

खाइम सुटिन (1894–1943)

1920 के करीब मोदिल्यानी के एक मित्र खाइम सुटिन स्वच्छंद चित्रकार के रूप मे पैरिस में प्रसिद्ध हुए। रशिया में लियुआनिया प्रान्त के स्मिलोविच गाव मे एक निर्धन दर्जी के परिवार मे उनका जन्म हुआ। 1910 से उन्होंने विल्ना की कलासस्था में अध्ययन किया व 1913 मे वे पैरिस गये जहा शागाल, सान्द्रार, मोदिल्यानी व लेजे से उनकी घनिष्ठ मित्रता हुई। उन्होंने कोर्मो के चित्रकलाकक्ष मे कला का अध्ययन किया जिस समय उनकी बडी विपन्नावस्था थी। वान गो, फाववाद व अभिव्यजनावाद उनकी कला के विकास मे सहायक रहे। प्राचीन कलाकारों मे से तितोरेत्तो, एल्ग्रेको व रेम्ब्राट उनके प्रिय कलाकार थे। बौद्धिक सिद्धातो की उपेक्षा करके, उत्स्फूर्त सहजप्रवृत्तियो पर निर्भर रह कर, भावनोद्रेक के साथ वे चित्रण करते व अपनी दबी हुई भावनाओ को मुक्त करते। 1919 से चार साल तक सेरे नामक गाव मे रहकर उन्होंने ऐसे प्रकृतिचित्र बनाये जो कला के इतिहास मे अपने ढग के व अनोखे हैं। इन चित्रो मे मकान ऊपर से नीचे गिरते हुए नजर आ रहे है, पौधे साप की तरह मुड रहे हैं, वृक्ष वेग से चक्कर खा रहे हैं

व पूरा दृश्य आंधीग्रस्त है; किंतु यह आंधी प्राकृतिक नहीं है बल्कि चित्रकार के भावनोद्वेग की निर्मिति है। ये चित्र सुटिन के अनोखे व्यक्तित्व के परिचायक है। सुटिन की कला का जन्म आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति मे हुआ और उसमे कही जरासा भी रचनात्मक प्रयोग या नयी अंकनपद्धति के आविष्कार का प्रयत्न नहीं है। उन्होने ऐसे भावनावेश से चित्रण किया है जैसे कि कोई कई दिनों का भूखा आदमी भोजन पर टूट पडता है। उनकी कला मे दृश्य का प्रत्यक्ष दर्शन व उसके भावनोत्कंठित चित्रण में किसी विचार का अंतर नही है। नैसर्गिक रूप, दूरदृश्य-लघुता या चित्रविषय सम्बन्धी विचार को उनकी कला मे स्थान नही है। चित्र-विषय से प्रेरणा पाते ही वे चित्रण मे तद्रूप हो जाते व जोशयुक्त वक्राकार तूलिका-सचालन व विशुद्ध रगो की मोटी परतों मे भावपूर्ण अंकन द्वारा विशुद्ध कलात्मक अनुभूति प्राप्त करते। उन्होने आधुनिक कला मे भावनापूर्ण विशुद्ध चित्रण का महत्त्व प्रस्थापित किया व भविष्य के वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकारों को उससे काफी प्रेरणा मिली। रेम्ब्राट उनके प्रिय कलाकार थे व रेम्ब्राट की अंकन-पद्धति की निर्भीकता का उनकी कला पर स्पष्ट प्रभाव था। रेम्ब्राट के चित्रों का अनुसरण करके उन्होने 'लाश' (1925), 'स्नानमग्ना' (1929)[11] ये चित्र बनाये।

सुटिन ने अपने चित्रो से—विशेषरूप से सेरे के दृश्यचित्रों से—गहराई को हटाया है जिससे समतलों पर किये गये आवेशपूर्ण तूलिकासचालन को अधिक महत्व प्राप्त होकर समतलो मे पानी के अस्थिर पृष्ठभाग की चचलता आ गयी है। चित्रक्षेत्र की चचलता सुटिन की कला की विशेषता है व उसमे हमे उनकी व्याकुल मन स्थिति की प्रतिमा दिखायी देती है। इस विचार से उनको अभिव्यजना-वादी चित्रकारों मे शामिल किया जाता है। आंतरिक व्याकुलता से किये गये तूलिकासचालन के कारण उनका चित्रविषय के नैसर्गिक रूप से सम्पर्क टूट गया और उनकी मानसिक अवस्था से उसका रूपातर किया गया जैसे कि पानी के अस्थिर पृष्ठभाग पर परावर्तन से किया जाता है। देलोने के 'एफेल मिनार' चित्र के बारे मे अपोलिनेर ने कहा था "ये भूचालग्रस्त प्रकृति के चित्र है"। यह विधान सुटिन के प्रकृतिदृश्यों को समुचित रूप से लागू होता है।

1923 मे अमेरिकन चित्र-संग्राहक बार्नेस ने सुटिन की असाधारण प्रतिभा को पहचाना व उनको प्रोत्साहन देना शुरू किया। ख्याति प्राप्त होने पर पेरिस रहने गये जहाँ से वे बीच-बीच कान्य जाकर प्रकृतिचित्रण करते। कान्य के प्रकृति-चित्रों मे दृश्य के नैसर्गिक रूप का कुछ विचार है; वे सेरे के प्रकृतिचित्रों के समान केवल भावनापूर्ण रंगांकन नहीं हैं बल्कि अभिव्यंजनावादी रूपातर के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन चित्रो मे भी दृश्य से प्रारभिक प्रेरणा पाकर बाद मे प्रबल आतरिक संवेदनाओं से सर्जन किया है।

सुटिन की कला का दोमीय व वान गो की कला के समान सामाजिक दृष्टिकोण नही था। उन्होंने गायक-लड़कों, उपाहारगृहों के सेवकों, रसोइयों व अपने परिचित व्यक्तियों को चित्रित किया किन्तु उन चित्रों से चित्रित व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति या वैयक्तिक विशेषता के बारे में कोई कल्पना नहीं की जा सकती। चित्रण के लिये वे प्रेरणाप्रद विषय की खोज करते रहते व ऐसा विषय मिलते ही समय व स्थान को भूल कर चित्रण में एकात्म होकर चित्र पूर्ण करते; उस समय चित्रविषय के दृश्य सौन्दर्य या व्यक्तित्व का विचार उनके मन में नहीं आता व उनके चित्र आत्मिक अनुभूति की प्रतिमाएँ बन जाते। उनके वस्तुचित्र भी ऐसे नहीं लगते कि उनमें, कोई सोच समझ कर रचना की है; उनमें भी उसी व्याकुल आत्मिक अनुभूति का दर्दभरा दर्शन है जिस अनुभूति को संसार में दुःख के अतिरिक्त और कुछ नजर ही नही आया। यह एक ऐसा आदिम दर्द है जिसने निराशा व उत्कंठा की द्वंद्वात्मक आत्यंतिक अवस्था में मुक्ति पाने हेतु निर्भीक होकर वस्तु सृष्टि से मूलभूत प्रश्न उठाये है। सुटिन चित्रविषय को दर्पण के रूप में देखते व उसमे उनको अपनी पीड़ित आत्मा की प्रतिमा दिखायी देती।

कलात्मक गुणों के विचार से सुटिन की कला फ्रेंच कलापरंपरा से भिन्न है। वे स्वयं रचनात्मक दृष्टिकोण के विरोधी थे व 1938 में उन्होंने रने जिम्पेल से कहा था "घनवाद केवल बौद्धिक है; उसमें भावनाओं का आनन्द नही है। सेजान की कला में कठोर तर्कनिष्ठा है, अतिदुष्कर। सुटिन की कला का आधार था सहजप्रवृत्ति और वे उन चित्रकारों में से थे जिन्होंने फाववाद के विशुद्ध रगांकन को भावनोद्वेग से दृष्टिभ्रम का सामर्थ्य प्रदान किया। वे नोल्डे, कोकोश्का ब्लामेंक व पिसिस की परम्परा के चित्रकार थे।

उनके वस्तुचित्रों में, तश्तरी में रखी हुई मछलियाँ व मारे हुए जानवरों की चिड़ियाँ, मुर्गी, बैल, खरगोश आदि–खून से लथपथ लटकाई हुई लाशों वगैरह असुन्दर वस्तुओं का समावेश है। उनकी व्यथित मानसिक अवस्था को ससार में मनोहर रमणीय सौंदर्य का दर्शन नही हुआ। आतरिक पीडा से ही उनकी सौंदर्यानुभूति की सतृप्ति हो जाती।

ज्यूल पास्सें (1885–1930) एक ज्यू की सतान थे उनका जन्म बल्गेरिया में हुआ। उन्होने विएना मे कला का अध्ययन किया एवं म्यूनिक के कलाकारों में वे प्रसिद्ध हुए। 1905 मे वे पेरिस गये। उनका रेखांकन पर प्रभुत्व था। उनके प्रसिद्ध चित्रों मे लयबद्ध रेखाओं से अंकित व बहुत हल्की व मोतियों जैसी रगबिरगी रगसंगति के विवस्त्र स्त्रियों के चित्र हैं; रगसंगति व रेखांकन आकर्षक होते हुए वातावरण में एव स्त्रियों के चेहरों पर उदासीनता छायी हुई है। अर्थार्जन के हेतु उनको विवशता मे चित्रकारी को व्यावसायिक रूप देना पड़ा। 1930 मे उन्होंने निराशावस्था में आत्महत्या की।

प्वास किस्लिग ज्यू थे व उनका जन्म क्राको में हुआ। 1910 में वे पैरिस गये जहा उनका मोदिल्यानी व शागाल से घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। उनकी कला में कठोर यथार्थवाद होते हुए उदास काव्य की अनुभूति है।

मोरिस उत्रिलो (1883–1955)

1923 की बर्नेमजोन कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी में उत्रिलो अचानक चर्चा का विषय बन गये व 1924 में बासनेर ने उनको पैरिस के चित्रकारों में से सब से प्रसिद्ध चित्रकार जाहिर किया। वे पक्के शराबी थे और पैरिस के मोंमार्त्र उपनगर के स्वच्छदजीवी कलाकारों से परिचित थे। वे ऐसे कलाकारों में से हैं जिनकी कला-शैली समकालीन आन्दोलनों से अप्रभावित व स्पष्ट रूप से पृथक् रही। उनकी कलाकृतिया शीघ्र ही लोकप्रिय हुई और वे ख्यातनाम हुए।

उनकी माता सुजान वालादो ने उनको जो कलासम्बन्धी पाठ दिये उनको छोड़ कर वे पूर्ण रूप से स्वयशिक्षित चित्रकार थे। जब वे 19 साल के थे तब मद्यातिसेवन की विकृति के इलाज के लिये उनको चिकित्सालय में भरती कराया था एव उनकी माता ने मद्यसेवन से उनका ध्यान हटाने के हेतु उनको चित्रण करने को उद्यत किया। सुजान वालादो (1867–1938) ने मॉडेल के रूप में तुलुज लोत्रेक, प्युवि द शावान व देगा के कार्यकक्षों में कार्य किया था और बाद में स्वय चित्रण शुरू किया। उन्होने प्रभाववाद से प्रारम्भ करके स्वतन्त्र, आलकारिक शैली का विकास किया एव कुछ समय में ही वे चित्रकर्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुई। अतः उत्रिलो की कला की प्रारम्भिक कल्पना प्रभाववाद से सीमित थी किन्तु उनकी कला में प्रकाश के प्रभाव के स्थान पर दृश्यातर्गत वास्तविक आकारों की स्पष्टता को महत्व था व वह अधिक वस्तुनिष्ठ थी। उनको मोने की वातावरण व प्रकाश की चचलता से पिसारो व सिसली की आकारों की स्पष्टता अधिक प्रिय थी और उनके प्रारभ के चित्रो पर पिसारो का प्रभाव था। दृश्य के यथार्थ रूप के काव्यदर्शन के हेतु उत्रिलो ने प्रभाववाद के धुंधलेपन को अस्वीकारा। यथार्थ के प्रति असीम प्रेम उत्रिलो की कला की आतरिक प्रेरणा था एव उसको वे 'यथार्थ की तीव्र प्यास' कहते। उस प्रेरणा का उनके मद्यपी जीवन से घनिष्ठ साहचर्य था; नशाग्रस्त अवस्था में दिखायी देनेवाले मोंमार्त्र के रास्तों के स्वप्नमय दृश्य को वे भूल नहीं सकते थे। मदिरागृह से बाहर निकलते ही दिखायी देनेवाला बर्फाच्छादित मार्ग, दूकानों की पारदर्शक खिड़कियां, मकानों की पुरानी, क्षतिग्रस्त दीवारें–जिनका सहारा ले कर नशीली अवस्था में घर सुरक्षित लौटते थे–वे कैसे भूल सकते थे? वह उनके शराबी जीवन का काव्य था जिसको उन्होंने आत्मीयता से साकार किया।

आस-पास के मोंमार्त्र के शहरी दृश्य का उन पर अमिट प्रभाव था और उसको उन्होंने स्मृति से चित्रित किया व उन स्मृतिरूप प्रतिमाओं को निरीक्षण में कमजोर नहीं होने दिया। कभी वे पोस्टकार्ड पर छपे हुए शहर के छायाचित्रों को देखकर चित्रण करते।

1910 से 1914 तक के काल में–जो उनकी कला का 'श्वेत काल'[12] कहलाता है–उन्होने दीवारों के सफेद रग व निकटवर्ती हलके रंगों को प्रमुख स्थान दे कर शहरी दृश्य चित्रित किये; उनमे दीवारो की खुरदरी सतहों, निचले हिस्सों पर उगी हुई सेवारों, मकानों की खंडित अवस्थाओं व मार्गों की ऊबड़-खाबड़ स्थिति का यथार्थ प्रभाव अंकित किया है। उनके चित्रण की तुलना मकान-कारीगर से की जा सकती है जो प्रथम दीवार को उठाता है, उसमें खिड़कियां जड़ाता है व ऊपर से छत डाल देता है; उत्रिलो ने यही कार्य रंगो में किया और उसमें रंगों का भी ऐसी मोटी परतों में प्रयोग किया जैसा कारीगर चूने का करता है।

1914 के बाद उत्रिलो के रंगों में अधिक चमकीलापन आ गया, किंतु बाद में उनकी कला से अनुभूति की तीव्रता कम हो कर चित्रों का सामर्थ्य भी घट गया। पैरिस के शहरी दृश्यो का यथार्थ दर्शन उत्रिलो की कला का ध्येय था। उनकी कलाकृतियो में समकालीन पैरिस का अमर दर्शन है और आज भी उनकी कलाकृतियों द्वारा हम उसका यथार्थ परिचय कर सकते हैं।

□□□

12

सहजसिद्ध चित्रकार[1]

कान्डिन्स्की ने कला के 'प्रात्मिक तत्व' की प्राप्ति के दो परस्परविरोधी मार्गों का उल्लेख किया था; पहला मार्ग था 'महत्तर वस्तुनिरपेक्षता'[2] का जो उन्होंने व देलोने ने अपनाया था व दूसरा था 'महत्तर यथार्थ'[3] का जिस मार्ग से रूसो जैसे नवप्रादिम कलाकार जा रहे थे; व कान्डिन्स्की के अनुसार उस मार्ग से भी कलाकार दृश्य यथार्थ के आगे निकल कर कठोर वास्तविकता के अन्तर्गत अगम्य[4] का दर्शन कर सकते हैं। इस वर्गीकरण से आधुनिक कला के भिन्न प्रवाहों की प्रांतरिक एकात्मकता पर प्रकाश डाला है। कला कितनी भी वस्तुनिरपेक्ष क्यों न हो, वास्तविकता के दृश्य सौन्दर्य की अनुभूति से ही उसको मनोवैज्ञानिक बल प्राप्त होता है; वास्तविकता का सम्पर्क मस्तिष्क की गहराई में अज्ञेय परिणाम छोड़ता है व दृश्य रूप उसका केवल प्रतीक है। अतः इस प्रतीकात्मकता को ध्यान में रख कर उपयुक्ततावादी दृष्टिकोण को छोड़ कर; वस्तु का सम्पूर्ण प्रकृति से पृथक् रूप से चिन्तन किया जाये तो वस्तु के प्रांतरिक जीवन का साक्षात्कार हो जाता है। नीग्रो कला, प्रादिम कला व बालचित्रकला का इसी मूलभूत विचार से महत्त्व है; इनमें वस्तु के रहस्यमय अस्तित्व का सत्य रूप समझने के व्यक्तिगत प्रयत्न किये होते हैं। प्रात्मतत्त्ववादी चित्रकारों ने वास्तविकता के दृश्य सौन्दर्य द्वारा वस्तु की आत्मा के दर्शन के प्रयत्न किये।

सहजसिद्ध कलाकारों में भी वस्तु के दृश्य सौन्दर्य के पीछे छिपे रहस्य को—जिसके कारण वस्तु के प्रति अवर्णनीय आत्मीयता पैदा होती है—कला द्वारा अनुभव करने के प्रयत्न दिखायी देते हैं। अप्रशिक्षित होने के कारण कला में मूलभूत दृष्टिकोण अपनाने में उनको कठिनाई नहीं होती। उनकी कला ऐतिहासिक या प्रचलित शैलियों के प्रभावों से मुक्त रहती, सामाजिक आवश्यकताओं का उस पर बोझ नहीं पड़ता व वस्तु के प्रात्मिक सामर्थ्य का परिचय करने को वे उत्कंठित रहते।

लोककला के समान, सहजसिद्ध कला का उद्गम सामाजिक रीतिरिवाज या संस्कृति में नहीं बल्कि कलाकार की स्वाभाविक व प्रादिम संवेदनाशील कल्पनाशक्ति में होता है; अतः इन कलाकारों को समुचित रूप से नवप्रादिम कलाकार भी कहते हैं। इनकी कला बालचित्रकला के समान निष्कपट व सरल होती है किन्तु इसके अतिरिक्त उसमें आत्मा से सम्पर्क रखने वाली वैयक्तिकता भी होती है। व्यक्तिविशिष्ट सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा उनमें इतनी तीव्र होती है कि उनका

1910 से 1914 तक के काल में–जो उनकी कला का 'श्वेत काल'[12] कहलाता है–उन्होंने दीवारों के सफेद रंग व निकटवर्ती हलके रंगों को प्रमुख स्थान दे कर शहरी दृश्य चित्रित किये; उनमें दीवारों की खुरदरी सतहों, निचले हिस्सों पर उगी हुई सेवारों, मकानों की खंडित अवस्थाओं व मार्गों की ऊबड़-खाबड़ स्थिति का यथार्थ प्रभाव अंकित किया है। उनके चित्रण की तुलना मकान-कारीगर से की जा सकती है जो प्रथम दीवार को उठाता है, उसमें खिड़कियां जड़ाता है व ऊपर से छत डाल देता है; उत्रिलो ने यही कार्य रंगों में किया और उसमें रंगों का भी ऐसी मोटी परतों में प्रयोग किया जैसा कारीगर चूने का करता है।

1914 के बाद उत्रिलो के रंगों में अधिक चमकीलापन आ गया, किंतु बाद में उनकी कला से अनुभूति की तीव्रता कम हो कर चित्रों का सामर्थ्य भी घट गया। पैरिस के शहरी दृश्यों का यथार्थ दर्शन उत्रिलो की कला का ध्येय था। उनकी कलाकृतियों में समकालीन पैरिस का अमर दर्शन है और आज भी उनकी कलाकृतियों द्वारा हम उसका यथार्थ परिचय कर सकते हैं।

□□□

12
सहजसिद्ध चित्रकार[1]

कान्डिन्स्की ने कला के 'आत्मिक तत्व' की प्राप्ति के दो परस्परविरोधी मार्गों का उल्लेख किया था; पहला मार्ग था 'महत्तर वस्तुनिरपेक्षता'[2] का जो उन्होंने व देलोने ने अपनाया था व दूसरा था 'महत्तर यथार्थ'[3] का जिस मार्ग से रूसो जैसे नवआदिम कलाकार जा रहे थे; व कान्डिन्स्की के अनुसार उस मार्ग से भी कलाकार दृश्य यथार्थ के आगे निकल कर कठोर वास्तविकता के अन्तर्गत अगम्य[4] का दर्शन कर सकते हैं। इस वर्गीकरण से आधुनिक कला के भिन्न प्रवाहों की आंतरिक एकात्मकता पर प्रकाश डाला है। कला कितनी भी वस्तुनिरपेक्ष क्यों न हो, वास्तविकता के दृश्य सौन्दर्य की अनुभूति से ही उसको मनोवैज्ञानिक बल प्राप्त होता है; वास्तविकता का सम्पर्क मस्तिष्क की गहराई में अज्ञेय परिणाम छोड़ता है व दृश्य रूप उसका केवल प्रतीक है। अतः इस प्रतीकात्मकता को ध्यान में रख कर उपयुक्ततावादी दृष्टिकोण को छोड़ कर; वस्तु का सम्पूर्ण प्रकृति से पृथक् रूप से चिन्तन किया जाये तो वस्तु के आंतरिक जीवन का साक्षात्कार हो जाता है। नीग्रो कला, आदिम कला व बालचित्रकला का इसी मूलभूत विचार से महत्त्व है; इनमें वस्तु के रहस्यमय अस्तित्व का सत्य रूप समझने के व्यक्तिगत प्रयत्न किये होते हैं। आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने वास्तविकता के दृश्य सौन्दर्य द्वारा वस्तु की आत्मा के दर्शन के प्रयत्न किये।

सहजसिद्ध कलाकारों में भी वस्तु के दृश्य सौन्दर्य के पीछे छिपे रहस्य को–जिसके कारण वस्तु के प्रति अवर्णनीय आत्मीयता पैदा होती है–कला द्वारा अनुभव करने के प्रयत्न दिखायी देते हैं। अप्रशिक्षित होने के कारण कला में मूलभूत दृष्टिकोण अपनाने में उनको कठिनाई नहीं होती। उनकी कला ऐतिहासिक या प्रचलित शैलियों के प्रभावों से मुक्त रहती, सामाजिक आवश्यकताओं का उस पर बोझ नहीं पड़ता व वस्तु के आत्मिक सामर्थ्य का परिचय करने को वे उत्कंठित रहते।

लोककला के समान, सहजसिद्ध कला का उद्गम सामाजिक रीतिरिवाज या संस्कृति में नहीं बल्कि कलाकार की स्वाभाविक व आदिम संवेदनाशील कल्पनाशक्ति में होता है; अतः इन कलाकारों को समुचित रूप से नवआदिम कलाकार भी कहते हैं। इनकी कला बालचित्रकला के समान निष्कपट व सरल होती है किन्तु इसके अतिरिक्त उसमें आत्मा से सम्पर्क रखने वाली वैयक्तिकता भी होती है। व्यक्तिविशिष्ट सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा उनमें इतनी तीव्र होती है कि उनका

चित्रणपूर्ण स्वाभाविक ढंग से होता है। केवल प्रशिक्षण के अभाव से सहजसिद्ध कला का निर्माण नहीं होता; उसके लिये तीव्र आंतरिक प्रेरणा का होना अनिवार्य है।

आधुनिक कला में निम्न सहजसिद्ध कलाकार विशेष प्रसिद्ध हुए; आंरी रूसो–सेवानिवृत चुंगी कर्मचारी, बॉयँ–जो रास्ते पर आलू बेचते थे, सेराफिन द सालि–नौकरानी, कामीय बॉम्ब्वा व आन्द्रे बोशा; ये सब फ्रेंच थे व इनके अतिरिक्त अमेरिकन कलाकार एडवर्ड हिक्स, जोसेफ पिकेट, जान केन व ग्रैंड मा मोजेस ने काफी ख्याति प्राप्त की।

आंरी रूसो (1844–1910)

रूसो को न केवल सहजसिद्ध कलाकारों में श्रेष्ठ मानते है बल्कि उनका आधुनिक कला के महान् प्रणेताओं में स्थान है क्योंकि आधुनिक कला के विकास पर उनकी कला का बहुत प्रभाव पड़ा है।

आंरी रूसो का जन्म लावाल में हुआ। पिता की विपन्नावस्था के कारण वे कला का अध्ययन नहीं कर सके। 1885 में स्वयंप्रेरणा से प्रकृति को गुरु मान कर एवं परम्परागत शैली के कलाकार जेरोम व क्लेमाँ से कुछ सलाह लेकर उन्होंने चित्रण शुरू किया। इसके अतिरिक्त नियमित रूप से उन्होंने कला की शिक्षा प्राप्त नहीं की। 1870 में सैनिक-सेवा के पश्चात् चुङ्गीघर के छोटे अधिकारी के रूप में उनकी नियुक्ति हुई।

1886 में वे सेवानिवृत्त हुए और उसी साल उन्होंने अपने दो चित्र सलों द अँदेपांदा में प्रदर्शित किये। अब वे अपना सारा समय चित्रकारी में लगा सकते थे। उनको जो दृश्य भाता उसको वे अपनी सहजस्फूर्त शैली में चित्रित करते; विवाह-समारोह, परिचित व्यक्ति, वस्तुसमूह व काल्पनिक निसर्ग–दृश्य उनके चित्रों के विषय थे। उन्होंने व्यक्तियों व वस्तुओं को सरलीकृत ठोस आकारों में चित्रित कर के उनकी वैयक्तिक विशेषताओं को स्पष्ट रूप दिया है। प्रकृतिचित्रों को कहीं बारीकियों के साथ तो कहीं विस्तृत व विरोधी क्षेत्रों में चित्रित करके उन्होंने दृश्यातर्गत वस्तुओं को उभार दिया है जिससे वे अवकाश से पृथक्, शिल्पसदृश प्रभावी व स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिये हुए प्रतीत होती है। उन्होंने बहुत ही अनुरागयुक्त संवेदनाओं व रचनात्मक कौशल के साथ पुष्प-चित्रण किया।

उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के घने जंगलों के दृश्य-चित्रण में रूसो की प्रतिभा विशेष रूप से सम्पन्न थी। इन घने जंगलों के दृश्य-चित्रों में चमकीले निर्मल हरे रंगों के पत्तों से झुकी हुई शाखाओं व पौधों के बीचबीच बन्दरों की चमकती आँखें व काले मुंह, शेरों व बाघों के शोधक चेहरे, व बिजली के प्रकाशमान लट्टुओं के समान शाखाओं से लटकते हुए पीले व नारंगी फल सतेज दिखायी देते है। ऐसी वनश्री के लिये मेक्सिको के जंगल विशेष प्रसिद्ध है जहाँ पूर्ण विकसित हरेभरे वृक्ष-लताओं के तेज रंगों व उनके बीचबीच बहते हुए ठंडी हवा के झोंकों का प्रभाव बहुत ही प्रसन्न व उत्साहवर्धक होता है। 1864–67 के काल में रूसो सेना के साथ

मेक्सिको गये थे और शायद उस काल की स्मृतियाँ उनकी कला द्वारा चित्ररूप होकर प्रकट हो गयी होंगी या उन्होंने कहीं वनस्पति-उद्यानों में या प्राणिसंग्रहालयों में ऐसे दृश्य देखे होंगे जिसके परिणामस्वरूप उनके दृश्यचित्रों को यह रूप प्राप्त हुआ होगा। रूसो स्वयं को सच्चे यथार्थवादी मानते एवं अपनी गणना महान् यथार्थवादी कलाकारों में करते।

रूसो का सबसे पहला महत्त्वपूर्ण चित्र था 'आनंदोत्सव की रात' (1886)[5]। चाँदनी रात के इस दृश्यचित्र का वातावरण काल्पनिक काव्यपूर्ण व स्वप्निल है; पेड़, बादल वगैरह सभी वस्तुओं का बारीकियों के साथ यथार्थ चित्रण किया है व स्वप्नमय काल्पनिक सृष्टि में रूसो का यह प्रारम्भिक चरण है। वास्तविक प्रतिमाओं द्वारा पुनर्निमित चित्रसृष्टि को रूसो ने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा से स्वप्न का रूप दिया है। सुदूर के विदेशों के घने वनों के दृश्य रूसो की स्वप्न सृष्टि की परिणाम-कारक निर्मिति के लिये बड़े सहायक सिद्ध हुए एवं 'आंधीग्रस्त जंगल' (1892)[6] चित्र से प्रारम्भ करके रूसो ने ऐसी पृष्ठभूमि पर कई प्रभावी चित्र बनाये जिनसे वे अमर हो गये। इन चित्रों में 'सपेरा' (1907) व 'यादविगा का स्वप्न'[7]—उनका अन्तिम चित्र–विशेष प्रसिद्ध है। 'यादविगा का स्वप्न' में सुरम्य वृक्षवाटिका के मध्य में सुशोभित आरामदायक मृदु पलंग पर एक विवस्त्र स्त्री अर्ध लेटी हुई अवस्था में चित्रित की है; चारों ओर सुन्दर हलके नीले व जामुनी रंगों के पुष्प डालियों पर झूम रहे हैं; वृक्षों में से चिड़ियों, शेरों, फलों व सूंड उठाये हुए हाथी की आकृतियाँ चमक रही हैं; व एक काली मानवाकृति बाँसुरी बजा रही है। पलंग पर लेटी हुई स्त्री यादविगा उनके असफल प्रथम व अन्तिम प्रेम की नायिका थी व जब 1910 की अँदेपादा की प्रदर्शनी में यह चित्र भेजा गया तब रूसो ने यादविगा पर कविता लिख कर चित्र के साथ संलग्न की।

रूसो हर साल अपने चित्रों को 'सलों द अँदेपांदा' में प्रदर्शित करते यद्यपि शुरू में उनका अक्सर उपहास किया जाता। सर्वप्रथम पिसारो ने उनके चित्रों के काव्यमय प्रभाव को पहचाना व गोगँ ने भी उनकी मौलिक अंकनपद्धति को पसन्द किया। 1905 के करीब देरँ, व्लामँक, देलोने, पिकासो व कवि अपोलिनेर रूसो की कला की प्रशंसा करने लगे व अबतक उपेक्षित रूसो ने इस प्रशंसा को बच्चे के समान निष्कपट भाव से स्वीकारा। उनको अपनी कला की महानता के बारे में शुरू से ही आत्मविश्वास था और एक बार उन्होंने पिकासो को अभिनन्दन करते हुए कहा था कि जीवित कलाकारों में वे दोनों सर्वश्रेष्ठ हैं–पिकासो 'इजिप्शियन शैली' के कलाकार के रूप में व रूसो स्वयं 'आधुनिक शैली' के कलाकार के रूप में।

जैसे ही उनके चित्र बिकने लगे, उन्होंने मित्रों को भोजन सम्मेलनों में बुलाना शुरू किया जहाँ वे स्वयं वायोलिन बजाते या कभी अपनी काव्यरचनाएँ सुनाते। 1908 में पिकासो ने उनके सम्मान में भोजन का आयोजन किया था। 190 किसी ठग आदमी के चंगुल में आकर उनको सजा सुनाई गयी, किन्तु

13
अमेरिकी कला

अमेरिकी कला ने अपने योगदान से, समसामयिक कलाक्षेत्र में जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है उसको ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि 19वी सदी एव बीसवी सदी के पूर्वार्ध की अमेरिकी कला का अध्ययन किया जाये जिससे पृष्ठभूमि से परिचित होकर समसामयिक अमेरिकी कला के विकास को हम उचित रूप से समझ सकेंगे ।

1776 के स्वातंत्र्ययुद्ध से पहले उत्तर अमेरिका योरपीय देशों के उपनिवेशों का समूह था । बेंजामिन वेस्ट व जान सिंगल्टन कापली को छोड़, तब तक, वहाँ कोई विशेष प्रतिभासम्पन्न चित्रकार नही हुए । ये दोनों भी बाद मे इंग्लैंड जा बसे जहाँ वे काफी सफल हुए । वेस्ट (1738–1820) इंग्लैंड के राजा के दरबारी चित्रकार नियुक्त हुए व रायल अकेडेमी के अध्यक्ष भी हुए । वे व्यक्ति चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध थे व उनका 'कर्नल जान्सन' का व्यक्तिचित्र प्रसिद्ध है जिनमे रेम्ब्राट के समान प्रकाश-योजना व संयोजन कर के चित्र बनाया है किन्तु शैली में रेम्ब्राट की निर्भीकता नही है । बॉस्टन के जॉन कापली (1738–1815) स्वयं-शिक्षित चित्रकार थे व उन्होने तिशियन, राफेल, वान डाइक आदि पुराने ख्यातनाम चित्रकारों की अनुकृतियो को देख कर अपनी कला का विकास किया । उनके चित्रो मे होगार्थ व शार्दं के समान वास्तविकता का प्रभाव है । वे बॉस्टन, न्यूयार्क व फिलाडेल्फिया के उच्च मध्यमवर्गीयो में व्यक्तिचित्रण के लिये लोकप्रिय थे । उनके 'नाथानियल हर्ड' व 'टामस मिफ्लिन व पत्नी'[1] ये व्यक्तिचित्र प्रसिद्ध है । स्वातंत्र्ययुद्ध शुरू होते ही वे इंग्लैंड चले गये ।

अमेरिकन कलाप्रेमी लोग प्रायः योरप के प्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियां खरीदते या उनसे चित्र बनवाते । स्वतंत्रता के पश्चात् अमेरिकन चित्रकार योरपीय यथार्थवादी व रोमान्सवादी शैलियो का अनुसरण कर के जनजीवन व प्रकृतिदृश्यों का चित्रण करने लगे जिनमे से पील, बिंगॅम व होमर विशेष प्रतिभासंपन्न थे। इनके अलावा स्वतन्त्र शैली के कलाकार राइडेर थे जिनकी कला आधुनिकता के विचार से महत्वपूर्ण है ।

जार्ज कालेब बिंगॅम(1811–1879) स्वयशिक्षित चित्रकार थे व उन्होंने अपनी अधिकाश आयु मिसुरी मे बितायी । उन्होंने मिसुरी नदी के मछुवारों, सार्वजनिक चुनाव-सभाओ व नदी के किनारे के ग्रामीण जीवन के खुले वातावरण

के विषयों को लेकर चमकीली रंगसंगति के, जोशपूर्ण आकर्षक चित्र बनाये है। उनका चित्र 'मिसुरी नदी पर लोम के व्यापारी'[2] प्रसिद्ध है जिसमें मंदगति नदी प्रवाह पर सौम्य प्रकाश से पूरित कुहरे का प्रभाव कुशलता से अंकित किया है। राफेल पील का प्रसिद्ध चित्र 'स्नान के पश्चात्'[3] निसर्ग-रूप-सादृश्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमे करीब समूचे चित्रक्षेत्र पर एक तौलिये को उसकी बुनावट, चुनटो व सलवटों के साथ; रस्सी से लटकाये हुए हुबहू अंकित किया है व उसके पीछे प्रच्छन्न विवस्त्र स्त्री के हाथ और पैर के हिस्से ऊपर और नीचे छाया मे धुंधले दिखाये है। कुछ समय तक 'अॅकेडेमी ऑफ डिजाइन' व एक फ्रेंच कलाकार से प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् विन्स्लो होमर (1836–1910) ने प्रत्यक्ष देख कर एवं मासिक पत्रिका के लिये चित्रण कर के अपनी कला का विकास किया। गृहयुद्ध के दौरान उनको युद्धक्षेत्र पर जाने का मौका मिला व उस अनुभव के उन्होने कई चित्र बनाये जिनमें 'मोरचे के वदी' व 'पड़ाव में बारिश का दिन'[4] ये लोकप्रिय चित्र है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पर्यटन-स्थलों पर जा कर वहाँ के जन-समुदायों के व उनकी क्रीड़ाओ के चित्र बनाये जो फ्रेंच प्रभाववादियों के चित्रों के समरूप हैं किन्तु उनमे प्रभाववादियो की रगो की चमक व उल्लास नही है। होमर के चित्रो मे गहरे रगो का प्रयोग है एव मनुष्याकृतियां गंभीर मुद्रा मे हैं। उनका सब से विख्यात चित्र 'हवा के साथ'[5] कुर्बे की यथार्थवादी शैली का स्मरण दिलाता है। सयोजन व गतित्वदर्शन इस चित्र की विशेषताए है। उन्होने बॅहामॅस द्वीपो मे जा कर वहाँ के सागरतट के समीपवर्ती प्रदेश के तूफानग्रस्त दृश्यों के चित्रो की मालिका बनायी जो यथार्थवादी जलरग चित्रण का उत्कृष्ट उदाहरण है। आल्बर्ट पिंकॅम रायडेर (1847–1917) अपने समय मे बिलकुल भिन्न शैली के व मौलिक प्रतिभा के चित्रकार थे। 1880 व 1900 के बीच न्यूयार्क मे बनाये काव्यमय, पौराणिक व धार्मिक चित्रो के विषय कुछ उनकी न्यू बेडफोर्ड की बचपन की स्मृतियों से एवं अधिकतर बायबल, शेक्सपियर, कोलरिज, बायरन, पो, टेनिसन व वाग्नेर के गीति-नाट्य मे लिये गये है जिनके वे प्रशसक थे। किन्तु उनके चित्र केवल पुस्तक-चित्रण नही है; हर चित्र, अभिव्यक्ति के विचार से, स्वयपूर्ण है। समकालीन यथार्थवादी व रोमान्सवादी चित्रकारो से भिन्न मार्ग को अपना कर उन्होने ऐसी चित्रसृष्टि की निर्मिति की जो पौराणिक सृष्टि जैसी प्रतीत होती है। उन्होने आकारों को यथार्थ सृष्टि से ही लिया किन्तु बारीकियो को हटा कर, परिवर्तित रूप दे कर उन आकारो को ऐसे पारलौकिक प्रकाश से अनुप्राणित किया कि उनके चित्र अद्भुत प्रभाव के बन गये है। विषय की काव्यमयता के अलावा, समूचे चित्रक्षेत्र पर लयबद्ध गतित्व-दर्शन, विस्तृत क्षेत्रों की योजना, गहरे पारदर्शी रगो का प्रयोग व उज्ज्वल आतरिक प्रकाश का प्रभाव उनकी चित्रकला की विशेषताए है। उन्होने आकार को बाह्य रेखा से सीमित नही बल्कि क्षेत्र मे प्रमुख देखा व उसको अभिव्यक्ति के अनुकूल रूप में अंकित किया। असाधारण लयबद्ध

एकत्व से उनके चित्र ओतप्रोत होते हैं; ऐसे प्रतीत होता है कि चित्रांतर्गत सभी वस्तुएं उसी लय में तद्रूप हो कर नर्तन कर रही हैं—इस दृष्टिकोण से उनका चित्र 'जोनॅ' उल्लेखनीय है। उनके चित्र आंतरिक चैतन्य से परिपूर्ण है। उनकी प्रकाश-योजना प्रभाववादी चित्रकारों से भिन्न स्वरूप की है। उनकी चित्रित आकृतियां किसी बाह्य प्रकाश-पुंज से नहीं बल्कि निजी भीतरी प्रकाश से आलोकित प्रतीत होती है; गहरी छाया व उज्ज्वल प्रकाश का द्विविध क्रीडन रोमांचकारी है। जब समकालीन कलाकार चमकीले रंगों का विशेष प्रयोग कर रहे थे, रायडेर ने पुराने डच चित्रकारों के समान भूरे रंगों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया, किंतु वह इतनी कुशलता से किया है कि संपूर्ण दृश्य, प्रकाश से जगमगाता है। वे तीन या चार से अधिक रंगों का प्रयोग नहीं करते व उनके कुछ चित्र तो एकवर्णीय लगते है। उनके चित्रों में 'जोनॅ', 'सागर के परिश्रमी', 'दौड़ का मार्ग', 'जहाजी'[6] विशेष प्रसिद्ध है। उनके चित्रों के विषय दुःखपूर्ण है। किन्तु उनमें निराशा नहीं बल्कि शेक्सपियर के समान जीवन व दुःख के अनिवार्य सम्बन्ध की ओर निर्देश है। उनकी कला किस पूर्ववर्ती शैली से प्रभावित थी यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। वे स्वयं अनुसरण के विरोधी व मौलिक सर्जन के हिमायती थे। वे बहुत सोच कर व समय लगा कर चित्रण करते थे। अपनी आयु में उन्होंने केवल करीब 150 चित्र बनाये व उनमें से कुछ चित्रों पर उन्होंने 15–20 साल तक काम किया। उन्होंने परंपरागत पद्धति से रंगों के पारदर्शी परतों से काम किया किन्तु परंपरागत पद्धति का उचित ज्ञान नहीं होने से उनके बहुत से चित्र चटक गये हैं।

उपर्युक्त व्यावसायिक चित्रकारों के अतिरिक्त एडवर्ड हिक्स, जो धर्मोपदेश थे, अपनी सहजसिद्ध कला के कारण ख्यातनाम हुए। उनके चित्र 'शान्तिप्रिय राज्य'[7] की भारी रूसो के चित्रों के समान प्रशंसा हुई। इस चित्र में उन्होंने हिंस्र पशुओं, शाकाहारी जानवरों एवं भिन्न सभ्य व असभ्य जातियों के लोगों को एक विश्वपरिवार के सदस्यों की तरह एक साथ चित्रित किया है।

गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद योरप व अमेरिका के बीच आवागमन व आदान-प्रदान बढ़ता गया व अमेरिकी कला पर पॅरिस का प्रभाव बढ़ गया। अमेरिकन छात्र कला के अध्ययन के लिये पॅरिस जाने लगे; कुछ अल्पसंख्य छात्र म्यूनिक जाते। उन्नीसवीं सदी के अन्त के करीब कुछ प्रमुख अमेरिकन कलाकार प्रभाववादी ढंग का चित्रण करने लगे जिनमें से प्रेंडरगास्ट, वीएर, लासन, हासॅम विशेष प्रसिद्ध हैं। रायडॅर, विन्स्लो होमर व एकिन्स स्वतन्त्र शैली में कार्य करने वाले प्रसिद्ध चित्रकार थे। यथार्थवादी शैली के चित्रकार टामस एकिन्स (1844–1916) ने कलाविद्यालय खोला था जो कुछ समय बाद बन्द करना पड़ा। एकिन्स के चित्र 'ग्रॉस चिकित्सालय' व रेम्ब्रांट के चित्र 'डॉ. टुल्प का शरीर-रचना-विज्ञान पर पाठ'[8] के बीच तुलना यथार्थवाद, नाटकीय प्रभाव, प्रकाश-योजना, संयोजन आदि गुणों के विचार से उद्बोधक हैं। एकिन्स के विद्यार्थी मान्युस, पेन्सिल्वेनिया

कला अँकेडमी में प्राध्यापक थे व उन्होंने राबर्ट हेन्री को कला की प्रारंभिक शिक्षा दी। राबर्ट हेन्री (1865–1925) एकिन्स की कला व कलासम्बन्धी विचारों से प्रभावित थे। एकिन्स का मत था कि कलाकारों को लोकप्रिय आकर्षक बाह्य सौंदर्य को चित्रित करने की अपेक्षा साधारण लोग व उनके दैनिक जीवन को चित्रित करना चाहिये। एकिन्स से हेन्री ने यह भी सीखा कि अनुकरण की अपनी मर्यादा है व उसके पश्चात् स्वतन्त्र विचार से अपनी कला का विकास करना चाहिये। हेन्री योरप में कई वर्षों तक रहे जहा उनकी कला पर माने की प्रारंभिक शैली का प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त योरप में उन्होंने प्रभाववादी चित्रकार मोने, देगा व पुराने चित्रकार रेम्ब्राट, फ्रान्स हाल्स, गोया आदि कलाकारों की कृतियों का अध्ययन कर के कला सम्बन्धी अधिक ज्ञान प्राप्त किया। वाल्ट विटमन इब्सेन, वाग्नेर व रस्किन के विचारों से हेन्री ने कला के नैतिक व सामाजिक महत्त्व को व एमर्सन से स्वतन्त्र व्यक्तित्व व आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को समझा। हेन्री कुशल अध्यापक थे व पॅरिस व फिलाडेल्फिया में अध्यापन करने के बाद न्यूयार्क आ कर उन्होंने निजी कला-विद्यालय खोला। उनका मत था कि सभी ललितकलाएं मूलतः एक है, व कला का सर्जनात्मक के अलावा दार्शनिक महत्त्व भी है। यद्यपि शुरू में वे योरपीय कला से प्रभावित थे, कुछ समय बाद उन्होंने उस प्रभाव से मुक्त होकर निजी स्वतन्त्र शैली को विकसित किया। उनको घरेलू विषय पसंद थे, व उनके ग्रामीण या सागरी दृश्यचित्रों की अपेक्षा शहर के दृश्यचित्र अधिक प्रभावी है। उनको भय था कि योरपीय घनवादी, फाव व अन्य शैलियों के प्रभाव से देशज अमेरिकी कला के विकास को हानि पहुँच सकती है, व इसके अतिरिक्त अमेरिकन कलाकार विदेशी शैलियों के जरिये अमेरिकी जीवन व तत्त्वज्ञान को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त नही कर सकेंगे। उनके विचारों से प्रभावित होकर स्लोन, ग्लॅकेन्स, बेलोस, शिन, प्रेंडरगास्ट, कोलमन, ल्युक्स, गी पॅन थ ड्वा उनके मार्गदर्शन में एकत्र हुए—अमेरिकन कलाकारों का पहली बार सुनियोजित भ्रातृमडल बना—और उन्होंने व उनके सम्पर्क में आये युवा कलाकारों ने अमेरिकन सामाजिक परिस्थिति को-विशेषतः निम्न वर्ग की-यथार्थ चित्रित करने को प्रारंभ किया। बीसवी सदी के प्रारम्भ के करीब उनमें से बहुत से चित्रकार न्यूयार्क पहुँचे जहा राबर्ट हेन्री, प्रेंडरगास्ट, लासन व डेविस कार्य कर रहे थे। उन्होंने 'आठ' –एट–नाम से एक कलाकार-मंडल की स्थापना की। जब उन्होंने 1908 में न्यूयार्क में अपनी प्रथम प्रदर्शनी आयोजित की तब उनकी कला को नाम दिया गया 'एश्केन शैली'[9] जिसकी प्रमुख विशेषता थी दैनिक जीवन के दृश्यों को प्रत्यक्ष देखकर यथार्थ चित्रित करना। अमेरिकी यथार्थवादी कला से आकृष्ट हो कर नये कलाकार उनमें सम्मिलित हुए। इनमें से हार्ट के मेलो व सर्कसो के चित्र एव बेलोस के मुक्केबाजियो व मैदानी मेलों के चित्र विशेष लोकप्रिय हुए। स्लोन के यथार्थवादी चित्र व्यंग्यपूर्ण हैं। उनके अध्यापन-कौशल ने कला के छात्रों को काफी

मार्गदर्शन किया। प्रेन्डरगास्ट, लासन व डेविस 'एश्केन कलाकारों' की प्रदर्शनियों में भाग लेते थे व अकादमिक कला के विरोधी थे किन्तु उनकी कला 'एश्केन शैली' से भिन्न थी। प्रेन्डरगास्ट प्रभाववादी कलाकार थे तो डेविस की कला में सौम्य रोमांसवाद था।

1913 में 'आर्मरी शो'[10] नाम से ज्ञात अन्तरराष्ट्रीय चित्रप्रदर्शनी हुई जिसके आयोजन के लिये डेविस ने काफी मेहनत की। वे कलाकारों की उस संस्था के अध्यक्ष थे जिसके द्वारा यह आयोजन किया गया था। संस्था के सदस्य व अन्य सहयोगी सभी न्यूयार्क के प्रगतिशील विचारों के कलाकार थे। बाहर के समान विचारों के कलाकारों का भी उनको सहयोग मिला। जर्मनी, फ्रान्स, हालैंड, इंग्लैण्ड, रशिया व इटाली से आधुनिक शैलियों के चित्र प्राप्त किये गये। अमेरिकन कलाकारों में से विसलर, रायडेर, एश्केन समूह, यथार्थवादी चित्रकार व योरपीय आधुनिक शैलियों में कार्य करनेवाले चित्रकारों की कृतियां भी पृथक् कक्ष में लगायी गयी। 'अन्तरराष्ट्रीय आधुनिक कला प्रदर्शनी'[11] नाम से उद्घोषित इस प्रदर्शनी में 2000 चित्र रखे गये थे। 69वी रेजीमेंट के शस्त्रागार (आर्मरी) में आयोजित होने के कारण वह 'आर्मरी शो' नाम से विख्यात हुई। अमेरिका में इतनी विशाल प्रदर्शनी पहली बार ही हुई थी और उसने वहां के कलाकारों व रसिकों को काफी प्रभावित करके अमेरिकी कला को आधुनिकता की ओर मोड दिया।

इससे पहले छायाचित्रकार स्टाइग्लेन व आल्फ्रेड स्टीग्लित्स ने अमेरिकन लोगों को आधुनिक कला से परिचित कराने के अल्प प्रयास किये थे। चित्रकला सीखने के उद्देश्य से स्टीग्लित्स पैरिस हो आये थे किन्तु उन्होंने छायाचित्रकला का व्यवसाय शुरू कर के अपने छायाचित्रों को प्रदर्शित करने के लिये पांचवें मार्ग के 291वें निवास में वीथिका खोली थी। स्टाइग्लेन के प्रोत्साहन से उन्होंने अपनी वीथिका में योरपीय व आधुनिक चित्रकारों की कृतियों को प्रदर्शित करना शुरू किया। 1908 व 1917 के बीच स्टीग्लित्स कलावीथिका में सेजान, पिकासो, मातिस, रूसो, तुलुज लोत्रेक, ब्राकुसी, सेवेरिनी व अमेरिकन कलाकार जान मॅरिन, मोरेर, हार्टली, वेबेर, डोव, वाल्कोवित्स व जार्जिया ओकीफ के चित्रों को प्रदर्शित किया। किन्तु स्टीग्लित्स के प्रयासों का, प्रगतिशील विचारों के कलाकारों को छोड़कर अन्य लोगों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत 'आर्मरी शो' का काफी प्रचार हुआ और लोग बड़ी संख्या में प्रदर्शनी देखने आये। प्रदर्शनी की कटु आलोचना हुई और अमेरिकी समाचारपत्रों व मासिक पत्रिकाओं में मत व्यक्त किये गये कि प्रदर्शित चित्रों के निर्माता कोई व्यभिचारी व तिरस्करणीय व्यक्ति होंगे जो शिष्ट समाज में रहने के लिए अयोग्य है। मातिस का धोखेबाज नाम से उल्लेख हुआ। सबसे अधिक चर्चा द्युशां के प्रसिद्ध चित्र 'जीने पर उतरती हुई विवस्त्र मानवाकृति' की हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने से प्रदर्शनी के विरोधी लोकमत का प्रकोप अपनेआप कम हुआ किन्तु अकादमिक कला व आधुनिक कला के बीच का संघर्ष बढ़ता गया।

विश्वयुद्ध का अन्त होते ही कला के अध्ययन के लिये पैरिस जाने की प्रवृत्ति पुनः प्रबल हुई। इसके साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार करनेवाले फ्रेंच, अमेरिकन व अन्य विक्रेताओं ने न्यूयार्क के विक्रयकेन्द्रों पर प्रमुख योरपीय कलाकारों की कृतियों की भरमार की और अमेरिकन सम्पन्न लोगों के संग्रह में श्रेष्ठ दर्जे की कई आधुनिक कलाकृतियां पहुँची। इससे देशज अमेरिकी कला विनष्ट होने का खतरा दिखायी देने लगा। किन्तु एश्केन समूह व उससे सम्बद्ध कलाकारों ने इस परिस्थिति का मुकाबिला करने का दृढ निश्चय किया।

1925 के करीब अमेरिका के मध्यवर्ती राज्यों के तीन चित्रकारों ने स्वतन्त्र रूप से योरपीय आधुनिक कला व न्यूयार्क की 'एश्केन शैली' से भिन्न दिशा में कार्य शुरू किया। ये चित्रकार थे कैन्सस राज्य के जान स्टुअर्ट करी, आयोवा के ग्रँट वुड व मिसुरी के टाइम हार्ट बेन्टन। उनका ध्येय था, मध्य अमेरिका के कृषिजीवन का चित्रण।

जान स्टुअर्ट करी (1897–1946) का जन्म कैन्सस के कृषक-परिवार में हुआ। उनकी विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के कृषिविश्वविद्यालय में नियुक्ति हुई। अपनी कला द्वारा छात्रकलाकारों को प्रोत्साहित करना एवं देहाती वातावरण के अनुकूल चित्रों से समाज में कला के प्रति अभिरुचि पैदा करना इतना ही उनका काम था। उन्होंने तिपायी-चित्रण के अतिरिक्त, वेस्टपोर्ट, कनेक्टिकट, वाशिंग्टन व टोपिका में भित्तिचित्रण भी किया। ग्रँट वुड (1892–1942) को निर्धनता के कारण प्रारभ में खातीकाम, पाठशाला-अध्यापन जैसे अलाभकर काम करने पड़े। वे याचकवृत्ति अपना कर, कलाध्ययन के हेतु, चार बार पैरिस हो आये। अन्त में उन्होंने पैरिस के प्रभाववाद को अपनी रुचि के प्रतिकूल देखा व व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल शैली का विकास करने में वे उत्साह के साथ जुट गये व शीघ्र ही अमेरिका के अग्रिम पंक्ति के लोकप्रिय चित्रकार बन गये। उनके बारीकियों के साथ बनाये व्यक्तिचित्रों में सूक्ष्म स्वभावदर्शन व सौम्य उपहास है। लोकप्रिय होने के कुछ समय बाद उनकी शैली रूढिबद्ध व कठोर बन गयी व जर्मन व फ्लेमिश सहजसिद्ध चित्रकारों की अत्यधिक बारीकियों से युक्त शैली के समान दिखायी देने लगी। उनके प्रसिद्ध चित्र 'पादरी वीम को जार्ज वाशिंग्टन व चेरी वृक्ष की कहानी'[12] में बालक जार्ज कुल्हाड़ी से पेड़ काटने के किस्से को चित्रित किया है व उसमें उपहास के अलावा विवेकबोध भी है। उनका सबसे विख्यात चित्र है 'अमेरिकन गोथिक'। इसमें उन्होंने एक कृषक-दम्पती को कमानदार नुकीली गोथिक खिड़कीवाले बखार के समान खड़े हुए चित्रित किया है। यह उपहासात्मक चित्र शरीर रचना-विज्ञान, संयोजन, व्यक्तित्वदर्शन आदि गुणों से

भरपूर है। टामस बेन्टन (1889–1949) के पिता जिले के प्रभिवक्ता थे व कई पूर्वज स्थानीय ऐतिहासिक ख्याति के पुरुष थे किन्तु बेन्टन बचपन से ही देहाती दृश्यों के प्रभ्यासचित्रण में व्यस्त हो गये। पिता की नापसदगी के बावजूद उन्होंने 'शिकागो कला संस्था'[13] मे डेढ़ साल तक प्रध्ययन कर के प्रायु के उन्नीसवें साल मे पैरिस प्रस्थान किया। वापस माने पर उन्होने पैरिस के कलाकारों का प्रनुसरण करके दस वर्षों तक चित्रण किया किंतु वह उनके प्रमेरिकी व्यक्तित्व के प्रनुकूल नही था। वे उस विदेशी शैली मे प्रमेरिकी जीवन को समुचित रूप से प्रकित नही कर सके। प्रसतुष्ट होकर वे योरपीय कलाकारों के निर्दिष्ट मार्ग से पृथक हुए व उन्होने प्रपनी स्वतन्त्र शैली का विकास किया। उन्होने कई भित्ति-चित्र बनाये जिनमे जेफरसन शहर मे बनायी लोक-इतिहास पर चित्रमालिका भी है। बेन्टन की कला की विशेषता यह है कि उसमें यथार्थवाद की जीवन-निष्ठा, घनवाद का ठोसपन, व प्रभिव्यंजनावाद का प्रतिशयोक्त रूप होते हुए वह तीनो मे से किसी भी वाद के प्रतर्गत नही प्राती; उसमे यथार्थवाद का वास्तविक रूप के प्रति एकनिष्ठ रह कर चित्रण करने का प्रयास नही है, न घनवाद के समान मानवता की उपेक्षा, न प्रभिव्यजनावाद के निराशा या प्रातक के भाव। वह पूर्ण रूप से उनकी निजी मानवतावादी व मनोहर शैली है।

इस प्रकार बीसवी सदी के पूर्वार्ध में प्रमेरिकी कला दो स्पष्ट रूप से भिन्न प्रवाहो मे विभाजित थी; एक तरफ योरपीय प्राधुनिक कला से प्रभावित कलाकारों की शैली व दूसरी तरफ मध्यवर्ती प्रमेरिका के जीवन के चित्रण के लिये उपयुक्त स्वतन्त्र रूपाकनपद्धति मे कार्य करने वाले कलाकारों की शैली। बीसवी सदी के पूर्वार्ध के प्रन्त तक योरपीय प्राधुनिक कला का प्रमेरिकी कला पर प्रभाव बढ़ता ही गया यद्यपि वहा की परिस्थिति, जीवनदर्शन व रहन-सहन के कारण प्रमेरिकन कलाकारों के चित्रों की पृथक्ता स्पष्ट प्रतीत होती है।

1950 के करीब प्रमेरिकन प्राधुनिक चित्रकार जान मॅरिन ने (1970–1953) काफी ख्याति प्रर्जित की। मॅरिन ने वास्तुकला का प्रध्ययन किया था व प्रायु के तीसवें साल मे उन्होने चित्रकला का प्रध्ययन शुरू किया। जब वे 35 के हुए तब प्रथम योरप जा कर उन्होने पाच बरसों तक फाव, घनवादी व प्रभिव्य-जनावादी कलाकारों के साथ चित्रण किया। फिर वापस न्यूयार्क प्रा कर वहा की गगनचुम्बी इमारतों, भीड़भरे रास्तो, सूर्यास्तों व सागरी-दृश्यो के चित्र बनाये। उनके चित्रों के प्रन्य विषय थे न्यू मेक्सिको के मैदान व न्यू हॅम्पशायर के पहाड़। उन्होंने विशेषतः जलरंगों में चित्रण किया व प्रायु के 60वें साल के बाद ही तैल-रगो को सोद्देश्य प्रयोग किया। उनकी कला मुख्यतया भविष्यवाद व प्रभिव्यंजना-वाद से प्रभावित है व उसकी विशेषताएं है—सीमित रगो का स्वल्प प्रयोग, द्रुतगति तूलिका-सचालन, स्पष्ट बलरेखाओं द्वारा क्षेत्रों का घनवादी विभाजन एव

दृश्य में भविष्यवादी गतित्व-दर्शन। उनके चित्रांतर्गत दृश्य भूचालग्रस्त प्रतीत होते हैं। मॅरिन के अलावा बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जो अमेरिकन आधुनिक चित्रकार प्रसिद्ध हुए उनमें मावस वेवेर, बेन शान, स्टुअर्ट डेविस, एडवर्ड हाप्पर, चार्लस बर्चफील्ड, जॅक लेविन, रेजिनाल्ड मार्श, जार्जिया ओकीफ व चार्लस शीलर प्रमुख हैं। इनकी कला में कोई विशेष आपसी समानताएं नहीं हैं। मावस वेवेर की कला अभिव्यंजनात्मक है और उसमें मानवाकृतियों को काफी विकृति दे कर अंकित किया है व प्रभावी गहरे रंगों का प्रयोग है। शीलर, हाप्पर व बर्चफील्ड ने समान रूप से शहरी दृश्यों को विषय चुना किन्तु उनके चित्रों के परिणाम भिन्न हैं; अंकन पद्धति यथार्थवादी शैली की होते हुए भी हाप्पर के चित्रों में आत्मतत्त्वीय कला का गूढ़ अकेलापन है परंतु उसकी भयानकता नहीं है; हलकी विकृति व ठोसपन के साथ अंकित किये सरलीकृत आकार व गहरे रंगों के प्रयोग से बर्चफील्ड ने विषय को बहुत ही स्पष्ट रूप में चित्रित किया है; शीलर के चित्र ज्यामितीय घनवाद से प्रभावित हैं। बेन शान के चित्र सामाजिक अभिव्यंजनावादी दर्शन के हैं। वे कला को सप्रेषण का साधन मानते थे और इसी वजह से उनके बहुत से चित्र सामाजिक घटनाओं पर आधारित हैं जैसे कि 'ड्रेफ्युस मुकदमा', 'साक्को-वान्जेति मुकदमा', 'मुद्रास्फीति', 'जातिभेद' आदि। इन विषयों को लेकर उन्होंने चित्रमालिकाएं बनायीं। उनकी कला की तुलना दोमीय, गेओर्ग ग्रोस व रुओ की कला से की जा सकती है। उनकी शैली में विज्ञापन-चित्रों की स्पष्टता है व उन्होंने आवश्यकतानुसार अभिव्यंजनावाद, घनवाद एवं अतियथार्थवाद का प्रयोग किया है। जोसेफ स्टेला व चार्लस डेमथ ने महसूस किया कि केवल घनवाद में ही आधुनिक विज्ञान व अभियांत्रिकी के समरूप तत्त्व हैं अतः घनवाद की वर्तमान भौतिक दृष्टि से विकसित जीवन के चित्रण के लिये उपयुक्त है। उन्होंने आधुनिक स्वरूप के यंत्रसज्ज शहरी दृश्यों को चित्रित किया है किन्तु उनके चित्र घनवाद से भी विशुद्धवाद व लेजे की कला के अधिक समरूप हैं। जार्जिया ओकीफ की अत्यधिक ऐंठन दे कर चित्रित की गयी वनस्पतियां व फूल इस लोक के नहीं बल्कि मावस एर्न्स्ट या इवे ताग्वी की काल्पनिक सृष्टि के लगते हैं।

स्थानाभाव के कारण उपर्युक्त विवरण संक्षेप में ही दिया गया है एवं शेष ख्यातनाम कलाकारों के बारे में जानकारी देना यहाँ संभव नहीं है।

□□□

भरपूर है। टामस बेन्टन (1889–1949) के पिता जिले के अभिवक्ता थे व कई पूर्वज स्थानीय ऐतिहासिक ख्याति के पुरुष थे किन्तु बेन्टन बचपन से ही देहाती दृश्यों के अभ्यासचित्रण मे व्यस्त हो गये। पिता की नापसदगी के बावजूद उन्होंने 'शिकागो कला संस्था'[13] मे डेढ़ साल तक अध्ययन कर के आयु के उन्नीसवें साल मे पैरिस प्रस्थान किया। वापस आने पर उन्होने पैरिस के कलाकारो का अनुसरण करके दस वर्षों तक चित्रण किया किंतु वह उनके अमेरिकी व्यक्तित्व के अनुकूल नही था। वे उस विदेशी शैली मे अमेरिकी जीवन को समुचित रूप से अंकित नही कर सके। असतुष्ट होकर वे योरपीय कलाकारों के निर्दिष्ट मार्ग से पृथक हुए व उन्होने अपनी स्वतन्त्र शैली का विकास किया। उन्होंने कई भित्ति-चित्र बनाये जिनमें जेफरसन शहर मे बनायी लोक-इतिहास पर चित्रमालिका भी है। बेन्टन की कला की विशेषता यह है कि उसमें यथार्थवाद की जीवन-निष्ठा, घनवाद का ठोसपन, व अभिव्यजनावाद का अतिशयोक्त रूप होते हुए वह तीनों मे से किसी भी वाद के अंतर्गत नही आती; उसमे यथार्थवाद का वास्तविक रूप के प्रति एकनिष्ठ रह कर चित्रण करने का प्रयास नही है, न घनवाद के समान मानवता की उपेक्षा, न अभिव्यजनावाद के निराशा या आतक के भाव। वह पूर्ण रूप से उनकी निजी मानवतावादी व मनोहर शैली है।

इस प्रकार बीसवी सदी के पूर्वार्ध मे अमेरिकी कला दो स्पष्ट रूप से भिन्न प्रवाहो में विभाजित थी, एक तरफ योरपीय आधुनिक कला से प्रभावित कलाकारो की शैली व दूसरी तरफ मध्यवर्ती अमेरिका के जीवन के चित्रण के लिये उपयुक्त स्वतन्त्र रूपाकनपद्धति मे कार्य करने वाले कलाकारो की शैली। बीसवी सदी के पूर्वार्ध के अन्त तक योरपीय आधुनिक कला का अमेरिकी कला पर प्रभाव बढ़ता ही गया यद्यपि वहा की परिस्थिति, जीवनदर्शन व रहन-सहन के कारण अमेरिकन कलाकारो के चित्रों की पृथकता स्पष्ट प्रतीत होती है।

1950 के करीब अमेरिकन आधुनिक चित्रकार जान मॅरिन ने (1970–1953) काफी ख्याति अर्जित की। मॅरिन ने वास्तुकला का अध्ययन किया था व आयु के तीसवे साल में उन्होने चित्रकला का अध्ययन शुरू किया। जब वे 35 के हुए तब प्रथम योरप जा कर उन्होने पाच बरसों तक फाव, घनवादी व अभिव्यं-जनावादी कलाकारों के साथ चित्रण किया। फिर वापस न्यूयार्क आ कर वहा की गगनचुम्बी इमारतों, भीड़भरे रास्तो, सूर्यास्तों व सागरी-दृश्यो के चित्र बनाये। उनके चित्रो के अन्य विषय थे न्यू मेक्सिको के मैदान व न्यू हॅम्पशायर के पहाड़। उन्होंने विशेषतः जलरंगों मे चित्रण किया व आयु के 60वें साल के बाद ही तैल-रगो को सोद्देश्य प्रयोग किया। उनकी कला मुख्यतया भविष्यवाद व अभिव्यंजना-वाद से प्रभावित है व उसकी विशेषताए है—सीमित रगों का स्वल्प प्रयोग, द्रुतगति तूलिका-सचालन, स्पष्ट बलरेखाओ द्वारा क्षेत्रों का घनवादी विभाजन एव

दृश्य में भविष्यवादी गतित्व-दर्शन। उनके चित्रांतर्गत दृश्य भूचालग्रस्त प्रतीत होते है। मॅरिन के अलावा बीसवी सदी के पूर्वार्ध में जो अमेरिकन आधुनिक चित्रकार प्रसिद्ध हुए उनमें माक्स वेबेर, बेन शान, स्टुअर्ट डेविस, एडवर्ड हाप्पर, चार्लस बर्चफील्ड, जॅक लेविन, रेजिनाल्ड मार्श, जार्जिया ओकीफ व चार्लस शीलर प्रमुख है। इनकी कला में कोई विशेष आपसी समानताएं नही है। माक्स वेबेर की कला अभिव्यजनात्मक है और उसमें मानवाकृतियो को काफी विकृति दे कर अंकित किया है व प्रभावी गहरे रंगो का प्रयोग है। शीलर, हाप्पर व बर्चफील्ड ने समान रूप से शहरी दृश्यों को विषय चुना किन्तु उनके चित्रो के परिणाम भिन्न है; अंकन पद्धति यथार्थवादी शैली की होते हुए भी हाप्पर के चित्रो में आत्मतत्त्वीय कला का गूढ अकेलापन है परंतु उसकी भयानकता नही है; हलकी विकृति व ठोसपन के साथ अंकित किये सरलीकृत आकार व गहरे रगों के प्रयोग से बर्चफील्ड ने विषय को बहुत ही स्पष्ट रूप मे चित्रित किया है; शीलर के चित्र ज्यामितीय घनवाद से प्रभावित है। बेन शान के चित्र सामाजिक अभिव्यजनावादी दर्शन के है। वे कला को सप्रेषण का साधन मानते थे और इसी वजह से उनके बहुत से चित्र सामाजिक घटनाओ पर आधारित है जैसे कि 'ड्रेपयुस मुकदमा', 'साक्को-वान्जेति मुकदमा', 'मुद्रास्फीति', 'जातिभेद' आदि। इन विषयों को लेकर उन्होने चित्रमालिकाए बनायी। उनकी कला की तुलना दोमीय, गेओर्ग ग्रोस व रुओ की कला से की जा सकती है। उनकी शैली मे विज्ञापन-चित्रो की स्पष्टता है व उन्होने आवश्यकता-नुसार अभिव्यंजनावाद, घनवाद एव अतियथार्थवाद का प्रयोग किया है। जोसेफ स्टेला व चार्लस डेमथ ने महसूस किया कि केवल घनवाद में ही आधुनिक विज्ञान व अभियान्त्रिकी के समरूप तत्त्व है अतः घनवाद की वर्तमान भौतिक दृष्टि से विकसित जीवन के चित्रण के लिये उपयुक्त है। उन्होने आधुनिक स्वरूप के यंत्रसज्ज शहरी दृश्यो को चित्रित किया है किन्तु उनके चित्र घनवाद से भी विशुद्धवाद व लेजे की कला के अधिक समरूप है। जार्जिया ओकीफ की अत्यधिक ऐंठन दे कर चित्रित की गयी वनस्पतिया व फूल इस लोक के नहीं बल्कि माक्स एर्न्स्ट या इवे ताग्वी की काल्पनिक सृष्टि के लगते है।

स्थानाभाव के कारण उपर्युक्त विवरण संक्षेप में ही दिया गया है एव शेष ख्यातनाम कलाकारो के बारे में जानकारी देना यहाँ सभव नही है।

□□□

14
मेक्सिकन कला

परंपरा, आधुनिकता व सामाजिक विचार का समुचित व इतना परिणाम-कारी सम्मिश्रण मेक्सिकन कला के अलावा किसी अन्य देश की कला में नहीं मिलता। भारत में अमृता शेरगिल ने अपनी अल्पायु में, इसी दिशा में कुछ प्रयत्न किये, किन्तु पारंपरिक आध्यत्मिक ज्ञान की गहराई की कमी, आधुनिक कला के समान आकार व अभिव्यक्ति में व्याकुलता का अभाव व केवल बाह्य समाज-दृश्यों तक सीमित विचार-दर्शन-रहित चित्रण के कारण उनकी कला आत्म-संतुष्ट प्रतीत होती है व उसमें मेक्सिकन कला का मार्गदर्शन का सामर्थ्य नहीं है।

मेक्सिकन कला के पुनरुत्थान का आरंभ 1910 के बाद हुआ। 1919–20 में हुई राजनीतिक क्रांति ने जिसमें कई कलाकारों ने सक्रिय भाग लिया था—उसमें चेतना प्रदान की। प्राचीन देशज परंपरा समृद्ध लोककला व उन्नीसवीं सदी के पोसादा जैसे उपहासात्मक सामाजिक चित्रण करने वाले कर्त्तव्यनिष्ठ कलाकारों का कार्य मेक्सिकन कला के पुनरुत्थान के प्रमुख आधार थे।

राजनीतिक क्रांति के बाद विचारक राष्ट्रीय चेतना को प्राचीन परंपरा के अनुकूल रूप देने में जुट गये व इस विचार ने विश्वप्रसिद्ध मेक्सिकन भित्ति-चित्रण की नींव डाली। शिक्षा-मंत्रालय ने कलाकारों को मेक्सिको शहर के राष्ट्रीय प्रारंभिक विद्यालय की दीवारों पर चित्रण करने को आमन्त्रित किया व रिवेरा, ओरोस्को, सिकेरोस व अन्य कलाकार सामूहिक रूप से जनता की भावनाओं को चित्रों में अभिव्यक्त करने के लिये पहुँचे। अभिव्यक्ति के अनुकूल रूपांकन के लिये उन्होंने 13वीं सदी की योरपीय पच्चीकारी से लेकर आर्नुवो शैली तक सबका सहारा लिया किन्तु सबसे ज्यादा बल देशी परंपरागत शैली के आकारों के स्मारकीय विकृतिकरण पर दिया व छात्रों के अभिभावकों, नागरिकों व समाचार पत्रों ने उनकी कटु आलोचना की। अतः भित्तिचित्रण का कार्य स्थगित करना पड़ा। इस आपत्ति से विचलित न होकर कलाकार संघ ने घोषणापत्र के जरिये क्रांति के ध्येयों पर निष्ठा जाहिर की व कला को सामाजिक चेतना का माध्यम बनाने का निश्चय व्यक्त किया। इस आंदोलन के प्रणेता थे डायगो रिवेरा व होसे क्लेमेंट ओरोस्को। अब रिवेरा ने शिक्षा-मंत्रालय भवन में व चापिंगो में ज्यो-तो, घनवाद व देशज परंपरा के संमिश्रित रूप में भित्तिचित्रण करके मेक्सिकन राज्यक्रांति की कहानी व जनता की आकांक्षाओं को अंकित किया। ओरोस्को को मेक्सिको शहर के कुछ प्रतिष्ठित

नागारिकों ने निजी तौर पर राष्ट्रीय प्रारंभिक विद्यालय में भित्तिचित्रण करने को बुला लिया। 1927 के बाद रिवेरा व ओरोस्को को अमेरिका के कई शहरों मे भित्तिचित्रण का कार्य सौंपा गया व उन्होंने कार्ल मार्क्स के समाजवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे औद्योगिक समाज मे विद्यमान वर्गविग्रह, अव्यवस्था व अन्याय को उन भित्तिचित्रों मे प्रकट रूप दिया।

1930 के पश्चात् भित्तिचित्रण से असतुष्ट होकर मेक्सिकन कलाकार छोटे आकार के चित्रो की निर्मिति की ओर ध्यान देने लगे जो कलाकार के व्यक्तित्व व रुचि के अधिक अनुकूल थी। भित्तिचित्रण के समान, व्यापक, प्रचारात्मक प्रभाव नही होते हुए, छोटे आकार के चित्रों मे परिस्थिति व विचारों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की जो गुंजाइश है वह भित्तिचित्रण मे नही हो सकती। अब स्वतंत्र रूप से बनाये जाने वाले तिपायी-चित्रो मे कलाकार की व्यक्तिगत विशेषताए व पहचान स्पष्ट हो गयी। डोसामांटेस ने मानव-शरीर-सौंदर्य को आदर्श मान कर उसका सरलीकृत आकारो मे चित्रण किया तो चालोर्ट की कला का आदर्श थी प्राचीन मूर्तिया। गैरेरो गाल्वन ने भी मूर्तिकला को आदर्श मान कर बचपन की स्मृति व्याकुलता के चित्र बनाये है। तामायो के आरंभिक दृश्यचित्रों में योरपीय नवशास्त्रीयतावाद का अनुकरण है। करीब सभी कलाकारों के चित्रों की समान विशेषता है काव्यमयता, जिसमे दु:ख, आशा, उल्हास आदि मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति है।

निजी ढंग से चित्रण करने का स्वातंत्र्य मिलते ही कलाकारो का ध्यान योरपीय आधुनिक शैलियो की ओर आकृष्ट हुआ व वे उनका अनुसरण करने लगे। इस दिशा में रुफिनो तामायो काफी सफल हुए व उन्होने कलाक्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान व ख्याति प्राप्त की। उनके चित्रों पर घनवाद व अभिव्यजनावाद का स्पष्ट प्रभाव है। कोई अल्पसख्य कलाकारो ने ही अतियथार्थवाद को अपनाया जिनमें मेजा, सिकेरो व फिडा काहलो प्रमुख थे।

क्रांति के आदर्शों का परिणाम बहुत समय तक बना रहा व लिओपोल्डो मेंडिस, फ्रान्सिस्को गार्टिया, ओगोर्मान आदि कलाकार समाजवादी विचारधारा व सामाजिक दृश्यों के चित्र बनाते रहे।

मेक्सिकन पुनरुत्थान की कला का महत्त्व निम्नलिखित विचारो से निर्धारित है—उसका तीसरे दशक मे अमेरिका पर हुआ प्रभाव, विदेशी कलाकारो को आकृष्ट करने का सामर्थ्य, क्रांतिकारी विचारधारा को अर्पित कला व आधुनिक कला के बीच के विवाद का समाधान एव ओरोस्को, रिवेरा, सिकेरोस व तामायो जैसे विश्वविख्यात कलाकारों की प्रतिभा का विकास व योगदान।

तामायो का जन्म 1899 मे ओक्साके में आदिवासी जार्पोटेक वश के परिवार मे हुआ। स्थानातरण कर के परिवार मेक्सिको शहर पहुंचा जहा तामायो ने कुछ बरसों तक सान कार्लोस अॅकेडेमी मे कलाध्ययन किया किन्तु वे मासिक पत्रिका मे छपी हुई आधुनिक कला की [illegible] से अधिक प्रभावित हुए।

पिकासो व ब्राक के चित्र उनको ज्यादा पसंद थे जो उनके विचार से सान कार्लोस अॅकेडेमी मे पढ़ाई जानेवाली कला से पारंपरिक कला के अधिक निकट थे। उन्होंने कोलंबस के आगमन के पूर्व की कला का अध्ययन मेक्सिको शहर के राष्ट्रीय संग्रहालय में किया जहा मायँन एन्टेक जापॅटेक आदि प्राचीन शैलियो की कलाकृतिया सगृहीत थी। इसके अतिरिक्त फ्रेंच कला अग्रगामी कला की प्रतिकृतियो व कभी मेक्सिको मे आनेवाली मूलकृतियो को देखना वे कभी नही छोड़ते। ऐसे भिन्न स्रोतों ने तामायो की कला को परिपुष्ट किया जो सब से आवश्यक तत्त्वों को आत्मसात कर के स्वतंत्र निजी रूप में विकसित हुई। घनवाद के समान उनके आकार अर्द्ध वस्तु निरपेक्षत्व लिये हुए है। देशी भूरगों से प्रचुर व चमकीले रंगों के सूक्ष्म प्रयोग के साथ की गयी उनकी रंग योजनाएं बहुत ही आकर्षक होती है। उन्होंने अमेरिका मे स्मिथ महाविद्यालय, एरिजोना महाविद्यालय वाशिंग्टन में एव मेक्सिको में भित्तिचित्र बनाये किन्तु वे मुख्य रूप से मध्यम आकार के पट-चित्रों के लिये ही सुविख्यात हैं।

डायगो रिवेरा (1886-1957) का जन्म मेक्सिको के ग्वान प्रदेश मे हुआ व उन्होने कला की शिक्षा सान कार्लोस अॅकेडेमी में प्राप्त की। आयु के 57वें साल में विशेष अध्ययन के लिये पहले स्पेन गये व बाद मे उन्होंने फ्रान्स, बेल्जियम, हालैंड व इंग्लैंड की यात्राएं की। 1921 में वे फिर पैरिस गये और वहा दस बरसो तक रहे। वहा उनका पिकासो, ब्राक व हुवान ग्रीस से परिचय हुआ। सेजान की कला ने उनको सब से अधिक प्रभावित किया। उसके पश्चात् इटाली जा कर एक साल तक ज्यो-तो के भित्तिचित्र व पच्चीकारी का अध्ययन कर के वे मेक्सिको वापस आये। मेक्सिको की कला के पुनरुत्थान के वे एक प्रणेता थे। शरीर से हृष्टपुष्ट रिवेरा स्पष्टवक्ता थे और उन्होने वादग्रस्त व कभी आपस में विरोधी विचार व्यक्त किये हैं। उनका कथन है, "कला को प्रचारात्मक होना चाहिये। जो कला प्रचार नही करती वह कदापि कला नही है। मैं श्रमिक हूं। मैं अपने वर्ग के लिये चित्र बनाता हूं—जो है श्रमिक वर्ग।" वे कई बार साम्यवादी पक्ष के सदस्य बने और उससे पृथक् हुए। उनके भित्तिचित्र विशाल व आलंकारिक प्रभाव के हैं व कईओ में राजनीतिक प्रचार है। 1933 में रॉकफेलर केंद्र में बनाया उनका भित्तिचित्र नष्ट कर दिया गया क्योंकि उन्होने उससे लेनिन की शीर्षाकृति को हटाने से इनकार कर दिया। मेक्सिको व अमेरिका में बनाये भित्तिचित्रों के अतिरिक्त उन्होंने उत्कृष्ट तिपायी-चित्र भी बनाये।

डाविड आल्फारो सिकेरोस का जन्म 1898 में चिव्हाव्हा (मेक्सिको) में हुआ। उनकी पीड़ित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति थी। उनके प्रसिद्ध चित्र 'चीख की प्रतिध्वनि'[1] मे उन्होंने बमवर्षा से ध्वस्त नगर के अवशेषों मे एक असहाय बच्चे को रोते हुए चित्रित करके विध्वंसक युद्धो की निर्भत्सना की है। वे मेक्सिकन क्रांति युद्ध में आयु के सोलहवें साल मे भरती हुए थे व युद्ध की विभीषिका के प्रत्यक्ष

अनुभव से युद्ध से तीव्र घृणा करने लगे। एक साल तक योरप मे अध्ययन करने के पश्चात् राष्ट्रीय भित्तिचित्रण परियोजना मे सम्मिलित हुए। उनका मत था कि कला को केवल ध्येयवादी प्रचार का माध्यम बनाने के बजाय उसके आंतरिक गुणों का विकास कर के समयानुकूल अभिव्यक्ति के हेतु कलानिर्मिति की जाये तो, विषय प्राचीन हो या वर्तमान, कलाकृति सर्वकालीन महत्व की बनती है।

इटालियन कला में जो स्थान मायकेल एन्जेलो का है वैसा ही स्थान मेक्सिकन कला में होसे क्लेमेंट ओरोस्को ने (1883-1949) प्राप्त किया। ओरोस्को का जन्म मेक्सिको के हालिस्को राज्य के गुज़्मान शहर में हुआ। जब उनका परिवार मेक्सिको शहर रहने आया तब प्राथमिक शाला से आते-जाते समय उनको प्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार पोसादा के छपाई-चित्रों की दूकान की खिड़की में से उनका कला कार्य देखने को मिलता जिससे उनमें कला प्रेरणा जागृत हुई। अब वे सान कार्लोस अॅकेडेमी की चित्रकला की रात्रिकक्षा में अध्ययन करने लगे। जब वे 14 साल के हुए तब उनको सान हासिन्टो के कृषिविद्यालय में भरती कराया। किन्तु वे वापस आकर राष्ट्रीय प्रारंभिक विद्यालय में दाखिल हुए क्योंकि वे कृषक बनना नही चाहते थे। चित्रकार बनने की उनकी हार्दिक इच्छा थी व पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने आजीविका के लिये आरंभ मे नक्शानवीस की नौकरी व बाद मे समाचारपत्र का चित्रण कर के साथ-साथ कर्लोस अॅकेडेमी में कला का अध्ययन किया। उन्होंने मेक्सिकन राजनीतिक क्रांति मे भाग लिया किन्तु बचपन में बांया हाथ कट जाने से व कुछ उनकी स्वभाव के कारण उन्होने अधिकतर योगदान चित्रकला के जरिये ही किया। प्रत्यक्षदर्शी के रूप मे 1913 से 1917 तक की अवधि मे उन्होंने क्रांति के जो कच्चे रेखाचित्र बनाये थे उनसे उन्होंने 'मेक्सिकन क्रांति'[2] शीर्षक की परिणामकारी रेखाचित्रमालिका तैयार की। युद्ध की भयानकता मेक्सिको शहर तक पहुँचने से पहले वे वहां के बदनाम इलाके के निरीक्षक थे जब उन्होंने 'आंसुओं का घर'[3] शीर्षक की प्रमुखतया जलरंगो में चित्रित मालिका तैयार की जिसमे उस इलाके की स्त्रियों के दुःखमय जीवन की मर्मभेदी कहानी अंकित की गयी है। दो बरसो बाद जब वे पहली बार अमेरिका गये तब सीमारेखा पर उनके 120 चित्रो में से आधे चित्रों अश्लील मान कर नष्ट कर दिये गये। 1922 तक क्रांति का कार्य समाप्त हो गया। ओरोस्को व रिवेरा के नेतृत्व में मेक्सिकन कलाकार संघ ने प्राचीन मेक्सिकन भित्तिचित्रण के पुनरुत्थान को आरंभ किया जिनके लिये सरकार से आर्थिक सहायता व भवनों की दीवारें प्राप्त हुईं। वैसे ओरोस्को निष्ठावान साम्यवादी कभी नहीं थे। वे व्यक्तिस्वातंत्र्य के पक्ष मे थे व चाहते थे कि हर व्यक्ति को विकास का अवसर प्राप्त हो।

जब 1927 में व्यवसाय के हेतु ओरोस्को अमेरिका पहुंचे तब शुरू में ही वे आर्थिक संकट मे पड़ गये। किन्तु सानफ्रान्सिस्को की पत्रकत्री श्रीमती रीड ने संग्रहालयों व वीथिकाओं का उनकी कला की ओर ध्यान आकृष्ट कर के एवं उनके

चित्रों को प्रदर्शित करके सहायता करने की कोशिश की। 1929 में ओरोस्को के चित्रों के विक्रय के हेतु श्रीमती रीड ने एक कलावीथिका का उद्घाटन किया। यहां ओरोस्को के अलावा सिकेरोस, रिवेरा, बेन्टन आदि कलाकारों के चित्र भी प्रदर्शित होते थे। अब ओरोस्को को कालिफोर्निया के शहर क्लेरमाट में पोमोना महाविद्यालय में 'प्रोमिथ्युस' की कहानी पर भित्तिचित्र बनाने का कार्य मिला। यह उनकी विख्यात कृति है। न्यूयार्क के 'सामाजिक अनुसन्धान विद्यालय'[4] में उन्होने अपना अमेरिका में सब से विशाल भित्तिचित्र बनाया जिसका विषय था 'नये विश्व की संस्कृति की वीर कथा'[5]। इसमें कुछ स्थानों पर कटुतापूर्ण उपहासात्मक चित्रण है; पैगम्बरों की वाणियों का उल्लंघन कर लोग एक दूसरे के प्रति जो दुर्व्यवहार व अन्याय करते है उसका विचार कर के एक जगह ईसा को क्रूस को कुल्हाड़ी से तोड़ते हुए दिखाया है; मेक्सिकन कला के देवता को देश छोड़ कर चले जाते हुए दिखाया है व वर्तमान सभ्यता के जन्मदाता विद्वानों को कंकालों के रूप में अंकित किया है, जो शिक्षा के जरिये फिर कंकालों का निर्माण करते है।

जब ओरोस्को मेक्सिको लौटे तब उनको भित्तिचित्रण का बहुत-सा कार्य सौंपा गया। बेलास आर्टेस कला भवन में उन्होने जो भित्तिचित्र बनाये उनमें पतित स्त्रियों की दर्दभरी कहानी है। उनके ग्वाड लेहारे के भित्तिचित्रण में उनकी कला चरमोत्कर्ष तक पहुची है। 1940 में उन्होंने न्यूयार्क के आधुनिक कला संग्रहालय के लिये सुवाह्य भित्तिचित्र बनाया। छः टुकड़ों में विभाजित इस प्लास्टर की भित्ति को लोहे की जाली से मजबूत की है। एक हिस्से में 'गोतामार बम-वर्षक'[6] के ध्वस्तावशेषों को चित्रित किया है जिनमें से चालक की टांगें बाहर निकल रही हैं। इस भित्तिचित्र की विशेषता यह है कि इसके छः हिस्सों से किसी भी तरह की पुनर्रचना की जाये तो भी उसका संपूर्ण प्रभाव वैसा ही होता है जो यन्त्र द्वारा मानव का विनाश। ओरोस्को की आयु के अंतिम दिन तक कलासर्जन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 1949 में उन्होने एक दोपहर को कुछ अधूरा चित्र बना के रख दिया व उसी रात को उनका शान्तिपूर्ण निधन हुआ। मेक्सिकन सरकार ने उनको राष्ट्र के अमर पुरुषों में घोषित करके उनके शव का राष्ट्रीय सम्मान के साथ दफन किया व उनके ग्वाड लेहारे के कार्यकक्ष को उनका स्मारक बनाया।

□□□

15
वस्तुनिरपेक्ष कला

जिस कला में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक वस्तु के रूप की ओर कोई संकेत नहीं होता ऐसी कला को इंग्लिश भाषा में 'एब्स्ट्रेक्ट' या 'नोनफिगरेटिव'[1] कला कहते हैं। एब्स्ट्रेक्ट शब्द का मूल अर्थ 'सारतत्त्व निकालना' होने के कारण कुछ विद्वान् एब्स्ट्रेक्ट शब्द के प्रयोग के विरुद्ध हैं क्योंकि उनके विचार से यह शब्द अपरोक्ष रूप से वास्तविकता की रूपजन्य अनुभूति की ओर ही निर्देश करता है; अतः उनके विचार से 'नोनफिगरेटिव' शब्द का प्रयोग अधिक उचित है। वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रारंभिक काल में वस्तु सृष्टि के बाह्य रूप से प्रेरणा लेकर किन्तु प्रत्यक्ष दर्शन से बाह्य रूप हटाकर कलाकृतियां बनायी गयी व उनको 'एब्स्ट्रेक्ट' कला नाम से संबोधित किया गया; बाद में जब मोंद्रियान ने पूर्ण रूप से काल्पनिक ज्यामितीय आकारों में तत्सदृश कलाकृतियां बनायी तब ऐसी कृतियों के संदर्भ में भी रूढ़ 'एब्स्ट्रेक्ट' शब्द को प्रयोगान्वित किया गया यद्यपि मोंद्रियान की कृतियों को 'नोन-फिगरेटिव' कहना अधिक उचित है। इस पुस्तक में दोनों के लिये 'वस्तुनिरपेक्ष' शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि कुछ लेखक 'अमूर्त' शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

वस्तुनिरपेक्ष आकारों के सौंदर्य की अनुभूति कोई नयी कल्पना नहीं है यद्यपि वस्तुनिरपेक्ष कला बीसवीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण देन मानी गयी है। प्राचीन काल के कलाकारों ने भी यह अनुभव किया था कि कलाकृति को वस्तुनिरपेक्ष गुणों में ही सौंदर्य व सामर्थ्य प्राप्त होते हैं। कलाकृति किसी भी शैली की या किसी भी काल की हो उसकी परिणामकारकता अन्तर्गत वस्तुनिरपेक्ष गुणों पर निर्भर करती है। यदि हम प्राचीन से लेकर अब तक की श्रेष्ठ कलाकृतियों का परिशीलन करेंगे तो ज्ञात होगा कि केवल अन्तर्गत विचार या विषयवस्तु के महत्त्व से कलाकृति को श्रेष्ठ नहीं माना गया है। विचार या विषयवस्तु के परिणामकारक दर्शन के लिये भी कलाकृति में वस्तुनिरपेक्ष गुणों–यानी रंग, रेखा, सतह आदि मूलतत्त्वों के निजी चैतन्य–का विकास आवश्यक है। यह एक इतना मूलभूत सिद्धांत है कि इस पर किसी कलाकार ने स्वतन्त्र विचार की आवश्यकता को अबतक महसूस नहीं किया; भोजन में मसाला होना जैसे गृहीत माना गया है उसी प्रकार चित्र के अभिप्राय से उसके वस्तुनिरपेक्ष गुणों को अविभाज्य माना गया। कलाकृति बनाते समय, कलाकार उसके अन्तर्गत सौंदर्यजागृति को अनुभव किया करते थे और उससे संतोष मिलते ही उसको पूर्ण करके दूसरी कलाकृति के निर्माण में लग जाते थे। इसके

अधिक अन्तर्गत सौंदर्यात्मक गुणों का विचार करने की आवश्यकता को उन्होंने महसूस नहीं किया।

प्राचीन धार्मिक चित्रों के सौंदर्यात्मक रसग्रहण के लिये धर्मज्ञान आवश्यक नहीं है; यथार्थवादी व्यक्तिचित्र का कलात्मक सौंदर्य व्यक्तिसादृश्य पर निर्भर नहीं करता; इन कलाकृतियों की सौंदर्यात्मक श्रेष्ठता का निकष है अन्तर्गत वस्तुनिरपेक्ष तत्त्वों का स्वाभाविक विकास। प्राचीन बिजान्टाइन, जापानी, बौद्ध, पर्शियन व राजपूत कलाकारों ने हूबहू बनाने के उद्देश्य से वस्तुओं व प्राणियों का चित्रण नहीं किया; परिणामस्वरूप अपने चुने हुए माध्यम के–रंग, लकड़ी, रंगीन कांच, पत्थर, कपड़ा आदि–अन्तर्गत गुणों का वे चरमसीमा तक स्वाभाविक एवं कलात्मक विकास कर सके व विषय प्रतिपादन के अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्ष गुणों के सौंदर्यदर्शन के विचार से भी उनकी कृतियां श्रेष्ठ बन गयी। पुनर्जागरणकाल से यथार्थ–रूप–सादृश्य की ओर कलाकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ एवं उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर हूबहू चित्रण शुरू किया जो 19वीं शताब्दी तक बहुत लोकप्रिय रहा और उसके साथ कलातर्गत वस्तुनिरपेक्ष गुणों की उपेक्षा हुई।

इस प्रकार कला के इतिहास में कलाकार का सदैव द्विविधि दृष्टिकोण रहा; एकतरफ विषय प्रतिपादन के उद्देश्य से वस्तुसादृश्य का विचार व दूसरी तरफ सौंदर्य व अभिव्यक्ति के सामर्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य से वस्तुनिरपेक्ष गुणों के विकास का विचार; दोनों दृष्टिकोणों का कभी पृथक् होना अटल था व इसी पृथक्करण में वस्तुनिरपेक्ष कला का जन्म हुआ।

सर्वप्रथम प्लेटो ने वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का विचार करके लिखा कि "वृत्त, आयत ऐसे आकार हैं जो किसी बाह्य कारण से या उपयुक्तता की वजह से सुन्दर नहीं है बल्कि सौंदर्य उनकी प्रकृति है एवं उनसे ऐसी सौदर्यानुभूति होती है जो निरिच्छ निर्विकार है; इस प्रकार रंगों के विशुद्ध प्रयोग में भी यह सौंदर्य है"[2]।

बीसवीं शताब्दी में भौतिक–विज्ञान, रसायन-विज्ञान, उद्योग एवं सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में विकास को अकल्पित गति प्राप्त हुई; दूरगामी वेगवान यातायात के साधनों का आविष्कार हुआ एवं देश-विदेशों के बीच का अन्तर नगण्य हो कर वैचारिक व सांस्कृतिक आदानप्रदान होने लगा। बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल कला को नया विश्वव्यापी रूप प्राप्त होना अपरिहार्य था; यह रूप था– वस्तुनिरपेक्ष कला। इस कला का प्रभाव शहर-निर्माण, भवननिर्माण, औद्योगिक कला, हस्तकला, साजसज्जा आदि मानव के सभी सर्जनक्षेत्रों पर दिखायी देता है। बीसवीं शताब्दी के मानव का जीवनदर्शन, आदर्शवाद से विचलित होकर, अस्तित्ववादी[3] बन गया है। क्षण में सीमित सौदर्यानुभूति को ही आज का मानव सत्य मानता है–अतः वस्तुनिरपेक्षत्व आज की कला का आधारभूत तत्त्व बन गया है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

किंतु यह सब अचानक नहीं हुआ। बोदेलेर व बाल्जाक के लेखों में समकालीन कला की भविष्य मे वस्तुनिरपेक्षता मे परिणति होने की घनिष्ठ संभावना को सूचित किया था। प्रभाववादी, उत्तरप्रभाववादी एवं फाववादी अंकनपद्धतियो में वस्तुनिरपेक्षता की ओर अविचारित प्रगति थी। प्रभाववादियो ने चित्र के पूरे प्रभाव को अपना लक्ष्य बना कर वस्तु के वैयक्तिक महत्त्व को घटा दिया एवं अपनी मुक्त अंकनशैली से रंगों के सौंदर्य व सतह की बुनावट की ओर कलाकारो व कलाप्रेमियों का ध्यान आकर्षित किया। फाव व अभिव्यंजनावादी चित्रकारो ने इसके आगे बढ कर चित्र मे रगों के स्वाभाविक सौंदर्य का विकास करने के उद्देश्य से वस्तु के नैसर्गिक वर्णो की पूर्ण उपेक्षा करके रगों का विस्तृत क्षेत्रो मे व केवल रगसगति व प्रतीकात्मकता का विचार करके प्रयोग किया तथा रेखा के अभिव्यक्ति के स्वाभाविक सामर्थ्य को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से सरलीकृत एव ऐंठनदार रेखांकन शुरू किया। घनवादी व भविष्यवादी कलाकारो ने ज्यामितीय आकारो का प्रयोग शुरू किया और वे वस्तुनिरपेक्षता के काफी निकट पहुँचे किन्तु उनको वस्तुनिरपेक्षता के क्षेत्र मे रिक्तता का भय था व वे अपनी कला को पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष नही बना पाये; इसके अतिरिक्त वास्तविकता में ही उनको कुछ ऐसा भावनात्मक सौन्दर्य दिखायी दे रहा था जिसको उन्होने सर्जनात्मक अनुभूति के लिये पर्याप्त माना और उसको रचनात्मक रूप दिया। इस प्रकार भिन्न अवस्थाओ को पार करते हुए रग, रेखा व आकारो ने वस्तुनिरपेक्ष कला के अन्तर्गत वस्तुसादृश्य के बाह्य लक्ष्य से मुक्त होकर, अपने सौन्दर्याभिव्यक्ति के स्वाभाविक सामर्थ्य को प्राप्त किया।

प्राचीन काल मे भी केवल समस्त वस्तुनिरपेक्ष आकारों द्वारा चित्रण किया गया किन्तु उसका प्रभाव मुख्य रूप से आलकारिक रहा एव मानवीय भावनाओं को व्याकुल करने का उसमें सामर्थ्य नही था जिसके उदाहरण है पर्शियन गलीचो व चीनी मिट्टी के बरतनो का अलंकरण। केवल सुन्दर रंगो; रेखाओं व आकारों के सयोजन से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृति का निर्माण नही होता जब तक उसमे भावनोद्दीपन का सामर्थ्य नही होता; विरोधाभास की भाषा मे, ऐसी कलाकृति बाह्य रूप मे वस्तुनिरपेक्ष होते हुए वस्तुसृष्टि के आतरिक चैतन्य से ओतप्रोत होनी चाहिये—उसका दर्शक की आत्मा से वैसा ही निरपेक्ष सम्पर्क होना चाहिये जैसा वस्तुसृष्टि के आतरिक चैतन्य का होता है।

आधुनिक कलाकारो द्वारा किये गये संगीत के अध्ययन से एव कला की संगीत के साथ की गयी तुलना से कला वस्तुनिरपेक्षता की ओर अधिक तेजी से गतिमान हुई। शोपेनहोर ने लिखा है "सभी कलाएँ संगीत की ओर प्रवर्तित है"[4]। इस विचार ने आधुनिक कलाकारों को सगीत-सदृश वस्तुनिरपेक्षता की दिशा मे प्रयोग करने को प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कलाकारो ने विशुद्धतावादी दृष्टिकोण अपना कर, कला के मूलतत्वो का बाह्य उद्देश्य से पृथक विचार शुरू किया एवं उनके

स्वाभाविक विकास पर ध्यान केन्द्रित किया; परिणामस्वरूप वस्तुसादृश्य, विचार-दर्शन, कथन, संदेश, प्रचार, प्रासंगिक महत्व वगैरह बाह्य उद्देश्यों का महत्व संकुचित होता गया और अन्त में कला को पूर्ण रूप से वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ।

कान्डिन्स्की व मोंद्रियान को वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रणेताओं का स्थान दिया जाता है यद्यपि वस्तुनिरपेक्ष कला काफी समय तक कलाक्षेत्र में चलती हुई विचार-क्रांति की परिणति थी। कान्डिन्स्की ने अपना प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्र 1910 में जलरंगों में चित्रित किया। उस समय वस्तुनिरपेक्षता के विचार से ऐसी जागृति पैदा हुई थी कि भिन्न कलाकारों ने स्वतन्त्र रूप से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियाँ बनायीं। 1911 में मास्को में लारियोनोव ने व 1912 में देलोने व कुपका ने वस्तुनिरपेक्ष कृतियाँ बनायी। 1913 में बनाये लेजे के चित्र 'आकारों का विरोध'[5] व देलोने की सुरीलवादी कृतियों में वस्तुनिरपेक्षता का पर्याप्त विकास है यद्यपि दोनों की कला का उद्‌गम वास्तविकता के दृश्य सौन्दर्य की अनुभूति था। कान्डिन्स्की से पहले भी कुछ चित्रकारों ने अपवादात्मक वस्तुनिरपेक्ष कृतियों का निर्माण किया था। 1893 में डच चित्रकार हेन्री वान डे वेल्ड ने मासिकपत्रिका के लिये कुछ वस्तुनिरपेक्ष काष्ठ-खुदाई का चित्रण किया। 1816 में औगुस्ट एडेल ने म्यूनिक के एक छाया-चित्रकार की दूकान के अग्रिम भाग पर वस्तुनिरपेक्ष आकृतियाँ चित्रित की। 1906 में होल्सेल ने वस्तुनिरपेक्ष-चित्रण का प्रयोग किया। 1907 में मार्क ने अपने प्रयोग के बारे में लिखा "...यथार्थ वस्तु का विचार किये बिना केवल रंगों द्वारा चित्रण कर के देखना चाहिये"। उन्होंने माके से किये पत्रव्यवहार में, संगीत रचना के समान, वस्तुनिरपेक्ष रंगसंगति के मनोवैज्ञानिक परिणाम व भावनोद्दीपन के सामर्थ्य की सम्भावना का उल्लेख किया। 1906 में आस्ट्रियन आल्फ्रेड कुबिन ने मायक्रोस्कोप देख कर निर्णय लिया कि हम अपनी आंखों से जैसे देखते है उससे दृश्य जगत् की रचना भिन्न व जटिल है। उन्होंने स्फटिकों, सीपों व अन्य वस्तुओं से रचनाएँ कर के अनोखा सर्जनात्मक आनन्द प्राप्त किया। 1905 में संगीतकार स्युलिओनिस (1874-1911) ने संगीत को दृश्य समरूप में साकार करने के उद्देश्य से चित्रण शुरू किया व 'सागर सर्गीत', 'सूर्य संगीत', 'सर्प संगीत'[6] जैसे शीर्षक देकर चित्र बनाये। 1908 में पिकाबिया ने अपना वस्तुनिरपेक्ष चित्र 'रबड' बनाया व 1909 में योसेफ लाकास ने कुछ वस्तुनिरपेक्ष जलरंगचित्रण किया।

वस्तुनिरपेक्ष ध्येय को 1906 व 1914 के बीच के काल में सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ। कान्डिन्स्की ने अपने कार्यकक्ष में उलटे रखे हुए निजी चित्र से वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का साक्षात्कार किया; घूमने निकले कुपका को अचानक निसर्गदृश्य के अंतर्गत वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का दर्शन हो कर उन्होंने चित्रण में निसर्ग के बाह्य रूप की प्रतिकृति करने के लिये क्षमायाचना की व पुनश्च ऐसे न करने की प्रतिज्ञा की; 1909 में मारिनेत्ति का भविष्यवाद का घोषणापत्र', 'ल फिगारो' में प्रकाशित हुआ; मोंद्रियान ने दैनंदिनी में लिखा "वस्तु के बाह्य रूप से सुख प्राप्त होता है तो

आंतरिक चैतन्य से जीवन"[7] ; देलोने ने 'समयावच्छेदी खिड़कियां' चित्रित कर के वस्तुनिरपेक्षता की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाया; कान्डिन्स्की ने अंतिम निर्णय दिया, "कला में हर बात का स्वातंत्र्य है"[8] ।

आधुनिक कला के इतिहास में 1912 यह वर्ष खलबलीपूर्ण रहा । घनवाद विकास के अंतिम बिंदु तक पहुंचा था एवं मोंद्रियान ने घनवाद का अध्ययन कर के नवलचीलवाद की दिशा में कदम उठाया; भविष्यवादी चित्रकारों की बर्गेमजोन कलावीथिका में प्रदर्शनी हुई; देलोने ने 'समयावच्छेदी खिड़कियों' को व मार्सेल द्यूशा ने 'जीने पर उतरती हुई विवस्त्र स्त्री' को प्रदर्शित किया; सेक्शिओ दोर प्रदर्शनी का आयोजन हुआ; ग्लेजे व मेंजिजे की पुस्तक 'घनवाद' प्रकाशित हुई; कान्डिन्स्की की पुस्तक 'कला में आत्मिकता' हुई; सभी घटनाएं वस्तुनिरपेक्ष कला के विकास की पोषक रहीं ।

सभी नवविचार के कलाकार घनवाद में परिवर्तन लाना चाहते थे । देलोने ने अपने चित्र 'वृत्तीय लय' एवं लेजे ने आकारों का विरोध' में घनवाद के काफी आगे बढ़ कर चमकीले रंगों के वस्तुनिरपेक्ष आकारों का प्रयोग किया । अपोलिनेर ने देलोने के चित्र 'वृत्तीय लय' के बारे में कहा "इन चित्रों द्वारा वस्तुनिरपेक्ष कला फ्रान्स में प्रकट हो गयी है" । भविष्यवाद के सिद्धांतों के अनुसार आधुनिक जीवन के गतित्व का दर्शन भविष्यवाद का ध्येय था किन्तु बहुत से भविष्यवादी चित्र दर्शन में वस्तुनिरपेक्ष है एवं भविष्यवाद से वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकारों को काफी प्रेरणा मिली; स्वयं मोंद्रियान भी भविष्यवाद से बहुत प्रभावित थे ।

1912 में मोंद्रियान ने 'जिंजरपॉट का वस्तुचित्र', 'पुष्पित वृक्ष'[9] चित्रित किये और आगे विकास कर के उन्होंने 1914 में 'अण्डाकार रचना'[10] यह पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष चित्र बनाया । अन्डाकार का विरोधी आकार के रूप में प्रयोग कर उन्होंने इस चित्र में, खड़ी व आड़ी रेखाओं के मौलिक विसवाद को सुरचित रूप दिया जिसके बारे में उन्होंने स्पष्टीकरण किया है "पौरुषेय व प्राकृतिक–उच्च व प्रसृत"[11] ।

वस्तुनिरपेक्ष कला के इतिहास में मोंद्रियान व कान्डिन्स्की दोनों को समान महत्त्व का स्थान है । मोंद्रियान ने घनवाद के स्थायी रचनासौंदर्य को वस्तुनिरपेक्षता की ओर विकसित किया तो कान्डिन्स्की ने फाववाद व अभिव्यंजनावाद के भावनापूर्ण गतित्व को वस्तुनिरपेक्षता की ओर मोड़ दिया ।

कान्डिन्स्की की पुस्तक 'कला में आत्मिकता' कला को वस्तुसादृश्य के बंधन से मुक्त करने में बहुत सहायक रही । कुपका की वस्तुनिरपेक्ष कला के पीछे घनवाद, भविष्यवाद या फाववाद की प्रेरणा नहीं थी; उसका उदय पूर्णरूप से स्वयंप्रेरित था । देलोने के प्रभाव में आकर दो अमेरिकी चित्रकला मॉर्गन रसेल व स्टॅन्टन मॅक्डोनल्ड राइट ने वस्तुनिरपेक्ष चित्रण शुरू किया व अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कला का आरम्भ उन्हीं से हुआ; वे स्वयं को 'सिन्क्रोमिस्टस्'[12] कहलाते ।

उनके चित्रों की प्रदर्शनिया 1913 में प्रथम म्युनिक में व बाद में पेरिस में हुई। मॉर्गन रसेल ने अपने एक रेखाचित्र के नीचे लिखा था "इसमें जानबूझ कर किसी विषय को चित्रित नही किया है जिससे कि मन के अन्य केन्द्रों को प्रसन्न किया जा सके"[13]। इनके अतिरिक्त आरम्भकालीन वस्तुनिरपेक्ष चित्रकारों में अमेरिकन चित्रकार पैट्रिक हेन्री ब्रूस थे। 1913 मे अमेरिका में हुई 'आर्मरी शो' प्रदर्शनी मे तीनों के वस्तुनिरपेक्ष चित्र प्रदर्शित हुए।

1913 में रशिया में लारियोनोव व गोन्कारोवा ने भविष्यवाद से प्रभावित किरणवाद को जन्म दिया। ध्येय में वस्तुनिरपेक्षता की ओर कोई निर्देश नहीं होते हुए किरणवादी कलाकृतिया दर्शन मे वस्तुनिरपेक्ष है। त्रिभुज, वृत्त, आयत जैसे ज्यामितीय आकारो से बनायीं रशियन चित्रकार मालेविच की सर्वोच्चवादी कृतिया वस्तुनिरपेक्ष कला के उदाहरण है। इनके अतिरिक्त टाटलिन, गाबो व पेवस्नर का रचनावाद व रोकेंको का निर्वस्तुवाद[14] वस्तुनिरपेक्ष ध्येय से प्रेरित थे।

वस्तुनिरपेक्ष कला को—विशेषतया आरम्भकालीन—दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है; पहले वर्ग में किसी प्रत्यक्ष दृश्य से प्रेरणा पाकर मूल आकारो द्वारा वस्तुनिरपेक्ष कृतिया बनायी जाती है, व दूसरे वर्ग मे कल्पना से वस्तुनिरपेक्ष आकारो की योजना करके कृतियां बनायी जाती हैं यद्यपि अंतिम दर्शन में दोनो वर्गों की कृतियो मे कोई भिन्नता प्रतीत नहीं होती।

1915 मे वान डोसबुर्ग व मोन्द्रियान की मुलाकात हुई। दो साल पश्चात् 'डे स्टाइल' पत्रिका द्वारा नये कलात्मक आंदोलन का वैचारिक प्रचार शुरू हुआ व वस्तुनिरपेक्ष नवलचीलवाद का जन्म हुआ। डोसबुर्ग ने योरप में निकट-काल में हुए व हो रहे कलात्मक प्रयोगों का अध्ययन किया था व मोन्द्रियान के साथ पेरिस मे किये कलाध्ययन का उनको प्रात्यक्षित अनुभव था; उन्होंने विशुद्ध आकारो व रेखाओ की भाषा के व्याकरण का अभ्यास द्वारा सशोधन शुरू किया। मोन्द्रियान ने भिन्न रगो के आयताकार समतलों व खड़ी-आड़ी रेखाओं की सहायता से, सुसंगति-पूर्ण निर्दोष व गणित के समान नियमबद्ध रचनाओं का निर्माण शुरू किया। अपने कलात्मक प्रयोगों को उन्होने लेखों द्वारा स्पष्ट किया व वस्तुनिरपेक्ष कला के दर्शनशास्त्र को जन्म दिया। भारतीय दर्शन से प्रभावित डच पडित शोनमाकर्स से मोन्द्रियान की घनिष्ठ मित्रता थी और उनके विचारो से मोन्द्रियान को अपनी कला के विकास मे काफी सहायता मिली।

जिस समय हालैंड मे 'डे स्टाइल' आंदोलन जारी था, मालेविच, पेवस्नर, टाटलिन, कान्डिन्स्की आदि रशियन चित्रकार सर्वोच्चवाद, रचनावाद आदि वादों मे कला को वस्तुनिरपेक्ष रूप दे रहे थे। 1921 के पश्चात् राजकीय विरोध के कारण प्रमुख रशियन नवचित्रकार रशिया छोड़कर पेरिस, लदन व बर्लिन चले गये व उन्होने वहाँ अपनी कला का विकास किया जिससे वस्तुनिरपेक्ष कला का काफी

प्रसार हुआ। 1915–16 के करीब स्विट्जर्लेंड में ज्यां आर्प व सोफी टोबर ने सयुक्त प्रयत्न करके लकड़ी व कागज को काट कर वस्तुनिरपेक्ष आकारों की कोलाज रचनाएं कीं जिससे दादावाद का वस्तुनिरपेक्ष कला के क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इसके अतिरिक्त दादा कलाकार पिकाबिया के यंत्रसदृश व्यक्तिचित्र[15] व श्विटेर्स की कोलाजकृतियां दादावाद व वस्तुनिरपेक्षकला का समन्वित रूप थे।

1918 में ओजांफा व ज्यानेरे (ल काब्युंसिय) ने 'घनवाद के बाद'[16] नाम की पुस्तक प्रकाशित की व कार्यात्मक आकारों से घनवाद को विशुद्ध रूप देने के प्रयत्न किये जो कार्यक्रम दादावाद के आकस्मिक प्रभाव निर्माण के ठीक विपरीत था। उत्तरघनवादी काल में योरप के विभिन्न शहरों में नवचित्रकारों के मंडल घनवाद से प्रेरणा पाकर, नवीन दिशाओं में प्रयोगशील थे जिससे योरपीय कला को पर्याप्त वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ। 1920 के करीब योरप में कलाविषयक लेखों के प्रकाशन के उद्देश्य से कई मासिकपत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ जिनके द्वारा भिन्न देशों के नवकलाकारों में विचारों का आदानप्रदान शुरू हुआ; वे एकदूसरे के निकट आ गये और एकदूसरे से प्रेरणा पाकर नवीन प्रयोगों में व्यस्त हुए। हालेंड मे 'डे स्टाइल', बर्लिन में डेर श्टुर्म,' वार्सा में 'ब्लोक', बेलग्राड मे 'झेनिथ'[17] वगैरह मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। फ्रान्स में 'लेस्प्रित नुवो'[18]—जिसका कुछ साल तक ओजांफा व ल काब्युंसिय ने संपादन किया—व 'कायेदार'[19] पत्रिकाओं ने आधुनिक कला के प्रसार मे प्रशसनीय कार्य किया यद्यपि लोगों की नवीन प्रयोगों के प्रति उदासीनता के कारण उनके संचालकों को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। मोंद्रियान की एक भी वस्तुनिरपेक्ष कृति बिकती नहीं थी व अर्थार्जन के लिये उनको पुष्पचित्र बना कर बेचने पड़ते। वस्तुनिरपेक्ष कला की प्रारम्भिक अवस्था मे भी हमको वे ही द्विविध दृष्टिकोण प्रतीत होते हैं जो उसकी विकसित अवस्था मे हम पोलाक व मोंद्रियान की कलाकृतियों में देखते है; एक तरफ कुछ चित्रकार उन्मुक्त रगांकन से प्राप्त ऐंद्रिय आनन्द में तद्रूप होकर विशुद्ध भावनाओं की अभिव्यक्ति में व्यस्त थे तो कुछ चित्रकार सहजज्ञान पर निर्भर रह कर रगसगति, आकार सौंदर्य व गणितीय रचना के गूढ़ सिद्धांतों द्वारा कलाकृतियों का निर्माण कर रहे थे।

जर्मनी के वाइमार शहर में हुई बौहौस की प्रस्थापना आधुनिक कला के विकास मे बहुत सहायक हुई। 1922 में बौहौस में मोहोली नागी, कान्डिन्स्की व क्ले की नियुक्ति हुई। उस समय वान डोसबुर्ग वहाँ रहते थे और उनके क्रांतिकारी विचारों का विद्यार्थियों पर काफी प्रभाव पड़ता। मोंद्रियान व वान डोसबुर्ग ने कुछ निबन्ध[20] प्रकाशित किये जिनमें निम्नलिखित विचार व्यक्त किये थे "नव-लचीलवाद का उद्गम घनवाद है और हम उसको सत्यार्थ में वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कह सकते हैं।........अबतक सम्पूर्ण चित्रकला का जो लक्ष्य था वही उसका लक्ष्य है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम अप्रकट रूप है। स्थान व मिति, तथा रंगों

व रंगीन समतलों को दिये गये महत्त्व से, लचीले माध्यम द्वारा, पारस्परिक संबधों को व्यक्त किया है—यहाँ कोई आकारनिर्मिति नहीं है। इन पारस्परिक सम्बन्धों को संतुलित रूप देकर नवलचीलवाद ने विश्वव्यापी सुसंवादित्व को व्यक्त किया है। कुछ समय तक कला के आविष्कार कलाक्षेत्र में ही सीमित रहेंगे। समूचे वातावरण को अभी विशुद्ध सुसंवादित्व से निर्मित सौन्दर्यात्मक रूप नहीं दिया जा सकता।"" आज कला उस उत्कर्ष बिंदु पर है जो प्राचीन काल में धर्म ने प्राप्त किया था। सत्यार्थ में, धर्म निसर्ग का किसी विशेष स्तर पर किया गया अवस्थातर मात्र है"—मोंद्रियान। "सम्भवतः कलात्मक अनुभूति व परमोच्च धार्मिक भावना में कोई अन्तर नहीं है। कलाकृति में गहरी आतरिकता होती है, किन्तु यह ध्यान में रखना होगा कि सच्ची कलानुभूति की विशुद्ध अवस्था संदिग्ध या स्वप्निल नहीं होती ""वह सचेत व यथार्थ अनुभूति होती है"—वान डोसबुर्ग। बोहौस ने क्ले की पुस्तक 'अध्यापनशास्त्र की अभ्यासपुस्तिका', कान्डिस्की की 'बिंदु व रेखा से 'समतल' व मालेविच की 'निर्वस्तु जगत्'[21] प्रकाशित की। मोहोली नागी हमेशा सर्जनकला के नये माध्यमों व पद्धतियों की खोज में रहते। 'डे स्टाइल' के प्रभाव से बेल्जियम कलाकार सर्वराक, मास व वान डुरेन ज्यामितीय आकारों में वस्तु-निरपेक्ष कलाकृतियां बनाने लगे। पीटर्स ने अपनी मासिक पत्रिका हेट ओवर्जिश्ट'[22] में प्रकाशित लेख में दर्शकों को सलाह दी "रचनात्मक कलाकृति के सामने यह मत कहना कि कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यहाँ बुद्धि की नहीं बल्कि संवेदनाशीलत्व की आवश्यकता है। आप अनुभव करो या मत करो यह पूर्ण सत्य है"। "यह मत पूछना कि इसका अर्थ क्या है?"। "" चित्र बोल नहीं सकता"।

1921 में कान्डिन्स्की रशिया से वापस जर्मनी गये। अब उनके चित्रों में ज्यामितीय आकार दिखायी देने लगे व उनकी पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष कृतियों को सितारों से जगमगाते विश्वमंडल का रूप प्राप्त हुआ। 1920 के बाद देलोने की कृतियां अधिक वस्तुनिरपेक्ष दिखायी देने लगीं, किन्तु 1930 के पश्चात् ही उनकी कृतियों को विशुद्ध वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ। 1920 से 1930 तक के कालखण्ड में जो कलाकार वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बना रहे थे उनमें पोलेण्ड के चित्रकार ओटो फ्राइंडलिग, अमेरिकन चित्रकार मॅक्डोनल्ड राइट व मॉर्गन रसेल विशेष कार्यशील थे।

1625 में पोलिश चित्रकार पोज्नान्स्की ने पॅरिस में 'आर दोजुर्द'[23] नाम से प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें 87 कलाकारों ने—जिनमें अधिकतर वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकार थे—भाग लिया जिनमें आर्प, बौमिस्टर, ब्राकुसी, ब्यूस, मार्सेल कान देलोने, वान डोसबुर्ग, गोन्कारोवा, क्ले, याकों, मीरो, लारियोनोव, लेजे, मार्कुसिस, मोंद्रियान, निकोलसन, 'ओजाफा, पिकासो, प्राम्पोलिनि, सर्वराक, ग्रोस, वान्टोन्जर्लू थे। प्रदर्शनी की विवरणपत्रिका से उनके उद्देश्यों पर प्रकाश

पड़ता है "सादृश्यरहित लचीली कला की प्रगति का समालोचन–जिसकी संभावना की ओर प्रथम घनवादी आंदोलन ने संकेत किया था—कला को यथार्थ के बोझ से मुक्त करना।..........दर्शक को चाहिये कि वह इन चित्रों को आंतरिक प्रशांति के साथ केवल आंखों से देखकर अनुभव करें—जिसके लिये चाहिये कि वह स्वयं को आलोचनारहित ग्रहणशील अवस्था में प्रस्थापित करें........।

1920–30 के कालखण्ड में कथनात्मक चित्रण का प्रभाव फिर से बढता जा रहा था, अतियथार्थवाद का भी काफी प्रसार हो गया था और कई चित्रकार इन शैलियो के चित्रो के निर्माण मे लगे थे।

1930 में मिशेल सोफो व चित्रकार तोरे-गार्शिया ने 'वृत्त व वर्ग'[24] नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया व उसकी ओर से पॅरिस मे प्रदर्शनी का आयोजन हुआ जिसमें निम्नलिखित प्रमुख वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकारो की कृतिया प्रदर्शित हुई: आर्प, वोमिस्टर, चार्कू'न, ज्या गोरें, हुत्सार, कान्डिन्स्की, ल कार्ब्यु्सिय, लेजे, मोद्रियान, पेफ्स्नर, प्राम्पोलिनि, रूस्सोलो, वान्टोन्जलु; तोरे गार्शिया, वेर्कमन। प्रदर्शनी की विवरणपत्रिका की प्रस्तावना मोद्रियान ने लिखी थी। पौर्वात्य धर्म-कल्पना के अनुसार वृत्त व वर्ग आसमान व पृथ्वी के प्रतीक रूप माने गये है व जो दृश्य अभिव्यक्ति के सब से मूल व सरल आकार है। प्रदर्शनी काफी सफल हुई व उससे प्रेरणा पाकर वान्टोन्जलु व अर्बें ने 'वस्तुनिरपेक्षनिर्माण मंडल'[25] की प्रस्थापना की। 'वस्तुनिरपेक्ष-निर्माण'[26] वार्षिक-पत्रिका 1932 से 1936 तक प्रकाशित होकर वस्तुनिरपेक्षवाद का काफी प्रसार हुआ। 'वस्तुनिरपेक्षनिर्माण' मंडल अधिक उत्साही था व उसने कुछ सदस्यो की कृतियों को कार्यालय-भवन मे स्थायी रूप से प्रदर्शित किया। प्रदर्शनियो से पुराने कलाकारों के अतिरिक्त कुछ नवीन कलाकार बेन निकोलसन, काल्डेर, अर्बे, पालेन, मास्स बिल व आल्फ्रड रेथ आगे बढे।

1936 के करीब, जिस समय 'वस्तुनिरपेक्ष–निर्माण' वार्षिक पत्रिका का अन्तिम अंक प्रसिद्ध हुआ, योरप में आर्थिक दुरवस्था व फासिज्म के प्रसार से कई कलाकारों को देशत्याग करना पड़ा व द्वितीय विश्वयुद्ध की संकटग्रस्त परिस्थिति में योरपीय कला का विकास रुक गया। किन्तु यह वर्ष अमेरिकी आधुनिक कला के विचार से महत्त्वपूर्ण रहा; अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कलाकार सभा'[27] की प्रस्थापना हुई; 'आधुनिक कला संग्रहालय'[28] न्यूयार्क की ओर से घनवादी व वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों की प्रदर्शनी हुई; आल्फ्रेड बार की प्रसिद्ध पुस्तक 'घनवाद व वस्तु-निरपेक्ष कला'[29] प्रकाशित हुई। वैसे इससे पहले ही वस्तुनिरपेक्ष कला का अमेरिका मे प्रसार हो चुका था; गॅल्लाटिन के 'विद्यमान कला संग्रहालय' द्वारा, कॅथेरिन ड्रेएर के 'सोसिएते एनोनिम' द्वारा व हिला रिबे के 'निर्वस्तु चित्रकला संग्रहालय'[30] द्वारा अमेरिकी कलाप्रेमी वस्तुनिरपेक्ष कला से काफी परिचित हो चुके थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में कई योरपीय कलाकार, साहित्यिक, विचारक व वैज्ञानिक योरप छोड़ कर अमेरिका चले गये व अमेरिकी कला व विचार क्षेत्र में नया जीवन पैदा हुआ।

1939 में पैरिस छोड़ कर मोंद्रियान लंदन गये व 1940 में न्यूयार्क पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपनी अन्तिम महत्त्वपूर्ण कलाकृतियां 'ब्राड्वे बुगिवुगि' व 'विक्टरी बुगिवुगि'[31] बनायी। प्रिवटेर्स को नार्वे से भाग कर इंग्लैंड जाना पड़ा जहां उन्होंने फिर से मर्त्सबौ[32] का निर्माण शुरू किया।

विश्वयुद्धजनित परिस्थिति से हुए योरपीय कलाकारों के आगमन से अमेरिकी कला के विकास को गति प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्ष कला के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश पड़ा; सच्ची कला राष्ट्र व धर्म निरपेक्ष होती है व वस्तुनिरपेक्ष कला के संदर्भ में कलाकारों ने यही अनुभव किया। अन्य कला-शैलियों से वस्तुनिरपेक्ष कला का रसग्रहण परोक्ष व अधिक सरल है; उसके लिये पूर्वज्ञान व संदर्भ की आवश्यकता नहीं होती। वस्तुनिरपेक्ष कला द्वारा भिन्न देशों के कलाकार अपनी आंतरिक अनुभूतियों को किसी भी कठिनाई के बिना एकदूसरे के सम्मुख रख सकते हैं। कलाकार जहां जाता है अपने साथ अपनी सौन्दर्यपिपासा व सर्जनशक्ति को ले जाता है; उसके लिये मातृभूमि या विदेश ऐसी कोई स्थानीय मर्यादाएँ नहीं होतीं: जहां जाता है वहां उसका सम्मान होता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् वस्तुनिरपेक्ष कला को भिन्न शाखाओं व उप-शाखाओं में विशाल वृक्ष का रूप प्राप्त हुआ व उसका मूल स्रोत स्मृति रूप में अवशिष्ट रहा।

16

आधुनिक कला-1945 के पश्चात्

प्रभाववाद के साथ कलाकारों में स्वतन्त्र विचार से प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी; उन्होने दर्शन, मनोविश्लेषण, विज्ञान आदि विषयो का अध्ययन व विचारों का आदान-प्रदान करके नवीन दिशाओ में प्रयोग किये और द्वितीय विश्व-युद्ध के सिद्धातों एवं कलाक्षेत्र मे इतनी प्रगति हुई कि कलाकारों को सर्जन के मूल सिद्धान्तों एवं कला के आधारतत्वो के विशुद्ध विकास का अनपेक्षित बौद्धिक एवं प्रात्यक्षिक ज्ञान हो गया। कलात्मक सर्जन पर अब कोई बाह्य बंधन नही रहा एवं बिना किसी द्विविधा व बाह्य प्रतिरोध के कलाकार मौलिक सर्जन करने को उद्यत हुए। वस्तुसादृश्य का भय न रहने के कारण कुछ कलाकारों ने—उदाहरण के लिये डे कुनिंग व द्यूब्युफे–वास्तविक रूप का वस्तुनिरपेक्ष कला के अन्तर्गत समावेश इस तरह से आरम्भ किया कि उसको सर्जनक्रियात्मक या कलाकृति की रचना के अविभाज्य अंग के अतिरिक्त कोई यथार्थवादी महत्त्व नही है। सर्जन के मूल सिद्धांतों का यथोचित ज्ञान होने से वस्तुनिरपेक्षत्व, यथार्थ, अतियथार्थ, रचनासौंदर्य वगैरह भिन्न तत्वो के बीच की कृतिम सीमाएँ नष्ट हो गयी और परिणामकारक कलाकृतियां निर्माण करने के विचार से कलाकारों ने भिन्न तत्वों का समन्वय करना शुरू किया। संक्षेप में द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वकाल तक जो आधुनिक कला मुख्य रूप से प्रयोगात्मक थी वह उसके पश्चात् प्रात्यक्षिक, उपयुक्त व रचनात्मक हो गयी; अब तक के प्राप्त निष्कर्षों को कलाकारो के वैयक्तिक या सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति मे कार्यान्वित किया गया; कला अधिक समाजोन्मुख हुई। पॉप कला मे दादा निराशा व उपहास को भी सामाजिक व विधायक रूप दिया गया। कलाकारो में आत्मविश्वास का सामर्थ्य बढते ही उनकी समाज के प्रति विद्रोह की विनाशक भावना कम हो गयी। यह मुख्य रूप से कलात्मक की अपेक्षा दार्शनिक दृष्टिकोण मे हुए अन्तर का परिणाम था जिसका संक्षिप्त विचार करना होगा।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात्, ईश्वर, धर्म, नीति वगैरह आत्मिक मूल्यों के नष्ट होने से मानव खोया हुआ सा था एवं उसको ऐसा कोई सहारा दिखायी नहीं दे रहा था जिससे मानवजाति को विनाश की खाई से बचाया जा सके; अतः उस काल के–जिस काल में आत्यंतिक निराशा से निर्मित विनाशवादी वृत्ति[1] ने दादावाद को जन्म दिया था—साहित्य व कला मानवजीवन की विफलता के लिये रुदनमात्र थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इतना मानवसंहार होने पर भी मानव निराशा को

उस अवस्था तक नहीं पहुंचा। नीति, धर्म, ईश्वर वगैरह मानवनिर्मित निष्ठाएं पहले ही सामर्थ्यहीन हो गयी थी; काल्पनिक भविष्य का विचार छोड़कर, अस्तित्ववादी मानव विद्यमान क्षण में उपलब्ध ऐंद्रिय एवं मनोवैज्ञानिक अनुभूति के प्रति सचेत हो गया था। परमाणु युग का आरम्भ होकर तकनीकी विज्ञान की कल्पनातीत प्रगति हुई। अब मानव के जीवनदर्शन में मुख्य रूप से निम्न विचारों को स्थान था; तकनीकी विज्ञान की प्रगति से उपलब्ध भौतिक सुख साधनों का लाभ; धार्मिक, पारमार्थिक व नैतिक के स्थान पर केवल भौतिक सुखों पर निर्भर व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक असंतोष; आर्थिक विषमता, वंशभेद, वर्णभेद, जनसंख्यावृद्धि, अविकसित देशों के नवराष्ट्रनिर्माण के प्रयत्न, यान्त्रिक जीवन वगैरह समकालीन समस्याएं; संहारक शस्त्रों से जनित मानवजाति के विनाश का भय। मानव-जीवनदर्शन के साथ उसकी कला व साहित्य में निम्न परिवर्तन हुए: अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचारों का आदान-प्रदान; तकनीकी विकास व अवकाशयुग के अनुरूप आकारों का निर्माण व रूपरचना; दोषग्रस्त वातावरण के व्यक्तित्व पर बढ़ते हुए दबाव से भावनाओं को मुक्त करने के हेतु आत्यंतिक हेत्वाभासपूर्ण कलाकृतियों एवं सार्वजनिक कलात्मक कार्यक्रमों का निर्माण; विनाश की संभावना का प्रचार। इस प्रकार, पूर्वकालीन कला पर आधारित होते हुए, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् की कला भावनात्मक अनुभूति व प्रत्यक्ष रूप के विचारों से नवीन है।

वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यजनावाद:*

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम जन्मे इस कलात्मक आंदोलन पर अतियथार्थवाद का स्पष्ट प्रभाव था। युद्धकालीन परिस्थिति से जो शरणार्थी योरप से अमेरिका आये थे उनमें अतियथार्थवादी कलाकार मावस एर्न्स्ट, मट्टा, डाली व आन्द्रे मास्सों थे व न्यूयार्क के अमेरिकी कलाकारों को उनकी कलाशैलियों ने आकृष्ट किया था। इनके अतिरिक्त योरपीय अग्रगामी कलाकार योसेफ आल्बेर्स व हान्स हाफमन अमेरिका में अध्यापन कार्य करते हुए नवीन कलासम्बन्धी विचारों का प्रसार कर रहे थे।

आर्मेनियन कलाकार आर्शाइल गोर्की योरपीय अतियथार्थवाद व अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के बीच की कड़ी थे। वे 1920 में आर्मेनिया छोड़ कर अमेरिका आये थे। वे मट्टा व आन्द्रे मास्सों से विशेष रूप से [illegible] थे। आधु-

समाप्त नहीं करना चाहिये"[3]। दुर्भाग्यपूर्ण जीवनकाल के पश्चात् 1948 में गोर्की ने आत्महत्या की। गोर्की का 'अखण्डित क्रियाशीलता'[4] का विचार वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद का—विशेषतया पोलाक की कला का–मूलाधार तत्व था।

जॅक्सन पोलाक, डे कुनिंग व उनके साथी कलाकारो की कृतियो की आलोचना करते समय रॉबर्ट कोट्स ने 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' शब्द का प्रयोग किया। इसी संदर्भ में हॅरोल्ड रोसेनबर्ग ने 'क्रियात्मक चित्रण'[5] शब्द का प्रयोग किया व अमेरिकी नवकला 'न्यूयार्क शैली'[6] नाम से भी प्रसिद्ध हुई। 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' से शैली की ओर नहीं बल्कि रूपाकन की क्रियाशीलता की ओर संकेत किया गया है व शैली के विचार से सम्मिलित कलाकारो के दो मुख्य वर्ग किये जाते है; प्रथम वर्ग में पोलाक, डे कुनिंग, क्लाइन व ट्वोंबोंब ये कलाकार हैं—जो सत्यार्थ में 'क्रियात्मक चित्रकार'[7] है—जिनकी कला की विशेषता है अनियंत्रित गतिपूर्ण क्रिया द्वारा चित्रण व चित्रक्षेत्र की बुनावट का स्वाभाविक निर्माण; दूसरे वर्ग में रोथ्को, न्यूमन, स्टिल, मदरवेल व गोट्लिएब ये कलाकार है जो विस्तृत क्षेत्रो व वस्तुनिरपेक्ष आकारों मे चित्रण करते है। इसके अतिरिक्त फिलिप गस्टन व ब्रुक्स ये कलाकार भी उनके साथ थे जिनकी कला को 'वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद'[8] शब्द अधिक उचित है। इनमे से पोलाक व डे कुनिंग विशेष ख्यातनाम हुए व उनका आगामीकलाकारों पर काफी प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त कुछ आगामी कलाकार मार्क रोथ्को न्यूमन व स्टिल के अधिक विवेकशील वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद से प्रभावित हुए व 'उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व'[9]—क्लेमेन्ट ग्रीनबर्ग से दिया गया नाम—का जन्म हुआ जो 'रंगक्षेत्रीय चित्रण'[10], रंगो का वस्तुनिरपेक्षत्व'[11] वगैरह नाम से भी प्रसिद्ध है।

जॅक्सन पोलाक (1912–1956)

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्कालीन अमेरिकी कला के एक प्रणेता के रूप मे पोलाक को सम्मानित किया गया है। उनका आरम्भिक कलाध्ययन न्यूयार्क के आर्ट स्टुडन्ट्स लीग मे टॉमस बेन्टन के मार्गदर्शन में हुआ। बेन्टन की कला का पोलाक के आरम्भिक चित्रो पर स्पष्ट प्रभाव है; वक्रगति गतिपूर्ण रेखाओ से अंकित वस्तुसदृश-आकारो व विरोधी रंगों के क्षेत्रो में चित्रो को पर्याप्त वस्तुनिरपेक्ष किन्तु व्याकुलरूप प्राप्त हुआ है 1944 के करीब बनाये उनके चित्रो की तुलना, पिकासो व मावस एर्न्स्ट के चित्रो से की जा सकती है। 1947 से उन्होने बडे आकार के पट को जमीन पर बिछा कर ऊपर से रंगों को धाराओं में गिरा कर एवं धब्बों मे लगा कर चित्रण शुरू किया जिसको हॅरोल्ड रोसेनबर्ग ने 'क्रियात्मक चित्रण' नाम दिया। इस प्रकार के चित्रण में सहजज्ञान, अन्तर्मन से सचालित किया एव सयोग—जो वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के प्रमुख आधार तत्त्व है—महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। किन्तु कलाकार की सर्जनक्रिया, जिसमे वह शारीरिक रूप से भाग लेता है, पूर्णरूप से स्वयचालित या सयोगजनित नही हो सकती; उस पर अध्ययन व

विचार का कुछ नियंत्रण रहता ही है व पोलाक के 1947 से 1951 तक बनाये चित्रों में उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट दर्शन है उसका यही कारण है। अन्तर्गत गुणों के अतिरिक्त, पोलाक की कला से व्यापक-प्रभाव-चित्रण[12] का महत्व बढ़ कर कलाकृति को वातावरणीय रूप प्राप्त हुआ; विशाल पट के सम्मुख, दर्शक स्वयं को अनोखे वातावरण से परिवेष्टित अनुभव करने लगा व कलाकृति को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ। पोलाक का यह नया अभिगम आधुनिक कला को एक देन है जिसका आगामी कलाकारों ने काफी विकास किया।

पोलाक ने अपने चित्रण के बारे में लिखा है "जब मैं चित्रण के साथ एकरूप हो जाता हूं, मुझे पता नहीं चलता है कि मैं क्या कर रहा हूँ। कुछ समय तक परिचय होने के बाद ही मैं समझ पाता हू कि मैं क्या कर रहा था। चित्र में परिवर्तन करना, निर्मित प्रतिमा को मिटा देना आदि विचारों का मुझे भय नहीं है। क्योंकि चित्र का अपना स्वतन्त्र जीवित्व होता है; मैं उसको अपने आप बनने देता हू। सर्जनक्रिया से मेरा संपर्क जब टूटता है तब मुझे गड़बड़ होने का डर लगता है"[13]। पोलाक की इस सर्जनक्रिया को रोजेनबर्ग 'सारभूत धार्मिक क्रिया'[14] मानते हैं। यह ऐसी धार्मिक क्रिया थी जो धर्मशास्त्रों के अनुपालन में नहीं की जाती थी बल्कि जिसका लक्ष्य था राजनीतिक, सौन्दर्यशास्त्रीय व नैतिक मूल्यों के बन्धनों से मुक्ति।

हान्स हाफमन (1880–1966)

पोलाक की कला का अमेरिका में व बाद में योरप में, शायद ही प्रभाव पड़ता यदि हाफमन द्वारा नवीन सर्जन के लिये अनुकूल वातावरण का निर्माण नहीं किया होता। उनको न्यूयार्क शैली के जनक मानते हैं। बावारिया में जन्मे हाफमन 1903 से 1934 तक पेरिस में रहे व नवप्रभाववाद से लेकर फाववाद, घनवाद तक सभी नवीन कलांतर्गत आंदोलनों का उन्होंने परिशीलन किया। देलोने की रंगीन आकार-रचना की कल्पना से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। 1925 से म्यूनिक में रहकर कलाध्यापक के रूप में उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। 1932 में अमेरिका जाकर उन्होंने अध्यापनकार्य शुरू किया। अध्यापनकार्य के साथ वे चित्रण भी करते रहे। 1940 के करीब बनाये उनके चित्रों से आगामी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद की पूर्वसूचना मिलती है।

न्यूयार्क शैली के कलाकारों में रॉबर्ट मदरवेल एक उत्साही कार्यकर्ता थे। उनकी चित्रकला का प्रारम्भ अतियथार्थवादी चित्रकारों के–विशेषतया चित्रकार मट्टा के–प्रभाव से हुआ। उन्होंने 'संभावनाएं[15]' नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया व न्यूमन, रोथ्को व बाजिओट्स के सहकार्य से 1948 में एक कलाविद्यालय प्रस्थापित किया। 1952 में उन्होंने दादा कलाकारों व कवियों की कृतियों का संकलन प्रकाशित किया। इतने कार्यव्यस्त होने के बावजूद उन्होंने कई चित्रकृतियां बनायी जिनमें से 'स्पेनिश गणतंत्र के शोकगीत'[16] चित्रमालिका विशेष प्रसिद्ध है।

इस चित्रमालिका से उन्होंने स्पष्ट किया कि वस्तुनिरपेक्ष चित्रण द्वारा भी कलाकार अपनी विषयजनित भावनाओं को अपरोक्ष रूप से व्यक्त कर सकता है। मदरवेल के चित्रों की स्मृतिव्याकुलता का दर्शन हमे विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन अमेरिकी काव्य मे भी होता है।

वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यजनावाद में विल्लेम डे कुनिंग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुनिंग का जन्म 1904 में हालैंड मे हुआ। 1926 में वे अमेरिका गये जहाँ गोर्की व भविष्य के कुछ न्यूयार्क शैली के कलाकारो से उनका परिचय हुआ। 1940 तक उन्होंने व्यक्तिचित्रण किया। उसके बाद उन्होंने जोशपूर्ण रगाकन से कृतियाँ बनायी जिनमें वस्तुनिरपेक्ष से अभिव्यजना पर अधिक बल दिया जाने के कारण दर्शक को उनमे अकल्पित विकृत प्रतिमाएँ दिखायी देती है। माध्यम के प्रक्षुब्ध सचालन से चित्रातर्गत रगो की धज्जियाँ सजीव किन्तु पीड़ित प्रतीत होती है। 1950 के बाद अपनी अकनपद्धति मे परिवर्तन किये बिना उन्होंने चित्रण में स्त्री-आकृति का अंतर्भाव करना शुरू किया जिससे उनके चित्र लैंङ्गिक भयानकता के प्रतीक बन गये। मुटिन की कला के उन्मुक्त रूपाभिव्यक्ति के तत्त्वो का ही दर्शन हमें कुनिंग की कला मे अधिक तीव्रता से होता है।

मार्क रोथ्को (1903–1970) ने समतल चंचल पृष्ठभूमि पर विशाल अस्पष्ट आयताकार क्षेत्रो को चित्रित करके अवकाश की गहराई का प्रभाव चित्रित किया व उनको हम सत्यार्थ मे रहस्यवादी मान सकते हैं। रोथ्को के समान बार्नेट न्यूमन ने पृष्ठभूमि में विशाल समतल रगक्षेत्र की योजना की किन्तु उसके ऊपर उन्होंने विशुद्ध रगों की सीधी सकरी पट्टियों को अकित करके विश्वमंडलीय अवकाश की प्रशांति का प्रभाव निर्माण किया। उनके चित्र 'रंगक्षेत्रीय चित्रण' के उत्कृष्ट उदाहरण है। रोथ्को व न्यूमन के समान गोट्लिएव के चित्रों में अवकाशीय प्रभाव है किन्तु अवकाश के अन्तर्गत उन्होंने स्फोटक आकारों की योजना की है।

फ्रान्त्स क्लाइन (1910–1962) ने आरम्भ मे यथार्थवादी मानवचित्रण व दृश्यचित्रण किया। उनको काले रंग में रेखाकन करने का शौक था। 1949 मे जब उन्होंने प्रक्षेपक यन्त्र की सहायता से अपने रेखाकन के छोटे हिस्सो को पर्दे पर बडे पैमाने मे देखा तब उन प्रतिमाओ के वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य से वे मोहित हुए व काले रंग के जल्द लगाये गये पट्टों मे विशाल क्षेत्रो पर वे चित्रण करने लगे। क्लाइन की सर्जनक्रिया मे हावभाव की साकेतिकता है व उनकी कलाकृतियो के दर्शन मे वास्तुसदृश विशालता है।

मार्क टोबी (ज. 1890) ने चीन व जापान मे रह कर झेन बौद्ध सम्प्रदाय व चीनी तूलिकाचित्रण का अध्ययन किया व उनके चित्रण मे हस्ताक्षर के वस्तु-निरपेक्षत्व व व्यक्तिदर्शन के गुण दृष्टिगोचर हुए। शिकागो व न्यूयार्क मे रहने से उनके चित्रण में शहरी वातावरण के [illegible] व्यापक चचलता व जीवन के

गतित्व ने प्रवेश किया। पोलाक के समान, टोबी की कलाकृति के समूचे क्षेत्र का प्रभाव दर्शक को घेर लेता है।

क्लिफोर्ड स्टिल (ज. 1904) के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों में रंगों का विस्तृत प्रवाहों में अंकन किया है एवं बीच-बीच किसी अन्य रंग को सकरी रेखा में प्रवाहित करके, भिन्न प्रवाहों को पृथक् किया है। गतिमान् किन्तु नियन्त्रित तूलिकासंचालन से फिलिप गस्टन (ज 1913) मध्यवर्ती वस्तुनिरपेक्ष आकार को वातावरण से परिवेष्टित किन्तु पृथक् व संघर्षमय अवस्था में चित्रित करते। चित्रांतर्गत आकारों के रचनासौन्दर्य व योजनापूर्ण मनोहर रंगसंगति के कारण जेम्स ब्रुक्स (ज. 1906) के चित्र वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद की अपेक्षा वस्तुनिरपेक्ष घनवाद से अधिक मिलते-जुलते है।

ज्यां द्युब्युफे

विश्वयुद्ध के पश्चात् ख्यातनाम हुए फ्रेंच कलाकारों में ज्यां द्युब्युफे (ज. 1901) का विशेष स्थान है। 1918 में अकादेमी ज्युलिया में कलाध्ययन करने के बाद वे कलाक्षेत्र से पच्चीस बरसों तक पृथक् रहे। घर पर वे कुछ चित्रण व रेखांकन करते किन्तु उनका अधिकतर समय व्यावसायिक कार्यों में खर्च होता। हान्स प्रिन्झोर्न की पुस्तक[17] मे पागल व्यक्तियो की कला के सम्बन्ध मे विचार पढ़ने से उनको नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ और उन्होने निर्णय लिया कि संग्रहालयीन कला या प्रयोगवादी आधुनिक कला से भी अभिव्यक्ति के विचार से पागलो की कला अधिक सामर्थ्यवान् है। अब उन्होने पागलो की कला व बालकला को आदर्श मानकर फिर से स्वतन्त्र रूप से चित्रण करना शुरू किया। आधुनिक कलाकारो में से पौल क्ले उनके सबसे प्रिय कलाकार थे। 1944 से आरम्भ करके उन्होंने प्रचुर मात्रा में चित्रण किया। उनके प्रारम्भिक चित्रों में पॅरिस के शहरी दृश्यो के चित्र है जिनमें मानवाकृतियों, मकानों व अन्य वस्तुओ के अंकन में बच्चों की अप्रशिक्षित पद्धति को अपनाया है। उसके बाद दीवारो पर पाये जाने वाले–प्रायः अश्लील–साधारणतया वयस्क आदमियों द्वारा खींचे गये चित्रो से प्रेरणा लेकर, पट की सतह को कृत्रिम उपायों से खुरदरी बना कर उस पर उन्होंने चित्रण शुरू किया। पट की सतह को खुरदरी बनाने के लिये वे लकड़ी का बुरादा, बालू, मिट्टी वगैरह पदार्थों का उपयोग करते। उनके चित्रित व्यक्ति, जानवर व दृश्य को नैसर्गिकतावादी महत्व नहीं है; वे चित्रण के लिये बहाना मात्र थे और उनके चित्रों का प्रभाव मुख्य रूप से वस्तुनिरपेक्ष है।

द्युब्युफे के अतिरिक्त पॅरिस में ज्यां फोत्रिय, एम्लेंव, पिग्नो व बाजेन प्रमुख उदीयमान चित्रकार थे। बीसवी शताब्दी के मध्य में उन्होने नये प्रयोग करके फ्रेंच आधुनिक कला को गतिमान रखा। फाववाद, घनवाद व अभिव्यंजनावाद के आन्तरिक तत्वों को ही समन्वित करके उन्होंने नये दर्शन के रूपांकन के प्रयत्न किये। 1945 में प्रदर्शित हुई फोत्रिय की 'ओस्ताज'[18] चित्रमालिका में निष्प्राण मानवशीर्ष सदृश आकारों को रंगों की मोटी परतों में अंकित किया है। चित्र को शिल्प

के समान उभार देने के लिये फोत्रिय प्लास्टर, मिट्टी, गोंद वगैरह पदार्थों का उपभोग करते। द्युब्युफे व फोत्रिय के अतिरिक्त पैरिस के एक अन्य कलाकार फिलिप होसिग्रास्सोन ने भिन्न पदार्थों का उपयोग करके उभारदार-चित्रण शुरू किया जो पदार्थ-चित्रण[19] नाम से भी प्रसिद्ध है।

विश्वयुद्ध की समाप्ति के दस बरसों के भीतर ही पैरिस में वस्तुनिरपेक्ष कला की दो प्रमुख विचारधाराएँ दृष्टिगोचर हुई। बाजेन, मानेसिय, सँजिय, ज्यां ल मोल व शार्ल लापिक चित्र में वस्तुनिरपेक्ष दृश्यसौन्दर्य का काव्यात्मक विकास करने के विचार से प्रेरित थे और सुसंगतिपूर्ण रगों को चुन कर, नियन्त्रित तूलिकासंचालन से प्रसन्न मनोहर कृतियों का निर्माण करते; इनकी कला को वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद[20] कहा जा सकता है। उसी समय पैरिस मे हान्स हार्टुंग, श्नाइडेर, सुलाज व मात्यु अनियन्त्रित वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में व्यस्त थे एवं उनकी कला को 'अनियन्त्रित कला'[21] कहते हैं।

वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद :—ज्यां बाजेन, मानेसिय, सँजिय, वगैरह वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववादी चित्रकारो मे से अधिकतर चित्रकारों ने रोजे बिसियर के मार्गदर्शन मे कला का विकास किया। रोजे बिसियर, क्ले से प्रभावित थे और उन्होने कई नवकलाकारो का मार्गदर्शन किया। स्वयं बिसियर प्रभाववादी अंकनपद्धति में भिन्न विशुद्ध रगो के धब्बो का प्रयोग करके, वस्तुनिरपेक्ष किन्तु रग प्रभाव से मनोहर चित्रक्षेत्रों का निर्माण करते। बाजेन के वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में उद्देश्यपूर्ण रगसगति व सुदिग्दर्शित तूलिकासचालन द्वारा साहचर्यभाव के स्पष्ट प्रयत्न हैं और उनके चित्रक्षेत्रो का समूचा प्रभाव बादलो, नदी-किनारो, कांटे के बाडो या दलदल भूमि के सदृश दिखायी देता है। सँजिय के चित्रों में स्पष्ट रूप से सागरी दृश्य के अनत विस्तार का प्रभाव गहरे नीले रग मे अंकित किया गया है एवं बीच-बीच सेंदूरी रग के छोटे धब्बों से जहाजो की ओर सकेत किया है। मानेसिय के वस्तुनिरपेक्ष चित्रो का रूप प्रासगिक है; उनके मानवाकृतिरहित चित्र उत्सव, त्योहार, मेला, ख्रिस्तमस जैसे हर्षोल्लासपूर्ण प्रसंगो का स्मरण दिलाते है।

उपरिनिर्दिष्ट चित्रकारो के अतिरिक्त, पैरिस के चित्रकार लान्स्कोय, पोलिग्रोकोफ व निकोल द स्ताल वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कर रहे थे व समतल रगों के विस्तृत क्षेत्रो की योजना के कारण उनके चित्रों का प्रभाव फाव कला के अधिक निकटवर्ती है। लान्स्कोय के चमकीली रंगसंगतियों से युक्त चित्रो का प्रभाव प्रकृतिदृश्यो के समरूप है। पोलिग्रोकोफ के चित्रो मे आकारों की भिन्न छटाओ मे सुसवादित्व का प्रस्थापन है। द स्ताल ने वस्तुनिरपेक्षत्व से चित्रण को आरम्भ किया किंतु सम्पूर्ण वस्तुनिरपेक्षत्व से असंतुष्ट होकर उन्होने उसको वास्तविक रूप से समन्वित करना शुरू किया जिससे उनके चित्रो के सम्मुख दर्शक वास्तविक रूप के प्रति आत्मीयता व वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य दोनो को अनुभव कर लेता है। द स्ताल विशुद्ध रगों को विस्तृत क्षेत्रों में छटा मे परिवर्तन किये बिना मक्खन के समान मोटी परतो मे लगाते और भिन्न क्षेत्रो के बीच कहीं-कहीं पट के श्वेत वर्ण की लकीरो को छोड़

कर भिन्न क्षेत्रो के स्वाभाविक आकारो की रक्षा करते जिससे उनको ज्यामितीय कठोरता का भय नही रहता।

अनियन्त्रित कला :—अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकारो के समान, पैरिस के कुछ नवकलाकार हार्टुंग, श्नाइडेर, सुलाज व मात्यु अनियन्त्रित सचालन द्वारा वस्तुनिरपेक्ष चित्रण करने में व्यस्त थे। इनके अतिरिक्त वोल्स, आलेशिन्स्कि, आस्गेर योर्न आदि कलाकार भिन्न मुक्त अकनपद्धतियो में वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कर रहे थे। इन सब की कला को 'अनियन्त्रित कला' नाम से पहचानते हैं। यह नाम फ्रेंच कलासमीक्षक मिशेल तापी द्वारा दिया गया व यह अमेरिकी 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' के समानार्थी है। अनियन्त्रित कला द्वारा योरपीय कलाकारो को घनवाद की नियमबद्धता से मुक्ति पाने का साधन प्राप्त हुआ। 'अनियन्त्रित कला' सहजज्ञान, स्वाभाविकता व अनुशासन से मुक्ति की ओर सकेत करती है और वह आकार या विशिष्ट अकनपद्धति की विरोधी नहीं है। इस कला को तापी ने 'भिन्न कला' या 'मुक्ति-मार्गकला'[22] नाम से भी निर्दिष्ट किया। इसमें मुख्य रूप से तूलिका व रिक्त पट से चित्रण का आरम्भ होता है व उसका अन्त कही भी हो सकता है। अतः 'अनियन्त्रित कला' एक व्यापक अर्थ का शब्द है एव उसमे धब्बावाद, पदार्थचित्रण, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला, साकेतिक चित्रण[23] आदि का अन्तर्भाव हो सकता है।

हान्स हार्टुंग (ज 1904) जन्मतः जर्मन थे और 1935 से वे पैरिस मे रहने लगे। 1922 मे ही उन्होने वस्तुनिरपेक्ष रेखाकन व जलरंगचित्रण मे प्रयोग किये थे। शुरू मे उन्होने घनवादी व वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी दर्शन की कृतियाँ बनायी। हलके पारदर्शक समतलो पर तीव्र लकीरो का गतिमान् अकन उनको विशेष प्रिय था। 1950 तक उनकी निजी शैली पूर्ण विकसित हुई और उन्होने अवकाश के समान गहराई से युक्त, चंचल हलके व विशाल क्षेत्रो पर गहरे रग की लकीरो का द्रुतगति अकन करके भावपूर्ण वस्तुनिरपेक्ष कृतियाँ बनायी। 1960 के करीब उन्होने लकीरो का पृथक अकन छोड दिया और रेखात्मक रगाकनपद्धति को अपनाकर समूचे चित्रक्षेत्र पर छाया-प्रकाश के प्रभाव को चित्रित करना आरम्भ किया।

श्नाइडेर का जन्म 1896 मे स्विटजरलैंड मे हुआ व वे 1916 में पैरिस आये। आरम्भ में उन्होने अभिव्यंजनावादी मुक्त शैली मे यथार्थ चित्रण किया। 1950 से उन्होने एकरगी या काली पृष्ठभूमि पर चमकीले व आकर्षक रगों की चौडी पट्टियो को घुमावदार ढग से घसीट कर अनियन्त्रित वस्तुनिरपेक्ष कृतियाँ बनायीं।

पियर सुलाज गहरे रंग के चौडे पट्टो को चित्रण चाकू या चौडी तूलिका से जल्द आडे सीधे अकित करते हैं; पट्टो के बीच-बीच अवशिष्ट हलकी पृष्ठभूमि का प्रभाव ऐसा प्रतीत होता जैसे कि अंधेरी गुफा के प्रवेश द्वार में से या गिरजाघर

की खिड़की में से इतस्ततः अदर बिखर रही प्रकाशशलाकाएं। वुल्फगान्ग युल्स वोल्स (1913–1951) के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों की तुलना फॉत्रिए के चित्रों से की जा सकती है। उनके चित्रातर्गत अनियत्रित द्रुतक्रिया द्वारा बनाया गया मध्यवर्ती आकार वनस्पति या प्राणि शरीर का खण्ड चित्र जैसा दिखायी देता है। जार्ज मात्यु गहरी पृष्ठभूमि पर रगों को सीधे ट्यूब से निकालकर वक्राकार या सीधी लकीरो मे भिन्न दिशाओं मे अनियत्रित द्रुतगति फैला देते जिससे विस्फोट के प्रभाव का निर्माण होता।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, जर्मनी मे जिन कलाकारो ने अनियंत्रित कला की दिशा में प्रयोग किये वे अधिकतर पुरानी पीढी के थे क्योंकि नात्सी शासन काल मे राज्यसत्ता के विरोध के कारण नवीन कलाकारो का उदय नही हो सका। इन कलाकारों में विली बोमिस्टर, टेथ्रोडोर वेर्नेर, एर्न्स्ट विल्हेल्म नाय व फ्रित्स विंटेर प्रमुख थे। बोमिस्टर प्रारंभ में घनवाद व विशुद्धवाद मे प्रभावित थे और बालू व प्लास्टर का प्रयोग करके अपने चित्रों को शिल्पसदृश उभार देते थे। उनके यंत्रसदृश्य आकारो को 1935 के पश्चात् अफ्रीका आदिम कला व वन्य जातियों के रीति-रिवाजों के प्रभाव से जैविक व अतियथार्थवादी रूप प्राप्त हुआ। वेर्नेर ने चमकीले रग की हल्की परत पर रेखाकित आकारों व जैविक रूपों को विरोधी या काले रग में अकित किया। विल्हेल्म नाय ने भिन्न चमकीले रगों के गोलाकारो से सगीत रचना के समान विशुद्ध रगरचना की। फ्रित्स विंटेर ने हलकी पृष्ठभूमि पर आकर्षक रंगसगति के अस्पष्ट रूप से ज्यामितीय आकारो से काव्यमय रचना की। युल्युस बिस्सीर एक अन्य ख्यातनाम जर्मन वस्तुनिरपेक्ष चित्रकार है जिन्होंने छोटे आकार के कागज पर जलरंगो मे चित्रण किया जिस पर चीनी स्याही शैली व अक्षरकला का स्पष्ट प्रभाव है।

इटालियन नव चित्रकारः—1947 मे इटाली मे 'नव कला अग्रमडल'[24] नाम से एक कलाकारो का सगठन हुआ जिसमे वस्तुनिरपेक्षवादी एवं यथार्थवादी कलाकार सम्मिलित थे। यह सगठन एक वर्ष से अधिक काल तक जीवित नही रहा व 1952 में 'आठ इटालियन चित्रकार'[25] नाम से आठ वस्तुनिरपेक्षवादी इटालियन चित्रकारों के मंडल की प्रस्थापना हुई जिनमे आफ्रो, मोरेनी, सातोमासो, विरोली, कार्वोरा, मोर्लोत्ति, तुर्कातो व वेदोवा थे। उनकी कला को कलासमीक्षक लायोनेलो वेंतुरी ने 'वस्तुनिरपेक्ष-आकारनिष्ठ-कला'[26] नाम से सबोधित किया।

आफ्रो ने हल्की बुनावट के चित्रक्षेत्र पर सौम्य किन्तु प्रसन्न रगो के आकारो को अकित कर उनको तार के समान वक्रगति अविचलित सजीव रेखाओं से सबद्ध किया। बिरोली के विशुद्ध चमकीले रगो से निर्मित चित्रो मे केवल रगो का आकर्षण नही है; उनके चित्रातर्गत आकारो व रग-सगति मे प्रत्यक्ष दृश्य का जीवित्व है। उन्होने अक्सर अग्निकाड जैसे प्रत्यक्ष दृश्यो से प्रेरणा लेकर चित्रण किया। सान्तो-मासो के चित्रो के सौम्य रगाकन व बुनावट की झिलमिल मे नैसर्गिक प्रकाश का

कर भिन्न क्षेत्रों के स्वाभाविक आकारों की रक्षा करते जिससे उनको ज्यामितीय कठोरता का भय नहीं रहता।

अनियंत्रित कला :—अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकारों के समान, पेरिस के कुछ नवकलाकार हार्टुंग, श्नाइडेर, सुलाज व मात्यु अनियन्त्रित सञ्चालन द्वारा वस्तुनिरपेक्ष चित्रण करने में व्यस्त थे। इनके अतिरिक्त वोल्स, आलेशिन्स्कि, आसगेर योर्न आदि कलाकार भिन्न मुक्त अंकनपद्धतियों में वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कर रहे थे। इन सब की कला को 'अनियन्त्रित कला' नाम से पहचानते हैं। यह नाम फ्रेंच कलासमीक्षक मिशेल तापी द्वारा दिया गया व यह अमेरिकी 'वस्तु निरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' के समानार्थी है। अनियन्त्रित कला द्वारा योरपीय कलाकारों को घनवाद की नियमबद्धता से मुक्ति पाने का साधन प्राप्त हुआ। 'अनियन्त्रित कला' सहजज्ञान, स्वाभाविकता व अनुशासन से मुक्ति की ओर संकेत करती है और यह आकार या विशिष्ट अंकनपद्धति की विरोधी नहीं है। इस कला को तापी ने 'भिन्न कला' या 'मुक्ति-मार्गकला'[22] नाम से भी निर्दिष्ट किया। इसमें मुख्य रूप से तूलिका व रिक्त पट से चित्रण का आरम्भ होता है व उसका अन्त कहीं भी हो सकता है। अतः 'अनियन्त्रित कला' एक व्यापक अर्थ का शब्द है एवं उसमें घनवाद, पदार्थचित्रण, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला, सांकेतिक चित्रण[23] आदि का अन्तर्भाव हो सकता है।

हान्स हार्टुंग (ज 1904) जन्मतः जर्मन थे और 1935 से वे पेरिस में रहने लगे। 1922 में ही उन्होंने वस्तुनिरपेक्ष रेखांकन व जलरंगचित्रण में प्रयोग किये थे। शुरू में उन्होंने घनवादी व वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी दर्शन की कृतियाँ बनायीं। हलके पारदर्शक समतलों पर तीव्र लकीरों का गतिमान् अंकन उनको विशेष प्रिय था। 1950 तक उनकी निजी शैली पूर्ण विकसित हुई और उन्होंने अवकाश के समान गहराई से युक्त, चंचल हलके व विशाल क्षेत्रों पर गहरे रंग की लकीरों का द्रुतगति अंकन करके भावपूर्ण वस्तुनिरपेक्ष कृतियाँ बनायीं। 1960 के करीब उन्होंने लकीरों का पृथक अंकन छोड़ दिया और रेखात्मक रंगांकनपद्धति को अपनाकर समूचे चित्रक्षेत्र पर छाया-प्रकाश के प्रभाव को चित्रित करना आरम्भ किया।

श्नाइडेर का जन्म 1896 में स्विट्जरलैंड में हुआ व वे 1916 में पेरिस आये। आरम्भ में उन्होंने अभिव्यंजनावादी मुक्त शैली में यथार्थ चित्रण किया। 1950 में उन्होंने एकरंगी या काली पृष्ठभूमि पर चमकीले व आकर्षक रंगों की चौड़ी पट्टियों को घुमावदार ढंग से घसीट कर अनियन्त्रित वस्तुनिरपेक्ष कृतियाँ बनायीं।

पियर सुलाज गहरे रंग के चौड़े पट्टों को चित्रण चाकू या चौड़ी तूलिका से जल्द आड़े सीधे अंकित करते हैं; पट्टों के बीच-बीच अवशिष्ट हलकी पृष्ठभूमि का प्रभाव ऐसा प्रतीत होता जैसे कि अंधेरी गुफा के प्रवेश द्वार में से या गिरजाघर

की खिड़की में से इतस्ततः ग्रदर बिखर रही प्रकाशशलाकाए। वुल्फगान्ग-शुल्त्स वोल्स (1913–1951) के वस्तुनिरपेक्ष चित्रो की तुलना फोत्रिए के चित्रो से की जा सकती है। उनके चित्रातर्गत अनियत्रित द्रुतक्रिया द्वारा बनाया गया मध्यवर्ती आकार वनस्पति या प्राणि शरीर का खण्ड चित्र जैसा दिखायी देता है। जार्ज मात्यु गहरी पृष्ठभूमि पर रगों को सीधे ट्यूब से निकालकर वक्राकार या सीधी लकीरों मे भिन्न दिशाओं मे अनियत्रित द्रुतगति फैला देते जिससे विस्फोट के प्रभाव का निर्माण होता।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, जर्मनी मे जिन कलाकारो ने अनियत्रित कला की दिशा मे प्रयोग किये वे अधिकतर पुरानी पीढ़ी के थे क्योंकि नात्सी शासन काल में राज्यसत्ता के विरोध के कारण नवीन कलाकारो का उदय नहीं हो सका। इन कलाकारों में विली बौमिस्टर, टेग्रोडोर वेर्नेर, एर्न्स्ट विल्हेल्म नाय व फ्रित्स विंटेर प्रमुख थे। बौमिस्टर प्रारंभ मे घनवाद व विशुद्धवाद से प्रभावित थे और बालू व प्लास्टर का प्रयोग करके अपने चित्रो को शिल्पसदृश उभार देते थे। उनके यत्रसदृश्य आकारों को 1935 के पश्चात् अफ्रीकी आदिम कला व वन्य जातियों के रीति-रिवाजो के प्रभाव से जैविक व अतियथार्थवादी रूप प्राप्त हुआ। वेर्नेर ने चमकीले रग की हल्की परत पर रेखाकित आकारों व जैविक रूपो को विरोधी या काले रंग मे अकित किया। विल्हेल्म नाय ने भिन्न चमकीले रगो के गोलाकारो से सगीत रचना के समान विशुद्ध रगरचना की। फ्रित्स विंटेर ने हल्की पृष्ठभूमि पर आकर्षक रंगसगति के अस्पष्ट रूप से ज्यामितीय आकारो से काव्यमय रचना की। युल्युस बिस्सीर एक अन्य ख्यातनाम जर्मन वस्तुनिरपेक्ष चित्रकार हैं जिन्होने छोटे आकार के कागज पर जलरगो मे चित्रण किया जिस पर चीनी स्याही शैली व अक्षरकला का स्पष्ट प्रभाव है।

इटालियन नव चित्रकारः—1947 मे इटाली मे 'नव कला अग्रमडल'[24] नाम से एक कलाकारो का सगठन हुआ जिसमे वस्तुनिरपेक्षवादी एवं यथार्थवादी कलाकार सम्मिलित थे। यह सगठन एक वर्ष से अधिक काल तक जीवित नही रहा व 1952 में 'आठ इटालियन चित्रकार'[25] नाम से आठ वस्तुनिरपेक्षवादी इटालियन चित्रकारो के मंडल की प्रस्थापना हुई जिनमे आफ्रो, मोरेनी, सातोमासो, विरोली, कार्तोरा, मोर्लोत्ति, तुर्कातो व वेदोवा थे। उनकी कला को कलासमीक्षक लायोनेलो वेंतुरी ने 'वस्तुनिरपेक्ष-आकारनिष्ठ-कला'[26] नाम से सबोधित किया।

आफ्रो ने हल्की बुनावट के चित्रक्षेत्र पर सौम्य किन्तु प्रसन्न रंगो के आकारो को अकित कर उनको तार के समान वक्रगति अविचलित सजीव रेखाओ से सबद्ध किया। बिरोली के विशुद्ध चमकील रगो से निर्मित चित्रो मे केवल रगों का आकर्षण नही है; उनके चित्रांतर्गत आकारो व रग-सगति मे प्रत्यक्ष दृश्य का जीवित्व है। उन्होने अक्सर अग्निकाड जैसे प्रत्यक्ष दृश्यों से प्रेरणा लेकर चित्रण किया। सान्तोमासो के चित्रो के सौम्य रगाकन व बुनावट की झिलमिल मे नैसर्गिक प्रकाश का

तेज है व उनके वस्तुनिरपेक्ष आकारों में जैविक चैतन्य है। काल्पनिक होते हुए उनके चित्रों में निसर्ग-दृश्य की सजीवता व आकर्षण है।

उपरिनिर्दिष्ट इटालियन कलाकारो के अतिरिक्त ल्युचिओ फोन्ताना, ज्यिसेप कापोग्रोसी व आल्बर्तो बुर्री विशेष ख्यातनाम हुए एव उनका समकालीन कला पर काफी प्रभाव पड़ा। फोन्ताना का जन्म 1899 मे आर्जेन्टिना मे हुआ। उन्होने इटाली मे कला की शिक्षा प्राप्त की। 1947 में उन्होने 'अवकाशवाद'[27] नाम से कलात्मक आंदोलन शुरू किया; उनके विचार से परम्परागत आकार-कल्पना को त्याग कर अवकाश व समय के एकरूपत्व पर आधारित कला का विकास करना चाहिये। पट पर छेद या दरार काटकर उन्होने पट के अवकाशीय रूप को निराला अर्थ प्रदान किया। सच्छिद्र चित्रक्षेप पर सेई, रगो की मोटी परत व गोंद लगाकर उस पर काच के टुकड़ों, गोलियों व कपड़ों को चिपका कर उन्होने कलाकृतिया बनायी। कापोग्रोसी ने यथार्थवादी, अभिव्यजनावादी, वस्तुनिरपेक्ष आदि भिन्न प्रयोग करके 1949 के करीब वैयक्तिक शैली का विकास किया जिसमें गूढाक्षर-सदृश[28] सुस्पष्ट आकारो का प्रयोग व अवकाश का स्पष्ट विभाजन होता है, उनके चित्रों का दर्शन पुरातत्वीय उत्खनन के सदृश होता है। आल्बर्तो बुर्री का व्यवसाय वैद्यकी था व युद्धबंदी होकर अमेरिका आने के बाद उन्होने चित्रण शुरू किया बोरियों के टुकड़ों को सीकर उन्होने एक नयी अंकनपद्धति का आविष्कार किया, बीच-बीच लाल, नीले आदि चटकीले रंगो के कपडे के छोटे टुकड़ों को सीकर वे घृणा या भय का भाव पैदा करते। प्लास्टिक लकड़ी या लोहे की चादर को बीच-बीच स्टोव से जला कर वे विकृति, सड़न व विनाश के भाव का निर्माण करते।

स्पेन के नवचित्रकार:— फ्रेंच 'अनियंत्रित कला' या अमेरिकी 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' के समान योरोप के अन्य विकसित देशो में भी विभिन्न नव आदोलनों ने जन्म लिया। 1946 में स्पेन के बार्सेलोना शहर मे एक नव कलाकारो का मंडल[29] प्रस्थापित हुआ जिसमें आन्टोनी टापीज सबसे अधिक सर्जनशील थे। उन्होने तीन बरसों तक पत्रिका का प्रकाशन किया और सर्वसाधारण रूप से मीरो व क्ले से प्रेरणा लेकर वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी कृतिया बनायी। उस मंडल में चित्रकार मोडेस्ट क्विजार्ट व कवि सार्लो शामिल थे। 1957 मे माद्रिड मे 'वरण'[30] नाम से अन्य नवकलाकारो के मंडल की प्रस्थापना हुई जिसमें सोरा, फेंटो कानोगर व मिलारेज शामिल थे।

आन्टोनी टापीज 'पदार्थ चित्रण' के प्रमुख अन्वेषकों में से हैं। बालू, प्लास्टर, मिट्टी, वार्निस वगैरह पदार्थों के प्रयोग से उन्होने चित्रों में पुरानी दीवारों के मनोवैज्ञानिक प्रभावो का निर्माण किया। 1960 के बाद उन्होंने खुरदरी दीवार जैसी पृष्ठभूमि पर ककर, लोहे की पत्ती, कील, कपड़ा आदि वस्तुओं को लगा कर ऊपर से रगों को छिड़क कर रहस्य व भय के भावों का निर्माण किया। सोरा के चित्रांतर्गत आकारो में अधिकतर अन्याय, निर्दयता व हत्या के भाव प्रतीत होते हैं;

वे जल्द तूलिका-सचालन, रंगो के बहाव व घृणाजनक रंगसगति का प्रयोग करते। फॅटो निस्तेज समतल क्षेत्र पर विशेष रूप से गहरे रगों व बालू के प्रयोग से मध्यवर्ती आकारों को बनाते जो निद्रित ज्वालामुखी के मुख के समान भयानक दिखायी देते है।

कोब्रामडलः[31]—1948 मे हालेड के ॲम्स्टरडम शहर मे कारेल आप्पेल, कोर्नेय व जॉर्ज कॉन्स्टन्ट ने प्रयोगवादी कलाकारो के मंडल को प्रस्थापित किया जो मोंद्रियान व डे स्टाइल के नियमबद्ध रचनाकारी के विरोध मे मुक्त अकनक्रिया द्वारा चित्रण करना चाहते। समान उद्देश्य से प्रेरित कलाकार-मडल कोपनहेगन व ब्रसेल्ज मे कार्यशील थे। तीनो मंडलों को मिला कर 'कोब्रा' नाम से एक मध्यवर्ती मंडल प्रस्थापित हुआ जिसमे डॅनिश कलाकार आसगेर योर्न व बेल्जियन कलाकार पियरे आलेशिन्स्की शामिल थे। मडल के अधिकतर कलाकार बालचित्र कला, लोककला, आदिम कला या प्रागैतिहासिक कला मे प्राप्त सरलीकृत वास्तविक आकृतियों का प्रयोग करते किंतु मुक्त तूलिका सचालन व अभिव्यक्तिपूर्ण आकार सब का समान साधन थे; इस विचार से उनकी कला फ्रेंच कलाकार द्युब्युफे व फोत्रिए की कला से समानता रखती है यद्यपि उनकी कला फ्रेंच कलाकारो की कला से अधिक प्रक्षोभकारी गतिपूर्ण व चमकीली है। कोब्रा कलाकारों मे भी आलेशिन्स्की व कोर्नेय की कला आप्पेल व योर्न की कला से अधिक सयमपूर्ण व रगसगति में सौम्य है। आप्पेल ने अपनी प्रक्षुब्ध रगाकनशैली मे कई व्यक्तिचित्र, दृश्यचित्र व मानवचित्र बनाये। अस्पष्ट मानवाकृतियो का अन्तर्भाव होते हुए योर्न की कला मे रंगाकन के अनियंत्रित गतित्व, व स्वयचालित क्रिया पर आप्पेल से भी अधिक बल दिया गया है जिससे उनकी कलाकृतियो मे अभिव्यजनावादी तीव्रता के साथ वस्तुनिरपेक्षत्व की अधिक विकसित अवस्था दृष्टिगोचर होती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बहुसंख्य कलाकार वस्तुनिरपेक्षत्व की दिशा मे अग्रसर हुए किंतु कुछ ऐसे अल्पसख्य नवकलाकार भी थे जिन्होने यथार्थ रूप को नही त्यागा बल्कि उसको वैयक्तिक अनुभूति के अनुसार रूपातरित कर के जीवन का आंतरिक दर्शन कराया। इन कलाकारो मे से ब्रिटिश कलाकार फ्रान्सिस बेकन व फ्रेंच कलाकार बाल्थ्यु विशेष प्रसिद्ध हुए। फ्रान्सिस बेकन को ससार मे सब जगह सहार, हत्या व सड़न का दर्शन हुआ और कहीं भी धार्मिक, पवित्र या महान् का चिन्ह नजर नही आया; पोप जैसे धर्मप्रमुखो को उन्होने दीन असहाय अवस्था मे देखा और एक क्रूर हत्याकाड की कहानी के रूप मे बायबल की कुछ घटनाओ को उन्होंने चित्रित किया। वधस्थल की ओर ले जाये जानेवाले जानवरो व मानवो में उनको कोई अतर दिखायी नही दिया। वेलास्केस का अनुकरण कर के उन्होने पोप के व्यक्तिचित्र बनाये व उनको लाशों से युक्त घृणित वातावरण के अन्तर्गत पर्दो के पीछे आक्रोश करते हुए चित्रित किया। 1960 से उन्होने मानवाकृतियों को हीन सड़नग्रस्त अवस्था मे विकृत रूप मे चित्रित करना शुरु किया व ७

में संसार को ऐसे भयानक कसाईखाने का रूप प्राप्त हुआ जिसमें मानव का निर्दयता से वध किया जाता है। वान गो के आत्मचित्रो की अपने ढग से अनुकृतिया कर के उन्होंने वान गो को पूर्ण रूप से पागल अवस्था में चित्रित किया है। आतरिक आतंक को व्यक्त करने के लिये आल्यु ने वेकन के समान मानव को भयानक वातावरण या अनैसर्गिक रूप में चित्रित नही किया। उन्होंने मानवों व वस्तुओं को नैसर्गिकतावादी ढग से किंतु ठोस रूप व अनोखी मुद्राओं मे अकित कर के उनको अकल्पित अद्भुत जीवन से सचारित किया। उनके द्वारा चित्रित आकृतिया इहलोक के मानव या वस्तु की अपेक्षा इधर-उधर यंत्रवत् कार्यव्यस्त देहधारी अतृप्त आत्माएं जैसी प्रतीत होती है। उनके चित्रो के वातावरण में मन्त्रित सृष्टि का आभास है।

आकारनिष्ठ कला:[32]— थियो वान डोसबुर्ग ने 1960 में मोद्रियान 'दे स्टाइल' व स्वय की ज्यामितीय कला को अन्य वस्तुनिरपेक्ष कला से भिन्न निर्दिष्ट करते हुए 'आकारनिष्ठ कला' नाम से सबोधित किया। इस विचार ने 1947 मे 'सलो द रेआलिते नुवेल'[33] प्रदर्शनी से फिर जोर पकडा; पैरिस मे 1944 मे प्रस्थापित 'देनी रने' कलावीथिका आकारनिष्ठ कला का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का केन्द्र बन गयी। 1933 मे योसेफ आल्बेर्स फ्रान्स छोड़ कर अमेरिका जा बसे व वहा उनके प्रभाव से ज्यामितीय वस्तुनिरपेक्षवाद का प्रसार हुआ। वे 'अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कलाकार'[34] मडल एव पैरिस के 'वस्तुनिरपेक्ष-निर्माण'[35] मडल' की प्रदर्शनियो मे नियमित रूप से भाग लेते। आल्बेर्स ने भिन्न अमेरिकी विद्यालयों व कलासस्थाओं मे अध्यापन कर के एवं व्याख्यान दे के बौहोस के कलासम्बन्धी विचारो से कलाकारो को परिचित कराया जिसका अमेरिकी कला, वास्तुशास्त्र व निर्माणकला पर काफी प्रभाव पडा। रंगीन काचचित्र की निर्माणशाला मे आरम्भ मे नौसिखिया के रूप मे किये कार्य के फलस्वरूप आल्बेर्स मे ज्यामितीय आकारो के अन्तर्गत प्रकाश व रग के होने वाले भिन्न परिणामों मे रूचि पैदा हुई थी व उस दिशा मे प्रयोग कर के उन्होंने पुस्तक[36] लिखी। 1950 के बाद उन्होने 'वर्ग के प्रति श्रद्धांजलि'[37] शीर्षक से चित्रमालिका बनायी जिसमे एक बडे वर्ग के अन्दर दूसरे छोटे वर्ग को इस प्रकार अकित कर भिन्न रगीन वर्गों की सुसवादी रचनाएं की हैं। उनके शब्दो मे उनके सामने प्रमुख समस्या थी "द्विमितियुक्त क्षेत्रो पर निर्मित रेखाओं, समतल आकारो व रगों द्वारा होने वाले त्रिमिति के आभासात्मक परिणाम के सत्य रूप का ज्ञान"।

आल्बेर्स के अतिरिक्त स्विस कलाकार माक्स बिल ने आकारनिष्ठ कला के प्रसार मे व उनको निश्चित रूप देने मे महत्वपूर्ण कार्य किया; वे अपनी कला को 'आकारनिष्ठ कला' नाम से संबोधित करते थे 'ऐब्स्ट्रैक्ट' कला से आकारनिष्ठ' कला —कॉक्रीट आर्ट—शब्द का प्रयोग ज्यामितीय रचना के संदर्भ मे अधिक समुचित है क्योंकि—जैसे हम पहले देख चुके है—'एब्स्ट्रैक्ट' शब्द का अर्थ होता है सारतत्व निकालना व उससे अपरोक्ष रूप में वास्तविक रूप की ओर संकेत होता है; अतः मोद्रियान की कला व ज्यामितीय रचनावादी वस्तुनिरपेक्ष कला को

'ग्राकारनिष्ठ कला' नाम से निर्दिष्ट किया जाता है। माक्स बिल ने 'ग्राकारनिष्ठ कला' की निम्न परिभाषा की थी 'ग्राकारनिष्ठ चित्रकला मे वास्तविक रूप को पूर्णरूप से हटाया है व उनमें केवल चित्रकला के मूलतत्त्वो का विचार किया जाता है जो है चित्रित क्षेत्र के ग्राकार व रग। यह परिभाषा मोद्रियान व वान डोसबुर्ग की परिभाषाग्रो से मिलतीजुलती है ग्रौर इस प्रकार विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन 'ग्राकारनिष्ठ कला' उनके एव ग्रार्प, गाबो व पेप्स्नर के कलासबधी विचारो का ग्रग्रसरण है। विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन रचनावाद, रगक्षेत्रीय चित्रण, क्रमबद्ध चित्रण व नेत्रीय कला के उद्गम 'डे स्टाइल' व ग्राकारनिष्ठ कला ही है।

'ग्राकारनिष्ठ कला' में दृश्य सौदर्यानुभूति के ग्रतिरिक्त मानवीय भावनाग्रो को स्थान नही है। 'ग्राकारनिष्ठ कलाकारो' का विश्वास था कि गणितीय नियमों के समान ग्राकानिर्मिति के कुछ निश्चित नियम है व उनका ज्ञान ही विश्वरचना के मूलभूत सत्य का ज्ञान है।

माक्स बिल (ज. 1907) का कलाध्ययन बौहौस मे हुग्रा जब ग्राल्बेर्स वहां ग्रध्यापन करते थे। वे बौहौस के एक बुद्धिमान छात्र व उनके चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला व ग्रौद्योगिक कला सबंधी विचारो के प्रभावी प्रचारक व लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। पैरिस के 'वस्तुनिरपेक्ष निर्माण मंडल' से उनका सपर्क था ग्रौर उन्होने स्विट्जर्लैंड मे ग्राकारनिष्ठ कला की प्रदर्शनिया ग्रायोजित की। कलात्मक रचनाग्रों के गणितीय रूप की ग्रोर वे विशेष ग्राकृष्ट थे। ग्राइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धात, परमाणु-विज्ञान तथा ग्रध्यात्मविद्या व नीति के ग्राधारो से वे कला को ग्रंतिम सुनिर्णीत रूप देना चाहते। ग्राल्बेर्स के समान माक्स बिल रंगों के पारस्पारिक सबंधो का ग्राविष्कार करना चाहते। उन्ही गुणो से वे कला को शाश्वत रूप देना चाहते जो सपूर्ण सत्य के ग्रावश्यक तत्त्व होते है व जो है—सरलता, स्पष्टता व सुसवादित्व। माक्स बिल के समान स्विस कलाकार रिचर्ड पौल लोस (ज.1902) ने गणित को ग्रपनी कला का ग्राधार बनाया। वे छोटे वर्ग या ग्रायत को इकाई के रूप में चुन कर पूरे चित्र-क्षेत्र को उस ग्राकार के कई टुकड़ों या पट्टियों में विभाजित करते व उनको पांच तक भिन्न रगो की ग्रनुपाती छटाग्रो मे चित्रित करते जिससे पूरा चित्रक्षेत्र रगों की जगमगाहट से प्रदीप्त दिखाई देता। उसकी कला समकालीन क्रमबद्ध कला व नेत्रीय कला का प्रारभिक रूप है।

इटालियन कलाकारों में से ग्रार्लेतो मग्येलि की कला ग्राकारनिष्ठ कला के काफी समरूप है। 1930 तक उनकी कला वस्तुसदृश ग्राकारों का दर्शन था ग्रौर 1935 के पश्चात् ही उनकी कला को ग्राकारनिष्ठ कला या वस्तुनिरपेक्ष कला का रूप प्राप्त हुग्रा। उनके ज्यामितीय ग्राकारों का नियमित रूप नही होता एव उनमे ग्रक्सर पारस्परिक सवाद व तनाव प्रतीत होते हैं। रंगाकन के समतलत्व व रंगो की ग्रनैसर्गिकता ने उनके चित्रो के वस्तुनिपेक्षत्व को ग्रधिक सामर्थ्यवान् बनाया किंतु भिन्न ग्राकारों व रंगों के ग्रापसी संघर्ष से कभी उनमे ग्रतियथार्थवादी ग्रभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है।

पेरिस निवासी कलाकारों में से ज्या देवान, स्वीडिश कलाकार वार्टलिंग, व डेनिश कलाकार रिशर्ड मोर्टेनसेन ने आकारनिष्ठ कला के क्षेत्र में सर्जनकार्य किया व वे ख्यातनाम हुए। प्रसिद्ध कलाकार विक्टर वासारेली की प्रारंभिक कृतिया आकारनिष्ठ कला के उदाहरण है यद्यपि नेत्रीय कला में किये महत्त्वपूर्ण कार्य के कारण वे विशेष प्रसिद्ध हैं। मार्टेनसेन ने सरल स्पष्ट बाह्य रेखा से अंकित विशाल आकारो को सीधे-सादे समतल रंगो मे चित्रित किया एवं उनकी कला में कठोर-किनार चित्रण के पूर्वचिन्ह प्रतीत होते है। देवान ने प्रथम घनवादी चित्रण किया किंतु बाद में मोंद्रियान के समान वास्तविक रूप को हटाकर चित्रण शुरू किया जिसमे वस्तुनिरपेक्ष आकारो की विविधता व चमकीली रंगसंगति उनकी वैयक्तिक विशेषताएँ है। निर्मल त्रिकोणों को अक्सर काली बाह्य रेखा से बद्ध कर के बार्टलिंग ने चित्रण किया।

1960 के करीब, जब कला वस्तुनिरपेक्ष रूप अपना कर वस्तु सृष्टि से पृथक् हो गयी थी, एक भिन्न मार्ग से वस्तु सृष्टि ने कला में प्रत्यक्ष प्रवेश किया व कलाक्षेत्र मे संकलन, घटनाए पॉप कला व नवयथार्थवाद वगैरह कलाप्रकारो ने जन्म लिया जिनमें प्रत्यक्ष वस्तु का कलाकृति मे प्रयोग किया जाने लगा।

संकलन[38].—1961 में न्यूयार्क के 'आधुनिक कला संग्रहालय' द्वारा 'संकलन कला' की प्रदर्शनी में आयोजित की गयी। प्रदर्शनी मे घनवादी कोलाज कृतियो व मोंताज कृतियो से लेकर दादावादी 'बनी बनायी' कृतिया व 'वातावरण निर्माण'[39] तक सब का अंतर्भाव था। संचालक विलियम सिज ने 'संकलन कला' की परिभाषा की थी "यहा चित्रण या रेखांकन से संकलन को अधिक महत्त्व है व संकलन मुख्य रूप से ऐसी नैसर्गिक या मानवनिर्मित वस्तुओं का है जो कलाकृति के रूप में नही बनायी गयी"।

संकलन कला का उद्गम घनवाद की कोलाज कृतियो में दृष्टिगोचर होता है और उनको मार्सेल द्युशा की बनीबनायी कला से विकास की निश्चित दिशा प्राप्त हुई। अमरीकी कलाकार जोसेफ कॉर्नेल की पेटिया संकलन कला के परिणामकारण उदाहरण है। साहित्य व यथार्थवाद के अध्ययन के बाद उन्होंने 1935 के करीब पेटियों का निर्माण शुरू किया। वे एक तरफ से खुली पेटी मे वस्तुओ, छायाचित्रों व नकशों की उद्देश्यपूर्ण रचना करते व व्यक्तिगत स्वप्निल दुनिया का अतियथार्थवादी दर्शन कराते। उनके चित्रो मे साहचर्यभाव से जागृत की गयी बचपन, परिवार व साहित्य विषयक गतकाल की स्मृतियों की व्याकुलता है। लुइ नेवलसन की कुछ कृतिया 'संकलन कला' के अन्तर्गत आती हैं। उन्होंने लकड़ी की दीवारों में असंख्य खाने बना के उनमें पुराने फर्नीचर के काटे हुए टुकड़ों या पुरानी वस्तुओ को रंग कर रख दिया व प्राचीन विनष्ट वैभव की स्मृतियों को जागृत किया। वास्तुकार फ्रेडेरिक कीसलेर के वातावरण निर्माण मे संकलन कला का प्रयोग है। अपनी आयु के अंतिम काल मे की गयी प्रदर्शनी मे धार्मिक भवन के भीतर शिल्पाकृतियों,

भित्तिचित्रों व फर्नीचर-सदृश वस्तुओं की रचना कर उन्होने धर्म का अमंगल व निंद्य दर्शन कराया। सकलन कला को अधिक ठोस व विशाल रूप देकर आधुनिक मूर्तिकारो ने 'रद्दी मूर्तिकला'[40] की निर्मिति की। वैसे सकलन कला के जन्म के साथ ही चित्रकला व मूर्तिकला के बीच का अन्तर अस्पष्ट हो गया।

घटनाएं[41]:—विभिन्न कलाओं के बीच एवं कला व जीवन के बीच समन्वय साधने के उद्देश्य मे पॉप कला, वातावरणनिर्माण व घटनानिर्माण का जन्म हुआ। वातावरण निर्माण व घटनानिर्माण के एक प्रमुख प्रवर्तक है अॅलेन काप्रो उनको प्रथम घटनानिर्माण की प्रदर्शनी 1959 मे रुबेन वीथिका में हुई। दादा समासम्मेलनो में आयोजित कार्यक्रम घटनाओं का प्रारम्भिक रूप हो सकते है किंतु दादा के ये कार्यक्रम निरुद्देश्य हुआ करते थे जबकि घटनाओं का सचालन किसी विशिष्ट अनुभूति के विचार से किया जाता है। घटनाओ को कोलाजकृतियो का क्रियात्मक रूप भी माना गया है। काप्रो ने घटना की निम्न परिभाषा की है "भिन्न स्थानों व समयो पर अभिनीत या ज्ञात प्रसंगो का संकलन। इसके वातावरण को प्रत्यक्ष से लिया जा सकता है या उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। नाटक के विपरीत, घटना कही भी करायी जा सकती है–बाजार मे, रास्ते में या मित्र के रसोई-घर में। घटना योजना के अनुसार करायी जाती है किंतु उसका पूर्वाभ्यास नही होता। यह कला है जो जीवनसदृश प्रतीत होती है"। उन्होने वातावरण की परिभाषा की है "दृश्य जिसमे प्रवेश किया जाता है"[42]। 'घटनाओं' का समकालीन अमेरिकी लोकजीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। टेलिविजन, विज्ञापन, औद्योगिक कला व महिलाओं के फैशन में घटनाओं का माध्यम के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

पॉप कला[43]:—पॉप कला का उदय इंग्लैंड मे हुआ। 1952 से लंदन की 'समकालीन कला सस्था[44]' में वास्तुकार अलियन व स्मिथ्सन, मूर्तिकार पाओलोत्सि, चित्रकार हॅमिल्टन व अन्य कलाकारों के सम्मेलन आरभ हुए; ये कलाकार स्वय को 'स्वतंत्र मडल'[45] कहलाते। उनकी चर्चाएं यंत्र, विज्ञापन, चलचित्रपट, अवकाश संचार आदि अविष्कारो से परिवर्तित जनजीवन व सस्कृति एवं उसके स्वाभाविक परिणाम पर केन्द्रित हुआ करती। उसके सम्मेलनों में 'नव पशुत्ववाद'[46] शब्द का प्रयोग प्रचलित हो गया। इसी विषय पर हॅमिल्टन के 'आज के घर क्यों भिन्न है, क्यो आकर्षक है?'[47] शीर्षक की पॉप कोलाजकृति 1956 में बनायी। 1956 मे व्हाइटचपेल कला वीथिका में 'कल की दुनिया[48] शीर्षक से एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी। हॅमिल्टन मार्शेल द्यूशा के शिष्य थे। मार्सेल द्यूशा कला सबधी विचारो पॉप कला पर प्रभाव था। इसके अतिरिक्त कुर्ट श्विटेर्स की अकनपद्धतियो व विचारों का पाप कला में काफी अनुसरण था।

हॅमिल्टन व अन्य पॉप कलाकारों का समकालीन सस्कृति व समूहमाध्यमो[49] के प्रति विरोधी या व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण नही था। वे कहना चहते थे "आज का

हमारा जीवन, देखो, ऐसा है" । जार्ज ग्रोस के समान, समाज व्यवस्था की निंदा करने के विचार से उन्होंने कलानिर्मिति नही की । उन्होंने नवयथार्थवादी दृष्टिकोण अपना कर समकालीन समाज का अन्तर्भेदी परिणामकारक दर्शन कराया । यांत्रिक जीवन मे बद्ध मानव के मन मे सद्यः स्थिति का विचार करने व उनका सही अर्थ समझने की इच्छा शायद ही कभी होती होगी, न उसके लिये उसके पास कोई समय है; उसके लिये पॉप जैसी कलाकृतियों की निर्मित व उनके सम्मुख दर्शन के रूप में अनुभूति आवश्यकता है । एक तरह से पॉप कला समाज के लिये दर्पण का कार्य करती है । इंग्लिश पॉप कलाकारो में से पीटर ब्लेक एक प्रसिद्ध कलाकार हैं; उनके चित्रण के विषय अक्सर बीटल्स व कपड़ो की दूकानो के मोडेल्स होते हैं व उनको वे गाभीर्य के साथ वास्तविक रूप में सम्मिलित कर के सहानुभूतिपूर्ण या खिन्नतादर्शक कृतियां बनाते । अन्य इंग्लिश पॉप कलाकारो में पीटर फिलिप्स ओ टिल्सन व किटाज विशेष प्रसिद्ध हैं । पीटर फिलिप्स के विषय अधिकतर यंत्र-संबधी होते । अमेरिकी कलाकार आर. बी. किटाज ने इंग्लैंड को कार्यक्षेत्र के रूप मे पसद किया; वे अक्सर दैनदिन प्रसग, आधुनिक महत्त्वपूर्ण घटना या प्रसिद्ध व्यक्तियो को विषय के रूप मे चुन कर, सरल समतल रंगांकन के साथ साहचर्यभाव व कल्पना के द्वारा अद्‌भुत दर्शन की कृतिया बनाते ।

1960 के बाद अमेरिका में पाप कला ने जोर पकड़ा । उद्योग व वाणिज्य के सर्वव्यापी प्रभाव से दूषित वातावरण मे रहने के कारण अमेरिकी कलाकार स्वाभाविकतया पाप कला की ओर आकृष्ट हुए । चलचित्रपट, विज्ञापन, हास्यचित्रमालिका व फैशन के अमर्याद प्रसार से प्रभावित वातावरण मे अमेरिकी कलाकारों को पॉप कला के लिये पोषक विषय सुलभता से प्राप्त होते जिसके कारण अमेरिकी पॉप कला योरपीय पॉप कला से अधिक स्वाभाविक व परिणामकारक प्रतीत होती है । अमेरिकी पॉप काल का प्रारंभ प्रचलित वस्तुनिरपेक्ष अभिव्य जनावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ । मार्सेल द्युशां कई वर्षों से अमेरिका में रह रहे थे व उनका अमेरिकी नवकलाकारों पर काफी प्रभाव था । लेजे द्वारा किया अमेरिकी जीवन का यांत्रिक घनवादी चित्रण उनके सामने आदर्श के रूप में था ।

रिचर्ड लिन्ड्‌नेर 1941 मे जर्मनी छोड कर अमेरिका आये । उनकी पॉप कलाकृतिया लेजे के यांत्रिक घनवाद व श्लेमेर की कला के सदृश हैं व उनमे अक्सर फैशनेबल महिलाओ को आत्मप्रदर्शन करते हुए चित्रित किया गया है । लॅरी रिवर्स एक प्रतिभासपन्न पॉप कलाकार है व उनकी कला भिन्न प्रभावों से विकसित हुई है । उनकी प्रारंभिक कृतियो मे विवस्त्र स्त्रियों का चित्रण है । 1955 के बाद उनकी कला मे घनवादी विभाजन व समयावच्छेद के तत्त्वो ने प्रवेश किया । उनकी कुछ कृतियों में प्राचीन महान चित्रकारो के चित्रों की प्रतिकृतियो का अतर्भाव है तो कुछ कृतियो पर अमेरिका के इतिहास के अध्ययन का प्रभाव है । अमेरिकी पॉप कलाकारो मे से राबर्ट रोशेनबर्ग सब से अधिक प्रसिद्ध हैं व उन्होने पॉप कला के विकास मे

बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रथम पेरिस की अंकादेमी ज्युलिग्रा में व बाद में नार्थ कॅरोलिना के ब्लक मौन्टर्न कालज मे योसेफ आल्बेर्स व जास्पेर जान्स के साथ अध्ययन किया। आल्बेर्स का वे कुशल अध्यापक के रूप में आदर करते किंतु उनको संगीतकार जॉन केज ने सब से अधिक आकृष्ट किया। वैयक्तिक रूप से जान केज का पॉप कला, घटनाए, वातावरण एव सगीत, नृत्य, नाटक व मिश्र-माध्यम-निर्माण[50] के विकास पर काफी प्रभाव पड़ा। 1955 में प्रदर्शित कृतियों मे उन्होंने पट पर छायाचित्रो व समाचरपत्रो के टुकड़ो को चिपकाया था व कृति मे उन्होंने रजाई व तकिये पर रगो को छिड़का कर समाविष्ट किया था। 1956 में बनायी उनकी कृति 'मोनोग्राम'[51] में उन्होंने बुरादे से भरे हुए बकरे को मोटर के टायर के बीच एक कोलजाकृति पर खड़ा कर के चमत्कृति दर्शक प्रभाव का निर्माण किया। रोशेनबर्ग के मिलेजुले चित्रण मे प्रायः साहचर्यभाव व प्रतीकात्मकता द्वारा किसी समकालीन प्रकरण की ओर सकेत होता है। रोशेनबर्ग के समय मे कार्य करके प्रसिद्ध होने वाले पॉप कलाकारो मे जास्पेर जान्स थे। उनकी व्यक्तिगत प्रतिमाएँ भिन्न दर्शन की किन्तु आश्चर्यजनक व क्रांतिकारी होती। शुरू की कलाकृतियो में उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रध्वज, नकशा व लक्ष्यफलक की मिट्टी रगीन प्रतिकृतियाँ एव चार्टस्, धापस को समाविष्ट किया है। अन्य पॉप कलाकारो की अपेक्षा जास्पेर जॉन्स कृति के कलात्मक गुणो को विषय से अधिक महत्त्व देते। अन्य अमेरिकी पॉप कलाकारो में से अॅन्डी वारहोल, रॉय लिश्टेनस्टाइन, टॉम वेसेलमान, जेम्स रोसेन्क्विस्ट, क्लास ओल्डेनबुर्ग, राबर्ट इण्डियाना व जिम डाइन विशेष प्रसिद्ध हुए। जिम डाइन दैनदिन जीवन की वस्तुओ को रगीन पृष्ठभूमि पर रख के कभी उनकी छायाओं या प्रतिकृतियों को चित्रित करते व उसके साथ अक्षरो मे उनके नाम भी लिखने जैसे कि वे आज के विमनस्क मानव को उसकी हर समय काम मे ली जाने वाली, नित्योपयोग से अतिपरिचिति—अतः उपेक्षित—वस्तुओ के सौन्दर्यात्मिक अस्तित्व का स्मरण दिलाना चाहते। कभी ऐसी ही वस्तुओ के सकलन से वे भयानकता का निर्माण भी करते। रॉय लिश्टेनस्टाइन, पॉप प्रभाव के निर्माण के लिये, हास्यचित्रमालिका[52] व विज्ञापन को अधिक पसन्द करते व उनको तैलरगो या एक्रिलिक रगो मे समतल रगाकन व कठोर बाह्य रेखा द्वारा चित्रित करके अमेरिकी नागरिक की वर्तमान अभिरुचियो व आदर्शों की ओर दर्शक का ध्यान आकृष्ट करके उसको सोचने को उद्यत करते "क्या, सच, मै ऐसा हूँ? क्या सच, हम ऐसे है?"। इसमे न कोई निन्दाभाव है, न कोई समर्थन। अपना रूप देखने के लिये भी दो दर्पण का सहारा लेना पडता है। 'सकलन कला' एव 'रद्दी मूर्तिकला' मे पुरानी निरुपयुक्त परित्यक्त वस्तुओ को काम मे लेकर कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है जबकि पॉप कला मे नयी व प्रचलित वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। वेसेलमान प्रत्यक्ष घड़ियाँ, टेलीविजन, वातानुकूलक व छायाचित्रो का प्रयोग करते। अमेरिकी लैंगिक जीवन की ओर सकेत करते हुए वे विवस्त्र स्त्री चित्रण से युक्त कृतियाँ भी बनाते।

विशाल विज्ञापनचित्र बनाने के प्रत्यक्ष अनुभव का रोसेन्क्विस्ट की कृतियों पर प्रभाव है व उनमे सुस्थापन व सयोजन के तत्त्वों का पूर्ण विचार करके समकालीन जीवन का द्वन्द्वात्मक—पारिवारिक जीवन की सुखमयता व विनाशक परमाणुयुद्ध का भय—दर्शन कराया है। अॅन्डी वारहोल ने भोजन वस्तुओं के डिब्बो व पेय पदार्थों की शीशियों जैसी सुपरिचित वस्तुओ मे पॉप कृतिया बनायीं। उसके पश्चात् 1965 के करीब उन्होने दुर्घटनाओ व मृत्यु से संबधित विषयों को चुना व कुछ समय मे ही कामुकतादर्शक चलच्चित्रपटो का गुप्त चलच्चित्रपटों का–निर्माण शुरू किया। क्लास ओल्डेनबुर्ग ने 'रेगन थिएटर[53]' नाम से नाटकगृह खोल के वहाँ पॉप दर्शन के वातावरणो का निर्माण शुरू किया। 1961 मे उन्होंने केक, सेंडविच जैसे खाने के पदार्थों की प्लास्टर की रंगीन प्रतिकृतिया बना के दूकान में रख दी व उनपर अनापशनाप मूल्य लिख दिया। बाद में उन्होंने कपड़ों को सीकर टाइपराइटर, वॉशबेसिन, यंत्र व ढोलक जैसी ठोस व कठिन वस्तुओ की मुलायम व लचीली प्रतिकृतियां बना के उपहास का निर्माण किया। ओल्डेनबुर्ग की कला पॉप कला से भी दादावाद से अधिक मिलती–जुलती है। रॉबर्ट इण्डियाना ईट, लव, डाय[54] जैसे शब्दो को शामिल कर के आधुनिक जीवन की प्रत्यक्ष रूप से आलोचना करते। पॉप कला के लिये चित्रकला व मूर्तिकला मे कोई विशेष अंतर नही है व जॉर्ज सेगल ने मूर्तियो का समावेश कर के ऐसी त्रिमितियुक्त कृतिया बनायी जो एडवर्ड हॉप्पर के चित्रों के समान, प्रभाव मे रहस्यमय व अकेलापन लिये हुए हैं। पूर्णरूप से त्रिमितियुक्त कृतिया निर्माण करनेवालों में ल्यूकास समारस, अर्नेस्ट ट्रोवा व एडवर्ड कीनहोल्त्स प्रसिद्ध हुए।

नवयथार्थवाद[55]:—कलासमीक्षक पियरे रेस्तानि व कलाकार इवे क्लेर्म ने 1960 में नवयथार्थवाद को प्रस्थापित किया। मिलान में नवयथार्थवाद को घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ व पॅरिस मे रेस्तानि की कलावीथिका में उसकी प्रथम प्रदर्शनी हुई जिसके विज्ञापन में लिखा था 'दादा से 40 अंश ऊपर'[56] जिससे नवयथार्थवाद का दादावाद से सबंध स्पष्ट होता है। रेस्तानि ने विवरण में स्पष्ट किया था "सामाजिक सभ्यता को प्रकाशित करना नवयथार्थवाद का उद्देश्य है व उसमे वाद-विवाद व चर्चा को स्थान नही है"। प्रदर्शनी मे क्लेर्म, रेम्से, सेसार बाल्दाच्चिनी, ज्याँ तिग्वेलि, फान्स्वा द्यूफें वगैरे कलाकारों ने भाग लिया था। नवयथार्थवादी कलाकारों में इव्हे क्लेर्म (1928–1962) सब से उत्साही व क्रांतिकारी विचारों के कलाकार थे। 1956 मे उन्होंने हवा मे तैरते हुए नीले गोलो का प्रदर्शन किया। 1958 मे उन्होने लोगों को 'शून्यता के प्रदर्शन[57]' के नाम पर खाली दीवारो को देखने के लिये निमंत्रित किया व प्रवेशशुल्क शुद्ध सोने के रूप मे देना अनिवार्य किया। 1960 मे उन्होंने विवस्त्र स्त्री मोडेल्स के शरीरों पर रंग लगाया व उनको ...पट पर लुढका कर छापचित्र बनाये। अन्य नवयथार्थवादी कलाकार आर्मां ने ...से बनाये विवस्त्र स्त्रीशरीर की मूर्ति पर रंगों की ट्यूब्स् को चिपका

विशाल विज्ञापनचित्र बनाने के प्रत्यक्ष अनुभव का रोसेन्क्विस्ट की कृतियों पर प्रभाव है व उनमे सुस्थापन व संयोजन के तत्त्वों का पूर्ण विचार करके समकालीन जीवन का द्वन्द्वात्मक—पारिवारिक जीवन की सुखमयता व विनाशक परमाणुयुद्ध का भय—दर्शन कराया है। ॲन्डी वारहोल ने भोजन वस्तुओं के डिब्बों व पेय पदार्थों की शीशियों जैसी सुपरिचित वस्तुओ मे पॉप कृतिया बनायीं। उसके पश्चात् 1965 के करीब उन्होने दुर्घटनाओ व मृत्यु से सबंधित विषयों को चुना व कुछ समय में ही कामुकतादर्शक चलच्चित्रपटों का गुप्त चलच्चित्रपटों का–निर्माण शुरू किया। क्लास ओल्डेनबुर्ग ने 'रेगन थिएटर[53]' नाम से नाटकगृह खोल के वहाँ पॉप दर्शन के वातावरणों का निर्माण शुरू किया। 1961 मे उन्होने केक, सेंडविच जैसे खाने के पदार्थों की प्लास्टर की रंगीन प्रतिकृतिया बना के दूकान में रख दी व उनपर अनापशनाप मूल्य लिख दिया। बाद में उन्होंने कपड़ो को सीकर टाइपराइटर, वॉशबेसिन, यंत्र व ढोलक जैसी ठोस व कठिन वस्तुओ की मुलायम व लचीली प्रतिकृतिया बना के उपहास का निर्माण किया। ओल्डेनबुर्ग की कला पॉप कला से भी दादावाद से अधिक मिलती–जुलती है। रॉबर्ट इण्डियाना ईट, लव, डाय[54] जैसे शब्दो को शामिल कर के आधुनिक जीवन की प्रत्यक्ष रूप से आलोचना करते। पॉप कला के लिये चित्रकला व मूर्तिकला मे कोई विशेष अंतर नहीं है व जॉर्ज सेगल ने मूर्तियो का समावेश कर के ऐसी त्रिमितियुक्त कृतियां बनायी जो एडवर्ड हॉप्पर के चित्रो के समान, प्रभाव में रहस्यमय व अकेलापन लिये हुए हैं। पूर्णरूप से त्रिमितियुक्त कृतिया निर्माण करनेवालो में ल्यूकास समारस, अर्नेस्ट ट्रोवा व एडवर्ड कीनहोल्त्स प्रसिद्ध हुए।

नवयथार्थवाद[55]:—कलासमीक्षक पिगरे रेस्तानि व कलाकार इवे क्लेयँ ने 1960 में नवयथार्थवाद को प्रस्थापित किया। मिलान मे नवयथार्थवाद को घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ व पैरिस में रेस्तानि की कलावीथिका मे उसकी प्रथम प्रदर्शनी हुई जिसके विज्ञापन मे लिखा था 'दादा मे 40 अंश ऊपर'[56] जिससे नवयथार्थवाद का दादावाद से संबंध स्पष्ट होता है। रेस्तानि ने विवरण में स्पष्ट किया था "सामाजिक सत्यता को प्रकाशित करना नवयथार्थवाद का उद्देश्य है व उसमे वाद-विवाद व चर्चा को स्थान नही है"। प्रदर्शनी में क्लेयँ, रेम्से, सेसार बाल्दाच्चिनो, ज्याँ तिन्वेलि, फ्राम्वा द्यूर्फे वगैरे कलाकारों ने भाग लिया था। नवयथार्थवादी कलाकारो मे इन्हे क्लेयँ (1928–1962) सब से उत्साही व क्रांतिकारी विचारों के कलाकार थे। 1956 में उन्होंने हवा में तैरते हुए नीले गोलों का प्रदर्शन किया। 1958 मे उन्होने लोगों को 'शून्यता के प्रदर्शन[57]' के नाम पर खाली दीवारो को देखने के लिये निमंत्रित किया व प्रवेशशुल्क शुद्ध सोने के रूप मे देना अनिवार्य किया। 1960 मे उन्होने विवस्त्र स्त्री मोडेल्स के शरीरों पर रंग लगाया व उनको पट पर लुढका कर छापचित्र बनाये। अन्य नवयथार्थवादी कलाकार आर्मां ने प्लास्टिक से बनाये विवस्त्र स्त्रीशरीर की मूर्ति पर रंगों की ट्यूबस् को चिपका

कर रंगों को बहाया व चित्रकला व विवस्त्र स्त्रीशरीर के पुराने सबंध के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया। कलाकार क्रिस्टो बाइसिकल, स्त्री की आकृति या अन्य वस्तु को जरासा हिस्सा छोड के कपड़े में लपेट कर प्रदर्शित करते जिससे गूढभाव का निर्माण होता है; उनकी कला को एम्पॅक्वेटाज[58] कहते है। फ्रान्स्वा द्युफ्रे, रेमॉन्ड हेन्स व जाक द वियग्ले ने देकोलाज[59] पद्धति का प्रयोग शुरू किया जिसमें एक के ऊपर दूसरा इसी तरह चिपकाए हुए इश्तिहार चित्रों को फाड़ कर अद्‌भुत प्रभाव का निर्माण किया जाता है व यह पद्धति कोलाजपद्धति के ठीक विपरीत है। इस पद्धति की कल्पना शायद उनको पॅरिस के दीवारों से विज्ञापन चित्रों को अधूरे फाड़ कर उतारने के बाद दिखायी देनेवाले दीवार के दृश्य से मिली होगी। ओयविंड फाल्स्ट्रॉम ने वातावरण चित्रण द्वारा समकालीन सौंदर्यात्मक व राजनैतिक मूल्यों की निंदा की है। स्पेनिश कलाकार जेनोवेस ने छायाचित्रों की मालिका द्वारा युद्ध व सामूहिक संहार का भयानक चित्रण किया जिसमें भागते हुए, वध के लिये ले जाये जानेवाले एवं बंदूकों के सामने खड़े किये हुए आदमियों के चित्र है।

इस प्रकार बिना किसी आलोचना के केवल सामाजिक स्थिति को प्रकाशित करने के उद्देश्य से जन्मे नवयथार्थवाद पॉप कला, घटनाएं आदि नवीनतम कला प्रकारों की उत्तरावस्था में मतप्रतिपादन का दृष्टिकोण बढ़ कर कलाकृति को आशय प्राप्त हुआ। इन कलाप्रकारों में मूर्तिकला व चित्रकला ऐसा कोई अंतर नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्षत्व की दिशा में मूर्तिकला एवं मिनिमल कला, चचलकृतियां, प्रकाशित कला वगैरह कलाप्रकारों का विकास हुआ।

लघुतम (मिनिमल) कला :—यदि दर्शकों के सामने ज्यामितीय ठोस आकारों या वैसे आकार की वस्तुओं की अतिसरल रचना को रखा जाये तो क्या ऐसी रचना को कलाकृति के रूप में स्वीकारने की उनकी हिम्मत होगी? लेकिन यही है लघुतम कला। डोनाल्ड जड के सफेद दीवार पर कतार में लगाये बक्से. एन्टनी स्मिथ का बड़ा काला घन, फ्लेविन की खाली कमरे में दीवार पर खड़ी लगायीं बत्तियां, राबर्ट मोरिस की प्रायः सफेद ज्यामितीय अनोखे अनुपात के आकारों की रचना लघुतम कला के उदाहरण है। लघुतम कलाकारों की रचनापद्धति सहजज्ञान व ऐन्द्रियता की जगह तर्क व प्रत्यय पर आधारित है। लघुतम कलाकारों ने न केवल नयी उद्योगनिर्मिति सामग्री का माध्यम के रूप में प्रयोग किया बल्कि पुराने हथौडा, छेनी, मची जैसे साधनों को छोड कर सीधे सरल विशुद्ध रचना को अपना लक्ष्य बनाया। ये कलाकार बने बनाये आकारों में कोई परिवर्तन नहीं करते व उनका संयोजन या प्रति-संयोजन प्रायः गणितीय आधार पर किया जाता। अतः लघुतम कला माध्यम की अपेक्षा ज्यामिति केन्द्रित है। संपूर्ण रचना प्रभाव में बाधा डालनेवाले सादृश्य, साहचर्य, कलाकार का व्यक्तित्व आदि तत्वों को लघुतम कला में कोई स्थान नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति प्रत्ययवादी तत्वों से

निर्धारित होती है न कि निर्मिति की प्रक्रिया या माध्यम के दावे से। यह भी माना जाता है निर्मिति के पारंपरिक मूलतत्त्वों को जितना कम किया जा सकता है उतना कम कर के लघुतम कलाकारो ने माध्यम के सत्त्व का साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया है। संक्षेप मे लघुतम कला में जो सब से लघु अर्थात् मौलिक है उसकी खोज है। दूसरे शब्दो मे, महान् ध्येय की पूर्ति के हेतु उसमें साधनो का महत्त्व न्यूनतम कर दिया है। जान केज का प्रचलित वाद्यो से रहित संगीत, रोबे-ग्रिले का मनोविज्ञान, स्वभाव विशेषता व प्रचलित कथन शैली से मुक्त साहित्य, सारोयान का विनोदपूर्ण एक-शब्दीय काव्य आकारनिष्ठ—कांक्रीट-काव्य लघुतम कला के विभिन्न कलाक्षेत्रीय प्रयत्न हैं।

नेत्रीयकला[60]:—प्रागैतिहासिक कला का जब गुफाओ ने जन्म हुआ तभी से कलाकारों को नेत्रीय भ्रम[61] के बारे मे ज्ञान था व प्राचीन कलाकृतियों के निर्माण मे दर्शक को भुलाने के उद्देश्य से उसका उपयोग किया हुआ देखने को मिलता है। पाम्पेई के चित्रो एव रोमन पच्चीकारी कला में रेखात्मक दूरदृश्य-लघुता का प्रयोग त्रिमितिदर्शन की अपेक्षा नेत्रीय एव आलंकारिक प्रभाव बढ़ाने के विचार से किया गया। पुनर्जागरण काल मे जब दूरदृश्यलघुता का शास्त्रीय पद्धति से विकास हुआ तब उच्चेलो, फ्रान्चेस्का, फ्रिंलि व अन्य कलाकारों ने गहराई का आभास दिखाने के उद्देश्य से उसका उपयोग किया। प्रकाशविज्ञान व दृष्टिविज्ञान के नये आविष्कारो ने प्रभाववादी व नवप्रभाववादी कलाकारों को प्रकाश व रग के नेत्रपटल पर होने वाले परिणाम का कलानिर्मिति मे प्रयोग करने को प्रोत्साहित किया। उन्होने शेवरोल, हेमहोल्त्स व रुड के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया व नेत्रपटलीय परिणाम को कलासर्जन के—विशेष रूप मे रचनात्मक—मूलाधार तत्त्वों में महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। दृष्टिविज्ञान मे अक्सर उद्धृत 'म्युलेर-लायर आकृति', 'टिश्नेर आकृति', 'जड़ आकृति'[61a] एवं सेंट लुई शहर का विशाल तोरणद्वार नेत्रीय भ्रम के सुविख्यात उदाहरण हैं। नेत्रीय भ्रम का परिणाम नही होते हुए भी मोंद्रियान, डोसबुर्ग व डे स्टाइल के चित्रो मे नेत्रपटलीय परिणाम को रचनातत्व के विचार से महत्त्व है। मोहोली नागी व आल्बेर्स ने बोहौस के पाठ्यक्रम में दृष्टि-विज्ञान सबधी प्रयोगो का अतर्भाव किया। कलाकार आल्बेर्स की चित्रमालिका 'वर्ग के प्रति श्रद्धांजलि' मे भिन्न रंगो के नेत्रपटलीय परिणाम के अनुपात का विचार महत्त्वपूर्ण है। आल्बेर्स की यह चित्रमालिका 'नेत्रीय कला' के प्रवर्तकों को काफी प्रेरणादायक रही।

नेत्रीय कला का आरम्भ विक्टर वासारेली से हुआ। उनके शुरू के चित्र 'आकारनिष्ठ कला' के अन्तर्गत आ सकते हैं। 1940 के बाद उन्होने दृष्टिज्ञान का अध्ययन करके 'नेत्रीय कला' के सर्जन को आरम्भ किया। मोंद्रियान व कान्डिन्स्की के सिद्धांतों व कलाकृतियों के अध्ययन के साथ उन्होंने रंगविज्ञान, नेत्रपटलीय परिणाम व नेत्रीय भ्रम का गहरा अध्ययन किया। वासारेली कला से कलाकार के

व्यक्तित्व को हटा कर उसको गणितीय रूप देना चाहते। उनके विचार से 'चित्रकला' व 'मूर्तिकला' ये शब्द सत्यतादर्शक नहीं हैं एवं उनके स्थान पर 'द्विमिति, त्रिमिति या बहुमिति युक्त लचीली कला' इन शब्दों का प्रयोग होना चाहिये। आधुनिक तकनीकी समाज में कला को सामाजिक की अपेक्षा अन्य कोई महत्व नहीं है। ज्यामितीय वस्तुनिरपेक्ष आकारों को गणितीय आधार से रचनात्मक रूप देने का कार्य कलाकार की कल्पना से होता है व जिसके प्रत्यक्षीकरण में सुनिर्णीत रंगों का समतल प्रयोग किया जाता है व जिसका भित्तिचित्र, पुस्तक, कपड़ा, काच, टेलीविजन, फिल्म या अन्य सामाजिक महत्व के कार्य में उपयोग हो सकता है। वे कलाकृति को सामूहिक दर्शन के महत्त्व की निर्मिति मानते।

ज्यामितीय आकार के छोटे-छोटे टुकड़ों को पच्चीकारी के समान पूरे चित्र-क्षेत्र पर अंकित करके वे कुछ केन्द्रों पर उन टुकड़ों के आकारों में ऐसे ज्यामितीय परिवर्तन करते कि हिलावट पैदा होकर दर्शक की नजर वहाँ टिकना मुश्किल हो जाता। कागज पर ज्यामितीय डिजाइन बनाकर उसकी उलटी आकृति—काले रंग की जगह सफेद व सफेद की जगह काला रंग लगाके—वे प्लास्टिक के पारदर्शक कागज पर उतारते; प्लास्टिक का कागज पहले कागज पर चलाने से आंखों के सामने झिलमिलाहट पैदा होती। इस प्रकार वासारेली व नेत्रीय कलाकार नेत्र-दीपक प्रभावों का निर्माण करने के हेतु नवनवीन तरीके अपनाते। काले व सफेद रंग का विरोध नेत्रीय कला के निर्माण में बहुत ही परिणामकारक रहता है; अतः वासारेली की अधिकतर कृतियां इन दोनों रंगों में बनायी गयी हैं व इस रंगयुग्म को वे बी एन[62] कहते। उन्होंने दो या अधिक पारदर्शक काचों या शीशों का उपयोग करके भी नेत्रीय कला का निर्माण किया। 1960 के बाद उन्होंने अन्य रंगों का प्रयोग करके कुछ नेत्रीय कलाकृतियां बनायी। इंग्लिश कलाकार ब्रिजेट रायली ने वक्रगति पट्टियों जैसे आकारों से चित्रण किया जिससे उनके चित्रों में देदीप्यमान ऊर्ध्वगति ज्वालाओं के प्रभाव का निर्माण हुआ। अमेरिकन कलाकार रिचर्ड आनुस्कीवित्स ने दूरदृश्यलघुता व मिलती हुई सरल रेखाओं के प्रयोग से, प्रकाश केन्द्रों से चारों ओर बिखरती हुई प्रकाशकिरणों के सदृश प्रभाव का निर्माण किया। कलाकार आगाम अपनी कलाकृति को लहरों के समान शिल्पकृतीय उभार देकर बनाते जिससे उसके सामने चलने वाले दर्शक को हिलते हुए आकार नजर आते। कुछ कलाकारों ने उसी डिजाइन को दुबारा कागज पर छाप के हिलावट का निर्माण किया।

रंग-क्षेत्रीयचित्रण[63]:—1959 से समकालीन अमेरिकी कला की कई प्रदर्शनियां हुई, जिनसे स्पष्ट हुआ कि वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भी अमेरिकी कलाकार प्रयोगशील थे। 1959 व 1960 में फ्रेंच एण्ड कम्पनी कलावीथिका ने समकालीन कला के प्रचार के हेतु समीक्षक क्लेमेंट ग्रीनबर्ग के संचालन में बार्नेट न्यूमन, डेविड स्मिथ, मोरिस लुई, केनेथ नोलेंड,

ज्यूल्स ओलिस्की व ज्यूबास फ्रीडेल की एकल प्रदर्शनियाँ की। 1961 में गुगेनहाइम संग्रहालय ने 'अमेरिकन वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यजनावादी कलाकार व प्रतिमाकार'[64] नाम से न्यूयार्क शैली के कलाकारों की प्रदर्शनी की। इस प्रदर्शनी में पोलाक, डे कुनिंग, हाफमन, ब्रुक्स वगैरह आवेशपूर्ण रंगांकन पर निर्भर कलाकारों के अतिरिक्त जिन कलाकारों के वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में नियत्रण व आकारनिर्मिति का विचार था। ऐसे कलाकारों को 'वस्तुनिरपेक्ष प्रतिमाकार'[65] नाम दिया गया। इन कलाकारों में न्यूमन, रोश्को, मदरवेल, गॉटलिएब व स्टिल थे। इनके अतिरिक्त योसेफ आल्बेर्स केवल वर्गाकारों से चित्रण करते; एल्सवर्थ केली व लिओं पोल्क स्मिथ स्पष्ट रेखांकित ज्यामितीय चित्रण करते। इनमें भी आपस में भिन्नताएँ थी; कुछ कलाकार कठोर रेखा से आकारों को ज्यामितीय रूप देते, कुछ कलाकार आकारों को स्पष्ट किंतु अभिव्यजनावादी या अतियथार्थवादी रूप देते तो कुछ कलाकार पॉप कला या क्षेत्रीय कला की दिशा में अग्रसर थे। अतः भिन्न दिशाओं में गतिमान कलाप्रवाहों को नाम दिया गया। 'वस्तुनिरपेक्ष प्रतिमावाद' जिसको 'उत्तर चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व' या 'रंगक्षेत्रीय चित्रण' भी कहा गया है व उसके अन्तर्गत प्रवाहों को 'क्रमबद्ध चित्रण', 'मिनिमल कला'[66] वगैरह नाम दिये गये है।

1961 में गुगेनहाइम सग्रहालय में हुई प्रदर्शनी में नवीन कलाकारों में ज्यूबास फ्रीडेल, हेलेन फ्रेन्केनथेलर, आल हेल्ड, नेस्सोस डेनिस, राल्फ हुम्फ्रे, मोरिस लुई, केनेथ नोलेंड, लिओं पोल्क स्मिथ, फ्रांक स्टेल्ला, थिओडोर स्टैमोस व जैक यगरमन थे। ये सब भिन्न दृष्टिकोणों के कलाकार थे। इनमें से स्टेल्ला, नोलेंड, आल हेल्ड व कुछ अन्य कलाकारों ने चित्रक्षेत्र को सरल स्पष्ट रेखा से विभाजित करके भिन्न हिस्सों को भिन्न रंगों में चित्रित किया था व उनके चित्रों में आकार व अवकाश या अग्रभूमि व पृष्ठभूमि ऐसे पृथक हिस्से दिखायी देने के बजाय सपूर्ण चित्रक्षेत्र दर्शक को एकसाथ व समान रूप से आकर्षित करता था। इन कलाकारों को समीक्षक लॅन्गस्नेर ज्यूल्स ने नाम दिया 'कठोर-किनार चित्रकार'[67]। ज्यामितीय रचनात्मक चित्रण है 'कठोर-किनार चित्रण'[68] में मुख्य दृश्य अन्तर यह है कि ज्यामितीय रचनात्मक चित्रण में ज्यामितीय आकारों को अवकाश से पृथक् रूप दिया जाता है जबकि 'कठोर-किनार चित्रण' में अवकाश व आकार का पृथक् रूप से विचार करने के बजाय सपूर्ण चित्रक्षेत्र का इकाई के रूप में विचार किया जाता है। 1964 में क्लेमेंट ग्रीनबर्ग ने 'उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व' की चलप्रदर्शनी आयोजित की जो लास एंजेलिस, मिनीआपोलिस व टोरोंटो में दिखायी गयी। पोलाक, डे कुनिंग, हाफमन व क्लाइन की कला को ग्रीनबर्ग 'चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व'[69] मानते थे। 1966 में लॉरेन्स अॅलोव के दिग्दर्शन में न्यूयार्क के गुगेनहाइम सग्रहालय ने 'क्रमबद्ध चित्रण' नाम से प्रदर्शनी आयोजित की जिसमें एल्सवर्थ केली, केनेथ नोलेंड, लॅरी पुन्स, नेल विल्यम्स, पोल फीली वगैरह कलाकारों ने भाग लिया था। अॅलोवे ने उनमें से अधिकतर कलाकारों की उसी

आकार या प्रतिमा को लेकर बार-बार चित्रण करते रहने की समकालीन प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया व इस प्रकार उसी प्रतिमा को भिन्न चित्रों में क्रमश: विकसित करने की पद्धति को 'क्रमबद्ध चित्रण'[70] नाम दिया। 'क्रमबद्ध चित्रण' पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, लक्ष्य को निश्चित करके किया जाता है। इस प्रकार विचारपूर्वक किये गये वस्तुनिरपेक्ष चित्रण को आर्यविंग सॅंडलर ने 'ठंडी कला'[71] नाम दिया है।

सॅम फ्रान्सिस रंगो को छिड़का कर एवं बहा कर चित्रण करते अतः उनको समुचित रूप से 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी' चित्रकार मान सकते हैं किंतु उनकी समान-रूप आकारनिर्मिति के सातत्य को देखकर उनको 'उत्तरचित्रणात्मक वस्तु-निरपेक्ष' चित्रकारों में सम्मिलित किया जाता है। सॅम फ्रान्सिस के समान हेलेन फ्रॅन्केन्थेलर की कला वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद व रंग-क्षेत्रीय चित्रण के बीच की सक्रमणावस्था है। चार डंडों के बीच पट को झूले की तरह लटका कर वे उस पर पतले रंगों को झुलाती जिससे मध्यवर्ती पारदर्शक आकार का पट पर निर्माण हो जाता जो फैले हुए रंग के दाग समान दिखायी देता। इसी प्रकार फैलाव पद्धति[72] से चित्रण करनेवालों में कलाकार पौल जेन्किन्स भी हैं। वे बड़े पट पर पतले रंगों को इतस्ततः फैलाते व हलकी से लेकर गहरी छटाओं तक सबके प्रयोग से आकार को घनस्वरूप देते। कलाकार मोरिस लुई भी रंगांकन में तूलिका या किसी अन्य साधन का उपयोग नहीं करते; बिना ताने हुए पट पर वे बिल्कुल द्रवरूप रंगों की अनेक परतों में बहाते जिससे जालों के पर्दों के समान, सौम्य रंगों के आकर्षक पारदर्शक आवरणों का बहुरंगी परिणाम दृष्टिगोचर होता है। सॅम फ्रान्सिस, फ्रॅन्केन्थेलर, जेन्किन्स व मोरिस लुई के रंगक्षेत्रीय चित्रण में कुछ समानताएँ हैं—ज्यामितीयता का अभाव, कोमल आकार व रंगांकन में रंगों को बहाने या फैलाने की क्रिया का प्रयोग। एल्सवर्थ केली, केनेथ नोलॅन्ड व आल हेल्ड ऐसे रंगक्षेत्रीय चित्रकार हैं, जिन्होंने कठोर ज्यामितीय आकारों का प्रयोग किया है।

आकारित पट[73]—1955 के पश्चात् भिन्न माध्यमों व कलाओं का संयुक्त प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी; पॉप कला व नवयथार्थवाद में चित्रकला व मूर्तिकला के बीच कोई अन्तर नहीं रहा; घटनाओं व वातावरणों में हम चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत व नाटक को एक साथ कार्यान्वित देख पाते हैं। 1960 के बाद विकसित 'आकारित पट' कला प्रकार में हम चित्रकला व मूर्तिकला के समन्वित रूप के एक पहलू को देखते हैं।

ऐतिहासिक कला परम्परा के अनुसार अक्सर आयताकार समतल पट का चित्रभूमि के रूप में प्रयोग किया जाता यद्यपि वर्ग, अर्धवृत्त, वृत्त, त्रिभुज, क्राम जैसे आकार का प्रयोग भी कहीं—विशेषतया भित्तिचित्रों व वेदिकाचित्रों में—देखने को मिलता है। बरोक व रॉकॉको शैलियों के बाद चित्रक्षेत्र के आकार में परिवर्तन करने के प्रयोग में चित्रकारों ने रुचि नहीं ली।

आकारित पट पर चित्रण करनेवाले कलाकारों में से फ्रान्क स्टेला प्रसिद्ध है। 1964 में उन्होंने पट पर खाचे काट कर 'क्वाथलेम्बा'[74] शीर्षक के समतल रंगो पर सरल सफेद रेखाओ से वस्तुनिरपेक्ष चित्रण किया। उसके पश्चात् U या L जैसे भिन्न आकारो के पट पर उन्होंने कठोर-किनार चित्रण किया। आकारित पट पर चित्रण करनेवालों मे नेल विल्यम्स, चार्लस हिन्मन, ल्युकिन व रिचर्ड स्मिथ ये कलाकार है। इंग्लिश कलाकार रिचर्ड स्मिथ ने पट को जगह-जगह डिब्बों के समान उभार देकर त्रिमितियुक्त चित्रण किया, व मूर्तिकला व चित्रकला का मिलाप किया। अमेरिकन कलाकार चार्लस हिन्मन ने पट पर रंगीन पट्टों को अंकित कर के उसको मूर्ति के समान जमीन पर बिछा दिया व उसको शीर्षक दिया 'घटना'[75]। गुगेनहाइम संग्रहालय के क्युरेटर लॉरेन्स अॅलोवे ने इस प्रकार त्रिमितियुक्त पटो पर चित्रित कृतियो की प्रदर्शनो करके उनका नामकरण किया 'आकारित पट'। जिस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट चित्रकारो ने चित्रकला को मूर्तिकला के समान ठोस रूप दिया, ठीक उसके विपरीत, कुछ मूर्तिकारो ने मूर्तिकला में रंगीन वस्तुओ का प्रयोग शुरू किया एव 'बहुरंगी मूर्तिकला' का जन्म हुआ। बहुरंगी मूर्तिकारों में फिलिप किंग व विल्यम टकर प्रमुख है।

मनोवर्धक कला :—[77] मेस्केलिन, सिलोसिबिन व एलेस्डी[78] ऐसी औषधियाँ है जिनके सेवन से व्यक्ति सामान्य सचेतन अवस्था से उठ कर हर्षोत्फुल्ल मानसिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है व उसके सामने ऐसे ऐन्द्रिय अनुभूतियाँ खड़ी होती है जो स्वप्निल या नशीली अवस्था मे प्राप्य अनुभूतियों से भिन्न व अलौकिक होती हैं। ऐसी औषधियो का सेवन करके प्राप्त अवस्था मे या ऐसी अवस्था की स्मृतियो से बनायी गयी कला को मनोवर्धक कला कहते हैं।

स्वप्निल या नशीली अवस्था मे साहित्य या कलानिर्मिति करना कोई नयी बात नही है। ऐसी अवस्थाओ मे रंगबिरंगे वातावरण, अद्भुत प्रकाश व अनोखे आकार दिखायी देते हैं, जड़ वस्तुओ को नया सांकेतिक रूप प्राप्त होता है व एक नयी कल्पनासृष्टि का जन्म लेकर मौलिक सर्जन को सहायक होती है। इसी के समरूप दर्शन की कलाकृतियों की निर्मिति कभी मनोविकृतिजनित या भ्रमजनित अवस्था या बच्चे की अस्वस्थ मानसिक अवस्था में की गयी दिखायी देती है।

मनोवर्धक कला के विद्यमान प्रसार के प्रमुख कारण है मनोवर्धक औषधियो की सुलभता, हिप्पी जीवन के प्रति नवयुवकयुवतियो का बढ़ता आकर्षण, बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, आत्मिक मूल्यो पर अश्रद्धा तथा सामूहिक मिश्र-माध्यम कार्यक्रमो के प्रति बढ़ती हुई अभिरुचि। मनोवर्धक कलाकारो ने आर्नू यो शैली तथा ब्ले, रेदो, बिअर्डस्ली व मोरो जैसे पूर्वगामी कलाकारो से प्रेरणा ली यद्यपि धार्मिक जीवन व आत्मिक आनन्द पर अपार श्रद्धा इन पूर्वगामी कलाकारो की प्रमुख कलात्मक प्रेरणा थी। चमकीले नेत्रदीपक रंगो का प्रयोग कर, प्रखर कृत्रिम प्रकाश का स्थानीकरण,

आलंकारिकता, विरोधी रंगो का प्रयोग, वक्राकार गतिपूर्ण रेखाएँ व अवकाश की सदेहपूर्ण भ्रामक स्थिति मनोवर्धक कला की विशेषताएँ हैं।

मनोवर्धक चित्रकला से भी मनोवर्धक सामूहिक मिश्र–माध्यम कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय हुए जिनमे रगबिरगी विद्युत–प्रकाश, प्रक्षेपक यन्त्र, सगीत वगैरे भिन्न माध्यमो द्वारा निर्मित अलौकिक अद्भुत सृष्टि मे प्रवेश पाकर दर्शक स्वय मनोवर्धक कलासर्जन के आनन्द को अनुभव कर लेता है।

उपरिनिर्दिष्ट समकालीन कलाप्रकारों के अतिरिक्त अक्षरवाद, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला, वस्तुनिरपेक्ष चित्रलिपिकला, टाइपराइटर चित्रण[79] वगैरह कलाप्रकारों मे केवल अक्षरो के प्रयोग से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियो का निर्माण होने लगा जिनमे शाब्दिक अर्थ को कोई महत्त्व नही होता। वैसे रचना के अग के रूप मे अक्षरों का कलाकृति मे समावेश ब्राक, पिकासो, श्विटेर्स, क्ले वगैरह चित्रकार पहले ही कर चुके थे। अब कॉम्प्युटर कला मे यन्त्र द्वारा कलाकृतियों का निर्माण शुरू करके कलाकारो ने मानव व यन्त्र के बीच अन्तर को ही समाप्त कर दिया।

काम्प्युटर कला[80] :—अब तक चित्रकार तूलिका, मापनी, ज्यामितीय उपकरण, पिचकारी जैसे साधनो की सहायता से रगाकन या आरेखण करते आये। अब शिल्पविज्ञानीय युग मे काम्प्युटर से चित्रण करने के प्रयोग शुरू हुए व ऐसी कला 'काम्प्युटर कला' नाम से ज्ञात हुई। इस कला का स्वरूप अभी मर्यादित हा है व जो कृतियाँ बनायी गयी है वे सब आई॰ बी॰ एम॰ या काम्प्युटर से सुसज्जित अन्य बडी कम्पनियों की प्रयोगशालाओं के इ जीनियरो या इंजीनियरो व कलाकारों के सहयोग की उपलब्धि है। एक ही व्यक्ति से अभियान्त्रिकी व कला मे निपुण होने की अपेक्षा नही की जा सकती। व्यक्तिगत स्तर पर इस तरह के प्रयोग करने मे आर्थिक कठिनाई भी है।

'काम्प्युटर कला' के पीछे प्रधान विचार यह है कि जो भी कार्य मानव-नियन्त्रित है वह काम्प्युटर से करवाया जा सकता है बशर्ते कि कार्य करवाने वाले व्यक्ति मे नियन्त्रण-कौशल व कलासम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान हो। अत. चित्रकला के अतिरिक्त सगीत, सिनेमा व काव्य की निर्मिति भी काम्प्युटर से की गयी है। जब वाद्य से–जो एक यन्त्र होता है–सगीत का निर्माण होता है तो काम्प्युटर से क्यो नही हो सकता? इस विचार का आधार है भिन्न ललितकलाओ के मूल तत्त्वो की समानता। अब तक श्रेष्ठ व ख्यातनाम कलाकारो द्वारा काम्प्युटर से सर्जनकार्य नही किया जाना 'काम्प्युटर कला' की सम्भावनाओ के बारे मे सदेह उत्पन्न होने का एक कारण है। काम्प्युटर कला की प्रदर्शनियों मे से न्यूयार्क (1965), लदन (1968) व हानोवर (1969) की प्रदर्शनियों का काफी प्रचार हुआ व उन पर चर्चाएँ हुई। काम्प्युटर कला का अधिकतर कार्य नवलचीलवाद, रचनावाद, नेत्रीयकला, वस्त्रालकरण जैसी शाखाओ में हुआ है क्योंकि गणितीय सिद्धान्तो पर आधारित होने से

इनमें काम्प्युटर का उपयोग सुलभता से व प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। सायबर्नेटिक्स मे हुए सशोधनो से वैज्ञानिकों को विश्वास हो रहा है कि कला का सर्जन ऐन्द्रिय व बौद्धिक क्रियाओं पर आधारित है; विभिन्न कलाओं के मूलतत्वों की समानता से इस बात की पुष्टि होती है। अतः वे वर्तमान शिल्पविज्ञानीय युग मे काम्प्युटर कला को सौन्दर्यात्मक अनुभूति प्राप्त करने के माध्यम के रूप मे विकसित करने के लिये प्रयत्नशील है। ग्रेस हेर्टलाइन का मत है, "काम्प्युटर की कलाक्षेत्रीय मर्यादाएं है कलाकार की कल्पनाशक्ति व कलाकार द्वारा काम्प्युटर का स्वीकार। ··· शिल्पविज्ञान व कला, इन दोनों के आतरिक नियमो को स्वाभाविक रूप से स्वीकारने पर कलाकार बधमुक्त होकर सफल सर्जनकार्य कर सकेगा"। काम्प्युटर को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अचूक व द्रुतगामी उपकरण मानने के बजाय कलात्मक अनुभूति प्राप्त करने का एक नया क्षेत्र समझना चाहिये। अमेरिकन काम्प्युटर कलाकार चार्लस सुरी कहते है, "मैं काम्प्युटर के जरिये आकारो की एक नयी दुनियां का आविष्कार करता हूं।"

अब काम्प्युटर कला की सम्भावनाओं के बारे में सदेह होने के कुछ कारणों का विचार करेंगे। महान् कलाकार अब तक यही कह गये हैं कि वे जिस आंतरिक अनुभूति को कला के जरिये व्यक्त करना चाहते थे उसको व्यक्त करने में सफल नही हो पाये, यानी कलासर्जन की प्रक्रिया में अभिव्यक्ति से अनुभूति अधिक महत्वपूर्ण है अर्थात् कला उसे अनुभूति की प्राप्ति का एक माध्यम मात्र है। जब कलाकार किसी कला को माध्यम के रूप में चुनता है तो उसके साथ जुड़े हुए भौतिक साधनों का स्वीकार भी अपरिहार्य हो जाता है। किन्तु हर साधन का एक विशेष निजी अस्तित्व होता है जो साधक की साधना में बाधा डाले बिना नही रहता। यह एक अन्तर्द्वन्द्व है व इसीलिये भारतीय दर्शन मे साधन की शुचिता व ऋजुता को प्राथमिक महत्व दिया गया। कुछ त्योहारो के दिनों पर अपने औजारो की पूजा करने की जो प्राचीन प्रथा थी उसके पीछे यही भावना अन्तर्निहित थी। साधन का स्वरूप जितना जटिल होता है उतना ही उसका अस्तित्व प्रखर होता है व उस पर नियंत्रण रख कर अपनी सूक्ष्म सवेदनाओ को कलाकृति में रूपायित करने की प्रक्रिया कठिन होती है। मौखिक सगीत के द्वारा कलाकार के व्यक्तित्व का जैसा घनिष्ठ परिचय होता है वैसा वाद्य-सगीत के द्वारा नही हो सकता। कलाकार की आंतरिक भावनाएँ सूक्ष्म सवेदनाओ के रूप मे प्रकट होती हैं। कण्ठ द्वारा इन तरल सवेदनाओं को ध्वनिरूप मे जितनी सफलता से प्रकट किया जा सकता है वैसे वाद्य के जरिये कैसे सम्भव है? हाथ से खीची हुई रेखाओ व आकृतियो के समान सवेदनशील रेखाएँ व आकृतियाँ ज्यामितीय उपकरणो से नही खीची जा सकती। इस दृष्टिकोण से, काम्प्युटर जैसे जटिलतर यन्त्र की सहायता से मानवीय भावनाओं को सार्थ रूपायित करने में सफलता कैसे मिल सकती है, यह सन्देह स्वाभाविकतया मन मे उठ खड़ा होता है।

खैर, उपर्युक्त विचार त्याग, सेवा, भूतदया, ग्रात्मिक ग्रानन्द ग्रादि मानवतावादी व ग्राध्यात्मिक मूल्यो का विश्वास करने वालो के है। इन विचारों से वर्तमान भौतिकवादी विचारधारा के व्यक्ति सहमत नही होगे जो मानव के सब सुखो को इन्द्रियजनित मानते है। ग्रतः यदि जड़वादी दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो काम्प्युटर से ऐसी ग्रद्भुत कृतियो की निर्मिति की जा सकती है जिनमें दृश्य सौन्दर्य के ग्रलावा कोई मानवतावादी विचार नही है। यन्त्रयुग के विकास के साथ-साथ यंत्र ने मानव-जीवन को प्रभावित करके मानव को ग्राधा यन्त्र तो बना ही डाला है। ग्रब ऐसी ही प्रगति होती रहेगी तो मानव का सम्पूर्ण भावनाविहीन यन्त्र बनना दूर नहीं है। इस विचार के पीछे, ग्रर्थात् कोई भलाई-बुराई का दृष्टिकोण नही है-जिसका हम विश्वास करते है वही हमारे लिये सत्य होता है, शेष सब कुछ हमारे लिये ग्रसत्य ही रह जाता है। विश्व मे पूर्ण निरपेक्ष तो कुछ भी नही है।



17
आधुनिक कला-1965 के पश्चात्

पिछले दो दशकों की पाश्चात्य कला का परिशीलन करने पर स्पष्टतया दिखायी देता है कि कलाकारों में समाजोन्मुखता की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसको हम समाजवादी विचारधारा से नही मिला सकते किन्तु यह ऐसी प्रवृत्ति है जो कला का समग्र मानव-जीवन से सपर्क स्थापित करना चाहती है। 19वी सदी के उत्तरार्ध मे एव करीब 1960 तक आधुनिक कलाकार आत्मकेंद्रित होकर रूपाकन की नयी पद्धतियों व निजी आतरिक दुनिया की परिणामकारी चित्ररूप अभिव्यक्ति मे व्यग्र था। इस उद्देश्य की पूर्ति में उसने भिन्न नयी दिशाओ मे प्रयोग करना अनिवार्य देखा व इस काल की कला के विविध दर्शन के कलाप्रवाहों की प्रमुख समानता हो गयी—प्रयोगात्मकता। अत. इस काल की समग्र आधुनिक कला को सक्षेप मे, उचित रूप से सज्ञा दी गयी—'प्रयोगवादी'। बीसवी सदी क छठे दशक के बाद कलाकारों के चिंतन में परिवर्तन आने लगा। अब तक के आधुनिक कलाकारों ने विभिन्न दिशाओ मे प्रयोग करके इतनी शैलियो को जन्म दिया था कि आगे प्रयोग करने की न कोई आवश्यता थी न आवश्यकता। अनिवार्य रूप से एक ही कार्य शेष था-पूर्ववर्ती करीब दो अर्धसदियों की कलात्मक उपलब्धियो को प्रयुक्त करना। जिस तरह 1960 तक की कला को 'प्रयोगवादी' मानते हैं उसी तरह साठोत्तरी कला को 'प्रयुक्तवादी' कहना उचित होगा। कुछ समीक्षक साठोत्तरी कला को 'उत्तर-आधुनिक कला'[1] कहते है; उसका प्रमुख कारण यही है कि अब नयी कला मे न आधुनिक कला की प्रयोगात्मकता दृष्टिगोचर है न कोई नया रूप-रग। वैसे 'कला के लिये कला' के कोई कितने भी नारे लगाये, कलानिर्मिति की परिस्थिति व उसके अस्तित्व के प्रयोजन का विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि उसके पीछे कोई अज्ञात प्रेरणा कार्य करती है, जो चाहती है कि कलाकार को मिलनेवाले सर्जनानद के अतिरिक्त निर्मित कृतियों को कोई सार्थकता हो। कलाकार यदि अपनी कलाकृति से सतुष्ट है तो वह उसे नष्ट नही कर देता या केवल स्वयं तक सीमित नही रखता बल्कि उसको तबतक चैन नही मिलता जबतक अन्य व्यक्ति भी उस कृति का रसग्रहण नही कर लेने या यदि उस कृति के पीछे कोई सप्रेषण का विचार हो तो उसको वे उचित रूप से ग्रहण नही करते। जब कलाकार की प्रतिमा का परिपोषण ही सामाजिक वातावरण के अतर्गत होता है तो भला उसकी कलानिर्मिति सामाजिक जीवन से अप्रभावित या असबद्ध कैसे हो सकती है। आखिर कलाकृति कहाँ

म कही तो लगायी जाती ही है व इस विचार से भी उसका आसपास के वातावरण से तालमेल बिठाना आवश्यक है। अतः वस्तुनिरपेक्ष कला को भी प्रयोजनीयता से विमुक्त नही मान सकते। वास्तव में जैसे कि अॉरिस्टाटल ने लिखा है, "कला का व्यापक लक्ष्य है–मानव"।[2]

एग्बर्ट के मतानुसार फ्रेंच राजनीतिक क्राति के पश्चात् आरंभ हुआ अग्रसर कला का आंदोलन–जो करीब द्वितीय विश्वयुद्ध तक चलता रहा–अब समाप्त हो चुका है। राजनीतिक क्रांति के साथ ही अभिजात-वर्ग का आश्रय समाप्त होने से साहित्यिक व कलाकार स्वयं को परित्यक्त महसूस कर रहे थे व यह कलाकारों को स्वतंत्र रूप से कलासर्जन करने के लिये प्रेरित होने के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था। राजनीतिक क्राति से उद्भूत नियंत्रण-दमन से मोहभग हो कर कलाकार शीघ्र ही अन्तर्मुख होकर व्यक्तिगत दिशा में सर्जन करने लगते हैं व कलाक्षेत्रीय क्रांति शुरू हो जाती है। अब 1960 के करीब आधुनिक कला की सभी शैलियों को सामाजिक मान्यता व आश्रय मिलने से कलाकारों का सामाजिक मान्यता व आश्रय मिलने से कलाकारों का सामाजविमुख होकर कार्य करने का कारण ही नही रहा। कलाकारों के दृष्टिकोण में हुए उपर्युक्त परिवर्तन को ध्यान में रखने से साठोत्तरी कला का अध्ययन सरल होगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, योरोपीय शरणार्थी कलाकारों के आगमन से न्यूयार्क विश्व का सब से प्रमुख कला केन्द्र बन गया व देशविदेशों के कलाकार, कलाप्रेमी व कलासस्थाएं अमेरिकी कलाक्षेत्र मे हो रहे परिवर्तनों की ओर विशेष ध्यान देने लगे। अतः वहां की कला का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

कला को सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बनाने की दिशा मे द्यूशा, ओल्डेनबुर्ग व काल्डेर की कला ने काफी मार्गदर्शन किया। 1963 मे पॅसेडिने मे हुई द्यूशां की अनुदर्शी प्रदर्शनी के समय द्यूशा स्वय कलावीथिका में एक विवस्त्र स्त्री के साथ शतरज खेलते रहे जिसको देख कर कहा जाने लगा कि द्यूशा ने शतरज खेलते हुए कलानिर्मिति की, या उन्होने सूचित किया कि कलाकारो को पृथक्तावाद को छोड़ कर समाज की गतिविधियो मे भाग लेना चाहिये। यही सूचकता ओल्डेन बुर्ग के कथन में है, "मैं ऐसी कला को चाहता हूं जो कंघा करती है, कानो से लटकती है, होठो पर और आखो मे लगायी जाती है, ..."। द्यूशा के विचारों से हम दादावाद के अध्ययन के अन्तर्गत परिचित हो गये हैं। आलेक्साडेर काल्डेर मॅकेनिकल इंजिनियर थे। 1923 से उन्होने न्यूयार्क की मासिकपत्रिका के लिये चित्रण करना शुरू किया। पॅरिस मे उनकी लेजे, मीरो व मोन्द्रियान से मुलाकात हुई जिनकी कला का काल्डेर की कला पर स्पष्ट प्रभाव है। 1926 में उन्होंने आदमियो व जानवरो के गतिमान खिलौने बना के नकली सर्कस तैयार की जिस वजह से पॅरिस में वे 'सर्कस काल्डेर' नाम से मशहूर हुए। 1931 मे रंगबिरंगी पत्तियों को जोड़ कर उन्होने अपनी आरभिक 'चचल-कृतियां'–यानी घूमते हुए

शिल्प—बनायीं; पत्तियों के आकार मीरो के चित्रांतर्गत आकारों के सदृश है। इन कृतियों का द्युशां ने 'चचल-कृतिया'[3] नाम से प्रथम उल्लेख किया। 1940 से काल्डेर ने 'अचल-कृतियों'[4] की निर्मिति शुरू की जो 'चचल-कृतियों' के समरूप किंतु स्थिर होती है। काल्डेर ने छोटे से लेकर विशाल तक आकारों की दोनों तरह की कृतियां बनायी जो गृहों एव स्टेशन, बगीचा, सभागृह, भवन संग्रहालय, मनोरजन-गृह जैसे सार्वजनिक स्थानों को सुशोभित करती है।

समाजोन्मुख होते ही कला के रूप में परिवर्तन होने लगा। अब कलाकृतियों का केवल प्रदर्शन नहीं बल्कि समारोह जैसा आयोजन होने लगा जिसमें कभी दर्शक को भाग लेने को आमंत्रित किया जाता। जैसे कि हॅरोल्ड रोसेनबर्ग ने कहा है, "आज की कला में दर्शक, कला-सयोजन का अंग बन कर स्वयं एक कलाकृति हो जाता है"। कला का वस्तु के बजाय घटना के रूप में प्रकट होने का आरम्भ दादा-वादी व अतियथार्थवादी सम्मेलनों से हुआ। प्रयुक्त कला—विज्ञापन, औद्योगिक रचना, वस्तुरचना, अध्यापन के साधन, हास्यचित्र मालिका आदि—व ललितकला के बीच का अन्तर घट गया। वैसे प्रयुक्त कला का भी स्वतन्त्र महत्व है व उसको ललितकला से कनिष्ठ नहीं मानना चाहिये। जब द्युशां ने अपनी कृतियों में 'बनी बनायी' वस्तुओं का अन्तर्भाव शुरू किया तब कलाकारों की कृतियों व दस्तकारों की कृतियों में भेद दिखलाना कठिन हो गया। पॉप कलाकारों का दृष्टिकोण प्रयुक्त कलाकारों के समान सामाजिक था। नेत्रीय कलाकारों ने भी वस्तुनिरपेक्ष अभि-व्यजनावादी कलाकारों की आत्यंतिक आत्मनिष्ठता के विपरीत वस्तुनिष्ठ प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित कर के चित्रण किया। योसेफ आल्बेर्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "भयग्रस्त चिंता मर गयी".[5] इस प्रकार पॉप व ऑप, (नेत्रीय), दोनों कला प्रकारों में परम्परागत वैयक्तिक महत्व की जगह सामाजिक महत्व पर बल दिया गया है।

अब कलाक्षेत्र में नये स्वरूप की सामाजिक महत्त्व की गतिविधियों ने प्रवेश किया, व मिश्र-माध्यम-कार्यक्रमों के आयोजन चौराहों, नदी-किनारों, बगीचों, पर्यटन स्थलों आदि सार्वजनिक स्थानों पर होने लगे; इन कार्यक्रमों में चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, अभिनय, नाटक, वीडियो वगैरह का आवश्यकतानुसार समावेश किया जाता। इन कार्यक्रमों के लिये 'वैकल्पिक स्थानों'[6] की व्यवस्था प्रचलित हुई। कार्यक्रम विविध रूप के होते—नकली प्रीतिभोज, परीसृष्टि या मनोवर्धक प्रभाव का वातावरण, नकली अदालत, अतियथार्थ अद्भुत दृश्य, ऐतिहासिक या समकालीन घटना का प्रतीकात्मक मचन आदि। कभी पूर्णतया वस्तुनिरपेक्ष आकारों द्वारा विशुद्ध सौंदर्यात्मक अनुभूति के वातावरण का निर्माण होता तो कभी भय-सभा सदृश भ्रमजनक सृष्टि का। कार्यक्रमों का दृश्य प्रभाव सिनेमा के समान होता, किन्तु इनमें दर्शकों को सम्मिलित होने की अनुभूति मिलती व कुछ कार्यक्रमों में दर्शक स्वयं भाग ले सकते। मिश्र-माध्यम-कार्यक्रमों के आयोजन मर्यादित ही हो

सकते थे व कलाकारों ने अपना अधिकतर ध्यान सार्वजनिक स्थानों पर स्थायी रूप से लगायी जानेवाली कृतियों या 'अधिष्ठापनों' पर दिया।

'अधिष्ठापन'[7] की निर्मिति में सब तरह की मानवनिर्मित या प्राकृतिक वस्तुओं व यन्त्रों का प्रयोग होता जैसे कि मिट्टी, पत्थर, कपड़ा, प्लेक्सिग्लास आदि। कुछ अधिष्ठापन यन्त्रों से गतिमान होते तो कुछ कृत्रिम प्रकाश योजना से दीप्तिमान। कुछ अधिष्ठापनों में 'नाटकीय झाकी'[8] का प्रभाव होता है; इनको हम मूर्त प्रतीकात्मक भाषा कह सकते हैं। 'वातावरणीय-कला-प्रायोजना'[9] द्वारा बल्गेरियन कलाकार क्रिस्टो विशेष प्रसिद्ध हुए। इनकी प्रायोजनाएँ प्रायः विशाल स्वरूप की होती हैं। 1971 में उन्होंने कालोरॅडो घाटी को आरपार विशाल पर्दे से आच्छादित किया। क्रिस्टो की न्यूयार्क के सेन्ट्रल पार्क में 27 मील लम्बे रास्ते पर नारंगी रंग के नायलोन के पर्दों के 11000 तोरणों की प्रायोजना एवं मायामी के 15 मानवनिर्मित द्वीपों के चारों ओर 200 फीट चौड़े गुलाबी रंग के पोलिप्रोपिलीन के गट्ठे थान–जिनसे वे द्वीप ऊंचाई से बहुत बड़े गुलाबी फूल जैसे दिखायी दें की प्रायोजना उल्लेखनीय है।

अधिष्ठापनों या वातावरणीय शिल्पों को उनकी विशेषताओं के अनुसार भिन्न नामों से पहचाना जाता है किन्तु मिश्र-माध्यमों के प्रयोग के कारण एक ही कृति कई नामों से जानी जा सकती है। नाम की अपेक्षा कलाकृति के दृश्य एवं भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक प्रभाव को ही महत्त्व दिया जाना चाहिये।

स्थल-विशिष्ट-शिल्प[10]:—इसमें स्थल के वातावरण व कलाकृति के बीच के संवाद–सामंजस्य तथा विरोध–को महत्त्व दिया जाता है; वातावरण के साथ कलाकृति की एकरूपता व उसकी पृथक स्वतन्त्र पहचान, दोनों का होना जरूरी है। प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास में स्थल-विशिष्ट-शिल्प के उदाहरण मिलते हैं। ग्रीस की पहाड़ियों व घाटियों में चमकीले रंग लगाये सफेद पत्थर जगह-जगह मिले हैं। भारत में भी पूजा या तान्त्रिक विधियों के हेतु जंगलों व पहाड़ों में वन्य जातियों द्वारा सेंदूरी, काले या पीले रंग से अंकित पत्थर दिखायी देते हैं जो अनोखा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। अमेरिका के ओहायो राज्य में प्राप्त विशाल 'सर्प-टीला'[11] इसका अन्य उदाहरण है। यह मिट्टी का बना हुआ वक्राकार विशाल सर्प कुछ निगलते हुए दिखाया है। शायद यह किसी धार्मिक या मन्त्रतन्त्र के उद्देश्य से बनाया गया होगा। कैसे भी हो पहाड़ों जंगल के वातावरण के अंतर्गत बनाये इस शिल्प का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। माना जाता है कि यह 'सर्प-टीला' उस जाति ने बनाया होगा जो 'माउंड-बिल्डर्स'[12] नाम से जानी जाती है व जो करीब ई. स. पूर्व 15000 वर्ष पहले एशिया से जमी हुई बेरिंग खाड़ी को पार कर के अमेरिका आयी थी। इस जाति द्वारा बनायी अन्य मिट्टी की कृतियां भी जगह-जगह मिलती हैं यद्यपि बहुतसी प्राकृतिक प्रभाव से नष्ट हो गयी या निर्माण के हेतु उपनिवेशियों से नष्ट कर दी गयी। इंग्लैंड में प्राप्त नवपाषाणकालीन विख्यात 'स्टोन-

हेंज'[13] और एक उदाहरण है जिसमें मानव की आकांक्षा व प्राकृतिक सौंदर्य का समन्वित रूप देखने को मिलता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक कला ने आदिम कला से बहुत प्रेरणा पायी है व इसका तुलनात्मक विचार करते हुए तर्क-संगत है कि आदिम कला के समान आधुनिक कला को भी सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बनना चाहिये। प्रकृतिपूजन व प्रकृति पर अपनी छाप लगाने की मानव की सहज-प्रवृत्ति है, व इसका स्वरूप व मर्यादा, समय व सभ्यता से निर्धारित किये जाते हैं। अब आधुनिक कलाकार भी महसूस करने लगे है कि खुले एवं प्राकृतिक वातावरण की बनी बनायी पार्श्वभूमि पर सर्जन की अपरिमित संभावनाएँ है। शहरों के अलावा जंगलो, तालाबो, पहाडों, नदियो आदि के प्राकृतिक सौंदर्य को आभूषित करने के विचार से प्रायोजनाएं बनायी जाने लगी। अस्पतालों के बगीचो व प्रांगणों में शिल्पकृतियां लगाने का उद्देश्य मनश्चिकित्सा भी होता है। इस प्रकार नये दृष्टिकोण ने समूचे परिसर को कलानिर्मिति के लिये अनुरूप पार्श्वभूमि का रूप निर्धारित किया व कलाकारो का लक्ष्य हो गया कि वे उसके लिये ऐसी शिल्पकृतियाँ बनायें जो परिदृश्य से एकात्म हो कर दैनंदिन जीवन से पृथक् अनुभूति को प्रदान कर सकें।

शिल्पकृतियों या झाँकियो में कभी किसी विशिष्ट घटना—जैसे कि विएतनाम या इस्रायल युद्ध—का सूचक रूपांकन होता व ऐसी कृतियों को 'प्रतीकात्मक या सांकेतिक शिल्प'[14] कहा गया। प्राचीन स्मारकों के समान ये स्मरण दिलाने का कार्य करती है। जिनमें प्रकाश के प्रभाव का विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य होता ऐसी कृतियां 'प्रकाश-शिल्प'[15] नाम से ज्ञात हुईं। यंत्र-सदृश कृतियों को 'कला-यंत्र'[16] नाम दिया गया; अर्थात् 'कला-यंत्र' का दृश्य अनुभूति के अतिरिक्त कोई व्यावहारिक उपयोग तो नहीं हो सकता। वैसे यंत्र-सदृश कलाकृतियां बनाने का आरम्भ दादा-वाद से ही हुआ था जब दुशां ने 'चॉकोलेट की चक्की'[17] चित्र बनाया एवं बुगात्ती ने 'मोटर' व मोहोली-नागी ने 'प्रकाशावकाश-नियन्त्रक'[18] शिल्पकृतियां बनायी। अभिनय-प्रधान कार्यक्रम को 'अभिनय-कला'[19] कहने लगे। 'अभिनय-कला' में रोशेनबर्ग ने नृत्य-नाटकों को लेकर महत्त्वपूर्ण प्रारंभिक कार्य किया।

बाह्य-लेखा-चित्रकला[20]—भित्तिचित्रण व पट-चित्रण में जो अंतर है वैसा ही बाह्य-लेखा-चित्रकला व लेखा-चित्रकला में है। बाह्य-लेखा-चित्रकार में पर्यावरण को चित्रों से सुशोभित करने के बजाय पर्यावरण के भिन्न अंगो व उसमें स्थित वस्तुओं को चित्रित किया जाता है। इसका मूल उद्देश्य होता है आंखों को प्रसन्नता देना या भ्रम पैदा करना, एवं मन को मुग्ध या आनंदित करना। इसमें चित्र को चौखटे में बंद करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जमीन से लेकर छत तक फैल कर बाह्य-लेखा-चित्र समूचे वातावरण का रूप बदल देते हैं व निवासियों को लगता है कि ये चित्र वातावरण से अभिन्न हैं। ये विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं जिनका अप्रत्यक्ष रूप से निवासियों के कार्यकलापों पर असर

पड़ता है। इनसे सभागृहों, कार्यालयों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों एव सम्पन्न लोगों के गृहो के वातावरण को रंगीन व उत्साहवर्धक बनाया जाता है।

उपर्युक्त कलाकृतियों या कार्यक्रमो मे से अधिकाश की कलात्मक श्रेष्ठता सदेहपूर्ण ही होती है। विकसित पाश्चात्य देशो मे, एक तरफ शिल्पवैज्ञानिक प्रगति से वर्धमान भौतिक सपन्नता व दूसरी तरफ सामाजिक अस्थिरता, विनाश का भय, अविश्वास व आत्मिक शाति का अभाव ऐसे परस्पर विरोधी तत्त्वो के टकराव में जन्मी नयी कला-प्रवृत्तियों का महत्त्व केवल अस्तित्ववादी विचारधारा के मानव को क्षणिक अनुभूति मे बद्ध करने तक ही सीमित है। वस्तुनिरपेक्ष कलाकृति का प्रभाव तो स्वभावतः ही अस्थायी होता है; किन्तु समसामयिक आधुनिक कला में ऐसी अभिव्यक्तिशील कृतिया भी कम होती है जिनका दर्शक के लिये कोई स्थायी महत्त्व हो। इसके मूल मे है *वर्तमान संदेहग्रस्त मानसिक अवस्था।*

जिस तरह विशुद्ध गणित व विज्ञान के सशोधनो का अभियात्रिकी व शिल्पविज्ञान को लाभ होकर समाज का भौतिक विकास हुआ उसी तरह आधुनिक कला की रूपाकन-पद्धतियो व अभिव्यक्ति के तरीको मे सबसे अधिक लाभ हुआ वास्तु-कला, नृत्य, नाटक व प्रयुक्त कला की विभिन्न शाखाओं को, व समाज का दृश्य व सास्कृतिक रूप काफी बदल गया। दस्तकारी को भी नया रूप प्राप्त हो कर उसका विकास हुआ। सुलभ पुनरुत्पादन व सस्तापन की वजह से उत्कीर्णन, निक्षारण, अश्ममुद्रण, सीरीग्राफी, सिल्क-स्क्रीन-मुद्रण, पोस्टर्स आदि लेखा-चित्रकला की अंकन पद्धतियां द्वारा कलानिर्मिति काफी प्रचलित हुई। अभियात्रिकी, इलेक्ट्रोनिक्स व कलाक्षेत्र में सहयोग बढ़ कर कलानिर्मिति मे वैज्ञानिक तरीको व यंत्रों से सहायता ली जाने लगी। यंत्रों के निर्माण में भी सौदर्य की दृष्टि से आधुनिक आकारों का प्रयोग होने लगा।

कला व यन्त्रः—

वर्तमान मानव-जीवन व कला दोनों प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिल्पविज्ञान से प्रभावित हो गये है। शिल्पविज्ञान के जरिये वैज्ञानिक सिद्धांतों का दैनिक व्यवहारों के लिये उपयोग किया जाता है। मार्शल मैक्लुहान के अनुसार शिल्पविज्ञान जो मानव के मस्तिष्क व हाथों की क्षमता बढाता है एक तरह से उसके तन्त्रिका-तन्त्र का विस्तारण ही है। विगत काल मे भी कलाकारों ने नवीन आविष्कारों व उपकरणों का उपयोग किया है। लिओनार्दो ने शरीर-वैज्ञानिक मार्कान्तोनिओ देल्ला तोरे के साथ अध्ययन कर के मानवाकृति-चित्रण किया। पुनरुत्थान काल ने कलाकार वैज्ञानिक संशोधनों से विशेष रूप से लाभ उठाने लगे।

रसायन-विज्ञान से कलाकार को कई चमकीले संश्लेपित रंग उपलब्ध हुए है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकसित जल्द सूखनेवाले एक्रिलिक रगों के कारण कलाकार धब्बा-पद्धति से चित्रण कर सकते है जो तैल-रगो से सम्भव नहीं था। प्रचलित रगो मे एक्रिलिक रंग सब से टिकाऊ है। पॉप, ऑप, रंगक्षेत्रीय चित्रण

जैसी शैलियों का विकास आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों के बिना असंभव था। प्रयुक्त कला का विकास भी यांत्रिक उपकरणों के बिना असंभव था क्योंकि उसमें केवल तूलिका जैसे सीमित साधन से कार्य नहीं हो सकता। स्टाइरफोम, प्लेक्सिग्लास, फाइबर ग्लास जैसी लचीली सस्ती सश्लेषित सामग्री ने शिल्पकला को नया रूप प्रदान किया। अब शिल्पकार सीधे उपलब्ध सामग्री से रचनाकार्य या शिल्प पूर्ण कर सकता है। चलकृतियों का मुख्य आधार शिल्प-विज्ञान ही है। लैरी रिवर्स कहते हैं, "माइकेल एंजेलो ने मार्बल को पसंद किया व उसकी मूर्तियां बनायी। मैं बिजली का उपयोग करता हूं। इनमें क्या अंतर है?" जर्मन कलाकार निकोलास-शोफेर कहते हैं, "मैं यंत्र को मानवता प्रदान करता हूं"। उनके विचार से शिल्प-विज्ञान मानव-मुक्ति के लिये सहायक हो सकता है।

वर्तमान प्रगतिशील संगीत शिल्प-विज्ञान पर निर्भर है। कई वर्षों से जॉन केज रेडियो, दोलित्र, फीता आदि इलेक्ट्रोनिक साधनों का उपयोग कर के संगीत-कार्यक्रमों का आयोजन कर रहे हैं। संगीतकार मिल्टन बॅबिट के मतानुसार आधुनिक फीते (टेप) के बिना इलेक्ट्रोनिक संगीत संभव नहीं है। नृत्य के कार्यक्रमों में आल्विन निकोलाइस ने प्रकाश के चचल प्रभाव का स्वतंत्र एवं पूरक तत्व के रूप में प्रयोग किया। परंपरावादियों का मानना है कि वस्तुनिरपेक्ष कला वास्तवता से पलायन है; किन्तु यदि हम विज्ञान से आविष्कृत सृष्टि-रचना या फोटोमाइक्रोस्कोप से दृश्य पदार्थ-रचना का विचार करेंगे तो स्पष्ट होगा कि आधुनिक मानव के लिये वास्तवता का दृश्य रूप ही प्राचीन कल्पना से भिन्न हो गया है। अतः इन वैज्ञानिक आविष्कारों का कलांतर्गत रूपों पर असर होना स्वाभाविक है।

संक्षेप में, शिल्पविज्ञान के कारण कलाकारों को नयी सामग्री उपलब्ध हुई है; नये उपकरणों व प्रकनपद्धतियों से वे कलानिर्मिति कर सकते हैं; पदार्थ-रचना संबंधी एवं अन्य वैज्ञानिक जानकारी से प्राप्त नयी प्रतिमाओं को वे काम में ला सकते हैं; व इस प्रकार कलाक्षेत्र में कलाकार व यंत्र का सहयोग बढ़ा है।

कला में यंत्र के प्रयोग के विरोधियों के विचार से शिल्पविज्ञान एक बाह्य व अमानुषिक शक्ति है और उस पर कलाकार उचित रूप से नियंत्रण नहीं कर पायेगा। किन्तु डेविस के विचार से शिल्पविज्ञान को मानवीय या अमानवीय रूप देना मानव पर निर्भर है; हमको देखना होगा कि कोई भी सामग्री या यंत्र यदि मानव की कल्पनाशक्ति के अनुसार कार्य करने के लिये अनुकूल है तो उसको त्याज्य नहीं मानना चाहिये। लुइस मम्फोर्ड ने शिल्पविज्ञान की तुलना बन्दीगृह की दीवारों से की है जो मानव ने स्वयं बनायी हैं और उनके बीच वह स्वयं आजीवन कारावास भुगत रहा है।

यंत्र की नियन्त्रणीयता के बारे में द हैं। ल के अनुसार मानव, स्वभाव से ही, उत्कृष्ट रूप में नोल इच्छानुवर्ती प्राणी है व उसकी तुलन [बुद्धिहीन य यक मनस्टर फुलर

का कहना है कि सीमित इन्द्रियज्ञान पर निर्भर मानव—जिसको वे एक जटिल यंत्र मानते है—से यंत्र अधिक विश्वसनीयता से व अचूक कार्य करता है। दादावाद के संयोग के सिद्धात या 'आकस्मिक लब्ध-वस्तु' के प्रयोग से कलाकृति बनाने वाले रोशेनबर्ग एवं 'आकस्मिक लब्ध-ध्वनि' की सहायता से संगीत निर्माण करनेवाले जॉन केज के लिये यंत्र बहुत ही उपयुक्त साधन सिद्ध हुआ क्योंकि उनके विचार से स्वल्प चालना देने पर यंत्र से अपने आप निर्मित आकारो या ध्वनियो से बननेवाली कलाकृति मानव के अहम् से अस्पर्शित व निसर्ग-नियमो के अनुसार स्वाभाविक होती है। अतः ये कलाकार यंत्र को इसीलिये पसद करते है कि वह विशेष नियत्रण के बिना कार्य करता है व उसको आप जितनी अधिक छूट देते है उतना ही वह अपने आप, अनपेक्षित आकारो को बना देता है। अर्थात् ये विचार मानवीय भावनाओं पर आधारित परपरागत सौदर्यशास्त्र पर कुठाराघात ही है। बिली क्लूवर ने 3000 वर्ष पूर्व की चीनी आतिशबाजी को शिल्पविज्ञान की सहायता से निर्मित कलाकृति का प्राचीन उदाहरण माना है जिसने काव्य, रहस्य व मनोरजन प्रस्तुत कर लोगों को प्रसन्न किया। किन्तु कुछ कलाकार इसी वजह से यन्त्र की ओर आकर्षित हुए है कि उससे नियन्त्रणपूर्वक अचूक कार्य कराया जा सकता है। सगीतकार बॅबिट कहते है कि "यत्र से आप चाहते है वैसा कार्य कराया जा सकता है व उसमें इत्तफाक या संयोग को स्थान नही है; वह नियम-बद्ध रह कर कार्य करता है।" कैसे भी हो यंत्र मे 'हस्तकला को स्थान कम है व क्रीडन की भावना ज्यादा है'[21] डेविस कहते है, "जब मानवतावादी विचार के लोग सोचते है कि कलाकार को केवल क्रीड़न की भावना के ऊपर उठना चाहिये तो कहना पडेगा कि वे वर्तमान दर्शन, मनोविज्ञान व समाज-विज्ञान को नही समझ रहे है"। दार्शनिक विट्गेन्स्टाइन कहते है, "भाषा एक खेल है"।[22] सार्त्र का भी मानना है कि, "मनुष्य उतना स्वाधीन कभी नहीं होता जितना कि खेलते वक्त"।[23] उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद हम यह भी नही भूल सकते कि मानवजीवन मे खेलभावना के अतिरिक्त भय, आश्चर्य, अविश्वास आदि विविध भावनाओं का अतर्द्वंद्व अटल रूप से चलता रहता है और उसमे खेलभावना को किस सीमा तक स्थान हो इसका भी विचार करना पड़ता है।

कला कार्यक्रमो व प्रतिष्ठापनो के अतिरिक्त साठोत्तरी कला मे पट या कागज जैसी सतहो पर तिपायी-चित्रण वर्धमान गति से होता गया किन्तु, विकास या नवीनता के विचार से एक्रिलिक जैसे नवसंशोधित रगो, यान्त्रिक उपकरणो व वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग के अलावा उसमे पूर्ववर्ती कला से रूप या अभिव्यक्ति सम्बन्धी भिन्नता नही दिखायी देती। वस्तुनिरपेक्ष चित्रों के साथ अतियथार्थवादी, नवअभिव्यंजावादी, नवयथार्थवादी, महायथार्थवादी व सहजसिद्धकला के सदृश नवआदिमवासी दर्शन के चित्रो की अपरिमित निर्मिति होने लगी। जैसे

नवअभिव्यंजनावाद व महद्यथार्थवाद[24] केवल नये नाम हैं, उनमें पूर्ववर्ती अभिव्यंजनावाद व नवयथार्थवाद के समकालीन व्यक्तिगत रूप को ही हम देखते हैं।

आधुनिक चित्रकला का इतिहास होने के कारण इस पुस्तक में यथार्थवादी कला के प्रसार के बारे में कुछ नहीं लिखा गया, किन्तु पाठकों की गलत अवधारणा को दूर करने के उद्देश्य से इस सम्बन्ध में स्थिति को स्पष्ट करना उचित होगा। पाश्चात्य देशों में नैसर्गिकतावादी व यथार्थवादी कला का प्रसार उतना ही है जितना कि आधुनिक कला का व वह काफी लोकप्रिय है। प्रचार नहीं होने के कारण उस पर साहित्य कम पढ़ने को मिलता है। उसको प्रचार की आवश्यकता भी नहीं होती क्योंकि वह आसानी से समझ में आती है। यथार्थवादी कला की निर्मिति शुरू से ही पर्याप्त मात्रा में होती आयी है। अमेरिकन चित्रकार एंड्रू वाइथ, सार्जण्ट, एडवर्ड हाप्पर, फेअरफील्ड पोर्टर एवं इंग्लिश चित्रकार म्यूनिंग्स, विल्यम ओर्पेन, आगस्टस जॉन, रसेल फ्लिन्ट आदि की कला की लोकप्रियता से बीसवीं सदी की यथार्थवादी चित्रकला के प्रसार की कल्पना की जा सकती है।

प्रत्ययवाद[25]—एक दर्शन

प्रत्ययवाद कोई कला के रूप या अभिव्यक्ति सम्बन्धी नया दृष्टिकोण लेकर किया आन्दोलन नहीं है बल्कि उसमें सर्जना के आन्तरिक स्वरूप का विचार है। कलाकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व या प्रयोजन के प्रति अविश्वस्त होने के कारण प्रत्ययवाद को कलात्मक की अपेक्षा समाजवाद या दर्शन की दृष्टि से अधिक महत्त्व है। एक तरह से यह कलाविरोधी दर्शन है व 'प्रत्ययवादी कला' का प्रचलित शब्दप्रयोग अन्तर्विरोधपूर्ण है। प्रत्ययवादी शिल्पकार डेनिस ऑप्पेनहाइम का कहना है कि उनकी कृतियों को दृश्यप्रपंचीय महत्त्व नहीं है व कलाकार की सर्जनात्मक अनुभूति व दर्शक की ग्रहणात्मक प्रक्रिया—जो भिन्न अस्थायी व परिवर्तनशील हो सकती है–को ही महत्त्व है। कलाकृति कोई सुन्दर रचना या प्रभावी अभिव्यक्ति न होकर कलाकार या दर्शक की मनोदशा का रूपक मात्र है। अर्थात् वह किस विचार प्रक्रिया में जन्म लेती है व किस विचार प्रक्रिया को जन्म देती है इनको महत्त्व है।

प्रत्ययवाद के विकास को दुशां से काफी प्रेरणा मिली जो कला के पृथक् अस्तित्व को अनावश्यक मानते थे व इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि समस्त जीवन कलात्मकता से परिपूर्ण है। रिचर्ड लान्ग के विचार से कलाकार का उद्देश्य व दर्शक के ग्रहण के मध्य में कला अवस्थित है।

प्रत्ययवाद से कलाकृति को सबसे बड़ा खतरा यह है कि उससे समीक्षकों को मनचाहे अर्थ निकालने की स्वतन्त्रता मिलती है जबकि परम्परागत सौन्दर्यदर्शन के अनुसार होना यह चाहिये कि कलाकृति निजी रूपाभिव्यक्ति के प्रभाव से दर्शकों को सुनिश्चित अनुभूति प्रदान करे।

कलाकृति के सम्बन्ध में प्रत्ययवाद का मुख्य सिद्धान्त है कि 'कलाकृति मूल रूप से एक प्रत्यय या कल्पना मात्र है जो प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो या नहीं भी हो सकती है'। पौल वले का भी विचार था कि 'कलाकृति सबसे अधिक एक सर्जन-प्रक्रिया है; उसको केवल रचना की दृष्टि से कभी अनुभव नहीं करते"[26]। संगीतकार जॉन केज के 'लब्ध-ध्वनि' संगीत के प्रयोग में प्रत्ययवाद का पूर्वाभास मिलता है। उन्होंने 1954 में "4--33" शीर्षक की संगीत-रचना प्रस्तुत की जिसमे 4 मिनट व 33 सैकण्ड की शांति में जो भी ध्वनि अपनेआप सुनने को मिले उनको संगीत के नाम से घोषित किया।

प्रत्ययवाद का प्रभाव उस समय बढा जब 1960 के बाद कुछ कलाकारों को कलाक्षेत्र के व्यापारिक स्वरूप से घृणा होने लगी और वे सोचने लगे कि संग्रहालयो व कलावीथिकाओं का महत्त्व बढा कर व कलाकृतियो को अन्य वस्तुओं से भिन्न व श्रेष्ठ बताकर कलाक्षेत्र को बाजार सा बना दिया है व यहाँ सब अनुचित लूट मच रही है। उनको प्रत्ययवाद में इस बीभत्स वाणिज्य-प्रणाली से मुक्त होने का मार्ग दिखायी दे रहा था। प्राचीन काल में इस तरह से कला का स्वतन्त्र रूप से विचार कलाकारो ने कभी नही किया न ऐसे विचार की उन्होंने आवश्यकता महसूस की। कला मुख्यतया धर्म से प्रेरित थी व कलाकार को सर्जनात्मक आनद के अतिरिक्त धार्मिक श्रद्धा से संतोष मिलता था व कला बाह्य प्रलोभन से उसकी चित्तवृत्ति कभी विचलित नही हुई। अब धर्म का विश्वास नष्ट होने से कलाकार अपने व अपनी कला के ध्येय, व सर्जना के स्वरूप के बारे में सोचने लगा एव कलासर्जन के आनन्द मे एकरूप होने के बजाय व्यर्थ के दार्शनिक व वैचारिक प्रपच मे पड़ गया। इस तरह की सदेहग्रस्त मानसिक अवस्था मे प्रत्ययवाद के कलाविरोधी दर्शन का प्रभाव बढ़ता गया। जॉन केज के समान जर्मन शिल्पकार योसेफ बॉयस ने कुछ सांकेतिक प्रयोग किये। 1965 में अपने 'मृत खरगोश को चित्रों का रसग्रहण कैसे कराया जाये'[27] शीर्षक के कार्यक्रम में वे तीन घटो तक मृत खरगोश के सामने बुदबुदाते रहे। वे कहते हैं कि "मेरी कृतियों को शिल्प या कला सम्बन्धी धारणा को परिवर्तित करने के लिये प्रेरक के रूप मे देखना चाहिये। उनसे विचार जागृत होना चाहिये कि शिल्प वास्तव मे क्या हो सकता है व शिल्पनिर्मिति की प्रक्रिया को उस अदृश्य सामग्री—जिसका हर कोई इस ससार मे प्रयोग करता है—के साथ किस तरह लागू किया जा सकता है।" उनका ध्येय है ऐसी कृतियों–जिनको वे 'सामाजिक शिल्प'[28] कहते है–का उस तरह निर्माण करना जिस तरह हम दैनंदिन जीवन मे इस दुनियाँ को रूप देते हैं। "अब हम महान् कलाकारो को प्रशिक्षित करने के विचार से प्रारम्भ नहीं कर सकते।-----हम कला व कलाद्वारा प्राप्त अनुभूति के तत्व को फिर से जीवन मे एकरूप करने को आरम्भ कर सकते हैं"। 1982 की कासेल

की 'डोकुमेंटा' प्रदर्शनी में बायस ने 7000 बाज वृक्षों के रोपण-कार्य को 'तथा-कथित वातावरण में आकाशीय कृतिया'[29] नाम से आरम्भ किया।

उपर्युक्त विचारों व कृतियों से स्पष्ट है कि प्रत्ययवादी कलाकार कला के जीवन से पृथक् रूप के प्रति कितने अविश्वस्त है। प्रत्ययवाद से असहमत विद्वानों का मत है कि सर्जना का स्वरूप बहुत जटिल है व उसमें पूर्वनियोजन, उद्‌भवन, अन्तर्दृष्टि, प्रत्यक्षीकरण, रचना, मूल्यांकन इन विभिन्न तत्त्वों का उलझा हुआ अन्योन्य-सम्बन्ध है; अतः उसकी सरल परिभाषा असंभव है।

प्रत्ययवादी दर्शन की कलाक्षेत्रीय या सामाजिक उपयुक्तता की सीमा का भी विचार करना होगा। प्रश्न उठता है कि क्या हम समाज के सभी व्यक्तियों को क्षमता व निष्ठा की दृष्टि से एक ही श्रेणी में बाँध सकते हैं? इसका उत्तर नकारात्मक ही मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना हर कार्य इतने प्रेम व समर्पण से करे कि उससे उसको सर्जनात्मक आनन्द प्राप्त हो यह संभव नहीं है। व्यक्ति-व्यक्ति में नैसर्गिक गुणदोषजन्य भिन्नताएँ होती हैं व हर कोई साधु-संतों या महान् कलाकारों की अनुभूति को प्राप्त नहीं कर सकता। समाजव्यवस्था में क्षमता व श्रेष्ठता के आधार पर व्यक्ति व उसके कार्य का मूल्यांकन व वर्गीकरण अपरिहार्य है जिसका मतलब यह तो नहीं होता कि व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में असमानता हो। इसके अलावा मानवजाति की नैसर्गिक विकारवशता को हम कैसे भूल सकते हैं? अब तक महापुरुषों ने कितने ही आदर्श मानवजाति के सामने रखे पर क्या उससे मानव के व्यवहारों में अन्तर आया? यह तो महापुरुषों का करुणाभाव—या चाहे तो उसे अहंकार कहिये—था जिसने उनको मानवजाति के कल्याण के लिये प्रेरित किया पर मानवजाति उनसे सच्चा लाभ नहीं उठा पायी। संक्षेप में हर क्षेत्र में असाधारण पुरुष होते रहेंगे व उनके कार्य की सामान्य व्यक्ति के कार्य से पृथक् पहचान होगी।

प्रत्ययवाद के विरुद्ध इस कारण से भी आपत्ति उठायी जा सकती है कि श्रमविभाजन पर आधारित समाज-व्यवस्था में कल्पना के प्रत्यक्षीकरण या उद्देश्य-पूर्ण रचना के अभाव में सामाजिक कार्य में योगदान कैसे संभव है? यह तो एक आत्मसंतुष्टि का मार्ग है।

प्रत्ययवाद से अंशतः मिलते-जुलते विचार लेबेनन के महाकवि खलील जिब्रान व डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने व्यक्त किये हैं। जिब्रान का कथन है कि, "आप समझते हैं कि चित्रकार जो इंद्रधनुष के समान रंगों से व्यक्तिचित्र बनाता है, चप्पल बनानेवाले मोची से श्रेष्ठ है। किन्तु मैं कहता हूं कि वायु विशाल बाज वृक्षों से जितनी मधुरता से बात करती है उतनी ही मधुरता से पास की छोटी पत्तियों से करती है (यानि दोनों आत्मिक सुख के समान अधिकारी हैं)"। कुमार स्वामी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कलाकार को असाधारण व्यक्ति नहीं मानना

चाहिये। इस विचार का सच्चा आशय क्या है यह देखकर उसको स्वीकारना होगा। एक आशय—जो सामाजिक महत्त्व रखता है—यह है कि हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार सामाजिक कार्य मे योगदान करता है व उसके बिना कोई भी सामाजिक कार्य सफल नही हो सकता; अतः समाज की सुदृढ़ता हर व्यक्ति का समत्वभाव से समान अवसर देने पर निर्भर है। दूसरा आशय–जो व्यक्तिगत महत्त्व रखता है—यह है कि हर क्षेत्र में कला के समान श्रेष्ठ सर्जनात्मक अनुभूति को प्राप्त करने की संभावना है; अतः किसी भी व्यवसाय को श्रेष्ठ या कनिष्ठ नही समझना चाहिये। इसीलिये तो कहा गया है कि जीवन, जो सभी क्षेत्रों को घेर लेता है, सबसे महान् कला है।

□□□

18
भारत व आधुनिक कला

अजंता, जैन व राजपूत शैलियों में दृष्टिगोचर भारतीय चित्रकला के मौलिक रूप में मुगलकाल से विदेशी तत्वों का प्रवेश आरम्भ हुआ और कुछ समय तक मुगल शैली के अन्तर्गत पर्शियन व राजपूत शैलियों के समन्वित रूप में विकसित होने के बाद उसके पतन के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगे। जहाँगीर के शासनकाल में मुगलकला का काफी प्रसार हुआ किन्तु उसके राजपूत शैली से प्राप्त भारतीय रूप—यानी गतिपूर्ण लयबद्ध रेखा, रूढ़िबद्ध आकारों का आलंकारिक सौन्दर्य, चमकीली रंगसंगति आदि सौन्दर्यतत्वों का दर्शन—एवं पर्शियन शैली से प्राप्त आलंकारित्व व कल्पनासौन्दर्य के गुणों का ह्रास हो रहा था। इसके प्रमुख कारण थे राजा व दरबारी लोगों की व्यक्तिचित्रण के प्रति बढ़ती हुई अभिरुचि व दरबार में योरपीय व्यापारियों, यात्रियों व वकीलों का आगमन। योरपीय लोग मुगल बादशाहों की कलाभिरुचि को देखकर उनको अपने देश की कलाकृतियाँ भेंट करते। जहांगीर विदेशी वकीलों, धर्मप्रचारकों, व्यापारियों व यात्रियों से विदेशी कलाकृतियाँ प्राप्त करके उनके साथ कलासम्बन्धी चर्चा भी करते एवं अपने दरबारी कलाकारों से विदेशी कृतियों की प्रतिकृतियाँ बनवाते। परिणामस्वरूप योरपीय कला के नैसर्गिकतावादी रूप का भारतीय कला पर प्रभाव पड़ा व उसका मूल सौन्दर्य नष्ट होकर उसको भ्रष्ट रूप प्राप्त हुआ। औरंगजेब के शासनकाल में भ्रष्टता के अतिरिक्त कला के स्तर में भी गिरावट आ गयी जिसका कारण थे शासकीय विरोध व उपेक्षा। राजाश्रय के अभाव से कलाकार भिन्न स्थानों पर जा बसे व किसी तरह अपना उदरनिर्वाह करने लगे। एक दूसरे से विशेष सम्पर्क न रहने से भिन्न स्थानों के कलाकारों की शैलियों में स्पष्ट रूप से अन्तर पड़ा व स्थान के अनुसार उन शैलियों को दिल्ली कलम, लखनौ कलम, पटना कलम, दक्षिणी कलम वगैरह नाम प्राप्त हुए। ये शैलियाँ अविकसित भ्रष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कार्य करती रहीं। इन भ्रष्ट शैलियों में मुगल शैली के जो कुछ सौन्दर्यतत्व शेष थे उनका भी बाद में कलाकारों के अपवाद मात्र परिवारों में चलती हुई कला-परम्परा को छोड़ कहीं नाम नहीं रहा और ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय कला मृतप्राय हुई।

18वीं शताब्दी के मध्य के करीब भारत में आये हुए विदेशी लोग—जिनमें अधिकतर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी, कर्मचारी व व्यापारी हुआ करते—

कुशल भारतीय चित्रकारों से पाश्चात्य नैसर्गिकतावादी शैली के व्यक्तिचित्र, निजी परिवार के सामूहिक व्यक्तिचित्र व स्थानीय दृश्यचित्र बनवाने लगे जिससे भारतीय कलाकारों को कुछ आश्रय मिला एवं उसके साथ ही उनकी कला पर 18वी शताब्दी की इङ्गलिश कलाविद्यालयीन शैली के नैसर्गिकतावादी तत्वों का प्रभुत्व बढ़ता गया।

1834 मे मेकाले ने भारतीय लोगों को आग्ल शिक्षा प्रणाली के अनुसार प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से अपने शिक्षासम्बन्धी विचारों को घोषित किया जिसका भारतीय शिक्षा व सामाजिक विचारधारा पर काफी प्रभाव पड़ा और भारतीय लोग, कला, संस्कृति तथा सामाजिक व वैयक्तिक आचरण मे ब्रिटिशों का अंधानुकरण करने लगे। विदेशी प्रणाली मे शिक्षित लोग भारतीय विचारधारा, संस्कृति, रीतिरिवाजो आदि जीवन के सभी अंगोपांगों की निन्दा करना प्रतिष्ठा का लक्षण मानने लगे। कला के क्षेत्र में विक्टोरियन नैसर्गिकतावादी कलाकृतियों को श्रेष्ठ माना गया व प्राचीन भारतीय कला की निन्दा होने लगी। रस्किन व स्टोक्वेलर जैसे विदेशी कला समीक्षकों ने भारतीय कला का उपहास किया व यहाँ के शिष्ट समाज ने अंधानुकरण करके उसको दोहराया।

19वी शताब्दी के मध्य में भारतीय विद्यार्थियो को योरपीय कला में प्रशिक्षित करने के विचार से मद्रास (1850), कलकत्ता (1854), बम्बई (1857) व लाहौर (1857) में कलाविद्यालय खोले गये व वहाँ नैसर्गिकतावादी पद्धति से चित्रण करने वाले इङ्गलिश कलाकारों की निर्देशक के रूप में नियुक्ति की गयी। इन विद्यालयो मे दी जाने वाली शिक्षा एवं वहाँ के वातावरण, सामग्री व पद्धति सब कुछ इङ्गलिश कलाविद्यालयो पर आधारित था। प्रथम ग्रीक मूर्तियो से व बाद मे आदमियों को सामने बिठा कर हूबहू चित्रण करने का अभ्यास कराया जाता था क्योंकि ऐसी वस्तुओं की विदेशो मे काफी मांग थी।

ऐसे वातावरण में त्रावणकोर के प्रतिभासम्पन्न चित्रकार राजा रविवर्मा ने थिओडोर जेन्सन नाम के इङ्गलिश चित्रकार से तैलरंगचित्रणपद्धति की शिक्षा प्राप्त करके भारतीय जीवन, व्यक्ति व पौराणिक विषयो के चित्र बनाये। ये चित्र नैसर्गिकतावादी शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट है। राजा रविवर्मा के पौराणिक विषयों के चित्र अत्यन्त लोकप्रिय हुए और अक्सर प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति के घर की दीवारो को उनकी प्रतिकृतियो से सजाया गया। नैसर्गिकतावादी चित्रण पद्धति पर सफल प्रभुत्व प्राप्त करने वाले राजा रविवर्मा सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार थे। किन्तु यह पाश्चात्य चित्रणपद्धति भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति व जीवनदर्शन के अनुकूल नही थी अतः राजा रविवर्मा के चित्र अभिव्यक्ति के विचार से अविशुद्ध प्रतीत होते है।

पुनरुत्थान शैली :

19वी शताब्दी के अन्त तक भारतीय कलाक्षेत्र मे विशेष चेतना या प्रगति के चिह्न नही दिखायी दिये। 1896 मे ई. बी. हेवेल मद्रास कलाविद्यालय से बदल कर

परंपरा से ही प्राप्त होता है। हरेक देश की अपनी कलापरंपरा होती है जो उस देश के निवासियों के जीवनदर्शन व आशा-आकांक्षाओं का दर्पण होती है; जिसमे देखकर कलाकार अपने अमर रूप से परिचित होता है उनकी कला को सर्जनात्मक दिशा प्राप्त होती है। इस विचार से बीसवी शताब्दी के भारतीय कलाकारो को आवश्यक था कि वे प्राचीन भारतीय कलापरंपरा का अध्ययन करके आतरिक जीवन को रूपाकनपद्धति के नये आयामो द्वारा साकार करें। हेवेल व अवनीद्रनाथ ने भारतीय कला-परंपरा के अध्ययन पर बल देकर उचित दिशा में कदम उठाया किन्तु भारतीय जीवन-दर्शन को प्रभावी रूप में साकार करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को है और उनको हम सर्वप्रथम भारतीय आधुनिक कलाकार मान सकते हैं। 1923 व 1928 के बीच के कला में अवनीन्द्रनाथ के बंधु गगनेन्द्रनाथ ने घनवाद का अनुसरण करके कुछ कृतिया बनायी किन्तु उनमें आकारों के घनवादी विभाजन के स्थान पर परीकथाओ के समान काल्पनिक दृश्यो को विषय प्रतिपादन की दृष्टि से परिणामकारक बनाने के हेतु मुख्य आकारों को यथार्थ रूप में चित्रित करके दीपक ज्यामितीय आकारों से परिवेष्टित किया है; अतः उनकी कला को 'घनवादी' की अपेक्षा रोमांचक यथार्थवादी कहना उचित है। गगनेन्द्रनाथ की कला भी इस विचार का समर्थन करती है कि रूपाकन के नये प्रयोग करने से पहले देश के सामाजिक जीवनदर्शन के प्रति एकनिष्ठ होकर निश्चित करना होगा कि उनकी अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त रूपांकनपद्धति क्या हो सकती है। किन्तु कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये केवल बुद्धिवादी अभिगम अपर्याप्त है। परंपरा के अध्ययन व आचरण से ही आवश्यक सर्जनशील संवेदनाक्षमता व सौंदर्यदृष्टि प्राप्त की जा सकती हैं। संक्षेप मे, भारतीय कलाकार को आवश्यक है कि वे परंपरा के अटूट अंग रह कर आधुनिक बनें व यह सब विकास के स्वाभाविक सिद्धातो के अनुसार हो।

रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861–1941) ने विद्यार्थी दशा मे कोई कला की शिक्षा प्राप्त नही की थी। असाधारण काव्यमय वृत्ति व सूक्ष्मग्राहक संवेदनाक्षमता उनकी कला के साधन थे। वे अज्ञात आतरिक सर्जनशक्ति का विश्वास करते व उसको सैद्धांतिक चर्चा का विषय बनाने के विरोधी थे। उनका मत था कि कला का कार्यात्मकता की दृष्टि से विचार नही करना चाहिये; कला पूर्ण रूप से सहजज्ञान व अतर्मन की क्रियाओ पर निर्भर है। लय, कला की आत्मा है एवं उनकी सहजसिद्ध अनुभूति कलानिर्मिति की प्राथमिक आवश्यकता है।

आयु के 67वें साल तक रवीन्द्रनाथ ने चित्रकला की दिशा मे कोई विशेष प्रयत्न नही किये। वे विश्वविख्यात कवि बन चुके थे और उनकी प्रतिभा काव्यमति मे व्यस्त थी। कविता लिखते समय शब्दों या पंक्तियों को रेखाओं से पर जो अकल्पित आकारनिर्मिति होती उसकी ओर ध्यान आकृष्ट ... कल्पना में मग्न होते। 1928 मे इन स्वयंसिद्ध आकारों ...

मोहित हुए कि जिस कविता को लिखते समय वे आकार प्रकट हुए थे उसका अस्तित्व ही वे भूल गये एवं आकारो के विकास पर उन्होंने ध्यान केन्द्रित किया और रवीद्रनाथ की अतियथार्थवादी कला का आरंभ हुआ। भारतीय कला के इतिहास मे यह अभुतपूर्व प्रयोग था। आरम्भ मे उन्होने केवल फौटन-पेन से रेखाकन करके कलानिर्मिति की जिसमें काल्पनिक पक्षी या जानवर जैसे आकार प्रचुर मात्रा मे है। 1929 के करीब उन्होने कपडे के टुकडे या उगलियों को स्याही में डुबो कर दो या तीन छटाओं मे चित्रण शुरू किया एव उसके पश्चात् सीमित रगों का उपयोग भी शुरू किया।

आरम्भ में रवीन्द्रनाथ ने अपने चित्रण को फुरसत में किया खेलक्रीडन मात्र समझा किंतु शीघ्र ही वे अनुभव करने लगे कि पाण्डुलिपि में किये रेखाकन से निर्मित आकारो में गूढ आत्माएं निवास करती है जो पापी लोगों के समान मुक्ति पाने के लिये आक्रोश कर रही है और उनको अन्तिम लयबद्ध रूप देकर मुक्त करने को वे स्वयं तडप रहे है। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने आंतरिक जीवन की प्रेरणाओं को तीव्रता से अनुभव किया व तन्मय होकर कलानिर्मिति शुरू की।

1930 मे रवीन्द्रनाथ के चित्रो की प्रदर्शनी पैरिस के गालेरी पिगाल[2] में हुई जिसकी योरपीय कलाकारो व समीक्षको ने बहुत प्रशंसा की व भारत में लोगों को आश्चर्य हुआ कि रवीन्द्रनाथ न केवल महाकवि है बल्कि एक श्रेष्ठ चित्रकार भी है। उसी साल उनके कुछ चित्र लन्दन, बर्लिन व न्यूयार्क में प्रदर्शित किये गये। 1932 मे उनके चित्रों की प्रदर्शनी कलकत्ता में हुई व दूसरे साल बम्बई में हुई। 1946 मे यूनेस्को द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कलाप्रदर्शनी में उनके चार चित्र सम्मिलित किये गये।

रवीन्द्रनाथ के अधिकतर चित्र ऐसे दिखायी देते है कि वे तत्क्षणिक सर्जन-प्रेरणा द्वारा बिना पूर्वविचार के बनाये गये हों; उनमें परिवर्तन या उद्देश्यपूर्ण प्रतिपादन के प्रयत्न नही हैं। चित्रण को आरम्भ करते ही वे बिना विश्राम या चिन्तन के तद्रूप हो कर उनको शीघ्रता से पूर्ण करते। उन्होने सर्व प्रकार के रंगों, पेस्टल, ड्राय पाइंट व एचिंग का प्रयोग किया किंतु वे द्रवमिश्रित रंगो को पसन्द करते और सुलभता से प्राप्त स्याही का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग करते। रग नही मिलने पर वे कभी फूलो की पखुडियों को दबा कर रगों के स्थान पर काम मे लेते। उन्होंने तूलिका का शायद ही कभी उपयोग किया होगा एवं ऐसे समय भी उनकी अपनी घर पर बनायी तूलिका थी। तूलिका मे वे कपडे के टुकड़ों या उंगलियो से रंगाकन करना पसन्द करते। इन सब बातों से स्पष्ट है कि वे रगाकनपद्धति, सामग्री या कलाध्ययन से आन्तरिक प्रेरणा को अधिक महत्त्व देते। उन्होने युवावस्था मे घर पर रेखांकन का निर्हेतुक अल्पकालीन प्रयत्न किया था किंतु कलाविद्यालयीन नियमित अध्ययन के दुष्प्रभाव से वे बच गये थे; अतः अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को सफलता से व्यक्त करने मे उन्होंने किसी बाह्य प्रभाव की रुकावट को अनुभव नहीं

किया। कलामर्जन के बारे में जे. कृष्णमूर्ति ने व्यक्त किये विचार रवीन्द्रनाथ की कला को समुचित रूप से लागू होते है; "अंकनपद्धति पर प्रभुत्व उदरनिर्वाह का साधन बन सकता है किन्तु उससे हम सर्जनशील नहीं बनते; यदि हम में कोई आंतरिक ज्योति प्रज्जवलित है–कोई आनन्द है–तो उसको व्यक्त करने का मार्ग अपने आप दिखायी देगा, अभिव्यक्ति के तरीकों का अध्ययन आवश्यक नहीं है"।[3]

अपनी विदेशयात्राओं में रवीन्द्रनाथ विश्वविख्यात कलाकारों के संपर्क में आये। पाश्चात्य एवं पौर्वात्य कलाकृतियों का प्रत्यक्ष परिशीलन करने के अवसर उनको प्राप्त हुए। जब वे जापान की यात्रा पर थे तब किसी के निजी कलासंग्रह के अध्ययन के हेतु वे सप्ताह भर योकोहामा जाकर रहे। जापानी व चीनी चित्रण-पद्धियों के अध्ययन के लिये वे जापान में तीन महीनों तक रहे। घनिष्ठ कलाप्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने शान्तिनिकेतन में कलाभवन की प्रस्थापना की।

उनके कलासर्जन सम्बन्धी विचार चित्रकार क्ले के विचारों से बहुत मिलते जुलते है एवं उनकी सहजस्फूर्त अंकनपद्धति क्ले के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करती है। हो सकता है कि वे कभी क्ले के प्रभाव में आ गये हो किन्तु इससे उनकी कला के श्रेष्ठत्व को कोई हानि नहीं पहुंचती। उनकी कला पूर्ण रूप से उनके प्रतिभा सम्पन्न आंतरिक जीवन की प्रतिमा है व उसके दर्शन में नैष्ठिक भारतीयत्व है। उनकी कलानिर्मिति के पीछे मौलिक कल्पनाशक्ति व विशुद्ध सौदर्यदृष्टि प्रेरणाभूत थी। जब उनसे उनकी चित्रकला के बारे में पूछा गया तब उन्होंने उत्तर दिया "मेरे जीवन का प्रभात गीतोंभरा था अब शाम रंगभरी हो जाय"।

रवीन्द्रनाथ की कला में भिन्न प्रकार की अनुभूतियों को साकार किया है। 'थके हुए यात्री'; 'मां व बच्चा', 'सफेद धागे'[4] जैसे चित्रों में मानव-जीवन का व्यापक दार्शनिक विचार है तो मुखाकृति मानव शीर्षों में–अधिकतर स्त्रियों के–जीवन की गहरी अनुभूतियों से निर्मित अंतर्मुखवृत्ति का दर्शन है। 'प्राचीन कानाफूसी'[5] जैसे चित्र स्मृतिव्याकुल हैं तो कई दृश्यचित्र प्रकृति की रमणीयता से ओतप्रोत हैं। सहज-स्फूर्त रेखाओं द्वारा निर्मित काल्पनिक प्राणियों में आंतरिक जीवन का अद्भुत संचार व अमानवीय भावनाओं का दर्शन है। कुमारस्वामी ने रवीन्द्रनाथ की कला के बारे में लिखा है, "उनकी मौलिक सहजसिद्ध अभिव्यक्ति असामान्य निरयवुवती प्रतिभा का प्रमाण है"।

अमृता शेरगिल (1913–1941):—भारतीय कला को आधुनिकता की ओर मोड़ देने में अमृता शेरगिल ने प्रारम्भिक मार्गदर्शन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, अतः उनको आधुनिक भारतीय कला के प्रणेताओं में स्थान दिया जाता है। रवीन्द्रनाथ की कला में भारतीय वैचारिक जीवन की आध्यात्मिकता की अनुभूति है तो अमृता शेरगिल की कला में भारतीय सामान्य जनजीवन की निष्काम समर्पितवृत्ति का दर्शन है।

अमृता शेरगिल का जन्म 1913 में हुआ। उनके पिता सिख थे व उनकी माता हंगेरियन महिला थी। बाल्यावस्था के प्रथम आठ वर्ष उन्होंने योरोप में बिताए और 1921 में ही उन्होंने पहली बार भारत का दर्शन किया। अन्तरराष्ट्रीय मिश्र विवाह का उनकी कला के विकास में अपरिमित लाभ हुआ। उनको अपने भारतीयत्व का उचित अभिमान था। माता के कारण उनका योरोपीय सस्कृति व कला से घनिष्ट सपर्क रहा और वे आधुनिक कला का सत्यार्थ ज्ञात करने में सफल हुईं। अमृता की चित्रकला में अभिरुचि को देख कर माता ने उनको 1929 में पेरिस के एकोल द बोजार में प्रविष्ट कराया। वहा के पांच साल के कलाध्ययन से उन्होंने पाश्चात्य अंकनपद्धतियो पर प्रभुत्व प्राप्त किया। तीन साल तक उन्होंने लगातार एकोल द बोजार के प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये। 1932 मे उनके चित्र ग्राद सलो में प्रदर्शित हुए व एक साल पश्चात् वे उसकी सदस्या चुनी गयी। केवल कला-विद्यालयीन अध्ययन से वे संतुष्ट नहीं थी। 1933 व 1934 में उन्होंने पेरिस के सग्रहालयो, कलावीथिकाओ व प्रदर्शनियो मे प्राचीन प्रसिद्ध कलाकृतियो एवं आधुनिक कलाकृतियो का परिशीलन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुची कि प्राचीन हों या आधुनिक हो श्रेष्ठ कलाकृतिया उन्ही अपरिवर्तनीय मूलाधार तत्वो पर आधारित होती हैं। उन्होंने अपने कलासम्बन्धी विचारो को निम्न शब्दो में व्यक्त किया है "श्रेष्ठ कला में चित्रक्षेत्रीय एव रचनात्मक सौंदर्य पर बल देकर, केवल रूप के आवश्यक तत्वो का विचार करके सरलीकरण किया जाता है; उसमें विषय के आकर्षण का विचार नही होता। बाह्य रूप का अनुकरण नही किया जाता; उसको आत्मिक बनाया जाता है। अजन्ता, एलोरा, इजिप्त, चीन, जापान, मध्ययुगीन, योरपीय प्रभाववादी व उत्तरप्रभाववादी कलाओं का चैतन्यपूर्ण व सार्थ आत्मिकीकरण उनको बहुत पसन्द था। रवीन्द्रनाथ के काव्य से उनकी चित्रकला अमृता को अधिक हृदयस्पर्शी प्रतीत हुई। प्राचीन शैलियों के अधानुकरण के लिये उन्होंने 'पुनरुत्थान शैली' के कलाकारो की कटु निंदा की।

1933 के करीब सेजान के अध्ययन से उन्होने आकारों को सरलीकृत करना शुरू किया जिससे उनकी मानवाकृतियों को स्मारकीय स्वतन्त्र व उदात्त रूप प्राप्त हुआ। सेजान से आरम्भिक प्रेरणा प्राप्त की जाने पर भी गोग्वें की कला के प्रति अमृता ने अधिक आत्मीयता अनुभव की। गोग्वें स्वय पाश्चात्य यथार्थवादी कला से पौर्वात्य आलकारिक प्रतीकवादी शैलियों को पसन्द करते थे और उनका सश्लेषणवाद भारतीय कलादर्शन से घनिष्ठ समानता रखता था। किंतु इससे भी जिस गुण के कारण अमृता गोग्वें की कला से प्रभावित हुई थी वह था प्राचीन प्रतीकवाद का गोग्वें द्वारा परिवर्तित नया स्वाभाविक रूप। अमृता ने अनुभव किया प्राचीन कांगड़ा व बसोली शैलियों का गोग्वें के निर्दिष्ट मार्ग से आधुनिकीकरण किया जा सकता है। किन्तु केवल वैचारिक मार्गदर्शन से कार्यसिद्धि होने वाली नही थी; गोग्वें की कला को प्रेरणा के अतिरिक्त अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता। गोग्वें के उदा-

हरण से उनको पक्का विश्वास हुआ कि सजीव कलानिर्मिति के लिये कलाकार का जीवन से सम्पूर्ण तादात्म्य अनिवार्य है एवं वे भारत आने के लिये तड़पने लगीं।

भारत आते ही अमृता ने भारतीय जीवन का—जो मुख्यतया श्रमजीवी ग्रामीण जीवन था—निकट से आत्मीयतापूर्ण अध्ययन किया। भारतीय साधारण जन-जीवन के उनके चित्रों में 'पहाड़ी स्त्रियां', 'भारतीय मां', 'कहानी कथन', 'बालवधू'[6] बहुत ही प्रभावपूर्ण व प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत की यात्रा करके उन्होंने वहां के साधारण लोगों के जीवन को चित्रित किया; इस समय के उनके चित्र 'ब्रह्मचारी', 'वधू का शृंगार', 'फल बेचनेवाले'[7] विशेष प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत की यात्रा में अमृता ने अजन्ता को पहली बार देखा व उससे वे बहुत प्रभावित हुईं। अजन्ता, मुगल व बसौली शैलियों के अध्ययन से अमृता ने अपनी शैली के विकास में काफी लाभ उठाया किंतु केवल भारतीय होने के कारण उनका अंधानुकरण करने का वे कड़ा विरोध करती। उन्होंने लिखा "कम से कम एक कारण से मुझे प्रसन्नता है कि मैंने कला की शिक्षा योरोप में पाई। इसने ही मुझे अवसर दिया कि मैं अजन्ता, मुगल व राजपूत चित्रकारी को समझ सकूं व उन्हें पसन्द कर सकूं..। होता यह है कि उसको समझने का अधिकांश भारतीय चित्रकार ढोंग तो करते है, लेकिन वास्तव में वह गलत ढंग से समझी जाती है"।

अमृता की कला में न केवल भारतीय सामान्य जनों के सरल निरिच्छ जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है बल्कि उसमें कला के मूल तत्वों का, आधुनिक कला-दर्शन के अनुसार, विकास करके समकालीन भारतीय कलाकारों को मार्गदर्शन किया है। किन्तु उनके अन्त तक उनकी कला भारत में कोई समझ नहीं पाये। 1941 में उनकी निराशावस्था में मृत्यु हुई, जिस समय उसकी आयु केवल 28 साल की थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर व अमृता शेरगिल ने आधुनिक कलापद्धतियों से आरम्भ कर के अपनी कला को भारतीय रूप प्रदान किया। यामिनी राय एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने बगाल की ग्रामीण कलाओं से प्रेरणा लेकर उनको आधुनिक रूप देने के प्रयत्न किये। बगाली ग्रामों में अक्सर ग्रामीण चित्रकार या पटुआ हुआ करते जो मिट्टी के बरतनों, तश्तरियों या कपड़ों पर चित्रण करते या त्यौहारों पर रगीन मूर्तियां बनाते एवं कपड़े पर धार्मिक कथाओं का चित्रण करते जो 'पट' नाम से प्रसिद्ध था। इसके अतिरिक्त कलकत्ता में कालीघाट-बाजार-चित्रण नाम से एक ग्रामीण शैली प्रचलित थी जिसमें देवताओं, पक्षियों, जानवरों व दैनंदिन जीवन को चित्रित किया जाता था। इन शैलियों की विशेषता थी चमकीले समतल रंगों का प्रयोग, स्पष्ट मोटी बाह्य रेखा से प्रतीकात्मक, सरल आकारों का प्रयोग व अलंकरण।

यामिनी राय का जन्म 1883 में पश्चिम बगाल के बाकुरा जिले में हुआ। इस जिले में सथाल लोगों की बस्तियां थी और 'पट चित्रण' भी काफी प्रचलित था; दोनों बातों का यामिनी राय की भविष्य की कला पर काफी प्रभाव पड़ा।

1903 में यामिनी राय ने कलकत्ता कलाविद्यालय मे अध्ययन शुरू किया। इस समय वहां नैसर्गिकतावादी एवं पुनरुत्थान शैलियो का द्विविध प्रभाव था। आरंभ में उन्हों व्यक्तिचित्रण करके अर्थार्जन शुरू किया किन्तु उससे वे असंतुष्ट थे। 1925 से उन्होंने कालीघाट शैली के अनुसार स्पष्ट रेखा व चमकीले रगो मे चित्रण शुरू किया जिसका उनका चित्र 'संथाल लड़की' (1925) आरम्भिक उदाहरण है। धीरे-धीरे उनकी रेखा अधिक निर्भीक लयबद्ध व सामर्थ्यवान् तथा रंगसगति अधिक सतेज व आकर्षक बन गयी। यामिनी राय के इन प्रयोगो की तुलना पिकासो के नीग्रो काल में किये प्रयोगों से की जा सकती है, यद्यपि बाद में गतिरोध पैदा होकर यामिनी राय की कला में कृत्रिमता आ गयी। अब निजी विकसित शैली मे यामिनी राय ने सथाल जातियो के जीवन को चित्रित किया। 1937 में उन्होने ईसा के जीवन को चित्रित करना शुरू किया व 'ईसा व शिष्य', 'ईसा का शीर्ष' आदि चित्र बनाये। उनके चित्रो मे पौराणिक विषयो एव जानवरों के चित्र भी है। 1940 से उनके चित्रो की विदेशों मे माग बढ़ती गयी व उसके साथ ही उनके चित्रण मे यांत्रिक कृत्रिमता आ गयी। अत्यधिक अलंकारिता के कारण यामिनी राय की कला सर्जनशील की अपेक्षा चित्ताकर्षक तथा अभिव्यक्ति में कमजोर बन गयी।

निकोलस रोरिक (1874–1947)—जन्म से रशियन होते हुए भारतीय दर्शन, सस्कृति व हिमालय के गूढ प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति निकोलस रोरिक को जो असीम प्रेम था उसके कारण उनकी गणना निस्सदेह, निष्ठावान भारतीयों में करनी होगी। भारतीय कलाक्षेत्र मे उनकी श्रेष्ठता के अनुसार उनको ख्याति नही मिली इसके कई कारण है; वे व्यावसायिक स्पर्धा-क्षेत्र मे नही उतरे क्योंकि इसका विचार करने की उनको फुरसत नही थी; वे विरक्त पुरुष थे व चिरंतन आत्मिक शांति की खोज में चित्रण, लेखन व अध्ययन करते रहते जो उनके लिये अन्तिम ध्येय-प्राप्ति के साधन मात्र थे। उन्होने आधुनिक कलाकारो के समान केवल कलात्मक प्रयोग करने मे रुचि नही ली बल्कि प्राचीन मध्ययुगीन कलाकारो के समान कला को सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी अज्ञात शक्ति की उपासना के समान माना। पहाडो के प्राकृतिक दृश्य-चित्रण व काव्यनिर्मिति में व्यस्त प्राचीन चीनी कलाकारों के समान वे सच्चे साधनारत कलाकार थे। अतः वर्तमान भौतिकवादी युग के व्यावसायिक दृष्टिकोण के कलाकारों के लिये उनका अनुसरण कठिन है।

रोरिक का बचपन रशिया की पुरातन सस्कृति के अवशेषो से सपन्न नोवगोराट शहर के निकट बिता जो उनकी स्वाभाविक धार्मिक वृत्ति के पोषक रहा। उन्होंने आरभिक कला-शिक्षा रशियन चित्रकार आर्खिप कुइंजी से प्राप्त की। बीसवी सदी के आरभिक काल मे बनाये उनके चित्रो में भी चमकीली पारदर्शक रंगसगति, सायकालीन प्रकाश का प्रभाव, आकारो का सरलीकृत ठोसपन वगैरह गुणो का आभास है उनकी भविष्य की परिपक्व कला की कुछ विशेषताएँ

थी। नोवगोराट छोड़ने के बाद उन्होंने इटाली, नार्वे, फ्रांस आदि देशों की यात्राएँ की व इंग्लैण्ड व अमेरिका में भी निवास किया किन्तु इसका उनकी निजी कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने एशिया में भी प्रवास किया। वहां उत्तरी प्रदेश के तालाब, वन, पहाड़ आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य से वे मुग्ध हुए व उस पर काव्य लिखा व चित्र बनाये जिनमें 'पवित्र झरना', 'सागर पार के मेहमान' आदि चित्र है। इन चित्रों से उनकी आध्यात्मिक रुचि व प्रकृति प्रेम का प्रमाण मिलता है। उन्होंने योरप व अमेरिका में अपने चित्रों की प्रदर्शनियां की जिनकी काफी प्रशंसा हुई। किन्तु मन ही मन वे पाश्चात्य भौतिकवादी जीवन से उदासीन थे व वे भारत आये। यहां की संस्कृति, दर्शन व हिमालय के सौन्दर्य से वे विलुब्ध हुए व उनको सांसारिक दुःख व चिन्ता से मुक्त होकर आत्मिक शान्ति प्राप्त करने का मार्ग मिला। उन्होंने हिमालय के आंचलिक प्रदेश कुलू को अपना निवास स्थान बनाया व अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्ष अध्ययन, लेखन व हिमालय के दृश्यों के चित्रण में शान्ति पूर्वक बिताये।

उन्होंने हिमालय के असंख्य चित्र बनाये जिनको हम केवल निसर्ग-चित्र नहीं कह सकते। ये चित्र आध्यात्मिक भाव से ओतप्रोत है। मानव व प्रकृति की आंतरिक एकात्मकता उनकी कला व जीवन दर्शन का सार है। इनमें से कुछ चित्र प्राचीन भारतीय कथाओं पर आधारित हैं जैसे कि 'कल्कि-अवतार', 'ऋषि चरक' आदि। उनके हिमालय के दृश्य ऐसे दिखायी देते हैं जैसे कि उनमें किसी अज्ञात शक्ति का संचार है व इस विचार से उनकी तुलना आत्मतत्वीय चित्रों से की जा सकती है। किंतु दोनों में पर्याप्त अंतर है; आत्मतत्वीय चित्र गूढ अतृप्त आत्माओं के निवास से भयानक लगते हैं तो रोरिक के चित्र दिव्य शक्ति के अस्तित्व से आश्वासक प्रतीत होते है। उनके चित्रों की तुलना अभिव्यजनावादी कलाकार नोल्डे व होडलर के स्वीत्जलैंड के पहाडी दृश्यों से करना बोधप्रद है। नोल्डे के समान रोरिक ने कुछ चित्रों में कल्पनावाद को स्थान दिया है जैसे कि कल्कि को बादल के रूप में चित्रित किया है जिस तरह नोल्डे ने पहाड़ों को काल्पनिक मानव के सदृश्य रूप में चित्रित किया है। किंतु नोल्डे के पहाड अभिव्यंजनावादी ऐंठन के कारण अप्रसन्न लगते हैं जबकि रोरिक के पहाड़, बादल आदि तत्व आकारों के उदात्तीकरण के कारण दिव्यत्व लिये हुए हैं। वास्तव में परम्परागत भारतीय कला व आधुनिक पाश्चात्य कला में यही मूलभूत अन्तर है कि पाश्चात्य कला में आकारों के ऐंठन (Distortion) पर अभि-व्यक्ति के लिये बल दिया गया है जबकि भारतीय कला की अभिव्यक्ति आकारों के उदात्तीकरण (Sublimation) पर आधारित है।

युद्ध के समय पुरातन व ऐतिहासिक स्मारकों व कलाकृतियों की रक्षा के हेतु आन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न कर के रोरिक ने एक समझौता तैयार किया जो 'रोरिक संधि'* नाम से जाना जाता है। रोरिक रविन्द्रनाथ टैगोर के मित्र थे; वे

एक दूसरे को 'आत्मिक बन्धु'* समझते व उनमे भिन्न विषयो पर चर्चाए व विचारो का आदान प्रदान होता रहता।

1947 में रोरिक का निधन हुआ। उनके चित्रो की प्रदर्शनी के उद्‌घाटन के समय जवाहरलाल नेहरू ने उनकी सशोधक वृत्ति, विद्वता, पुरातत्व एव धार्मिक विषयो का ज्ञान व कला की महानता की मुक्तकठ प्रशसा की।

उपरिनिर्दिष्ट इनेगिने प्रयत्नो के अतिरिक्त भारत मे दोनो विश्वयुद्धो के बीच के काल मे आधुनिक कला की दिशा मे कोई सर्जनात्मक प्रयत्न नही हुए। बम्बई कलाविद्यालय के निर्देशक ग्लैडस्टन सालोमन ने हेवेल का अनुसरण करके विद्यार्थियो को अजंता शैली का अनुसरण करने को प्रोत्साहित किया किन्तु उस प्रयत्न को सफलता नही मिली। उनके पश्चात् आये हुए निर्देशक जेरार्ड ने विद्यार्थियो को प्रभाववादी अकनपद्धतियो से परिचित कराया व उस दिशा मे मार्गदर्शन किया। आधुनिक कलाकारो के चित्रों की प्रतिकृतिया देखकर एव पुस्तको के अध्ययन से कला के विद्यार्थी आधुनिक कला के प्रयोगो से वैयक्तिक रूप से परिचित हो रहे थे किंतु उसका विशेष परिणाम नही हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के भय से योरप से जो शरणार्थी विदेशों में चले गये उनमे से एक चित्रकार लँगहेमर बम्बई आये। उनके विशुद्ध रंगो के मोटी परतो मे निर्भीक तूलिकासचालन के साथ मे चित्रण-चाकू से किये यथार्थ विषयों के चित्रण का वहा के युवा कलाकारों पर काफी प्रभाव पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के करीब आधुनिक कला की दिशा मे प्रगति करने के विचार से भारत के बडे शहरों के नवकलाकार प्रयत्नशील हुए। बम्बई मे रजा, आरा, सौजा, हुसेन वगैरह कलाकारो ने सम्मिलित हो कर प्रगतिशील कलाकारो के मण्डल की स्थापना की; कलकत्ता मे सुभो टैगोर, गोपाल घोष, परितोष सेन आदि कलाकारो के प्रयत्नों से नवीन कलाकारो ने पुनरुत्थान शैली के विरोध मे आधुनिक कलापद्धतियों को अपनाने का निश्चय कर के एक कलाकार मडल बनाया जिसमें बाद मे रामकिंकर, अवनि सेन, सुनील माधव सेन शामिल हुए। सभी कलाकारो का विश्वास था कि परपरा से एकनिष्ठ रहने मे कूपमडूक वृत्ति है जिससे कला का विकास नही हो पाता; कला को, राष्ट्रीय बधनो को तोड़ कर, विश्वव्यापी रूप दिया जाना चाहिये। दोनो मंडलो की प्रदर्शनिया हुई तथा दोनो ने एकदूसरे से सम्पर्क प्रस्थापित किया। कुछ वर्षों के अन्दर ही दिल्ली मे 'दिल्ली शिल्प चक्र', मद्रास में 'मद्रास प्रगतिशील कलाकार मडल' व काश्मीर मे 'प्रगतिशील कलाकार मंडल' प्रस्थापित हुए। किंतु इन मंडलों का आरंभिक जोश जल्द ही समाप्त हुआ। मंडलों के उत्साही सदस्यो मे से कुछ सदस्य अधिक अध्ययन के लिये विदेशों मे चले गये, कुछ सदस्य भिन्न स्थानो पर नौकरी या व्यवसाय के हेतु जा बसे। किन्तु इन मंडलों ने कलाकारों, कलाप्रेमियो तथा कला के विद्यार्थियो का आधुनिक कला की ओर ध्यान आकृष्ट करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसके

अतिरिक्त मार्ग, रूपलेखा व इलस्ट्रेटेड वीकली इन नियतकालिकों ने लेखों व प्रतिकृतियों द्वारा आधुनिक कला के प्रसार में काफी सहायता की। दिल्ली में ललित कला अकादमी की प्रस्थापना होकर वार्षिक प्रदर्शनियां की जाने लगी व आधुनिक कला में भारतीय कलाकारों द्वारा किया गया कार्य लोगों के सम्मुख आया। ललित कला अकादेमी ने 'ललित कला' व 'ललित कलाकन्टेम्परेरी' का नियतकालिक प्रकाशन शुरू किया एवं समकालीन कलाकारों पर व्यक्ति व कला की परिचायक पुस्तकें प्रकाशित की। ललित कला अकादेमी के अतिरिक्त बम्बई की 'बॉ । आर्ट सोसायटी', 'आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया' तथा दिल्ली की 'ऑल इण्डिया फाइन आर्टस् एण्ड क्राफ्टस् सोसायटी' ने आधुनिक कला का प्रदर्शनियों द्वारा काफी प्रसार किया। अन्त में उल्लिखित संस्था ने समकालीन कला की कुछ अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियां आयोजित की व 1968 से ललित कला अकादेमी ने 'अन्तरराष्ट्रीय त्रिवार्षिक'[10] प्रदर्शनियों का आयोजन शुरू किया। इन प्रदर्शनियों के अतिरिक्त कला के अधिक अध्ययन के हेतु भारतीय विद्यार्थियों का विदेशगमन, विदेशी कलाकारों की कृतियों का भारतीय शहरों में प्रदर्शन, विचारगोष्ठी, विदेशी वकालातों द्वारा आयोजित सांस्कृतिक तथा कलात्मक कार्यक्रम वगैरह आदानप्रदान ने भारतीय कलाक्षेत्र में आधुनिक कला ने प्रभुत्व जमाया। बड़े शहरों में कई कलावीथिकाएं खुल गयी व कलाकारों की एकल प्रदर्शनियां शुरू हुई। केन्द्रीय सरकार का अनुसरण करके राज्यस्तरीय प्रयत्न शुरू हुए व जगह-जगह कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कलासंस्थाएं खोली गयी। इतने प्रयत्नों व प्रसार के बावजूद हम यह नहीं कह सकते कि भारत में आधुनिक कला ने वास्तव में जड़ पकड़ी है।

सर्जनशील कला मुख्य रूप से स्वतन्त्र आंतरिक प्रेरणा से जन्म लेती है व इस बात को सोच कर परिशीलन करने पर यही दिखायी देता है कि अधिकतर भारतीय आधुनिक कला विदेशों में किये गये प्रयोगों का अनुकरण मात्र है जिसके कई कारण हैं।

स्वतन्त्र होते ही आशा की जा रही थी कि अब भारत प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करेगा व कला क्षेत्र इसके लिये अपवाद नहीं था। किन्तु इस आशा के अनुसार, देश की परिस्थिति, सामाजिक जीवन, परम्परा, विकास आदि विभिन्न राष्ट्रीय पहलुओं का विचार कर के कलानिर्मिति को दिशा नहीं मिली, और यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो भी कलानिर्मिति हुई उसके पीछे कोई कलात्मक ध्येय था। सर्जनशील कला के लिये अनिवार्य है कि कलाकार के मन में कोई निजी तड़प हो या उसके सम्मुख कोई सामाजिक ध्येय हो। किन्तु स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के बाद अधिकतर कलाकार ख्याति या व्यावसायिक यश के अतिरिक्त किसी अन्य ध्येय से प्रेरित नहीं थे। परिस्थितिवश कलाक्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों की अदूरदर्शिता व राजनीतिक क्षेत्र में हो रही उथलपुथल के कारण कलाकार का विदेशों में मान्यता प्राप्त करना सफलता के लिये आवश्यक हुआ जिसका संकुचित ध्येय के कलाकारों

ने लाभ उठाया। अमेरिकी या योरपीय आधुनिक कला से समरूपता, कला की श्रेष्ठता का मापदण्ड बन गयी। परिणामस्वरूप महत्त्वाकांक्षी कलाकार पाश्चात्य कला के भ्रष्ट अनुसरण में व्यस्त हुए। भारतीय आधुनिक कलाकारों की कृतियां अधिकतर विदेशी लोग, वकालातें व पाश्चात्य संस्कृति व रहन-सहन का अंधानुकरण करनेवाले धनी लोग खरीदते व इसका भी समकालीन भारतीय कला के विकास पर अनिष्ट परिणाम हुआ। इस परिस्थिति के बावजूद भारतीय कलाकरों ने पाश्चात्य आधुनिक अंकनपद्धतियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त किया है वह सराहनीय है व आशा की जा सकती है कि भविष्य में इस प्रभुत्व को योग्य मार्गदर्शन मिल कर भारतीय कला फिर मौलिक सर्जन की दिशा में अग्रसर होगी, अपना स्वतंत्र रूप प्राप्त करेगी व भारतीय सामाजिक धारा जुड़ कर उसका एक आकर्षक एवं महत्वपूर्ण अंग बनेगी।

समकालीन भारतीय कला में प्राचीन भारतीय कलाशैलियों से ले कर पाश्चात्य आधुनिक अनियंत्रित कला तक सब का समिश्र रूप में विविधतापूर्ण दर्शन है। कुछ प्रमुख प्रसिद्ध भारतीय कलाकारों की कला के संदर्भ में निम्न विचार व्यक्त किये जा सकते हैं।

ए. ए. आलमेलकर व रसिक रावल ने जलरंगों में, समकालीन जीवन से विषयों को चुन कर, चित्रण किया व उनकी चित्रांतर्गत मानव व प्राणियों की आकृतियां परंपरागत भारतीय रेखात्मक शैली के आधुनिक रूप हैं। आलमेलकर ने अवसर गत्ते पर प्रथम पतले रंगों में व बाद में सूखे, चमकीले रंगों को ले कर चित्रण किया जिससे उनके चित्र प्रकाशीय हिलावट व चमकीली रंगसंगति से आकर्षक बने हैं। तीखी रेखा के प्रयोग व अत्यधिक आलंकारित्व के कारण उनके चित्रों में राजपूत शैली के चित्रों की प्रसन्न सौम्यता का अभाव है। रसिक रावल प्रथम पतले व पारदर्शक भिन्न रंगों को एक साथ बहाकर पार्श्वभूमि को वस्तु-निरपेक्ष रूप देते व उस पर बारीक रेखा से लंबी अल्पवस्त्रधारी मानव या पालतू जानवरों की आकृतियों को समतल रंगों में चित्रित करते। रेखांकन पर भारतीय परंपरागत शैली का प्रभाव होते हुए भी, रंगक्षेत्रों के आपसी विरोध, अलंकरण व प्रतीकात्मता का अभाव, आकारों का सुदीर्घीकरण आदि कारणों से रावल के चित्र दर्शन में पाश्चात्य अभिव्यंजनावादी शैली के सदृश हैं। आलंकारित्व, समतल रंगांकन, आकारों के सरलीकरण, मोटी रेखा के प्रयोग व धार्मिक विषयों के चयन के विचारों से श्रीनिवासुलु की कला लोककला से प्रेरित है व उसको उन्होंने अभ्यास, लयबद्धता व चमकीले रंगों की आकर्षक रंगसंगति से विकसित व वैयक्तिक रूप प्रदान किया है। गौतम वाघेला ने लोककला व राजपूत कला का समिश्र रूप में विकास कर के सीमित रंगों में धार्मिक विषयों का प्रभावी चित्रण किया है। हुसेन व बद्रीनारायण की कला के प्रमुख प्रेरणास्रोत लोककला व खिलौनाकारी हैं। लोककला समान सरलीकरण के अलावा हुसेन आकारों को पिकासो की

अतिरिक्त मार्ग, रूपलेखा व इलस्ट्रेटेड वीकली इन नियतकालिकों ने लेखों व प्रतिकृतियों द्वारा आधुनिक कला के प्रसार में काफी सहायता की। दिल्ली में ललित कला अकादमी की प्रस्थापना होकर वार्षिक प्रदर्शनियां की जाने लगी व आधुनिक कला में भारतीय कलाकारों द्वारा किया गया कार्य लोगों के सम्मुख आया। ललित कला अकादेमी ने 'ललित कला' व 'ललित कलाकन्टेम्परररी' का नियतकालिक प्रकाशन शुरू किया एवं समकालीन कलाकारों पर व्यक्ति व कला की परिचायक पुस्तकें प्रकाशित की। ललित कला अकादेमी के अतिरिक्त बम्बई की 'बॉ । आर्ट सोसायटी', 'आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया' तथा दिल्ली की 'ऑल इण्डिया फाइन आर्टस् एण्ड क्राफ्टस् सोसायटी' ने आधुनिक कला का प्रदर्शनियों द्वारा काफी प्रसार किया। अन्त में उल्लिखित संस्था ने समकालीन कला की कुछ अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियां आयोजित की व 1968 से ललित कला अकादेमी ने 'अन्तरराष्ट्रीय त्रिवार्षिक'[10] प्रदर्शनियों का आयोजन शुरू किया। इन प्रदर्शनियों के अतिरिक्त कला के अधिक अध्ययन के हेतु भारतीय विद्यार्थियों का विदेशगमन, विदेशी कलाकारों की कृतियों का भारतीय शहरों में प्रदर्शन, विचारगोष्ठी, विदेशी वकालातों द्वारा आयोजित सांस्कृतिक तथा कलात्मक कार्यक्रम वगैरह आदानप्रदान ने भारतीय कलाक्षेत्र में आधुनिक कला ने प्रभुत्व जमाया। बड़े शहरों में कई कलावीथिकाएं खुल गयी व कलाकारों की एकल प्रदर्शनियां शुरू हुई। केन्द्रीय सरकार का अनुसरण करके राज्यस्तरीय प्रयत्न शुरू हुए व जगह-जगह कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कलासंस्थाएं खोली गयी। इतने प्रयत्नों व प्रसार के बावजूद हम यह नहीं कह सकते कि भारत में आधुनिक कला ने वास्तव में जड़ पकड़ी है।

सर्जनशील कला मुख्य रूप से स्वतन्त्र आंतरिक प्रेरणा से जन्म लेती है व इस बात को सोच कर परिशीलन करने पर यही दिखायी देता है कि अधिकतर भारतीय आधुनिक कला विदेशों में किये गये प्रयोगों का अनुकरण मात्र है जिसके कई कारण है।

स्वतन्त्र होते ही आशा की जा रही थी कि अब भारत प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करेगा व कला क्षेत्र इसके लिये अपवाद नहीं था। किन्तु इस आशा के अनुसार, देश की परिस्थिति, सामाजिक जीवन, परम्परा, विकास आदि विभिन्न राष्ट्रीय पहलुओं का विचार कर के कलानिर्मिति को दिशा नहीं मिली, और यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो भी कलानिर्मिति हुई उसके पीछे कोई कलात्मक ध्येय था। सर्जनशील कला के लिये अनिवार्य है कि कलाकार के मन में कोई निजी तड़प हो या उसके सम्मुख कोई सामाजिक ध्येय हो। किन्तु स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद अधिकतर कलाकार ख्याति या व्यावसायिक यश के अतिरिक्त किसी अन्य ध्येय से प्रेरित नहीं थे। परिस्थितिवश कलाक्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों की अदूरदर्शिता व राजनीतिक क्षेत्र में हो रही उथलपुथल के कारण कलाकार का विदेशों में मान्यता प्राप्त करना सफलता के लिये आवश्यक हुआ जिसका संकुचित ध्येय के कलाकारों

ने लाभ उठाया । अमेरिकी या योरपीय आधुनिक कला से समरूपता, कला की श्रेष्ठता का मापदण्ड बन गयी । परिणामस्वरूप महत्वाकांक्षी कलाकार पाश्चात्य कला के भ्रष्ट अनुसरण में व्यस्त हुए । भारतीय आधुनिक कलाकारों की कृतियां अधिकतर विदेशी लोग, वकालातें व पाश्चात्य संस्कृति व रहन-सहन का अंधानुकरण करनेवाले धनी लोग खरीदते व इसका भी समकालीन भारतीय कला के विकास पर अनिष्ट परिणाम हुआ । इस परिस्थिति के बावजूद भारतीय कलाकारों ने पाश्चात्य आधुनिक अंकनपद्धतियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त किया है वह सराहनीय है व आशा की जा सकती है कि भविष्य में इस प्रभुत्व को योग्य मार्गदर्शन मिल कर भारतीय कला फिर मौलिक सर्जन की दिशा में अग्रसर होगी, अपना स्वतंत्र रूप प्राप्त करेगी व भारतीय सामाजिक धारा जुड़ कर उसका एक आकर्षक एवं महत्वपूर्ण अंग बनेगी ।

समकालीन भारतीय कला में प्राचीन भारतीय कलाशैलियों से ले कर पाश्चात्य आधुनिक अनियंत्रित कला तक सब का समिश्र रूप में विविधतापूर्ण दर्शन है । कुछ प्रमुख प्रसिद्ध भारतीय कलाकारों की कला के संदर्भ में निम्न विचार व्यक्त किये जा सकते हैं ।

ए. ए. आलमेलकर व रसिक रावल ने जलरंगों में, समकालीन जीवन से विषयों को चुन कर, चित्रण किया व उनकी चित्रांतर्गत मानव व प्राणियों की आकृतियां परंपरागत भारतीय रेखात्मक शैली के आधुनिक रूप हैं । आलमेलकर ने अक्सर गत्ते पर प्रथम पतले रंगों में व बाद में सूखे, चमकीले रंगों को ले कर चित्रण किया जिससे उनके चित्र प्रकाशीय हिलावट व चमकीली रंगसंगति से आकर्षक बने हैं । तीखी रेखा के प्रयोग व अत्यधिक अलंकारित्व के कारण उनके चित्रों में राजपूत शैली के चित्रों की प्रसन्न सौम्यता का अभाव है । रसिक रावल प्रथम पतले व पारदर्शक भिन्न रंगों को एक साथ बहाकर पार्श्वभूमि को वस्तु-निरपेक्ष रूप देते व उस पर बारीक रेखा से लंबी अल्पवस्त्रधारी मानव या पालतू जानवरों की आकृतियों को समतल रंगों में चित्रित करते । रेखांकन पर भारतीय परंपरागत शैली का प्रभाव होते हुए भी, रंगक्षेत्रों के आपसी विरोध, अलंकरण व प्रतीकात्मता का अभाव, आकारों का सुदीर्घीकरण आदि कारणों से रावल के चित्र दर्शन में पाश्चात्य अभिव्यंजनावादी शैली के सदृश हैं । अलंकारित्व, समतल रंगांकन, आकारों के सरलीकरण, मोटी रेखा के प्रयोग व धार्मिक विषयों के चयन के विचारों से श्रीनिवासुलु की कला लोककला से प्रेरित है व उसको उन्होंने अभ्यास, लयबद्धता व चमकीले रंगों की आकर्षक रंगसंगति से विकसित व वैयक्तिक रूप प्रदान किया है । गौतम वाघेला ने लोककला व राजपूत कला का समिश्र रूप में विकास कर के सीमित रंगों में धार्मिक विषयों का प्रभावी चित्रण किया है । हुसेन व बद्रीनारायण की कला के प्रमुख प्रेरणास्रोत लोककला व खिलौनाकारी हैं । लोककला समान सरलीकरण के अलावा हुसेन आकारों को पिकासो की

नीग्रोकालीन ऐंठन दे कर, रंगों की मोटी परतों में व स्पष्ट बाह्य रेखा से अंकित करते एवं आरम्भिक विश्लेषणात्मक घनवाद का इतना सीमित प्रयोग करते कि उससे उनके चित्रों के विषय प्रतिपादन को हानि नहीं पहुंचती। हुसैन ने भिन्न विषयों को चित्रित किया है जिनमें व्यक्तिचित्र, पौराणिक कथाएं—रामायण, महाभारत जैसी—रागरागिनियां, समकालीन घटना—आपातकाल की घोषणा, चन्द्रमा पर मानव का अवतरण—वगैरह विषय है। जानवरों के चित्रों में उनके घोड़ों के चित्र विशेष प्रसिद्ध है। किसी भी विषय को ले कर वे अक्सर चित्रमालिका तैयार करते, जिसका 'मदर टेरेसा चित्रमालिका' उदाहरण है; इसमें उन्होंने मैडोना के मातृवात्सल्य को सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से चित्रित किया है। बद्रीनारायण लोक कला के समान मोटी व स्पष्ट बाह्य रेखा से सरलीकृत आकारों को चित्रित करते एवं उनकी कला पर बिजाटाईन पच्चीकारी का भी प्रभाव है। उन्होंने सामाजिक दृश्यों के अलावा ईसा के जीवन की घटनाओं के प्रभावपूर्ण चित्र बनाये हैं जो दर्शन में रूओ के अभिव्यंजनावादी धार्मिक चित्रों के सदृश है किन्तु उनमें निराशा व पीड़ा के भाव नहीं है जो रूओ के चित्रों में है।

विनोद बिहारी मुखोपाध्याय की शैली में भारतीय कला की रेखात्मकता व गोथिक कला के सरलीकृत ठोसपन का समिश्र स्वरूप होने से वह भित्तिचित्रण के लिये बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई। भित्तिचित्रण के अलावा उन्होंने दैनिक जीवन के प्रसंगों को ले कर चित्र बनाये जो आध्यात्मिक भावना से भरे हुए है। शैलोज मुखर्जी, हेब्बार, चावडा, बेन्द्रे व बी. प्रभा की कला में भारतीय परंपरागत शैली की लयबद्ध रेखा, यथार्थवाद, व पाश्चात्य आधुनिक कला के विभिन्न गुणों का समन्वय है। दैनिक जीवन से चुने हुए दृश्यों को शैलोज मुखर्जी ने गतिमान लयबद्ध बाह्यरेखा से आकारों को अंकित करके व रोमांसवादी उन्मुक्तता, सीमित छायांकन, चमकीली रंगसंगतियों के साथ चित्रित किया, व उनके चित्र बहुत ही आकर्षक बन गये है। उनके चित्रों में पनघट, खेत आदि ग्रामीण जीवन के दृश्यों की प्रचुरता है। हेब्बार की रेखा के अंतर्गत गतित्व व लय के अतिरिक्त मानव शरीर के गहरे अध्ययन का प्रभाव है जिसकी वजह से उनकी कला अभिव्यंजनावाद से भी यथार्थवाद के अधिक निकट है व चित्रविषय भी सुलभता से समझ में आता है। विषय के महत्त्व के अलावा उन्होंने सतह की बुनावट, रंगसंगति की आकर्षक योजना, कुशल संयोजन व गतित्व-दर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया है। उनके चित्रों के विषय अक्सर शहरी या ग्रामीण जीवन के दृश्य होते है जैसे कि मां व शिशु, चक्की, बाजार, रंगपंचमी, गृहनिर्माण आदि। उन्होंने अपने चित्रों में आवश्यकतानुसार क्षेत्रों का घनवादी विभाजन भी किया है। चावडा की रेखा में लहरों की वक्रता व गतित्व है व उसके अनुकूल उनके चित्रों के विषय भी है जो अधिकतर नृत्य या गतिपूर्ण क्रियाओं से सम्बन्धी है। शरीर-रचना-शास्त्र के गहरे अध्ययन एवं प्रत्यक्ष देख कर किये मानव के विभिन्न मुद्राओं में चित्रण के कारण

उनकी मानवाकृतिया यथार्थ व सजीव प्रतीत होती हैं। वेंद्रे नैसर्गिक रूप-सौंदर्य की अभिवृद्धि का विशेष ख्याल करते व उनकी नारी-आकृतिया बसौली शैली की नारी-आकृतियो के समान सुन्दर हैं। उन्होने रेखा से भी छटाओं के विरोध पर अधिक बल देकर आकारो को उभारा है व छायाप्रकाश के स्थान पर हलके गहरे क्षेत्रो का घनवादी तरीको से काल्पनिक प्रयोग किया है। 'पनघट', 'कांटा', 'ख्वाब' आदि चित्र पूर्ण रूप से घनवादी पद्धति के हैं फिर भी उनके विषय सरलता से समझ में आते है। उनकी रगसगति चमकीली व आकर्षक होती है व उसमे भारतीय परपरा का दर्शन है। उन्होने प्रयोग के तौर पर वस्तुनिरपेक्ष चित्रण भी किया किन्तु उससे उनको सतोष नही मिलने से उन्होने फिर निजी पूववर्ती शैली मे चित्रण प्रारम्भ किया। बी. प्रभा ने मोदिल्यानी के समान, किन्तु स्पष्ट बाह्य-रेखा से अंकित, मानवाकृतियो को सुदीर्घ रूप दे कर चित्रित किया है किन्तु उनमें मोदिल्यानी के समान आतरिक भावदर्शन व काव्य का अभाव है, यद्यपि सुन्दर रगसगति, प्रभावपूर्ण कुशल सयोजन व सादगी से उनके चित्र बहुत ही आकर्षक होते है। उन्होने अधिकतर मछुआरिनें, देहाती स्त्रियां, मा व शिशु जैसे ग्रामीण विषयो को लेकर चित्रण किया है। सबावाला की कला स्पष्ट रूप से घनवादी है व उनका घनवाद वियों के समान नियमबद्ध व आलकारिक है। बरसों तक घनवादी चित्रण करने के बाद 1980 से आसपास उन्होने घनवाद को छोड़ कर, धार्मिक विषयो के चित्र बनाना प्रारम्भ किया जिनमें 'पवित्र कुंज', 'शिष्य', 'भिक्षु' आदि शीर्षक के चित्र है। इन चित्रो की मानवाकृतियां पिकासो की शास्त्रीयताकालीन कला या गोथिक कला के समान ठोसपन लिये हुए है एव शैली विषयानुकूल है; चित्र काफी प्रभावपूर्ण है।

चित्रकार कृष्णाजी आरा ने फूलदानो या वस्तुसमूहों के चित्रो मे इटालियन आत्म तत्त्वीय चित्रकार मोरादी के समान गूढ आत्मिकता व स्मृतिव्याकुलता के भाव हैं यद्यपि आरा की अंकनपद्धति पूर्णरूप से भिन्न है। उन्होने पारदर्शक पतले रंगो की हलकी परतों पर गहरे या काले रंगो से, जापानी सुमी शैली के समान, मोटी रेखा एवं रगो का फैलाव के प्रयोग से चित्रण किया है। राजपूत कला के रागरागिनियो के चित्रों से प्रेरित प्रतीकात्मकता व पाश्चात्य अभिव्यजनावादी कलाकार ग्रोस के समान बारीक रेखाओ से युक्त चित्रण लक्ष्मण पै की विशेषताएं हैं। उन्होने ग्रामीण जीवन, निसर्गदृश्य, पौराणिक कथाए आदि विभिन्न विषयों को लेकर चित्रण किया है। अमेरिका जाकर रहे फ्रान्सिस न्यूटन सोजा ने नव-नवीन संयोग करने मे रुचि ली। किंतु वस्तुनिरपेक्ष चित्रण का कड़ा विरोध किया। उनके चित्रों के विषय अधिकतर ईसाई धर्म से सबधित है व उन्होने बिजान्टाइन कला एव राजपूत कला का आधुनिक रूप देने के प्रयत्न किये हैं। एक अन्य भारतीय चित्रकार एस. एच. रजा ने पेरिस को अपना निवास स्थान बनाया, व फ्रेंच चित्रकार निकोल द स्ताल के समान विस्तृत क्षेत्रो पर, चित्रण चाकू

से, मूल रंगों का प्रयोग करके, मोटी परतों की चौड़ी धज्जियों में दृश्य-चित्र बनाये। इन चित्रों में अधिकतर स्वीटज़लैंड के पहाड़ो दृश्य व फ्रान्स के शहरी दृश्य हैं। सतीश गुजराल ने प्रारंभ में मेक्सिकन चित्रकार ग्रोरोज्को की शैली का अनुसरण कर के मानव की प्रगतिकता, निराशा व दर्द के अभिव्यंजनावादी चित्र बनाये। उनके कुछ चित्रों में वीरान दृश्यों के अन्तर्गत केवल मानवछायाओं को अंकित किया है जिससे चित्र किरिको के समान पारमतत्वीय प्रभाव डालते हैं। कुछ वर्ष बाद उन्होंने खुरदरी पृष्ठभूमि पर मोटी रेखा से अंकित मानव सदृश्य आकृतियों का चित्रित कर के दार्शनिक अभिव्यक्ति के चित्र बनाये। उन्होंने कोलाज व मोंताज पद्धति के भी बहुत से चमकीली रंगसंगति के चित्र बनाये हैं जो रहस्यात्मक हैं।

मोहन सामंत, गायतोंडे, शांति दवे, जी. आर. संतोष, ज्योति भट्ट, जेराम पटेल व स्वामिनाथन् की कला पाश्चात्य अनियंत्रित कला व पदार्थ चित्रण से प्रभावित है।

अतियथार्थवादी चित्रकारों में से रामचन्द्रन, विकास भट्टाचारजी, गणेश पाइन व परमजीतसिंह ने काफी प्रभावी चित्रण किया है। रामचन्द्रन के खालहीन मानवाकृतियों से युक्त मुख चित्रों में फ्रान्सिस बेकन के चित्रों की भयानकता है। गणेश पाइन के चित्रों में पॉल क्ले की आतरिकता है व उनकी मानवाकृतियां किसी दैवी शक्ति से सम्मोहित लगती हैं। विकास भट्टाचारजी के चित्र भूतप्रेतों की दुनिया के सदृश डरावने हैं। परमजीतसिंह के मानवरहित व गूढ़ प्रकाश से व्याप्त दृश्य एडवर्ड हाप्पर के या पारमतत्वीय चित्रों के समान रहस्यमय है।

पिराजी सागर मुख्य रूप से खुरदरी सतह, मोटी रेखा व एठनदार मानवाकृतियों की योजना करके चित्र बनाते है व उनके मानव अनोखे अस्तित्ववादी दर्द से व्यथित दिखायी देते हैं। उनको हम मुंश व नोल्ड की परम्परा के अभिव्यंजनावादी चित्रकारों में शामिल कर सकते है।

तन्त्र-कला :—करीब 25 वर्ष पहले भारतीय कलाक्षेत्र में तन्त्र-कला नाम से कुछ नये रूप-रंग के चित्रों की निर्मिति शुरू हुई जिसके प्रणेताओं में के. सी. एस. पनिक्कर थे और उसके विकास में विशेष प्रयत्नशील रहे जी. आर. सतोष। पनिक्कर के चित्रों को देखते ही ऐसा लगता है कि हम बड़े पैमाने पर बनायी किसी अद्भुत प्रभाव की तात्रिक रचना को देख रहे हैं। अब प्रश्न उठता है कि केवल इस सादृश्य से ही ऐसी रचना को कलाकृति मानना कहां तक उचित है और यह भी निर्विवाद है कि ऐसी कृति का कोई तात्रिक महत्त्व नहीं होता। वास्तविकता यह है कि 'तंत्र-कला' शब्दप्रयोग ही विरोधभासी है। तन्त्र कोई कला न होकर सिद्धि की विद्या है जिसका कलासर्जन से कोई सम्बन्ध नहीं है। हां, यह सभव है कि तन्त्र-कला नाम से बनायी गयी रचना में वस्तु-निरपेक्ष कलात्मक गुण प्रतीत हो सकते है। जैसे कि पनिक्कर के चित्रों में हम देख सकते है। पर ऐसी स्थिति में उसको तन्त्र-कला के बजाय वस्तु- निरपेक्ष कला

के अन्तर्गत पहचानना उचित है। यहां तिब्बत की परम्परागत थका-पताका-शैली का विचार सामने आता है। कहा जाता है कि ये चित्र विशेष साधना व तन्त्र-प्रयोग के साथ बनाये जाते हैं व उनमें मनोकामनाओं की पूर्ति करने का सामर्थ्य होता है। किंतु इसका समाधान तन्त्र-विद्या मे विश्वास करनेवाला एवं उसका गहरा अध्ययन किया हुआ व्यक्ति ही दे सकता है। इसका विचार आधुनिक कला के अन्तर्गत अप्रासंगिक है।

बीसवी सदी के छठे दशक के बाद बहुसंख्य नये भारतीय कलाकार पाश्चात्य आधुनिक शैलियों के अनुसरण में लग गये और सार्वजनिक संस्थाओं की प्रदर्शनियों में आधुनिक कला के अतिरिक्त अन्य शैलियों के चित्रों का दर्शन दुर्लभ हो गया। नवीन अंकनपद्धतियो पर प्रभुत्व प्राप्त करने के हेतु या अध्ययन के विचार से विदेशी शैलियो का अनुकरण कला के विकास की दृष्टि से सामयिक आवश्यकता है। किंतु केवल अंकनपद्धतियो पर प्रभुत्व प्राप्त करने से सर्जनशील कलानिर्मिति नही की जाती जिसके लिये कलाकार में आतरिक प्रेरणा का होना आवश्यक है। समसामयिक प्रदर्शनियो का अवलोकन करने पर निराशा होती है। इनमें बहुसंख्य कृतिया केवल पाश्चात्य कला का अनुकरण मात्र दिखायी देती है। ये कलाकृतिया भारतीय गृहों या सार्वजनिक स्थानो के लिये समुचित नही लगती। इसके मुख्य कारण हैं कलाकारो में भारतीय जीवनदर्शन व परम्परा के प्रति अनास्था, पाश्चात्य भौतिक जीवन के प्रति मोह व एकमात्र व्यावसायिक दृष्टिकोण। ये कलाकृतियां केवल विदेशी खरीददारो के लिये, या उन लोगों के लिये जिनका पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन है, बनायी गयी है ऐसे यदि प्रतीत होता है तो कोई आश्चर्य नही है।

समसामयिक पाश्चात्य कला यहाँ के लोगों के जीवन दर्शन को प्रतिमित करती है और वहां के वातावरण व संस्कृति का एक अनिवार्य अंग बन गयी है। विशुद्ध कलासर्जन के अलावा पाश्चात्य कलाकार मिनिमल कला, अधिष्ठापन, स्थल-विशिष्ट–शिल्प, वातावरणीय कला-प्रयोजना, घटना-मचन, मनोवर्धक कला-कार्यक्रम वगैरह नामो से ज्ञात, वहां के परिवेश व मानसिकता के अनुरूप मिश्रमाध्यम कलाकृतियो व कार्यक्रमों द्वारा लोगो के जीवन को भावपूर्ण अनुभूतियों से सम्पन्न करने के लिये उत्साह से कार्य करते है, जबकि यहा के कलाकारो का जनसम्पर्क नही के बराबर है। पाश्चात्य देशों मे आधुनिक कलाकारों द्वारा किये संशोधन व सर्जनकार्य से वास्तुकला, शहर-निर्माण, प्रयुक्त-कला के सभी क्षेत्र—विज्ञापन, फर्नीचर, पुस्तकचित्रण, वस्त्रालंकरण, वस्तुरचना आदि—नाटक, नृत्य वगैरह काफी विकसित हुए हैं; दस्तकारी को भी लाभ पहुँच कर उसकी उन्नति हो गयी है। पिकासो, मातिस, शागाल, से लेकर नयी पीढी के समसामयिक कलाकारो तक सभी ने प्रयुक्त कला के विभिन्न क्षेत्रो में कार्य कर के उसको नया रूप देने के प्रयत्न किये है। भारत में अभी प्रयुक्त कला व दस्तकारी को निम्न

व्यक्तिगत रुचि वगैरह तर्क बाह्य तत्त्व कार्य करते हैं। इन्हीं प्रणालियों की देन है अजीब समीक्षक व निर्णायक वर्ग जिनके निर्णय हमेशा वादविवाद को जन्म देते हैं।

मौलिक शैली को विकसित करने से पहले, कला के मूलाधार तत्त्वों से व निजी कलात्मक व्यक्तित्व से परिचित होने के लिये पूर्ववर्ती तथा विदेशी कला का अध्ययन, अनुकरण व अनुसरण करना जरूरी होता है। इसके बिना अकनपद्धति पर प्रभुत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता। आधुनिक कला इसके लिये अपवाद नहीं है। अनुकरण व बाह्य प्रभाव व्यक्तिगत मौलिकताओं को उभारने में सहायक होते हैं। कलाकार की महानता इसमें है कि अध्ययन से निजी कलात्मक व्यक्तित्व का विकास होने पर वह स्वतंत्र रूप से सर्जन करने में कहां तक सफल होता है। अतः प्रारम्भिक अनुकरण व मौलिक सर्जन इनमें कोई अतर्विरोध नहीं है। प्रत्येक श्रेष्ठ आधुनिक कलाकार से पूर्ववर्ती कला से व कभी विदेशी कला से बहुत कुछ अपनाकर अपनी कला को मौलिक रूप दिया। प्रभाववाद के विकास में जापानी कला ने कितना मार्गदर्शन किया यह हमने देखा। जापानी छापचित्रों के समतलत्व, रेखात्मकता, सयोजन, अधूरी मानवाकृतियों के अंकन के तरीकों को देगा, गोग्वं, वान गो व तुलुज लोत्रेक ने स्पष्ट रूप से अपनाया है। गोग्वं ने बोरोबुदुर पैगोडा के शिल्प की एवं वान गो ने हिरोशिगे के प्रकृतिचित्र की अनुकृतियां कीं। पिकासो व ब्राक ने आइबीरियन मूर्तियों से प्रेरणा लेकर घनवाद का विकास किया। मातिस व पौल क्ले इस्लामी कक्षा के रगाकन व आलकारित्व से प्रभावित थे। चीनी स्याही शैली ने मार्क टोबी व धब्बावादी चित्रकारों को प्रेरित किया।

आधुनिक कलाकार पूर्ववर्ती कलाकारों के कितने ऋणी थे यह भी हमने देखा। पुसें रोमन कला को, सेजान पुसें को व पिकासो सेजान को मार्गदर्शक मान कर आगे बढ़े। जभी तो देगा ने दग्रो से कहा था कि "हरेक के मातापिता होते हैं"। क्रांतिकारी आंदोलनों को भी पूर्ववर्ती सदृश कार्य से सहायता लेनी पड़ती है। अनुकरण का अर्थ यह नहीं है कि पूर्ववर्ती सीमा में अनुबद्ध होकर रहना बल्कि आगे बढ़ने के लिये पूर्व-कार्य को जानना। योरप के भिन्न देशों के आधुनिक कलाकारों ने एक दूसरे से कितना लाभ उठाया इसका भी हमने अध्ययन किया। अतः मौलिकता भी अध्ययन व बाह्य प्रभाव पर कितनी आधारित है यह समझना आवश्यक है।

आम अनभिज्ञ आदमी की धारणा है कि आधुनिक कलाकार केवल 'कला के लिये कला' को ध्येय मानकर 'स्वान्तः सुखाय' चित्रण करता है व उसे सामाजिक परिस्थिति या मानवजीवन से सम्बन्धित विषयों से कोई लेना देना नहीं होता; किन्तु उसका यह मत कितना भ्रान्तिपूर्ण है यह इतिहास के अध्ययन से सिद्ध होता है। आदिम कला शिकार व मन्त्रतन्त्र से सम्बन्धित थी, ग्रीक कला का विषय पौराणिक गाथाएं था, मध्ययुगीन कला ने बायबल, रामायण, महाभारत, बौद्धधर्म, जैनधर्म को चित्रित किया, उसके पश्चात् राजाश्रय पर फलीफूली कला ने दरबारी

जीवन का चित्रण किया और उसी प्रकार आधुनिक कला समकालीन जीवन व मानसिकता को प्रतिमित करती है। राजा व धर्म का प्रभुत्व समाप्त होकर पीड़ित जनता की स्वाधीनता व अभ्युत्थान की आकांक्षाएं पनपने लगी व यथार्थवादी कलाकारों ने सहानुभूतिपूर्वक उनकी व्यथाओं व आकांक्षाओं को चित्रित किया। जिस तरह मध्ययुगीन कला पर धार्मिक ग्रंथों में उल्लिखित विचारों का प्रभाव था उसी तरह आधुनिक कला पर समकालीन साहित्य द्वारा प्रसृत विचारों का प्रभाव है। कलाकारों का साहित्यिकों से घनिष्ठ संपर्क रहता व उनमें विचारों का आदान-प्रदान होता। प्रतीकवाद का जन्म मालार्मे व वर्लेन के साहित्य से हुआ व अभिव्यंजनावाद का जर्मन साहित्य से। अतियथार्थवाद को फ्राइड के मनोविश्लेषण से प्रेरणा मिली व उसके सूत्रधार थे साहित्यिक ब्रेतो, एल्वार व रेवार्दी। भविष्यवाद में फासिज्जम के आत्यंतिक विचारों का प्रकटीकरण है। पॉप कला में भौतिकतावाद से ग्रस्त समाज का चित्रण है तो मनोवर्धक कला में नशेबाज दुनिया का प्रतिरूप है। वस्तुनिरपेक्ष कला, घनवाद व ऑप कला को हम जीवन से विमुख नहीं मान सकते। मोंद्रियान व वान डोसबुर्ग ने लिखा है कि वे विश्वरचना के अंतर्गत जो गणितीय सिद्धांत हैं उनके अनुसार रचना करके मानवजीवन में सुसंवादित्व प्रस्थापित करना चाहते हैं। वे सोचते थे कि जीवन के अंगप्रत्यंग में विशुद्ध सौंदर्य का अंतर्भाव होने से कला का स्वतंत्र रूप से अस्तित्व नहीं रहेगा व जीवन स्वयमेव सुन्दर व कलापूर्ण बनेगा। इसी विचार से आकारनिष्ठ कला व नेत्रीय कला प्रेरित हुई थीं। पोलाक की चित्रण पद्धति व धब्बावाद का मूल विचार था सर्जनक्रिया को कलाकार के अहम् से मुक्त करके सौन्दर्य को अपने आप स्वाभाविक रूप में प्रकट होने देना। इस दृष्टि से वे नैसर्गिकतावादी चित्रकारों से भी निसर्ग के अधिक निकट व उत्कट भक्त थे। साठोत्तरी कला में परिवेश को कलात्मक अनुभूति से संपन्न करने के प्रयत्न हो रहे हैं। आधुनिक कलाकारों के सम्मुख कोई सामाजिक विचार नहीं था यह मत अर्थात् अयथातथ्य है। पिकासो ने 'ग्वेर्निका' को चित्रित करने के पश्चात् स्पष्ट किया था कि समाज के प्रति निष्कर्त्तव्य होना कलाकार के लिये संभव नहीं है। वान गो ने लिखा कि वे ऐसे चित्रों की निर्मिति करना चाहते हैं जो गरीब परिवारों के दीवारों को सजाएं।

प्राचीन धार्मिक या दरबारी कला से आधुनिक कला की जो प्रमुख भिन्नता है वह है उसका विखंडित रूप। डार्विन का उत्क्रांतिवाद, अस्तित्ववादी दर्शन, मनोविश्लेषण व वैज्ञानिक विकास ने कलाकारों को भिन्न दिशाओं में निर्दिष्ट किया। कुछ कलाकार आंतरिक जीवन की अभिव्यक्ति के प्रयत्नों में जुट गये जिससे अभिव्यंजनावाद, अतियथार्थवाद व आत्मतत्त्वीय चित्रण ने जन्म लिया तो कुछ जड़वादी कलाकार बाह्य सौंदर्य के विकास के प्रयत्नों में लगे जिससे घनवाद, नवलचीलवाद, विशुद्धवाद जैसे रचनाप्रधान वादों ने जन्म लिया। न्यूयार्क शैली के कुछ कलाकार ताओवाद व जैन दर्शन से प्रभावित होकर कार्य करने लगे।

आधुनिक कला के कुछ प्रशंसकों की धारणा है कि आधुनिक कला पूर्ववर्ती कला से अधिक विकसित है, किन्तु उनकी यह धारणा तथ्य पर आधारित नहीं है। वास्तव में विकास की कल्पना विज्ञान व गणित जैसे विषयों को जिस तरह लागू की जाती है वैसे कला को नहीं लागू की जा सकती। कला मानव के भावात्मक जीवन को प्रकाशित करती है और उसमें आदिमकाल से अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मानव का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलता गया व उसका कला के रूप पर किस तरह प्रभाव पड़ा यह हमने देखा। सभी कलान्तर्गत तत्वों पर समान रूप से बल दे कर सफल कलाकृति नहीं बनायी जा सकती। यदि वास्तविक रूप को चित्रित करना है तो काल्पनिक रंगसंगति व विकृतिकरण का प्रयोग नहीं किया जा सकता और भावनाओं की तीव्रता को दर्शाना है तो वास्तविक रूप में परिवर्तन करना पड़ता है।

रेखात्मक चित्रण व घनत्वांकन का प्रभाव अपनी-अपनी जगह है व उनमें तुलना नहीं की जा सकती। दर्शक को सिर्फ इसका विचार करना चाहिये कि कलाकार अपने लक्ष्य की पूर्ति में कहाँ तक सफल हो गया है। कुछ लोग यथार्थवादी चित्रों को तुच्छ समझते हैं जो उचित नहीं है। वास्तव में यथार्थवादी कलाकार बाह्य रूप का हुबहू अनुकरण नहीं करता बल्कि अपनी कल्पना से उसको आदर्श या सरलीकृत रूप में चित्रित करता है नहीं तो वह पट के समतल पृष्ठभूमि पर आकर्षक नहीं बन सकता। अतः यथार्थवादी कला का भी अपना महत्त्व है। ई. एच. गॉम्ब्रिच के इस सम्बन्धी विचार उद्बोधक हैं, उन्होंने लिखा है, "हमको समझना चाहिये कि किसी कलाकृति में यदि कुछ गुणों का विकास किया है तो वहाँ जरूर अन्य गुणों को हानि हुई है, और यह जो यांत्रिक दृष्टि से विकास प्रतीत होता है उसको वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं है। हम नहीं कह सकते कि कलाकृति अधिक उच्च स्तर पर पहुँची है या उसका कलात्मक मूल्य बढ़ा है"।

दर्शक को नगण्य समझने की कलाकारों की प्रवृत्ति तर्कशुद्ध नहीं है। कलाकृति जब दर्शक के अवलोकनार्थ रखी जाती है तो स्वाभाविक है कि वह उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिये रखी जाती है। अतः दर्शक को अस्तित्वहीन कैसे माना जा सकता है? क्या हम उसको मूढ़ समझकर उसकी मौन सहमति चाहते है? इससे कला का श्रेष्ठत्व कैसे सिद्ध हो सकता है? सर्वसाधारण दर्शक की मनोवृत्ति नये रूप के प्रति संदेहग्रस्त रहती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि उसमें सौन्दर्यदृष्टि या रसग्रहण क्षमता का अभाव है। दर्शक हमेशा नयी कलाकृति को अपनी पूर्वकल्पना या अपने जीवन से सबंधित देखना चाहता है और उसकी यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार है। किसी भी नये विचार या कार्य का स्वीकार परीक्षण के बिना कैसे किया जा सकता है? मनोहर रंगसंगति व

रचना के प्रति दर्शक उदासीन नहीं होता, यदि वह किसी व्यक्तिचित्र या दृश्यचित्र के अन्तर्गत हो। किंतु रंगों व आकारों की रचना को विशुद्ध रूप मे ग्रहण करने मे उसको कठिनाई होती है क्योंकि किसी भी कृति को जीवन से पृथक् रूप मे देखने का वह आदि नहीं होता है, न वह समझता है कि उसका कुछ प्रयोजन है। आधुनिक वस्तुनिरपेक्ष कृतियों की ओर उदासीन व्यक्ति अपने वस्त्रों, गृहो व दैनंदिन उपयोग की वस्तुओं को आधुनिक रूप मे पसन्द करता है। वास्तव में कला व जीवन ऐसा पृथक् विभाजन ही अस्वाभाविक है। हर कोई परिवर्तन चाहता है व यह एक स्वाभाविक मानवप्रवृत्ति है, किन्तु उसकी मनीषा होती है कि उस परिवर्तन पर निजी कल्पना व व्यक्तित्व की छाप हो। इस द्विधा मनःस्थिति से बाहर निकलने का कार्य समाज-मनोविज्ञान, परिचय, साहचर्य व समय के तत्व करते है। व अन्त में सच्ची कला को दर्शक स्वीकृत कर लेता है। यहा यह नही समझना चाहिये कि इस प्रक्रिया में दर्शक की स्वाभाविक सौंदर्यभावना तटस्थ रहती है। कुछ समय तक वह अनिश्चय की अवस्था में रहती है किन्तु अन्तिम निर्णय उसी का होता है। इस सम्बन्ध में फ्रँक नोरिस ने लिखा है, "लोगो का व उनकी अनभिज्ञता का मजाक उड़ाना आसान है किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि जो कला अन्त में लोगो की समझ मे नही आती वह एक पीढी तक भी जीवित नही रह सकती, न कभी रही। व्यापक दृष्टिकोण से, विश्लेषण का निष्कर्ष है कि अन्तिम निर्णय लोगों का होता है"।

विश्व की उत्पत्ति व निरन्तरता द्वैत पर आधारित है व यह मूलभूत सिद्धांत केवल दर्शनशास्त्र की निष्पत्ति नही है। कला व विज्ञान के सैद्धांतिक अध्ययन में भी द्वैत की सर्वव्यापक संचालन शक्ति का साक्षात्कार होता है। आधुनिक कला का इतिहास इस द्वंद्वात्मकता से परिपूर्ण है। यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का व्यापक विषय है व उसके महत्त्व को सूचित करने के उद्देश्य से यहाँ कुछ प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख प्रस्तुत है।

कला के इतिहास में शास्त्रशुद्धता व उन्मुक्तता के स्वतन्त्र महत्त्व का स्थान स्थान पर वर्णन किया है। शास्त्रीय कला, नवशास्त्रीयतावाद, नवलचील-वाद व रचवाद मे शास्त्रशुद्धता पर बल दिया है। तो बेरोक कला, रोमासवाद व वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद में उन्मुक्तता कलानिर्मिति का प्रमुख आधारतत्व माना गया है। कला का इतिहास इन द्विविध मतों के संघर्ष से भरा है। क्या ये दोनों इतने विरोधी तत्व हैं कि उनका सहास्तित्व या सहयोग सम्भव नहीं है? सूक्ष्म विचार करने पर वास्तविकता तो कुछ विपरीत ही नजर आती है। जिसको हम शास्त्र समझते है वह असल में सर्जनसम्बन्धी कुछ सीमित नियमों की परंपरा होती है। वह कलान्तर्गत तत्वो के समूचे लचीले गणित—जो कि अमर्याद है—का समावेश नहीं कर सकती। साधना से शास्त्र पर प्रभुत्व प्राप्त कर के कलाकृति

को रूप दिया जा सकता है किन्तु उसमें सजीवता नहीं आती जब तक कलाकार तन्मय हो कर अपनी भाव संवेदनाओं से उसको अनुप्राणित नहीं करता। इसके बिना कलाकृति कठोर बनती है। दूसरी ओर, जिसको उन्मुक्त चित्रण कहते हैं वह कोई निरंकुश स्वच्छंद कार्यपद्धति नहीं होती। चित्र में कला के सर्जनतत्वों में सामंजस्य बिठाने के लिये कुछ लिखित व अलिखित नियमों का पालन करना पड़ता है, नहीं तो वह बिखरा हुआ, अविकसित व दुर्बल बनता है। यह कला का अन्तर्गत अनुशासन है जिसके लिये अध्ययन आवश्यक है। ऐसा कोई, कलाकार नहीं हुआ जिसने कठोर साधना से कला के इन अन्तर्गत नियमों को आत्मसात् नहीं किया। चीनी सुमी शैली की चित्रकला व पोलाक की उन्मुक्त चित्रण एकाग्र अवस्था में ही किया जा सकता है। ऐसी एकाग्र अवस्था प्राप्त करने से पहले इन शैलियों के कलाकारों ने कितनी साधना की यह सर्वविदित है। अतः शास्त्रशुद्धता व उन्मुक्तता कोई विरोधी विचार नहीं है। यह केवल भिन्न तत्वों के न्यून या अधिक प्रयोग की बात है। ख्यातनाम होने के पश्चात् अकसर बहुत से कलाकारों की कृतियों में कृत्रिमता आती है इसका कारण यह है कि ख्याति का बाह्य तत्व सर्जनक्रिया के लिये आवश्यक एकाग्रता में बाधा डालता है व अर्जित सफलता को बनाये रखने के लिये वे अपनी शैली को बुद्धिपूर्वक दोहराने लगते हैं। बहुत ही कम कलाकार सफल होने के पश्चात् अपनी कलात्मक तन्मयता को बनाये रख सकते हैं व ऐसी मन-स्थिति में सर्जन का आनन्द नहीं मिलता। शास्त्रशुद्धता व उन्मुक्तता का द्वंद्व अध्यात्मविद्या में चर्चित ज्ञानयोग व भक्तियोग के सदृश है। ज्ञान का परिणाम भक्ति में होता है व भक्ति से ज्ञान की प्राप्ति होती है; दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता।

और एक द्वंद्व यह है कि कला में कलाकार अपने आंतरिक जीवन को महत्त्व दे या बाह्य दृश्य जगत् को,—यानी कल्पना और यथार्थ में से किसको अधिक महत्त्व दे। मुंख, क्ले, गोर्की आदि कलाकारों की कला में उनकी आंतरिक खलबली का दर्शन है जबकि पिकासो, ब्राक, मातिस व यथार्थवादी कलाकारों की कला में जड़ सौंदर्य का दर्शन है। असल में यह विभेदीकरण ही निराधार है। स्त्री सौंदर्य के भावात्मक या काल्पनिक पक्ष को यदि हम छोड़ देते हैं तो उसके सौंदर्य में और कठपुतली के सौंदर्य में क्या अन्तर है? बाह्य सौंदर्य भी व्यक्ति की भावना व कल्पना पर निर्भर है। बाह्य जगत् से घृणा होना या प्रसन्न होना दोनों आंतरिक भावनिक स्थितियां हैं। भावनाएं तो कई तरह की होती हैं। मोह, प्रेम, करुणा, भय, घृणा आदि भावनाओं में से किसको महत्त्व दिया जाये यह कलाकार की संवेदनशीलता की दिशा, व्यक्तित्व व परिस्थिति पर निर्भर करता है। एक ओर, मनुष्य का आंतरिक जीवन बाह्य जगत् के परिणाम से निष्पन्न होता है तो दूसरी ओर मनुष्य अपनी मनोवृत्ति के अनुसार बाह्य जगत् को ग्रहण कर लेता

है। 'दृष्टि और सृष्टि' का विभाजन नहीं किया जा सकता। "सृष्टि मेरी कल्पना है" यह शोपेनहौर का सिद्धांत है व उसका दार्शनिकों ने व मनोविज्ञान ने समर्थन किया है। दृश्य जगत् हरेक दर्शक को एक सा प्रतीत नहीं होता; मनुष्य की कल्पना परोक्ष रूप से वास्तविकता से जुड़ी रहती है। भारतीय दर्शन में इसीलिये लिखा है कि "संसार एक माया है"।

वस्तुनिष्ठा व आत्मनिष्ठा का द्वंद्व भी उपर्युक्त द्वंद्वों के समान भ्रांतिपूर्ण है। जन्म से ही मानव सपर्क में न आये व्यक्ति की आत्मिक स्थिति क्या हो सकती है? क्या उसके मन में धर्म, मोक्ष, कला, प्रेम आदि विचार उभर सकते हैं? वास्तव में आत्मनिष्ठा व वस्तुनिष्ठा का विभाजन विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की या संप्रेषण की सुविधा के हेतु किया जाता है। सत्य और सौंदर्य को शब्दबद्ध नहीं किया जा सकता; वे शब्दों के पीछे अदृश्य रहते हैं। इसीलिये तो कहा गया है कि शब्दों का भावार्थ समझ लो और शब्दों को भूल जाओ। 'नेति, नेति' का निष्कर्ष यही है।

सामाजिक जीवन का विचार व व्यक्तिगत विकास भी एक ही सिक्के के दो पहलू है। सामाजिक जीवन से व्यक्ति का विकास होता है व व्यक्तिगत विकास से सामाजिक जीवन का। कला में रूप या रचना सौन्दर्य (form) व भावनाओं की अभिव्यक्ति (expression) का पृथक् विचार भी संप्रेषण की सुविधा के लिये किया जाता है। कौनसी कलाकृति है जो अच्छी गणितीय रचना मात्र है व जिसका मनोवैज्ञानिक या भावनात्मक प्रभाव नहीं होता? क्या भाड़े के रोनेवाले सहानुभूति पैदा कर सकते है? दूसरी ओर, रचनाकौशल के बिना भावनाओं की प्रभावी अभिव्यक्ति की जा सकती है? वस्तुनिरपेक्ष आकारों के प्रखरता, कोमलता, गतित्व स्थायित्व, वैभत्स्य वगैरह गुण होते हैं जो साहचर्य से दर्शक के मन में भावोत्पादन करते है। किसी व्यक्ति को देखकर प्रेम, घृणा, भय, स्नेह, करुणा आदि जो भाव पैदा होते है वे उस व्यक्ति की कृति व विचारों के अलावा उसके बाह्य रूप पर बहुत निर्भर करते है; और यह अनुभवजन्य मनोवैज्ञानिक सत्य है। अतः रूप व अभिव्यक्ति के पृथक् अस्तित्व को कैसे माना जा सकता है? वस्तु, सजीव हो या निर्जीव, उसके रूप का भावात्मक पक्ष होता है। इसलिये भारतीय दर्शन में दोनों को समान रूप से अज्ञात-शक्ति का निवास माना है। जिन निर्जीव साधनों—तूलिका रंग, पट वगैरह—की सहायता से कलानिर्मिति की जाती है वे भी अपने आन्तरिक गुणों से कलाकृति में जान डालते हैं जितना कि कलाकार अपनी भावनाओं, विचारों व कौशल से।

कला के इतिहास को कला के रूप-परिवर्तन का इतिहास माना जाता है। इस रूप-परिवर्तन के सर्जनात्मक कार्य में कुछ तादात्म्य से मिलनेवाला आनन्द ही कलाकार की सच्ची सफलता है व उसकी, लब्धियों का अर्थ केवल

को प्रेरित करने के लिये होता है। इसके बाद यदि कलाकृति को सामाजिक स्वीकृति व प्रशंसा मिलती है तो वह भी कलाकार को संतोषप्रद होती है, यद्यपि कलाकार तो अब तक यही कहते आये हैं कि जिस आन्तरिक अनुभूति को वे व्यक्त करना चाहते थे उसमें वे सफल नहीं हो पाये हैं। अतः कलाकार को मिलने वाले आत्मिक आनन्द के अलावा सफलता का मापदण्ड एक ही रह जाता है जो है कलाकृति का सामाजिक महत्त्व। जीवन से आत्मसात् कर के 'सत्यं, शिव, सुन्दरम्' को पुनश्च जीवन को अर्पित करना यही कला का मर्म है।

□□□

चित्र-सूची

चित्र		चित्रकार
1.	कलाकार सम्मेलन–पुल	किर्शनेर
2.	सेंट पीट्रोक्लस	क्रिस्टियन रोल्फ्स
3.	हरे कोट में महिला	ग्रोगुस्ट माके
4.	मुखौटे	कार्ल होफ़र
5.	साक्रेकोर के साथ मोंमार्त्र	उत्रिलो

टिप्पणियां

प्रस्तावना

(1) "Modern art is as old as thirty thousand years"—
Herbert Read (2) Art for art's sake.

आधुनिक चित्रकला की पूर्वपीठिका

(1) 'Minerva's Conquest' (2) Prix de Rome (3) 'Oath of
the Horatii' (4) 'Madame Recamier' (5) 'The Death of Socrates'
(1787) (6) 'The Rape of the Sabines' (7) 'The Death of Mārat'
(1793); 'Ladies of Ghent' (8) 'The Raft of the Medusa'(1819)
(9) 'The Mad Assassin' (10) 'Dante and Vergil in Hades'
(11) 'The Massacre of Chios' (1824) (12) 'Massacre of
Painting' (13) Haywain' (1820) (14) 'For me form and colour
are one'—Cezzane (15) 'The Death of Sardanapalus' (1844)
(16) 'Moroccan Journal' (17) Prix de Rome प्री द रोम (18)
Royal Academy of Fine Arts, Paris (19) 'Ecole des Beaux Arts'
एकोल द बोजार (20) 'La Source, 'The Turkish Bath' (21) 'Francois
Granet', (22) 'Louis Bertin' (1832) (23) 'Maja Clothed' and
'Maja Nude' (24) 'La Caprichos' (25) 'Horrors of War' (26)
'Disasters of War' (27) 'Saturn Devouring His Sons' (1819);
'The Witches' Sabbath' (1820) (28) 'The Assumption of Mary;
(29) 'Burial of Count Orgaz' (1586) (30) 'The cleansing of the
Temple' (31) 'The Battle of Schools' (32) After Dinner at
Ornans' (33) 'Funeral at Ornans' (1849) (34) "Show me an
angel and I will paint one"—Courbet (35) 'Young Women on
the Banks of the Seine' (36) 'Pavillon du Realisme' (37) 'The
Painter's Studio' (1854) (38) 'Bonjour Monsieur Courbet' (39)
There can be no schools; there are only painters'—Courbet
(40) 'Funeral of Phocion' (1648) (41) 'Cemetery' (42) 'I hear
the call of the earth'—Millet (43) 'Oedipus' (44) 'Winnower'
(45) 'The Man with the Hoe' (1863) (46) 'The Sower' (47) 'The
Quarriers' (48) 'Form and value—they are the essentials'—Corot
(49) 'I paint a woman's breast exactly as would paint a bottle
of milk—Corot (50) 'The House and Factory of M. Her
'View of the Farnese gardens', 'Village church,' Rosny'

'Souvenir de Mortefontaine' (1864) (52) 'Interrupted Reading' (53) 'Lady with a Fan' (1905) (54) 'Woman with the Pearl' (55) 'Mona Lisa'

प्रभाववाद

(1) 'Solan des Refuses' (2) 'Le Dejeuner Sur l' Herbe' (1863) (3) 'Olympia' (1863) (4) 'Concert Champetre' (5) 'The Judgement of Paris' (1520) (6) 'Venus of Urbino' (1538) (7) 'Absinthe Drinker' (8) Lola de Valence' (1862) (9) 'The Fifer' (1866) (10) 'Emil Zola' (1868) (11) 'Le Bon Bock' (12) 'The Boating' (13) 'A Bar at the Folies Bergere' (1882) (14) 'Societe anonyme des artistes peintres, sculpteurs, graveurs' (15) 'Impression-Sunrise' (16) 'Peintres Impressionistes' (17) 'Madame Charpentier and Her Daughters' (18) 'In any painting, the most important person is light'—Manet (19) 'My brush has no right to see better than I'— Goya (20) 'School of Eyes' (21) Flochetage' (22) 'Treating a subject in terms of the tone and not of the subject' (23) Rainbow Palette (24) Visible brush stroke (25) 'Plein-air painting, Plein-airism,' (26) 'Femmes Au Jardin' (27) 'Rouen Cathedral' (1894) (28) Water-lilies (1910) (29) 'Cross of the Legion of Honour' (30) 'The Poplars' (1890) (31) Optical Mixture (32) 'If I were government I would have a detachment of gendarmes keep an eye on people who paint landscapes from nature'—Degas (33) 'There was more to art than surrendering oneself to nature; One built a work of art mentally—through patient observation and style one carried it out'—Degas (34) 'Woman on Horse back', 'Singers at the Bar' (35) Snapshot photograph (36) 'High or unusual angle of vision' (37) 'La Voiture Aux Courses' (1870) (38) 'No art was less spontaneous than mine. What I do is the result of reflection and study of the great masters; of inspiration, spontaneity and temperament I know nothing'— Degas (39) 'Diego Martelli' (40) 'The Belleli Family' (1860) (41) 'Estelle Muson' (42) 'He is the first sculptor'—Renoir on Degar (43) 'Say'—'He greatly loved drawing so do I'—Degas 'last instruction to Forain' (44) 'Diana's Bath' (45) 'Bather with a Griffon' (1870) (46) 'La Balancoire' (1876) (47) 'Le Moulin De La Galette' (1876) (48) 'Cafe Boulevard Montmartre' (1877) (49) 'Danse a Bougival' (1883) (50) 'Les Grandes Baigneuses' (51) 'These days they try to explain everything, but if
...ned it would not be art'—Renoir ...
... painter carries everything be...

at the Piano' (54) 'One does not paint with one's hands'–Renoir (55) 'This I have seen'—Goya (56) 'Cirque Fernando' (1888) (57) 'Salon des Arts Incoherents' (58) Jane Avril at the Jardin de Paris (1893) (59) 'Lautrec took possession of street' (60) 'Au Moulin Rouge' (1892) (61) To draw and to draw truthfully, that is Lautrec —Francis Jourdain (62) 'Every where and always ugliness has its beautiful aspects; it is thrilling to discover them where nobody has discovered them'—Lautrec to Yvette Gilbert (63) 'Little White Girl' (1864) (64) 'Nocturnes' (65) 'Camden Town Group'

नवप्रभाववाद

(1) 'La Une Baignade' (1883) (2) Salon des Independants (3) 'Societe des Independants' स्वतन्त्र कलाकार परिषद् (4) 'D' Eugene Delacroix au Neo-Impression-isme', 'Circle of Primary and Secondary Colours' (5) Law of Simultaneous Contrast' (6) 'Optical Mixture' (7) 'Little green chemist' (8) Rippi-point (9) 'Sundays Afternoon on the Island of La Grande Jatte' (10) 'Strip his figures of the coloured fleas that cover them: underneath you will find nothing, no thought, no soul'—Huymans on Seurat's painting 'La Grande Jatte' (11) 'Painting is the art of hollowing a surface'—Seurat (12) 'La Cirque', 'La Poudreuse', 'Le Chahut', 'Les Poseuses'.

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार

(1) Plastic form (2) The Father of Modern Art (3) 'Portrait of Achille Emperaire' and 'Black clock' (4) 'Mont Sainte Victoire' (5) 'For me colour is form'—Cezanne (6) 'Represent nature by means of the cylinder, the sphere and the cone'—Cezanne (7) A picture first of all represents nothing but colour; stories, psychology....all that is implicit in the picture'—Cezanne (8) 'I do not want to reproduce nature; I want to recreate it'—Cezanne (9) 'Art is theory developed and applied in the presence of nature'—Cezanne (10) Pictorial Equivalent (11) 'The Bather', 'The Card-players' (12) 'I wish to redo nature after Poussin but in the presence of nature'—Cezanne (13) 'Uncle Dominic as a Monk' (1866) (14) Pistol-painter (15) 'The House of the Hanged Man' (16) 'His thinking was exclusively pictorial'—Werner Haftmann on Cezanne (17) 'View of Gardanne' (18) 'Women Bathers' (19) 'Demoiselle d' Avignon' (20) 'Colour is perspective'—Cezann 'I am the Primitive of a new art'—Cezanne (22) 'A ony parallel to nature'–Cez

'Souvenir de Mortefontaine' (1864) (52) 'Interrupted Reading' (53) 'Lady with a Fan' (1905) (54) 'Woman with the Pearl' (55) 'Mona Lisa'

प्रभाववाद

(1) 'Solan des Refuses' (2) 'Le Dejeuner Sur l' Herbe' (1863) (3) 'Olympia' (1863) (4) 'Concert Champetre' (5) 'The Judgement of Paris' (1520) (6) 'Venus of Urbino' (1538) (7) 'Absinthe Drinker' (8) Lola de Valence' (1862) (9) 'The Fifer' (1866) (10) 'Emil Zola' (1868) (11) 'Le Bon Bock' (12) 'The Boating' (13) 'A Bar at the Folies Bergere' (1882) (14) 'Societe anonyme des artistes peintres, sculpteurs, graveurs' (15) 'Impression-Sunrise' (16) 'Peintres Impressionistes' (17) 'Madame Charpentier and Her Daughters' (18) 'In any painting, the most important person is light'—Manet (19) 'My brush has no right to see better than I'— Goya (20) 'School of Eyes' (21) Flochetage' (22) 'Treating a subject in terms of the tone and not of the subject' (23) Rainbow Palette (24) Visible brush stroke (25) 'Plein-air painting, Plein-airism,' (26) 'Femmes Au Jardin' (27) 'Rouen Cathedral' (1894) (28) Water-lilies (1910) (29) 'Cross of the Legion of Honour' (30) 'The Poplars' (1890) (31) Optical Mixture (32) 'If I were government I would have a detachment of gendarmes keep an eye on people who paint landscapes from nature'—Degas (33) 'There was more to art than surrendering oneself to nature; One built a work of art mentally—through patient observation and style one carried it out'—Degas (34) 'Woman on Horse back', 'Singers at the Bar' (35) Snapshot photograph (36) 'High or unusual angle of vision' (37) 'La Voiture Aux Courses' (1870) (38) 'No art was less spontaneous than mine. What I do is the result of reflection and study of the great masters; of inspiration, spontaneity and temperament I know nothing'— Degas (39) 'Diego Martelli' (40) 'The Belleli Family' (1860) (41) 'Estelle Muson' (42) 'He is the first sculptor'—Renoir on Degar (43) 'Say'—'He greatly loved drawing so do I'—Degas 'last instruction to Forain' (44) 'Diana's Bath' (45) 'Bather with a Griffon' (1870) (46) 'La Balancoire' (1876) (47) 'Le Moulin De La Galette' (1876) (48) 'Cafe Boulevard Montmartre' (1877) (49) 'Danse a Bougival' (1883) (50) 'Les Grandes Baigneuses' (51) 'These days they try to explain everything, but if a picture could be explained it would not be art'—Renoir (52)'..........The passion of the painter carries everything before it',—Renoir, (53) 'Girls

at the Piano' (54) 'One does not paint with one's hands'–Renoir (55) 'This I have seen'—Goya (56) 'Cirque Fernando' (1888) (57) 'Salon des Arts Incoherents' (58) Jane Avril at the Jardin de Paris (1893) (59) 'Lautrec took possession of street' (60) 'Au Moulin Rouge' (1892) (61) To draw and to draw truthfully, that is Lautrec —Francis Jourdain (62) 'Every where and always ugliness has its beautiful aspects; it is thrilling to discover them where nobody has discovered them'—Lautrec to Yvette Gilbert (63) 'Little White Girl' (1864) (64) 'Nocturnes' (65) 'Camden Town Group'

नवप्रभाववाद

(1) 'La Une Baignade' (1883) (2) Salon des Independants (3) 'Societe des Independants' स्वतन्त्र कलाकार परिषद् (4) 'D' Eugene Delacroix au Neo-Impression-isme', 'Circle of Primary and Secondary Colours' (5) Law of Simultaneous Contrast' (6) 'Optical Mixture' (7) 'Little green chemist' (8) Rippi-point (9) 'Sundays Afternoon on the Island of La Grande Jatte' (10) 'Strip his figures of the coloured fleas that cover them: underneath you will find nothing, no thought, no soul'—Huymans on Seurat's painting 'La Grande Jatte' (11) 'Painting is the art of hollowing a surface'—Seurat (12) 'La Cirque', 'La Poudreuse', 'Le Chahut', 'Les Poseuses'.

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार

(1) Plastic form (2) The Father of Modern Art (3) 'Portrait of Achille Emperaire' and 'Black clock' (4) 'Mont Sainte Victoire' (5) 'For me colour is form'—Cezanne (6) 'Represent nature by means of the cylinder, the sphere and the cone'—Cezanne (7) A picture first of all represents nothing but colour; stories, psychology....all that is implicit in the picture'—Cezanne (8) 'I do not want to reproduce nature; I want to recreate it'—Cezanne (9) '*Art is theory developed and applied in the presence* of nature'—Cezanne (10) Pictorial Equivalent (11) 'The Bather', 'The Card-players' (12) 'I wish to redo nature after Poussin but in the presence of nature'—Cezanne (13) 'Uncle Dominic as a Monk' (1866) (14) Pistol-painter (15) 'The House of the Hanged Man' (16) 'His thinking was exclusively pictorial'—Werner Haftmann on Cezanne (17) 'View of Gardanne' (18) 'Women Bathers' (19) 'Demoiselle d' Avignon' (20) 'Colour is perspective'—Cezanne (21) 'I am the Primitive of a new art'—Cezanne (22) 'Art is harmony parallel to nature'–Cezanne

(23) 'His story is not that of an eye, a palette, a brush but the tale of a lonely heart which beat within the walls of a dark prison longing and suffering and knowing not why'—Uhde on Van gogh (24) 'Christ was the greatest artist'—Van Gogh (25) 'The Supreme Artist' (26) 'Sorrow' (27) 'The Potato Eaters' (1885) (28) 'All truths....are highly beautiful...when men begin to see beauty in truth, true art arises......All true art is the expression of the soul'—Mahatma Gandhi (29) 'When you want to grow you must plunge deep into the earth'—Van Gogh (30) 'Van Gogh's tragic attitude'—Klee (31) Existential (32) 'The Night Cafe' (1888) (33) 'The Bedroom' (1888) (34) 'The Portrait of Eugene Boch' (35) 'The Raising of Lazarus' (36) 'Road with Cypresses' (1890) (37) 'Eugene Boch', 'The Actor', 'Armond Roulin' (38) 'The House of friends' (39) 'The Ravine', 'Starry Night' (40) 'The miseries of man will nevar end'—Van Gogh (41) 'Jacob Wrestling with the Angel, (42) 'They look for what is near the eye and not at the mysterious centers of thought .. They are the official painters of tomorrow—Gauguin on Impressionism (43) 'To Clothe idea in perceptible form' (44) 'The Talisman' (45) 'An acre of green is greener than a spot of green'—Ganguin (46) 'Art is an abstraction Ganguin' (47) Correspondences (48) 'Yellow Christ' (1889) (49) 'It's barbaric but it's art'—Guaguin (50) 'Whence Do we come ? What Are we ? Where Do We Go ?' (1897) (51) 'I am a primitive in the true sense'—Gauguin' (52) 'We Greet Thee Mary' (Ia orana Maria) (1891) (53) 'Spirit of the Dead Watching' (Manao Tupapao) (1892) 'The Moon and the Earth' (1893) (54) 'From the people and for the people'

प्रतीकवाद व नाबि चित्रकार

(1) To cloth an idea in a perceptible form (2) The World....as [illegible] Fichte (3) 'The world [illegible] 'No more representatic[illegible] of what is the loftiest and divinest the world—The Idea'—Albert Aurier (5) 'In nature each thing is but a signified idea'—Aurier (6) 'To bring improbable things to life in a probable form'—Redon (7) 'Everything takes form when we lay open to the uprush of the unconscious'—Redon (8) 'April', 'Muse, (9) 'Studios of sacred art' (10) 'France Champagne' (11) 'I have never been

anything but a spectator'—Vuillard (12) 'The New Painting' (13) 'I dón't do portraits, I paint people at home'—Vuillard.

फाववाद

(1) 'Societe du Salon d' Automne' वसत प्रदर्शनी परिषद् (2) 'Donatello au milieu des Fauves'—Vauxcelles (3) ....pictorial aberrations, chromatic madness and the fantasies ol men who.... J. B. Hall on Fauves (4) 'Contemporary painting promises to become more subtle, more musical and less like sculpture; in short it promises colour—Van Gogh (5) Intimate enemy (6) 'The Three Bethers' (7) 'Slave' (8) 'Luxe, Calme et Volupte' (1907) (9) Green Stripe' (1905) (10) 'La Joie de Vivre' (11) 'Le Grande Revue' Notes d'un Peintre' (12) 'There is inherent truth which must be disengaged from the outward appearance. This is, the only truth that matters'–Matisse (13) 'Bathers with a Turtle' (14) 'Red Studio' (1911), 'Piano Lesson' (1916), 'Interior with a Piano' (1918), 'White Plumes' (1919) (15) 'Odalisque' (16) Pittsburg International (17) 'What I dream of is an art of balance, of purity and serenity......... something like a good armchair to rest'—Matisse (18) 'The work of art is not immediate, it is a work of my mind, it must have enduring character and content, a character of Serenity, and this is arrived at by long contemplation of the problem of expression'—Matisse (19) I paint in order to clarify my thoughts........painting is no more than anarchy, love-making, dreaming........It's an accident of nature—Vlaminck (20) 'I went to the museums as I went to brothels, I never went upstairs —Vlaminck (21) 'It is like blaming Wagner for always Composing Wagnerian music or Beethoven for being recognizably Beethoven—Vlaminck (22) 'Too much knowledge is harmful to art'—Derain (23) 'The Last Supper' (24) 'Rabelais' 'Pantagruel' (25) 'Blue Mozart'; 'Red Orchestra' (26) 'Ecole des Arts Decoratif' (27) 'The Sirens' (28) 'The Tragic clown', 'Crucifixion' (29) 'Blue Period' (30) 'Le Miscrere and War'

घनवाद

(1) 'Joie de Vivre' (2) 'Les Demoiselles d'Avignon' (3) Iberian Sculpture (4) 'La Rue des Bois' (5) Bizarreries Cubiques' (6) Analytical Cubism (7) Pictorial Space (8 Time-Space-Continuum (9) Neo-Primitivism (10) Fire-bird; Rites of Spring (11) 'Wasteland' (12) Front View सम्मुख मुखाकृति,Profile पार्श्व

मुखाकृति (13) Double-Image figures (14) Hermetic Cubism (15) 'The Bridge' 'Nudes in the Forest' (16) Tubist instead of Cubist (17) Collage, Papier Colle (18) Tromp l'oeil (19) Synthetic Cubism (20) Section d' or (21) Simultaneity (22) Non-Euclidean Geometry (23) 'Cubism ... an art dealing primarily *with forms and when a form is realised, it is there to live its* own life—Picasso (24) Mathematics.......psychoanalysis, music and what not have been related to cubism to give it an easier explanation. All this has been pure literature -blinding people with theories'—Picasso (25) Epic Cubism (26) 'Man from Touraine' (1918) (27) 'Three Musicians' (28) Three Dancers' (29) 'Du Cubisme' by Gleizes and Metzinger (30) 'Les Peintres *Cubists' by Apollinaire (31) 'L' Evolution Creatrice' by* Henri Bergson (32) 'Meditations Cartesiennes' by Husserl (33) 'The most Cubist of the Cubists' (34) 'Cezanne goes towards archi*tecture, I set out from it; out of a cylinder I make a bottle'*— Jaun Gris (35)'... humanising mathematics, the abstract aspect of painting'—Juan Gris (36) It is wonderful to see the work of a painter who knew what he is doing'—Picasso on Juan Gris (37) Contrasts of Forms (38) *Superimposed (39)* 'Ballet Mecanique' (40) Academie Humbert (41) 'The Musician' (42) Canephorus (42) Chariot of the Sun' (44) 'Still-life on Gueridon *(45) 'Chimney-piece* (46) 'Vanitas' (47) 'Atelier' (48) 'Le Duo' (49) 'Patience' (50) 'Grand Prix of Venice Biennale' (51) 'In the spiritual marriage which they entered into one (Braque) contributed a great sensibility and the other (Picasso) a great plastic awareness' - Uhde on Braque and Picasso. (52) 'I like the rule which corrects emotion'—Braque' (53) Les Quartre Chats (54) Arte Joven (55) Blue Period (56) 'Destitute', 'Old Jew', 'Couple', *'Woman Ironing' (57) Bateau Lavoir-Floating* Laundry (58) Rose period (59) 'The Family of the Saltimbanques', 'The Acrobat and the Ball', 'Harlequin's Family' (60) Primitivism' (61) 'Negro period' (62) 'Violin', 'Woman in an Armchair,' 'Guitar, skull and Newspaper' (63) Ballet 'Parade' by Jean Cocteau (64) 'Classical Period' (65) 'Mother and child', 'Wonan in White', Three Women at the Fountain' (66) 'Three Musicians' (67) *Grotesque figures and Double-Image figures* (68) Convulsive beauty (69) 'Three Dancers' (70) Dance of Death (71) Dream (72) Guernica (73) 'Bullfight', 'Sculptor's Studio', 'Minotaurmachia' (74) 'War', 'Peace' (75) 'Women

of Algiers' (76) 'La Meninas' (77) 'Jester', 'Cock', 'Metal Construction', 'Cat', 'Man with the sheep' 'Goat' (78) Painter without style (79) 'This continual readiness to receive emotion from the world and from the mankind is the secret of Picasso's vitality and the reason behind every one of his changes'—Mario de Micheli on Picasso (80) 'He was too taken up with 'things' to be concerned with 'spirit'—Gertrude stein on Picasso (81) '....he has super human hatred of the soul'—Mauriac on Picasso (82) 'I can hardly understand the importance of search in connection with modern painting. In my opinion, to search means nothing in painting. To find is the thing' Picasso (83) 'In the last analysis there is nothing but love whatever form it takes. They really should put out the eyes of the painters, just as they do to goldfinches to make them sing more sweetly-Picasso.

अभिव्यजनावाद

(1) Authoritarianism (2) 'Creative Evolution' (3) 'One creates when one acts freely'—Bergson (4) 'Abstraction and Empathy'—Wilhelm Worringer (5) 'Procession of Wrestlers' (6) 'Weary of Life', 'Disillusioned Souls', 'Wilhelm Tell' (7) Mercure de France (8) 'Frieze of Life' (9) Ibsen's drama 'Ghost' (10) 'Puberty' (11) 'Cry' (12) 'Sick Girl', 'Death chamber', 'Death bed', 'Dead Mother, 'Death' (13) The Sacred (14) 'Spring Evening' (15) 'Dark Lady' (16) 'Indignant Masks' (17) 'Demons Tormenting Me' (18) Adoration of the Shepherds', 'Entry into Jerusalem', 'Crucifixion', 'Ascension' (19) Entry of Christ into Brussels (20) 'Decor versus Illustration' (21) 'Plein-air-Painting' (22) 'Die Neue Sachlichkeit' (23) 'Neue Secession+' (24) 'Neue Kunstler Vereinigung'° (25)'Blaue Reiter' नीला घुड़सवार (26) 'Spiritual in Art' (27) Expressionism (28) 'Inner Necessity' (29) 'Cave Woman', 'Sloth', 'Mask of Energy' (30) 'Last Supper', 'Pentecost' (31) 'Demon of the lover region' (32) 'A butterfly hovering in the star studded cosmos' (33) The pioneer of a national German art (34) The most Germanic variety of European Fauvism (35) 'Resurrection', 'Soldier with his wife', 'Nine Altarpieces on the Life of christ', 'Santa Maria Egyptiaca' Triptych, (36) 'Degenerate Art' (37) 'To attract all revolutionary and fermenting elements; that is the purpose implied in the name 'Brucke' (38) 'Chronik der Brucke' (39) 'Neue Kunstler Vereinigung' (40) 'The art of the future would move

between two opposite poles; The greater abstraction and the greater reality—Kandisky (41) Animalisation of art (42) Inner mystical construction (43) 'Tower of the Blue Horses; 'Animal Destinies', Deer in the Woods (44) 'Yearning for the indivisible being, liberation from the sensory illusion of our ephemeral life:. This is the state of mind at the bottom of all art'—Franz Marc (45) 'Die Blauen Vier'—The Four Blue (46) The Real Reality (47) 'The more horrifying the world becomes the more art becomes abstract ; while a world at peace produces realistic art'—Paul Klee (48) 'Pedagogical Sketch book' (49) 'Creative Credo' (50) 'On Modern Art' (51) 'Star-bound', 'Head Hewn with an Axe', 'Uncomposed objects in Space' (52) Landscape with Yellow Birds', 'Sindbad the Sailor', 'Villa R', (53) 'Field Produce', 'Plan For a Garden', 'The Meadow' (54) 'Comedian' 'Dance-play of the Red Skirts' (55) 'Lost in Thought' (56) 'Mechanics of a part of a Town', 'Family outing', 'Place of Discovery' (57) 'Der Sturm' (58) 'School of Applied Arts' (59) 'Dreaming Boys' (60) Painting is not based on just three dimensions but on four. The fourth dimension is the projection of my self'—Kokoschka, (61) 'Drawing of Yvette Gilbert' (62) 'Double Portrait—The Artist and Alma Mahler' (63) 'Tempest' (64) 'Woman in Blue' (65) 'The Power of Music' (66) 'Harmony of colours and forms can be based on purposive contact with the human soul'—Kandinsky (67) 'Composition' (68) 'Abstract Expression' (69) Impression (70) Improvisation (71) Composition (72) 'Point and Line to Plane' (73) 'Modern art can be born only when signs become symbols'—Kandinsky (74) 'Neue Schlichkeit' (75) 'Post-Expressionism' (76) 'Magical Realism' (77) Verism (78) 'Funeral of Poet Panizza', 'Germany-Winter's Tale' (79) 'City Night' (80) 'Circus Caravan'. 'Trapeze' (81) 'Avignon Pieta' (82) 'Departure', 'Perseus. Triptych', 'Odysseus and Calypso', 'Argonauts' (83) 'Bauhaus'—Weimar Academy of Arts' (84) de Stijl (85) 'Man—Dionysian in origin, Apollinian in spirit, symbol of a unity of nature and spirit'—Schlemmer (86) 'Inner mystical construction in nature' (87) 'Degenerate Art'

कुछ अग्रमुखवाद

(1) Venice Biennale (2) Poesia (3) La Figaro (4) Manifesto of Futurist Painting (5) Technical Manifesto of Futurist Painting (6) Simultaneous state of mind (7) Simultaneity (8)

States of mind (9) 'Farewells', 'Those who Stay', 'Those who Leave' (10) Futurist manifesto of the art of noises (11) 'Dynamic Volumes', Lines of Force of a Thunderbolt' (12) 'Dynamic Hieroglyphic of Bal Tabarin' (13) Camden Town Group (14) Vorticism (15) 'Blast' (16) 'Section d' or'—Golden Section (17) 'Architecture is frozen music'—Madame de Stael (18) 'Procession in Seville' (19) 'Simultaneous Windows' (20) 'True pleasures arise from the colours we call beautiful and from shapes....for the purpose of my argument I mean straight lines, circles etc. which are beautiful in themselves and not for any other reason'—Plato on Absolute beauty (21) Chevreul's Law of Simultaneous Contrast' (22) 'Colour in both subject and form'—Delaunay (23) 'So long as art does not free itself from object it is mere descriptive literature'—Delaunay (24) Delaunay the simultaneous (25) 'Orphism' (26) 'Circular Rhythms', 'Simultaneous Discs' (27) 'Lines of force' (28) 'Morning in the Country After Rain', 'Nudes in the forest' (29) 'Sensation of Flight--Outline of an airplane' 'Sensation of Mystic will—a cross' (30) Supreme aim of art (31) 'Black on Black' (32) 'White no White' (33) De Stijl (34) Mobiles (35) Harmony is the balance of Contrasts'—Mondrian (36) 'Plastic mathematics' (37) 'Landscape with Cottage', 'Horizontal Tree' (38) 'Composition No. 10', 'Plus and Minus', 'Rhythm of Straight Lines' (39) *'Broadway Boogie Woogie'* (40) Metaphysical Painting—Pittura Metaphysica (41) Greater Reality (42) Nostalgia (43) 'The Melancholy and Mystery of a Street' (1914) (44) The Uncertainty of the Poet (1913) (45) 'The Seer' (1915)

दादावाद व अतियथार्थवाद

(1) Nihilism (2) Anti-art (3) 'Cabaret Voltaire' (4) Dada='Rocking horse' (5) 'Coffee-mill' (1911) (6) 'Nude Descending a Staircase' (1912) (7) 'Readymades' (8) 'The Fountain' (9) 'The Bride Stripped By Her Bachelors', Even' (1213) (10)'The Law of chance' and 'Automatism' (11) 'Rotary Glass-plates' 'Rotoreliefs'(12)Mobiles (13) Rayogram (14) Typography (15)Montage—Fragmentation of objects and their rearrangement (16) Merz, Kommerz (17) Merzbau (18) Merzbild=Rubbish pictures (19) 'Literature' (20) LHOOQ (21) 'Amorous Display' (1917) (22) Sigmund Freud's Psychoanalysis (23) 'I belive that in future the two apparently contradictory states—the dream and the reality—will merge into a reality absolute, a surreality—Andre

Breton (24) मतिभ्रम=Hallucination, स्वयंचालित लेखन=Automatic Writing, भयानक स्वप्न=Nightmare, वायुप्रकोप=Delirium, निद्रा भ्रमण= Somnambulism. सम्मोहन=Hypnotism (25) 'Le Revolution Surrealiste' (26) 'Le Surrealism et La Peinture' (27) Animism (28) Found object–Objet Trouve 'Aide' (29) Objet Surrealiste (30) Verist Surrealism (31) Abstract Surrealism (32) 'Garden of Worldly Delights' (33) 'Saturn Devouring His Sons', 'Witches' Sabbath' (34) 'Burning Giraffe', 'Premonition of Civil War', (35) 'Persistence of Vision' (36) 'Crucifixion' (37) Paranoia (38) Paranoic–Critical–activity (38) Marrying of the real with the unreal' (40) Frottage (41) Natural History (42) Self-invented objects—odradeks (43) 'Tilled Field' (44) Accidental finds (45) 'Women and Birds in Moon light', 'Figures and Dog before the Sun' (17) 'Harlequin Carnival', 'Maternity' (47) 'Daylight Saving' (48) 'Hide and Seek' (49) Rayegraphy (50) Decalcomania (51) Fumages—Smoke pictures (42) Peintres Maudits.

कुछ शापित चित्रकार

(1) Peintres Maudits (2) Cafe du Dome (3) Home Sickness (4) Overlapping planes (5) Kaleidoscopic (6) 'Dead Souls' by Gogol (7) 'The Walk' (1918) (8) 'Lovers' Idyll' (1928) (9) 'La Fontaine's Fables' (10) 'Boy in the Red Waistcoat'. (11) 'Carcass of Beef' (1925), 'Woman Bathing' (1929) (12) 'White period'.

सहजसिद्ध चित्रकार

(1) Naive artists, Neoprimitives (2) Greater Abstraction (3) Greater Reality (4) The Fantastic in the hardest matter (5) 'Carnival Night' (6) 'Storm in the Jungle' (7) 'Snake-Charmer', 'Yadwiga's Dre m' (8) 'Sleeping Gypsy', 'War', 'Flute Player' (9) Magical Realism (10) 'Manchester Valley' (11) Carnegie International Exhibition

अमेरिकी कला

(1) 'Nathaniel Hurd', 'Thomas Mifflin and his wife' (2) 'Fur Trders on the Missouri' (3) 'After the bath' (4) 'Prisoners from the front', 'Rainy day in camp' (5) Breezing up (6) 'Jonah', 'Toilers of the sea', 'Race Track', 'Marine' (7) Peaceable Kingdom (8) 'Gross Clinic', 'Anatomy lesson of Dr. Tulp' (9) 'Ashcan School' (10) 'Armory Show' (11) International Exposition of Modern Art (12) 'Parson Weem's Fable of George

Washington and the Cherry tree' (13) Chicago Art Institute (14) Dreyfus case', 'Sacco-Panzetti case', 'Inflation', 'Racial discrimination'

मेक्सिकन कला.

(1) 'Echo of a scream' (2) 'Mexico in revolution' (3) 'House of Tears' (4) 'School of Social Research' (5) 'Epic of Culture of the New World' (6) 'Dioe-bombes'

वस्तुनिरपेक्ष कला

(1) Abstract or Non-figurative (2) 'I mean straight lines and curves and the shapes made from them .. These are beautiful *not for any particular reason or purpose ...but are always by their* very nature beautiful and give pleasure of their own, quite free from the itch of desire and colours of this kind are beautiful too and give similar pleasure'—Plato (3) Existential (4) 'All arts tend towards music'—Schopenhaur (5) 'Contrast of Forms' (6) 'Ocean Sonata', 'Sun Sonata', 'Snake Sonata' (7) 'The surface of things gives pleasure, their interiority gives life'—Mondrian (8) 'Everything is permitted'—Kandinsky (9) 'Still-life with *ginger-pot', 'Tree in Bloom' (10) 'Composition in Oval' (11)* 'Masculine and feminine'—'vertical and horizontal' (12) Synchromists (13) 'There is purposely no subject it's to exalt other regions of the mind'—Morgan Russell (14) Non-objectivism (15) Mechanical Portraits (16) 'After Cubism'—Apres le Cubisme' (17) de stijl, Der Sturm, Blok, Zenith (18) L'Esprit Nouveau (19) Cahier d' Art (20) Neue Gestaltung by Mondrian, Grundbegriffe der neuen Gestaltenden Kunst by Van Doesberg (21) *Pedagogical Sketch-book by Paul Klee, Point and Line to* Plane by Kandinsky, Non-objective World by Malevich (22) Het Overzicht (23) Art d' Aujourd'hui (24) Cercle et Carre सर्क्ल कारे (25) Abstraction-Creation Group (26) Abstraction-Creation (27) 'Association of American Abstract Artists' (28) Museum of *modern Art, New York (29) Cubism and Abstract Art'* by Alferd H. Barr (30) Museum of Living art of A. E. Gallatin, Societe Anonyme of Katherine Dreier, Museum of Non-objective Painting *of Hilla Rebay (31) 'Broadway Boogie Woogie', 'Victory Boogie* Woogie' (32) Merzbau

आधुनिक कला—1945 के पश्चात्

(1) Nihilism (2) Abstract Expressionism (3) When something is finished, that means it's dead. ....I never finish a painting—I just stop working on it for a while. ... .The thing to do

is always to keep starting to paint, never finishing a painting'—Arshile Gorky (4) 'Continuous dynamic' (5) 'Action Painting' (6) New York School (7) Action Painters (8) Abstract Impressionism (9) Post-painterly Abstraction (10) Colour field Painting (11) Chromatic Abstraction (12) Over-all Painting (13) 'When I am in the painting I am not aware of what I am doing. It is only after a sort of 'get acquainted' period that I see what I have been about. I have no fears about making changes, destroying the images etc. because the painting has a life of its own. It is only when I lose contact with the painting that the result is a mess'—Jackson Pollock (14) Essentially a religious movement (15) Possibilities (16) Elegies to the Spanish Republic (17) 'Bildnerei der Geisteskranken' by Hans Prinzhorn—on the art of the insane (18) Hostages (19) Matter Painting (20) Abstract Impression (21) l'art informel or tachisme (22) Un art autre—another art or way-out art (23) धब्बावाद—Tachisme, पदार्थ चित्रण—Matter Painting, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला—Abstract Typography, सांकेतिक चित्रण—Gesture Painting (24) Fronte Nuovo delle Arti—New Art Front नवकला अग्रमंडल (25) Otto Pittori Italiani—Eight Italian Painters (26) Abstract-Concrete (27) Spatialism (28) Hieroglyphic (29) Dau al cet—Seven on the Die (30) El Paso—the Step (31) Cobra—derived from the names Copenhagen, Brussels and Amsterdam (32) Concrete Art (33) 'Salon des Realites Nouvelles (34) American Abstract Artists' Group (35) Abstraction-Creation (36) Despite Straight Lines by Josef Albers (37) Homage to the Square (38) Assemblage (39) Environments (40) Junk Sculpture (41) Happenings (42) 'Surrounding to be entered into' (43) Pop Art (44) Institute of Contemporary Art, London (45) Independent Group (46) New Brutalism (47) 'Just What Is It That Makes Today's Homes So Different? So Appealing? (48) 'This Is Tomorrow' (49) Mass Media (50) Mixed-media production (51) Monogram (52) Comic Strip (53) Ray Gun Theatre (54) Eat, Love, Die (55) Le nouveau realisme New Realisme (56) '40 degrees above Dada' (57) Exhibition of Nothingness-(58) Empaquetage (59) Decollage (60) Optical Art or Op Art (61) Optical illusion (61A) 'Muller-Lyer figure', 'Titchner figure', 'Judd figure' (62) BN—blanche noir ; Black and white (63) Colour-field Painting (64) American Abstract Expressionists and Imagists (65) Abstract Imagists (66) Systemism, Minimal Painting etc. (67)

Hard Edge Painters (68) Hard-edge Painting (69) Painterly Abstraction (70) Systematic Painting (71) Cool Art (72) Staining (73) Shaped Canvas (74) Quathlamba (75) Occurence (76) Polychrome Sculpture (77) Psychedelic Art (78) Mescaline, Psylocybin and LSD (79) अक्षरवाद—Lettrisme, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला—Abstract Calligraphy, वस्तुनिरपेक्ष चित्रलिपिकला—Abstract Pictography, टाइपराइटर चित्रण—Typewriter Art (80) Computer Art

आधुनिक कला—1965 के पश्चात्

(1) Post-modernist Art (2) 'The general end of art is man'—Aristotle (3) Mobiles (4) Stabiles (5) 'Angst (fearful anxiety) is dead' (6) Alternatives Spaces or Rooms (7) Installation (8) Environmental Tableau (9) Environmental Art Project (10) Site-specific-sculpture (11) Serpent-mound (12) Mound-builders (13) Stone-henge (14) Gestures or Emblems (15) Light Sculpture (16) Art Machine (17) 'Chocolate-grinder' (18) Light-space-modulator' (19) Performance Art (20) Super-graphics (21) 'Less craft, more play' (22) 'Language is a game'—Wittgenstein (23) 'Man is never more himself than when he plays'—Sartre (24) नवअभिव्यंजनावाद— Neo-Expressionism, महु-यथार्थवाद—Super-Realism, Photo-Realism, Sharp-Focus-Realism (25) प्रत्ययवाद—Conceptualism, प्रत्ययवादी कला—Conceptual Art (26) 'The work of art is above all a process, it is never experienced as a mere product'—Paul Klee (27) 'How to explain pictures to a dead hare' (28) Social Sculpture (29) 'Spatial doings in so-called environments'

भारत व आधुनिक कला

(1) Indian Sculpture and Painting by E. B. Havell (2) Galerie Pigalle (3) 'Larning a technique may provide us a job but it will not make us creative; whereas if there is a joy, if there is the creative fire, it will find a way to express itself'—J. Krishnamurti (4) 'Exhausted Pilgrims', 'Mother and Child', 'White Threads' (5) Ancient Whispers' (6) 'Hill Women', 'Mother India', 'Story-teller', 'Child-wife' (7) 'Brahmacharis', 'Bride's Toilet', 'Fruit Vendors' (8) Roerich Pact (9) Brothers in Spirit (10) Triennale of Contemporary Art

□□□

पारिभाषिक शब्दावली

अकादमिक—Academic
अग्रगामी—Avant Garde-आवां गार्द—(also अग्रसर, प्रगतिशील)
अग्रभूमि—Foreground
अचल-कृति—Stabile
अचेतन—Subconscious
अतियथार्थ—Surreality
अतियथार्थवाद—Surrealism
अधिष्ठापन—Installation
अनियंत्रित कला—l'art informel
अनुकृति—Imitation
अनुदर्शी—Retrospective
अनुपात—Proportion
अभिगम—Approach
अभिव्यंजना—Self-expression
अभिव्यंजनावाद—Expressionism
अवकाश—Space
अवकाशवाद—Spatialism
अस्तित्ववाद—Existentialism
अक्षरकला—Typography
अक्षरवाद—Lettrisme
अर्थस्—Earths (भूरंग)
अंकनपद्धति—Technique
अंतर्दृष्टि—Insight
अंतर्मन—Inner mind, Subconscious
अंतिम सत्य—Ultimate Reality
आकारनिष्ठ कला—Concrete art
आकारित पट—Shaped Canvas, आकस्मिकता—Casualness
आगम—Approach
आत्मचित्र—Self-portrait
आत्मतत्त्वीय चित्रण—Metaphysical Painting

आत्मिक अभिव्यक्ति—Self-expression
आदर्शवाद—Idealism
आदिम—Primitive
आदिम कला—Primitive Art
आदिमवाद—Primitivism
आर्नुवो—Art nouveau
आलेखन कला—Graphics
आलंकारिक—Ornamental, Decorative
आलंकारिकता, आलंकारित्व—Decoration
आवेष्टनचित्र—Book Cover, Book Jacket
आंतरिक—Inner
आंतरिक रहस्य—Inner mystery
आंतरिक सत्य—Inner Truth
उत्तर-अभिव्यंजनावाद—Post-Expressionism
उत्तर-आधुनिक—Post-modernist
उत्तर-घनवाद—Post-Cubism
उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व—Post-painterly Abstraction
उत्तर प्रभाववाद—Post-impressionism
उदात्तीकरण—Sublimation
उद्भवन—Incubation
उपयुक्ततावाद—Utilitarianism
उष्ण रंग—Warm Colour
एकल प्रदर्शनी—One-man show
एकवर्णीय—Monochrome
एक्वाटिंट—Aquatint
ऐंठन—Distortion
ऐंठनदार—Distorted
ऐंद्रिक—Sensuous
कथनात्मक—Communicative
कथाचित्रण—Story-illustration
कठोर-किनार चित्रण—Hard-edge painting
कलाकक्ष—Studio
कलाविद्यालय—Art-school
कला-विरोधी—Anti-art
कलावीथिका—Art-gallery

कल्पनावाद—Ideisme
कार्यकक्ष—Studio
कार्यात्मक—Functional
कार्यात्मकता—Functionality, कालव्यापी घनवाद—Epic Cubism
काष्ठखुदाई—Wood-Carving
किरणवाद—Rayonism
कुंजीछिद्र दृश्य—Key-hole vision
कौशल—Skill
क्रमबद्ध चित्रण—Systemic painting
क्रमबद्ध दृष्टि—Consecutive vision
क्रियात्मक चित्रण—Action painting
क्रियात्मक चित्रकार—Action painters
क्लाइसोनिजम—Cloisonnism
गूढाक्षर—Hieroglyphics
घटनाएं—Happenings
घन—Cube
घनत्व—Effect of solidity or third dimension
घनत्वांकन—Chioroscuro—कि अोरोस्कुरो
घनवाद—Cubism
चतुर्थ मिति—Fourth dimensio n
चित्रकला कक्ष—Painter's studio
चचल कृति—Mobile
चित्रण चाकू—Painting knife
चित्रलिपि—Pictograph
चित्रलिपिकला—Pictography
चित्रक्षेत्र—Picture-surface, Pictorial space
छटा—Tone
छापचित्र—Prints
छायाचित्र—Photography
छाया-प्रकाश—Shade and light
जड़वाद—Materialism
जनतन्त्रवादी कला—Democratic Art
जादूमय यथार्थवाद—Magical Realism
जापानवाद—Japonisme
जैविक—Organic
ज्यामितीय—Geometric

ठंडे रंग—Cool Colours
ठंडी कला—Cool Art
तर्कशुद्ध—Logical
तन्त्रिका-तंत्र—Nervous System
तिपायी-चित्र—Easel-painting
तूलिका—Brush
तूलिका संचालन—Brushing
त्रिमितियुक्त—Three dimensional
त्रिपट—Triptych
दीवार-कागज—Wall-paper
दीवार चित्र—Wall-painting
दीवार पर्दा—Tapestry
दूर दृश्यलघुता—Perspective, दृश्य Visual,
दोलीक—Oscillator
दृष्टिजन्य मिश्रण—Optical mixture
दृष्टिकोण—Angle of vision (केवल पारिभाषिक प्रयोग में)
दृश्य प्रपंचीय—Phenomenological
द्विमितियुक्त—Two dimensional
द्विपट—Diptych
द्विप्रतिम—Double-image
धब्बा-पद्धति—Staining
धब्बावाद—Tachisme
नव प्रादिमवाद—Neo-primitivism, नव प्रादिम—New Primitive
नव यथार्थवाद—New Realism
नव लचीलवाद—Neo-plasticism
नव शास्त्रीयतावाद—Neo-classicism
नाबि—Nabis
नाबिवाद—Nabism
निजी रंग—Local Colour
नियन्त्रण—Control
नियंत्रित तूलिका-सचालन—Controlled brushing
निर्माण कला—Creative art
निर्वस्तुवाद—Non-objectivism
निसर्गवाद—Naturism
निसर्ग-रूप सादृश्य—Representation trompe l'oeil
नुवो कला—Art nouveau

नेत्रपटलीय—Retinal
नेत्रीय कला—Optical art, Op art
नैसर्गिक—Natural
नैसर्गिकतावाद—Naturalism
पट—Canvas
पदार्थ चित्रण—Matter-painting
परस्परासीन—Superimposed
परिचयवाद—Intimism
परिसीमित घनवाद—Epic Cubism
परोक्ष—Direct
पलायनवाद—Escapism
पवित्र अनुपात—Holy proportion
पक्षीय मुखाकृति—Profile
पॉप कला—Pop-art
पुनर्जागरण—Renaissance
पुरातत्त्वीय—Archaeological
पूरक रंग—Complementary Colours
पूर्वकल्पना—Design
प्रकृति-चित्रण—Nature painting
प्रचलन—Fashion
प्रतिमा—Image, Icon
प्रतिमा-चित्रण—Icon-painting
प्रतिमावाद—Imagism
प्रति-कला—Anti art
प्रतिकृति—Imitation
प्रति दीप्त—Fluorescent
प्रतिरूप—*Representaion*
प्रति संयोजन—Anti Composition
प्रतीक—Symbol प्रतीकवाद—Symbolism
प्रतीकात्मक—Symbolic
प्रत्यक्षीकरण—Concretization
प्रत्ययवाद—Conceptualism
प्रदर्शन-खिड़की—Display Window
प्रभाववाद—Impressionism
प्रयुक्त कला—Applied art

प्रक्षेपक—Projector
प्रिराफेलाइटस—Pre-Raphalites
पृथक्करण—Analysis, Abstraction
पृष्ठभूमि—Background
फलक चित्र—Wood Panel
फाववाद—Fauvism
फीता—Tape
फैलाव-पद्धति—Staining technique
बनीबनायी—Readymades
बलरेखा—Accent or line of force
बहुमितियुक्त—Multi-dimensional, बालचित्रकला—Child art
बाह्यरेखा—Outline
बाह्य-स्थान-चित्रण—Plein-air-painting
बिंदुवाद—Pointillism
बुनावट—Texture
बुद्धिवाद—Intellectualism
भविष्यवाद—Futurism
भंवरवाद—Vorticism
भित्तिचित्रण—Mural Painting
भूचित्र—Landscape
भूरंग—Earth Colours
भूरे रंग—Gray Colours
भौतिकवाद—Materialism
भ्रष्ट कला—Degenerate art
मनोवर्धन कला—Psychedelic art
मध्ययुगीन—Mediaval
महत्तर यथार्थ—Greater Reality
मंची—Pedestal
मानव शरीर चित्रण—Painting of Humam figure
मिति—Dimension
मिश्रणफलक—Palette
मिश्र-माध्यम-निर्माण—Mixed-Media-Production
मोटी परत—Impasto
यथार्थ—Reality
यथार्थ अतियथार्थवाद—Verist Surrealism
यथार्थ अभिव्यंजनावाद—Verism

यथार्थवाद—Realism
रचनावाद—Constuctivism
रहस्यवाद—Mysticism
रद्दी-मूर्तिकला—Junk Sculpture
रंगकार—Painter
रंगांकन—Painting
रंगांकन पद्धति—Painting Technique.
रंग संगति—Colour Scheme
रंग क्षेत्रीय चित्रण—Colour-field paintng
रंगीन काचचित्र—Stained glass
रूपांतर—Metamorphosis, Transformation
रूपांतर्गत तत्त्व—Formal Elements
रेखाकार—Draughtsman
रेखात्मक – Linear
रेखात्मक दूर दृश्यलघुता—Linear perspective
रेखांकन—Drawing
रॉकिय—Rocaille
रॉकोको—Rococo
रोमा—Romans
रोमांचवाद या रोमांसवाद—Romanticism
रोमानेस्क—Romanesque, लघुचित्रण शैली—Miniature Painting
लघुतम कला—Minimal Art
लचीला आकार—Plastic form
लचीली कला—Plastic art
लचीलापन—Plasticity
लय—Rhythm
लयबद्ध—Rhythmic
लेखा-चित्रणकला—Graphics
लोक कला—Folk art
वर्णक्रम—Spectrum
वस्तुनिरपेक्ष—Abstract
वस्तुनिपेक्षत्व—Abstraction
वस्तुनिरपेक्ष प्रतियथार्थवाद—Abstract Surrealism
वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद—Abstract Expressionism
वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद—Abstract Impressionism
वस्तुनिरपेक्ष प्रतिमावाद—Abstract Imagism

वस्तुसादृश्य--Representaion, Trompe l'oeil
वातावरण--Environment
वातावरणीय दुरदृश्यलघुता--Aerial prespective
वास्तुकला--Architecture
वास्तुकार--Architect
वास्तु सदृश, वास्तु तुल्य--Architectural
विकृति--Distortion
विनाशवाद--Nihilism
विभाजनवाद--Divisionism
विरोध--Contrast
विरोधाभास--Paradox
विवस्त्र--Nude विशुद्धवाद--Purism
विश्लेषणवाद--Synthetism
विश्लेषणात्मक--Synthetic
विश्लेषणात्मक घनवाद--Synthetic Cubism
विसंवादित्व--Discordance
विज्ञापन-कला--Advertising
विज्ञापन-चित्र--Poster
वीथिका--Gallery
वेदी-चित्र--Altar-piece
वेनिस द्विवार्षिक--Venice Biennale
व्यक्ति चित्रण--Portrait painting
व्यक्तिवाद--Individualism
व्यापक-प्रभाव-चित्रण--Over- all painting
व्यापारिक कला--Commercial art
शास्त्रीयतावाद--Classicism
शास्त्रशुद्ध--Classical
शिल्प-विज्ञान--Technology,
शिल्पवैज्ञानिक--Techmological
शिल्पीसंघ--Artists' guild
शंकु--Cone
श्रव्य--Audible
समकोण--Right angle
समतल--Plane
समतल रंगांकन--Flat Colouring

समपात दृष्टि—Total vision, Simultaneous vision
समयावच्छेद—Simultaneity
समरूप—Equivalent from
समीपीकरण—Juxtaposition
समीपवर्ती—Juxtaposed, सम्मिति—Symmetry
सरलीकरण—Simplification
सरलीकृत—Simplified
सर्वोच्चवाद—Suprematism
सहज प्रवृत्ति—Instinct
सहजसिद्ध कला—Naive Art
सहजस्फूर्त—Spontaneous
सहजज्ञान—Intuition
संकलन (कला)—Assemblage
संतुलन—Balance
संयोग—Accident
संयोगजनित—Accidental
संयोजन—Composition
संश्लेषणवाद—Synthetism
संश्लेषणात्मक घनवाद—Synthetic Cubism
संश्लेषित रंग—Synthetic Colours
समाजवादी यथार्थवाद—Socialist Realism
सर्जन क्रिया—Creativity
सर्जनात्मक प्रक्रिया—Creative process
सर्जन प्रवृत्ति—Creative instinct
सामाजिक यथार्थवाद—Social Realism
साहचर्यभाव—Association
सांकेतिक चित्रण—Gesture Painting
सुरीलवाद—Orphism
सुवर्ण अवच्छेद—Golden Section, Section d'or
सुसंगति—Harmony
सुसंवादित्व—Concord
सुस्थापन—Proper placing or Organisation
स्थानीकरण—Localisation, स्थानांतर—Displacement
स्पर्शीय—Tactile
स्मारकीय—Monumental

स्मृति व्याकुलता—Nostalgia
स्याही शैली—Ink painting, स्वच्छंद शैली—Free manner
स्वयंचालन—Automatism
स्वयंचालित क्रिया—Automatic action
स्वयंस्फूर्त—Spontaneous
हस्तकला—Handicrafts
हास्य-चित्र-मालिका—Comic Strip
हृदय-स्पंदन-प्रालेख—Cardiogram
क्षणिक दृष्टि, क्षणिक दृष्टिपात—Instanstaneous vision



समपात दृष्टि—Total vision, Simultaneous vision
समयावच्छेद—Simultaneity
समरूप—Equivalent from
समीपीकरण—Juxtaposition
समीपवर्ती—Juxtaposed, सम्मिति—Symmetry
सरलीकरण—Simplification
सरलीकृत—Simplified
सर्वोच्चवाद—Suprematism
सहज प्रवृत्ति—Instinct
सहजसिद्ध कला—Naive Art
सहजस्फूर्त—Spontaneous
सहजज्ञान—Intuition
संकलन (कला)—Assemblage
संतुलन—Balance
संयोग—Accident
संयोगजनित—Accidental
संयोजन—Composition
संश्लेषणवाद—Synthetism
संश्लेषणात्मक घनवाद—Synthetic Cubism
संश्लेषित रंग—Synthetic Colours
समाजवादी यथार्थवाद—Socialist Realism
सर्जन क्रिया—Creativity
सर्जनात्मक प्रक्रिया—Creative process
सर्जन प्रवृत्ति—Creative instinct
सामाजिक यथार्थवाद—Social Realism
साहचर्य भाव—Association
सांकेतिक चित्रण—Gesture Painting
सुरीलवाद—Orphism
सुवर्ण अवच्छेद—Golden Section, Section d'or
सुसंगति—Harmony
सुसंवादित्व—Concord
सुस्थापन—Proper placing or Organisation
स्थानीकरण—Localisation, स्थानांतर—Displacement
स्पर्शीय—Tactile
स्मारकीय—Monumental

स्मृति व्याकुलता—Nostalgia
स्याही शैली—Ink painting, स्वच्छंद शैली—Free manner
स्वयंचालन—Automatism
स्वयचालित क्रिया—Automatic action
स्वयंस्फूर्त—Spontaneous
हस्तकला—Handicrafts
हास्य-चित्र-मालिका—Comic Strip
हृदय-स्पंदन-प्रालेख—Cardiogram
क्षणिक दृष्टि, क्षणिक दृष्टिपात—Instanstaneous vision



विशेष नामावली

अकादेमी ज्युलिआं Academie Julian
अकादेमी युम्बेर Academie Humbert
अकादेमी रान्सो Academie Ranson
अकादेमी स्विस Academie Suisse
अपोलिनेर ग्वियोम Apollinaire Guillaume
अर्बें ओग्युस्त Herbin Auguste
अँटवर्प Antwerp
अँग्र ज्यां ओग्युस्त दोमिनिक Ingres Jean Auguste Dominique
अॅम्स्टरडम Amsterdam
अॅलोवे लॉरेन्स Alloway Lawrence
आइन्स्टाइन आल्बेर्ट Einstein Albert
आइवरी कोस्ट Ivory Coast
आइबीरियन Iberian
आगाम (याकोव गिप्सटाइन) Agam (Yaacov Gipstein)
आजेरो Agero
आत्स्बे आटोन Azbe Anton
आनुस्कीवित्स रिशार्ड Anuskiewitz Richard
आंक्वेतँ लुई Anquetin Louis
आंदले केले Andler Keller
आप्पेल कारेल Appel Karel
आफ्रो बासाल्देला Afro Basaldella
आमर्सफॉर्ट Amersfoort
आमिएट कुनो Amiet Cuno
आरागोन Aragon
आरागों लुई Aragon Louis
आर्किपेंको आलेक्साडेर Archipenko Alexander
आर्जांतां Argentan
आर्जांतिय Argentuil
आर्नुवो Art-nouveau
आर्प ज्यां (हान्स) Arp Jean (Hans)

आर्मरी प्रदर्शनी Armory Show
आर्मान (ओगस्टिन फर्नांडिज) Arman (Augustin Fernandez)
आर्ल Arles
आर्चिम्बोल्दो गिसेप Arcimbold Giuseppe
आल हेल्ड Al Held
आलेशिन्स्कि पियरे Alechinsky Pierre
आल्बेर्स योसेफ Albers Josef
आवरिल जान Avril Jane
आस्त्युक जाशारी Astruc Zachari
आस्सी गिरजाघर Assy Church
इन्डियाना रॉबर्ट Indiana Robert
इन्नेस जेम्स Innes James
इब्सेन हेन्रिक Ibsen Henrik
इस्त्राएल्स योसेफ Israels Joseph
उच्चेलो पाओलो Uccello Paolo
उत्रिलो मोरिस Utrillo Maurice (उत्रियो)
उड़े फ़िट्स Ubde Fritz
उर्सुला Ursula
ए Aix, (फ्रान्स के एक ग्राम का नाम)
एकोल द आर देकोरातिफ Ecole des Arts Decoratifs
एकोल द बोजार Ecole des Beaux Arts
एग्गेलिंग वाइकिंग Eggeling Viking
एक्स प्रोवान्स Aix-en-Provence
एट्टेन Etten
एन्डेल ओगुस्ट Endell August
एन्सोर जेम्स Ensor James
एफेल मिनार Eiffel Tower
एर्न्स्ट माक्स Ernst Max
एर्बस्लो आडोल्फ Erbsloh Adolf
एलियट जॉर्ज Eliot George
एलियट टी. एस्. Eliot T.S.
एल्ग्रेको(डोमेनिकोस थिओटोकोपुलोस)El Greco(Domenicos Theotocopulos)
एल्वार पोल Eluard Paul
एस्तेव मोरिस Esteve Maurice
ओकीफ जार्जिया Okeefe Georgia

विशेष नामावली

अकादेमी ज्युलिआं Academie Julian
अकादेमी युम्बेर Academie Humbert
अकादेमी रान्सो Academic Ranson
अकादेमी स्विस Academie Suisse
अपोलिनेर ग्वियोम Apollinaire Guillaume
अर्बें ओग्युस्त Herbin Auguste
अँटवर्प Antwerp
अँग्र ज्यां ओग्युस्त दोमिनिक Ingres Jean Auguste Dominique
अँम्स्टरडम Amsterdam
अँलोवे लॉरेन्स Alloway Lawrence
आइन्स्टाइन आल्बेर्ट *Einstein Albert*
आइवरी कोस्ट Ivory Coast
आइबीरियन Iberian
आगाम (याकोव गिप्सटाइन) Agam (Yaacov Gipstein)
आजेरो Agero
आस्बे आंटोन Azbe Anton
आनुस्कीवित्स रिशार्ड Anuskiewitz Richard
आंक्वेतँ लुई Anquetin Louis
आंदले केले Andler Keller
आप्पेल कारेल Appel Karel
आफ्रो बासाल्देला Afro Basaldella
आमर्सफोर्ट Amersfoort
आमिएट कुनो Amiet Cuno
आरागोन Aragon
आरागों लुई Aragon Louis
आर्किपेन्को आलेक्साडेर Archipenko Alexander
आर्जाँता Argentan
आर्जाँत्वि Argentuil
आर्नुवो Art-nouveau
आर्प ज्या (हान्स) Arp Jean (Hans)

आर्मेरी प्रदर्शनी Armory Show
आर्मान (ऑगस्टिन फर्नांडिज) Arman (Augustin Fernandez)
आर्ल Arles
आर्चिम्बोल्दो गिसेप Arcimbold Giuseppe
आल हेल्ड Al Held
आलेशिन्स्कि पियरे Alechinsky Pierre
आल्बेर्स योसेफ Albers Josef
आवरिल जान Avril Jane
आस्त्रुक जाशारी Astruc Zachari
आस्सी गिरजाघर Assy Church
इन्डियाना रॉबर्ट Indiana Robert
इन्नेस जेम्स Innes James
इब्सेन हेन्रिक Ibsen Henrik
इस्राएल्स योसेफ Israels Joseph
उच्चेलो पाओलो Uccello Paolo
उत्रिलो मोरिस Utrillo Maurice (उत्रियो)
उडे फ्रित्स Uhde Fritz
उर्सुला Ursula
ए Aix, (फ्रान्स के एक ग्राम का नाम)
एकोल द आर देकोरातिफ Ecole des Arts Decoratifs
एकोल द बोजार Ecole des Beaux Arts
एग्गेलिंग वाइकिंग Eggeling Viking
एक्स ओवान्स Aix-en-Provence
एटे्न Etten
एन्डेल औगुस्ट Endell August
एन्सोर जेम्स Ensor James
एफेल मिनार Eiffel Tower
एर्न्स्ट मार्क्स Ernst Max
एर्बस्लो आडोल्फ Erbsloh Adolf
एलियट जॉर्ज Eliot George
एलियट टी. एस्. Eliot T.S.
एल्ग्रेको(डोमेनिकोस थियोटोकोपुलोस)El Greco(Domenicos Theotocop...
एलुआर पोल Eluard Paul
एस्तेव मोरिस Esteve Maurice
ओकीफ जार्जिया OKeefe Georgia

ओजांफा आमेदी Ozenfant Amedee
ओदालिस्क Odalisque
ओरिय आल्बेर Aurier Albert
ओरोस्को ह्रोसे क्लेमेंट Orozco Jose Clemente
ओर्ता द एब्रा Horta de Ebra
ओर्तांस Hortense
ओर्नां Ornans
ओर्पेन विल्यम Orpen Willam
ओलिस्को ज्यूल्स Olitski Jules
ओल्गा Olga
ओल्डेनबुर्ग क्लास Oldenburg Claes
ओवेर Auvers
ओस्टेंड Ostend
ओस्टौस एर्न्स्ट Osthaus Ernst
ओस्लो Oslo
कलोन Cologne
कैनडे जॉन Canaday John
कैम्डेन टाउन ग्रुप Camden Town Group
कैसाट मेरी Casatt Mary
काजालि Cazalis
कादाके Cadaques
कान मार्सेल Cahn Marcelle
कानवाइलेर डी. एच. Kahnweiler D.H.
कानोगर राफाएल Canogar Rafael
कानोल्ट आलेक्सांडेर Kanoldt Alexander
कान्ट एमान्युएल Kant Emanuel
कान्डिन्स्की वासिली Kandinsky Wassily
कान्य Cagnes
कापोग्रोसी ग्विसेप Capogrossi Giuseppe
काप्रो ऍलेन Kaprow Allan
काफे आंद्ले केले Cafe Andler Keller
काफे गेर्बो Cafe Guerbois
काफे द दोम Cafe du Dome
काफे बुल्वार Cafe Boulevard
काफे ब्रासरी द मार्ति Cafe Brasserie des Martyr

काफे वोल्पेंय Cafe Volpini
काफ्का फ्रान्त्स Kafka Franz
काबानेल आलेक्सांद्र Cabanel Alexandre
काबारे वोल्तेर Cabaret Voltaire
कामीय (पुरुषसूचक), कामिल (स्त्रीसूचक) Camille
काम्पेन्डोंक हाइन्रिश Campendonck Heinrich
काम्यु आल्बेर Camus Albert (कामु)
काम्वा शार्ल Camoin Charles
कारा कार्लो Carra Carlo
कारावाद्ज्यो माइकेल एंजेलो आमेरिगी दा Caravaggio Michel Angelo Amerighi da
कारिकात्युर Caricature
कारियर ओजेन Carriere Eugene
कार्नेजी पुरस्कार Carnegie Award
कार्पोरा आंतोनियो Corpora Antonio
कालाब्रिया Calabria
काल्डेर आलेक्सांडेर Calder Alexander
कासिरे पौल Cassirer Paul
कास्ताग्नारी ज्यूल आंत्वान Castagnary Jules Antoine
कास्स्यु ज्यां Cassu Jean
कॉक्तो ज्यां Cocteau Jean
कॉन्स्टेबल जॉन Constable John
कॉन्स्टंट जॉर्ज Constant George
कॉर्नेल जोसेफ Cornell Joseph
किटाज आर. बी. Kitaj R.B.
किंग फिलिप King Phillip
किरिको ज्योर्जिओ दि Chirico Giorgio di
किर्शनेर एर्न्स्ट लुटविक Kirchner Ernst Ludwig
किस्लिंग म्वास Kisling Moise
कीनहोल्त्स एडवर्ड Kienholz Edward
कीर्केगार्ड सोरेन Kierkegard Soren
कीसलेर फ्रेडेरिक Kiesler Frederick
कुइंजी आर्खिप Kuinji Arkhip
कुत्युर तोमा Couture Thomas
फ्रान्टिसेक Kupka Frantisek
आल्फ्रेड Kubin Alfred

कुर्बे ग्युस्ताव Courbet Gustave
केज जॉन Cage John
केन जॉन Kane John
केयबोत ग्युस्ताव Caillebotte Gustave
केरुग्रान Kairuan
केली एल्सवर्थ Kelly Ellsworth
कोकोश्का ग्रोस्कर Kokoschka Oskar
कोट्स रॉबर्ट Coates Robert
कोते शार्ल Cottet Charles
कोपनहेगन Copenhagen
कोब्रा मंडल Cobra Group
कोमर्स Kommerz
कोरिंट लोविस Corinth Lovis
कोरो कामीय Corot Camille
कोर्नेय (कॉर्नेलिस वान वेवर्लु-ड्च) Corneille (Cornelis Van Beverloo)
कोर्मों फर्नां Cormon Fernand
कोर्मों चित्रशाला (ग्रातेलिय) Atelier Cormon
कोलाज Collage
कोलिऊर Collioure
कोल्वित्स काटे Kollwitz Kathe
क्राको Crakow
क्रानाख Cranach
क्रॉस ग्रारी एद्मों Cross Henri Edmond
क्रिवेलि विट्टोरिओ Crivelli Vittorio
क्रिस्टो जावाचेफ Christo Javachef
क्रीट Crete
क्रेल Creil
क्रेस्पेल ज्यां पौल Crespelle Jean Paul
क्रोनिक डेर ब्रुके Chronik der Brucke
क्रौस कार्ल Kraus Karl
क्लाइन फ्रान्त्स Kline Franz
क्लिंगेर माक्स Klinger Max
क्लिम्ट गुस्टाव Klimpt Gustav
क्ले पौल Klee Paul
क्लेर्मं इवे Klein Yves

क्लेमां फेलि ग्रोग्युस्त Clement Felix Auguste
गस्टन फिलिप Guston Phillip
गॅल्लाटिन Gallatin A. E.
गाबो नोम Gabo Naum
गालेन-कालेला ग्राक्सेलि Galen Kallela Akseli
गाशे डॉ. पौल Gachet Dr. Paul
गास्के डॉ. जोग्राशिम Gasquet Dr. Joachim
गिन्नर चार्लस Ginner Charles
गिल्मन हॅरोल्ड Gilman Harold
गुगेनहाइम Guggenheim
गुपिल Goupil
गुर्लिट कलावीथिका Gurlitt Gallery
गोग्रर स्पेन्सर Gore Spencer
गोगोल निकोलाय Gogol Nikolaj
गोगँ पौल Gauguin Paul
गोटलिएब ग्रॅडोल्फ Gottlieb Adolph
गोतिय तेग्रोफिल Gautier Theophile
गोथिक Gothic
गोन्कारोवा नाटालिया Goncharova Natalia
गोया फान्सिस्को Goya Francisco (स्पेनिश-फान्सिस्को होसे डि)
गोरँ ज्यां ग्राल्बेर Gorin Jean Albert
गोर्की ग्रार्शाइल Gorky Arshile
गोसे डॉ Gose Dr.
ग्रीस ह्वान (होसे विक्टोरियानो गोन्थालेथ) Juan Gris (Jose Victoiano Gonzalez)
ग्रीनबर्ग क्लेमेंट Greenberg Clement
ग्रुट-ज्युंडर्ट Groot-Zundert
ग्रोज ज्यां बातिस्त Greuze Jean Baptiste
ग्रो ज्यां ग्रान्त्वान Gros Jean Antoine
ग्रोस गेग्रोर्ग Grosz George
ग्रोपियस वाल्टेर Gropius Walter
ग्रयूनेवाल्ट माटियास Grunewald Matthias
ग्लेजे ग्राल्बेर Gleizes Albert
ग्लेयर चित्रशाला Gleyre Charles
ग्वियेमे ग्रान्त्वान Guillemet ne

ग्वियोमें आर्मां Guillaumin Armand
ग्विल्बेर इवेत Guilbert Yvette
ग्वी कान्स्तातें Guys Constantin
ग्वेरें शार्ल Guerin charles
ग्वेर्निका Guernica
चार्कुंन सर्गे Charchoune Serge
जाकोवसेन जेन्स पीटर Jacobsen Jens Peter
जाविय फादर Janvier Father
जॉइस जेम्स Joyce James
जॉन्स जास्पेर Johns Jasper
जिद आन्द्रे Gide Andre
जिनिवा Geneva
जिम्पेल रने Gimpel Rene
जिरार्दों फ्रान्स्वा Girardon Francois
जिरोदे Girodet
जिल ब्ला Gil Blas
जिवर्नी Giverny
जुर्दें फ्रान्सिस Jourdain Francis
जेन्किन्स पौल Jenkins Paul
जेफ्राय ग्युस्ताव Gefroy Gustave
जेरार Gerard
जेरिको थेओदोर Gericault Theodore
जेरोम ज्यां लिओ Gereme Jean Leon
जेवेनबर्गेन Zevenbergen
जोन्शेर Jonchere
जोरे ज्यां Jaures Jean
जोला एमिल Zola Emile
ज्याकोमेत्ति आल्बर्टो Giacometti Albert
ज्यांनेरे शार्ल-एदुवार Jeanneret Charles-Edouard
ज्यूबास फ्रीडेल Djubas Friedel
ज्यूरिख Zurich
ज्योतो Giotto
ज्योजिओने Giorgione
टकर विलयम Tucker William
टर्क सोनिया Terk Sonia

टर्नर जोसेफ मॅलार्ड विलयम Turner Joseph Mallord William
टाटलिन व्लाडिमीर Tatlin Vladimir
टानौसेर कलावीथिका Thannhauser Gellery
टापीज ग्रांटोनी Tapies Antoni
टाहिटि Tahiti
टिल्सन जो Tilson Joe
टोबी मार्क Tobey Mark
टोलेडो Toledo
टौबर-ग्रार्प सोफी Tauber-Arp Sophie
ट्युनिशिया Tunisia
ट्युनिस Tunis
ट्युरिन Turin
ट्रोवा ग्रर्नेस्ट Trova Ernest
ट्वोकॉव जॅक Twokov Jack
डाइन जिम Dine Jim
डाखौ Dachau
डाली साल्वाडोर Dali Salvador
डिक्विन्सी De Quincy
डिक्स ग्रोटो Dix Otto
डी नाय जाक्लिश्काइट Die Neue Sachlichkeit
डी ब्रूके Die Brucke
डे कुनिंग विल्लेम de Kooning Willem
डेनिस नेस्सोस Daphnis Nassos
डेर ब्लौ राइटेर Der Blaue Reiter
डेर श्टुर्म Der Sturm
डेसौ Dessau
डे स्मेट गुस्टाव de Smet Gustav
डे स्टाइल de Stijl
डोर्ड्रेश्ट Dordrecht
डोव ग्रार्थर Dove Arthur
डोसबुर्ग थिग्रो वान Doesburg Theo Van
ड्यूरर ग्राल्ब्रेश्ट Durer Albrecht
ड्यूसेल डॉर्फ Dusseldorf
ड्रेस्डेन Dresden
तांग्वी इवे Tanguy Yves

तान्वी पेर Tanguy Pere
तापी मिशेल Tapie Michel
तालेरा Talleyand
तिग्वेलि ज्या Tinguely Jean
तिशिआ Titian
तिन्तोरेतो Tintoretto
तुलुज लोत्रेक आरी द Toulouse-Lautrec Henri de
तुर्कातो गिलिओ Tuzcato Giulio
तुरा कोसिमो Tura Cosimo
तेरियाद Teriade E.
तोरे-गार्शिया जोअक्वें Torres-Garcia Joaquin
त्रायो कॉन्स्ता Troyon Constant
त्विलेरी Tuileries Les
त्चेलित्चु पावेल Tchelitchew Pavel
त्सारा ट्रिस्टान Tzara Tristan
दादा Dada
दाविद् जाक लुई David Jacques Louis
दिएप Dieppe
देका आलेक्सांद्रे गाब्रियल Decamp Alexandre Gabriel
देगा एदगार् Degas Edgar
दैतेय एद्वार Detaille Edouard
देनी मोरिस Denis Maurice
देपर्त Deperthes
देरें आन्द्रे Derain Andre
देलाक्रा ओजेन Delacroix Eugene
देलारोश आशिय Delaroche Achille
देलोने रॉबर Delaunay Robert
देलोने सोनिया Delaunay Sonia
देल्वो पोल Delvaux Paul
देवान ज्या Dewasne Jean
देवालियर जॉर्ज Desvallieres Georges
दोनातेलो Donatello
दोबिन्यी शार्ल Daubigny Charles
दोमिग्वेज ऑस्कर Dominguez Oskar
दोमीय ओनोरे Daumier Honore

दोरा मार Dora Maar
दोस्तोयेफ्स्की फ्योदोर Dostowski Feodor
दोर्जेले रोलां Dorgeles Roland
द्यागिलेफ स्येर्गेइ Diaghilev Sergei
द्यूप्रे ज्यूल Dupres Jules
द्यूफि रौल Dufy Raoul
द्यूफ्रे फ्रान्स्वा Dufresne Francois
द्यूब्यूफे ज्यां Dubuffet Jean
द्यूमों पियर Dumond Pierre
द्यूराति एद्मों Duranty Edmond
द्यूरा रुएल Durand Ruel
द्यूरे तेम्रोदोर Duret Theodore
द्यूशा मार्सेल Duchamp Marcel
नाय एर्न्स्ट विल्हेल्म Nay Ernst Wilhelm
नातासो तादे Natanson Thadee
नादार Nadar
नाबि Nabis
नाय कुन्स्ट्लर वेरैनिगुंग Neue Kunstler Vereinigung
नाय जेचेसिम्रोन Neue Secession
नार्थ कॅरोलिना North Carolina
नॉब्लॉश माद्लेन Knobloch Madeleine
नॉर्मंदी Normandie
निकोल्सन बेन Nicholson Ben
नीत्शे फ्रीडरिश Nietzsche Friedrich
नेपल्स Naples
नेवल्सन लुई Nevelson Louisse
नेविन्सन सी. भ्रार डब्ल्यू Hevinson C. R. W.
नोत्रदाम Notredame
नोलॅंड केनेथ Noland Kenneth
नोल्डे एमिल Nolde Emil
नोवगोराट Novgorad
नोवालिस फ्रीडरिश Novalis Friedrich
न्युनेन Neunen
न्यूटन एरिक Newton Erich
न्यूमन बार्नेट Newman Barnet

पॅरिस Paris (फ्रेंच-नारी)
पाम्रोलोत्सि एडुम्रार्डो Paolozzı Eduardo
पान्ताग्रूएल Pantagruel
पापीटी Papette
पार्खाम एडविन Parkham Edwin
पार्थेनोन Parthenon
पालाऊ Palau
पाले द म्रार Palais des Arts
पालेन वोल्फगाग Paalen Wolfgang
पाविलां द्यू रेम्रालिज्म Pavillon du Realisme
पासें ज्यूल (पिंकस) Pascin Jules (Pıncus)
पॉन्तवाज Pontoise
पॉम्पादुर मादाम द Pompadour Madam de
पाम्पेई Pompeii
पिकाबिया फ्रान्सि Pıcabia Francis
पिकासो पाब्लो रुइय Picasso Pablo Ruiz
पिकेट जोसेफ Picket Joseph
पिन्यो एदुवार Pignon Edouard
पिसारो कामीय Pıssarro Camille
पिसिस फिलिपो दि Pisis Filippo de
पीटर्स योत्सेफ Peeters Jozef
पुन्स लॅरी Poons Larry
पुर्विल Pourville
पुसें निकोल Poussin Nicholas
पेव्स्नर म्रान्टोन Pevsner Anton
पेर्मेक कान्स्टंट Permeke Constant
पेश्टाइन माक्स Pechstein Max
पो एडगर म्रॅलेन Poe Edgar Allen
पोएशिया Poesia
पोज्नान्स्की Poznanski
पों म्रावां Pont Aven
पोलाक जॅक्सन Pollock Jackson
पोलिम्राकोफ सर्ग Poliakoff Serge
पौंड एज़्रा Pound Ezra
प्रेंस्तो रने Princeteau Rene

53	29	वातिन्योले	बातिन्योले
54	10	दयुरां	द्यु रां
59	24	साय	साथ
61	12	खुदरापन	खुरदरापन
62	24	द्यु राति	द्यु रांति
64	15	मोने ने	मोने
66	4	सूर्यकिरणों को	सूर्यकिरणो का
66	31	उसको	उनको
70	12	कलानिर्मित	कलानिर्मिति
72	34	गुण	गुण हैं
76	27	रेन्वार्	रेन्वार् ने
78	20	उसके	उनके
79	28	होतर	होकर
80	9,17,19,25	सोत्रक	सोत्रेक
80	26	चित्रकारी	चित्रकारों
83	28	निरीक्षण	निरीक्षक
84	24	विलसर	विसलर
85	24	स्पेन्सर, गोम्रर	स्पेन्सर गोम्रर
85	24	लेविस	लुईस
86	8	कोरिंट	कोरिंट
90	5	ग्राद	ग्रांद
90	27	कान्यमय	काव्यमय
96	13	चित्रकारनिर्मिति	चित्रकारनिर्मित
100	16	बरती	बनती
102	7	आकार	साकार
105	6	उसमें	उनमें
108	11	प्रसिद्ध	प्रसिद्ध है।
108	19	गोवर	गोबर
110	1	वान गो	वान गो को
110	31	कलानिर्मित	कलानिर्मिति
112	11	को	की
115	18	पत्र	पत्र में
120	23	पुर्गेटार्टल	पुर्गेटस्टिल
121	[illegible]	रके	करके
122	25	जिसके	जिससे के

124	5	मोंपानार्स	मोपार्नास
124	24	भिन्न	भिन्न
124	30	समान	सामान
125	6	उनको	उसको
127	8,17	गोग्वॅ	गोग्वॅ
127	32	करासर्जनपाशवी	कलासर्जन-पाशवी
130	3	शोपेनग्रोर	शोपेनहौर
137	25	समीकपीरण	समीपीकरण
139	22	घोलार	वोलार
140	12	897	1897
145	34	वुटेसं	वुटेसं
147	33	मादान	मादाम
149	1	चीच	चीज़ की
150	1	ढी ढाल	ढीलढाल
151	4	अध्ययन	अध्यापन
151	19	कर	कर चित्र
152	8	ब्लामेंक	ब्लामेंक ने
154	20	कुल	कुछ
154	34	लदत	तुलना
154	29	ग्रयंस भूरंग	ग्रयं स-भूरंग-
154	30	घनवाद	घनवादी
154	31	छिपे	छिपे नही
155	16	साज-सजा	साजसज्जा
159	11	मानवना	मानवता
160	17	ग्रभार	ग्रपार
168	13	सरूप	समरूप
168	28	सेजात	सेजान
168	29	पोलिश	पोलिश
170	12,16	ह् वान	हुवान
171	14	कलाव्यापी	कालव्यापी
171	20	ग्रीस	ग्रीस के
171	33	पकिशीलन	परिशीलन
174	19,20	हुवान	ह् वान
175	19	रयना	रचना
177	22	करने काले	करने वाले

179	3	निरपेक्ष	निरपेक्ष कला के अन्तर्गत समाविष्ट करने के कुछ कलासमीक्षकों ने प्रयत्न किये तब ब्राक ने असहमति व्यक्त की। धनवाद से प्रेरणा पाकर कई वस्तुनिरपेक्ष (यह वाक्य छपने से रह गया)
184	2	बानो	बनो
187	22	जीवनी	जीवन
192	27	कुष्ठा	कुण्ठा
193	17	को	के
193	18	में शीर्षक	शीर्षक
197	6	जर्मनी	जर्मनी मे
201	18	थे।	थे व
206	1,3	मुफलेर	मुएलेर
211	12	थाग्न	था–न
212	10	1602	1902
213	[illegible]	अंतःदृष्टि	अंतःसृष्टि
224	19	की	को
225	25	सेचान	सेजान
225	29	करना	कराना
225	34	मानवकृतियां	मानवाकृतिया
227	19	सोबोन	सोर्बोन
230	26,33	लुइस	लुईस
231	11	आतिम	आदिम
231	15	लुइस	लुइस ने अंवरवाद को
231	20	अर्व	अर्वे
232	29	मोवमॅंग्रों-दोर	सोविसग्रों-दोर
234	7	यंत्रनिर्मिति	यंत्रनिर्मित
234	18	था।	था
235	3	सुनिर्मिति	सुनिर्मित
235	20	नातास्या	नाताल्या
238	2	ये	ने
239	28	होकर	होकर मानव
242	17	जहां	वहां
243	6	की	को

243	8	जिनमें	जिसमें
243	16	सदृश्य	सदृश
244	15	मोरांदी	मोरांदी ने
245	19	सदेहावस्था	सदेहावस्था
247	6	जर्मम	जर्मन
248	6	कलाकारों	कलाकारों को
249	1	चित्रकला	चित्रकार
249	17	अमेरिका'	अमेरिकी
250	12	पद्धति के	पद्धति के आधार
250	17	ज्यूरिख ह्यूलसेनबेक	ह्यूलसेनबेक ज्यूरिख
251	11	प्रहार	प्रसार
251	15	श्वटेर्स	श्विटेर्स
251	21	पीछे	पीछे छिपे
251	28	रंससंगति	रंगसंगति
254	19	नुक्त	मुक्त
255	21	सृष्टिमय	सृष्टि
256	1	साहचर्य	साहचर्य से
259	31	दृश्य	सदृश
262	5	रशोलिश्ट्र	श्तोलिश्ट्र
262	33	ग्यूनेवाल्ट	ग्यूनेवाल्ट
265	34	केलिडोरकोपीय	केलिडोस्कोपीय
268	15	बोतिचेली	बोतिचेली व
269	9	वक्रकार	वक्राकार
276	3	बासुरीवाला	बांसुरीवाला
279	2	लोभ	लोम
280	10	करने	करते
283	14	टाइम	टामग
283	31	जार्ज	जार्ज के
285	31	ज्ञान	शान
288	1	कालर्बोस	कार्लोस
288	15	कहा	कला
288	31	चिव्हाय्टा	चिव्हाम्हा
289	27	चित्रों	चित्र
289	34	पत्रकत्री	पत्रकर्त्री
290	5	प्रोमिप्पुम	प्रोमिश्युम

179	3	निरपेक्ष	निरपेक्ष कला के अन्तर्गत समाविष्ट करने के कुछ कलासमीक्षकों ने प्रयत्न किये तब ब्राक ने असहमति व्यक्त की। घनवाद से प्रेरणा पाकर कई वस्तुनिरपेक्ष (यह वाक्य छपने से रह गया)
184	2	बानो	बनो
187	22	जीवनी	जीवन
192	27	'कुष्ठा	कुण्ठा
193	17	को	के
193	18	मे शीर्षक	शीर्षक
197	9	जर्मनी	जर्मनी में
201	18	थे।	थे व
206	1,3	मुफलेर	मुएलेर
211	12	थाग्न	था-न
212	10	1602	1902
213	8	अंतःदृष्टि	अंतःसृष्टि
224	19	की	को
225	25	सेवान	सेजान
225	29	करना	कराना
225	34	मानवकृतिया	मानवाकृतियां
227	19	सोबोन	सोर्बोन
230	26,33	लुइस	लुईस
231	11	आतिम	आदिम
231	15	लुइस	लुइस ने अंवरवाद को
231	20	अर्बे	अर्बे'
232	29	मोक्संम्रों-दोर	सोक्सिम्रो-दोर
234	7	यंत्रनिर्मिति	यंत्रनिर्मित
234	18	था।	था
235	3	सुनिर्मिति	सुनिर्मित
235	20	नातास्या	नाताल्या
238	2	मे	ने
239	28	होकर	होकर मानव
242	17	जहां	वहा
243	6	की	को

243	8	जिनमें	जिसमें
243	16	सदृश्य	सदृश
244	15	मोरांदी	मोरांदी ने
245	19	सदेहावस्था	संदेहावस्था
247	6	जमंम	जमंन
248	6	कलाकारों	कलाकारों को
249	1	चित्रकला	चित्रकार
249	17	ग्रमेरिका'	ग्रमेरिकी
250	12	पद्धति के	पद्धति के ग्राधार
250	17	ज्यूरिख ह्यू लसेनबेक	ह्यू लसेनबेक ज्यूरिख
251	11	प्रहार	प्रसार
251	15	श्वटेर्म	श्विटेर्स
251	21	पीछे	पीछे छिपे
251	28	रससंगति	रंगसंगति
254	19	नुक्त	मुक्त
255	21	सृष्टिमय	सृष्टि
256	1	साहचर्य	साहचर्य से
259	31	दृश्य	सदृश
262	5	रशोलिश्ट्र	स्टोलिश्ट्र
262	33	ग्यूनेवाष्ट	ग्यू नेवाल्ट
265	34	केलिडोरकोपीय	केलिडोस्कोपीय
268	15	बोतिचेली	बोतिचेली व
269	9	वक्रकार	वक्राकार
276	3	बासुरीघाला	बांसुरीवाला
279	2	लोभ	लोम
280	10	करने	करते
283	14	टाइम	टामस
283	31	जार्ज	जार्ज के
285	31	ज्ञान	ग्रान
288	1	कालर्बोस	कार्लोस
288	15	कहा	कला
288	31	चिव्हाव्टा	चिव्हाव्हा
289	27	चित्रो	चित्र
289	34	पत्रकत्री	पत्रकर्त्री
290	5	प्रोमिप्युस	प्रोमिश्युस

290	22	जो	जो है
290	23	की	को
292	15	द्विविधि	द्विविध
297	15	वार्मा	वार्‍र्हा
298	30	1625	1925
301	13	कृतिम	कृत्रिम
303	32	किया	क्रिया
307	1	उपभोग	उपयोग
307	23	धब्बों	धब्बों
310	10	साच्छिद्र चित्रक्षेप	सांछिद्र चित्रक्षेत्र
313	5	विश्वयुद्ध के	विश्वयुद्ध की
313	14	उनके	उसके
313	30	कल्लर	कल्लर में
314	1	वार्टलिंग	वार्टलिंग
315	8	उनको	उनकी
315	23	अलियन	अंलिसन
315	27	वाभाविक	स्वाभाविक
315	31	द्यूशां	द्यूशां के
315	32	विचारो	विचारो का
316	6	निर्मित	निर्मिति
316	6	दर्शन	दर्शक
316	7	आवश्यकता	आवश्यक
317	2	ब्लक मोन्टर्न	ब्लॅक मोन्टन
317	10	कोलजाकृति	कोलाजकृति
317	23	अतिपरिचिति	अतिपरिचित
317	30	दो	तो
318	22	को घोषणा	का घोषणा
321	18	रंग	रंगों
322	7	रोश्को	रोथ्को
322	25	चित्रण है	चित्रण व
322	32	अंलोव	अंलोवे
323	32	जाता यद्यपि	है यद्यपि
324	2	के	से.
324	18	ऐसे	ऐसी
324	25	कल्पनासृष्टि का	कल्पनासृष्टि